//

दिव्य क्रान्ति की कहानी

प्रकाशक
महात्मा रामचन्द्र पब्लिकेशन लीग
फतेहगढ़ (उ.प्र.) 209601 भारत

पुस्तक का शीर्षक - दिव्य क्रान्ति की कहानी

प्रकाशन वर्ष - प्रथम बार, बसंत पञ्चमी 30 जनवरी 1982 द्वितीय बार

बसंत पञ्चमी, मंगलवार 23 जनवरी 2007 [ईस्वी0]

तृतीय बार बसंत पञ्चमी बुद्धवार 29 जनवरी 2020

प्रकाशित प्रतियाँ - प्रथम बार = 500, द्वितीय बार 1000, तृतीय बार 1000

प्रकाशक - महात्मा रामचन्द्र पब्लिकेशन लीग, फतेहगढ़ [उ प्र] 209601 भारत की ओर से

मुद्रक -

संकलन, सम्पादन, आलेख एवं प्रस्तुति - डॉ [श्रीमती] सुमन सक्सेना [एम० ए०, हिन्दी, पी०एच०डी०]

कॉपी राइट - इस पुस्तक अथवा इस पुस्तक के किसी अंश को इलेक्ट्रॉनिक, मेकेनिकल, फोटोकोपी, रिकॉर्डिंग अथवा अन्य सूचना - सँग्रह-साधनों एवं माध्यमों द्वारा मुद्रित या प्रकाशित करने से पूर्व डॉ श्रीमती सुमन सक्सेना धर्मपत्नी श्री दिनेश कुमार सक्सेना निवासी लालाजी निलयम, 01/45-ए महात्मा राम चन्द्र मार्ग [मोहल्ला - तलैया लेन] फतेहगढ़ [उ प्र] 209601 भारत की लिखित अनुमति अनिवार्य है।

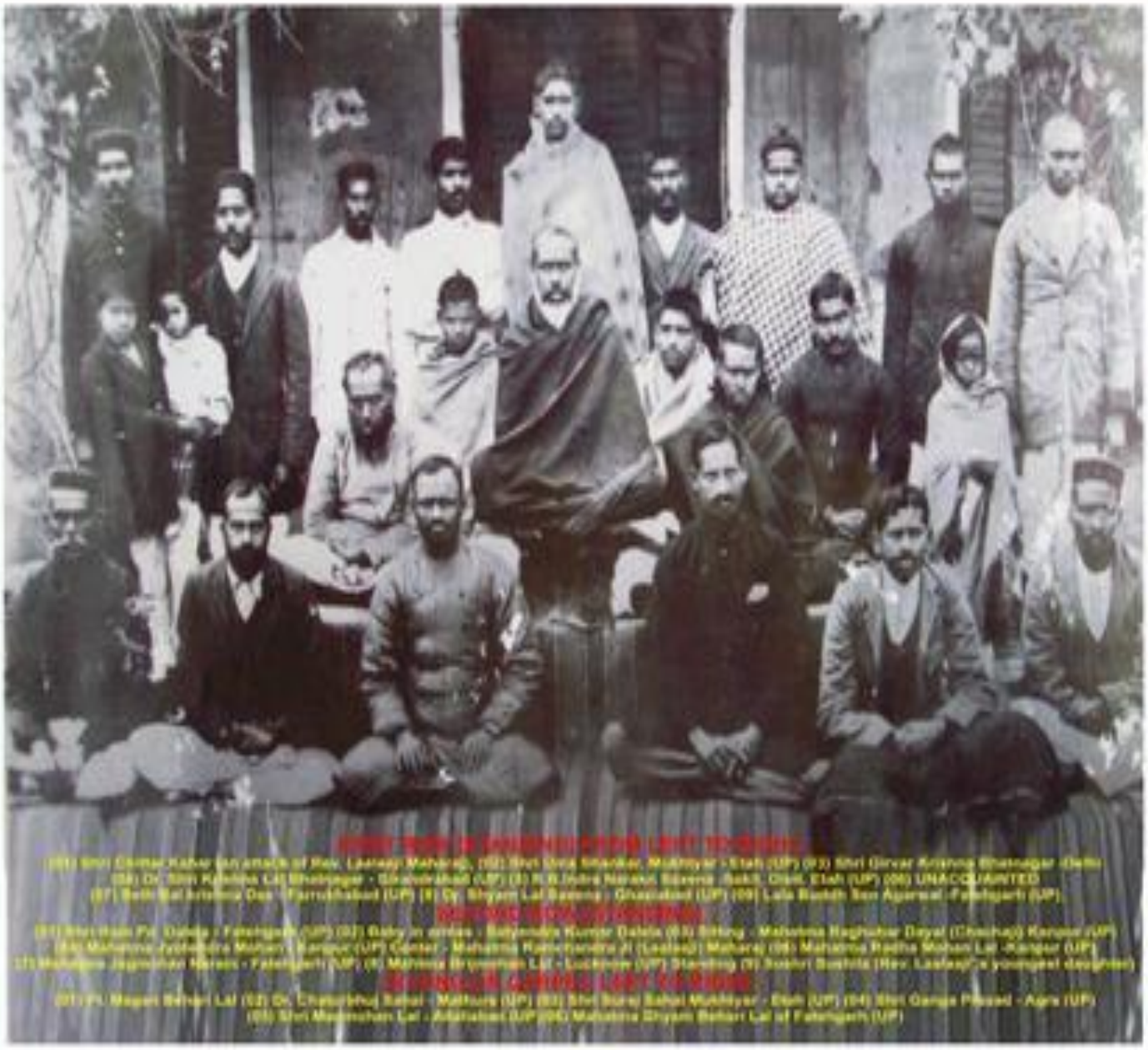

Rev. Laala Ji Sahib With His Disciple Flock In His Wifes Maternal Grand Parents Home

विषय सूची

(क). प्रियास:

(ख) प्रथम संस्करण की भूमिका

(ग) द्वितीय संस्करण की भूमिका

1. आशीर्वाद
2. क्षमा याचना
3. श्रद्धा सुमन
4. श्रद्धांजली
5. चिरस्मरणीय सौभाग्य
6. निमंत्रण
7. मानस मंथन
8. विनय प्रश्रय
9. जीवन वृत्त के प्रकाशन की सार्थकता
10. मेरे पूर्वज
11. वात्सल्य विभा
12. प्रकृति पुरुष दर्शन
13. मेरे रहनुमा मेरे हुज़ूर
14. मेरी सहधर्मिणी
15. मेरे आत्मज

16. सायुज्जता

17. निशा नीड

18. उत्तर दीप्ति

19. परिशिष्ट

क. कम्बलधारी अवधूत संत

ख. सत्संगियों के कर्तव्य

ग. ईश्वर का धन्यवाद

घ. वर्ष 1931 की परमपूज्य लालाजी साहिब की डायरी

प्रियासः

==========

"प्रियासः सन्तु सूरयः"

[यजु0 33-14]

"अधिकारी विद्वान हमें प्रिय हों।"

ब्रह्मविद्या के प्रचार- प्रसार के अधिकारी,

स्वनाम धन्य समर्थसद्गुरु महात्मा

श्री श्री राम चन्द्र जी महाराज

[परमपूज्य लालाजी महाराज],

उनके सहोदर

सन्त सद्गुरु महात्मा रघुबर दयाल जी

[श्री श्री चच्चाजी महाराज]

और

उनके सुपुत्र

सन्त सद्गुरु महात्मा जगमोहन नरायन जी

हमें प्रिय हों।

निरन्तर प्रिय लागहूँ मोहिं 'राम'।

ऐसा ही हो ! ऐसा ही हो !! ऐसा ही हो !!!

प्रथम संस्करण की भूमिका

सौभाग्यवती डॉ [श्रीमती] सुमन सक्सेना के माध्यम से सुलभ 'दिव्य क्रांति की कहानी' इस संस्थान की अनुपम उपलब्धि है। उन्हें किस प्रकार यह महान कृति सुलभ हुयी, इस विषय की खोज-बीन में न जा कर यह देखना-परखना उपयुक्त एवं समीचीन समझा गया कि यह आत्मकथा प्रामाणिक है या नहीं तथा इसके प्रकाशन से किसी अभीष्ट की सिद्धि होगी या नहीं ?

आत्मकथा अथवा जीवनी, इतिहास और उपन्यास के बीच की कड़ी है। इतिहास में तिथि तथा नामों के अतिरिक्त कुछ भी तथ्य नहीं होता तथा उपन्यास में तिथि और नामों के अतिरिक्त सब कुछ सार्थक होता है। आत्मकथा अथवा जीवनी में नाम व तिथि भी प्रमाणिक होते हैं और उसकी घटनाएँ एवं विवरण भी। बड़े सौभाग्य की बात ही कही जायेगी कि उनके [श्री श्री लालाजी महाराज के] निकट संपर्क में लगभग अर्धशताब्दी की दीर्घ अवधि तक साथ रहने वाले दो वयोवृद्ध महानुभावों के मत प्राप्त होने का सुयोग संभव हो गया। परमपूज्य श्रद्धेय डॉ० श्याम लाल जी सक्सेना [ग़ज़िआबाद]

जिनकी आयु इस समय लगभग 84 वर्ष की है एवं इस समय इस परम्परा के सबसे पुराने तथा सबसे अधिक आयुप्राप्त आचार्य प्रवर हैं। वे परमपूज्य लालाजी महाराज के संपर्क में जब

वे 17 - 18 वर्ष के थे, तभी आ गए थे। तब से आज लगभग 65 वर्ष की उनकी अनवरत साधना और अभ्यास है। उचित यह समझा गया कि उनको यह पाण्डुलिपि सुनायी जाय और इसकी प्रमाणिकता के सम्बन्ध में उनका मत प्राप्त किया जाय। उन्होंने जिस तन्मयता एवं सद्भाव से इसको सुना वह स्वयं एक सुखद संयोग था। भलीभाँति निरख-परख कर उन्होंने इसको पूर्णतयः प्रमाणिक कृति बताया और यह प्रस्ताव रक्खा कि इसके प्रकाशन में यदि कोई कठिनाई हो तो जितने भी अर्थ की आवश्यकता हो उनसे ले लिया जाय। वे अस्वस्थ थे तथा बैठने की क्षमता उनमे नहीं थी किन्तु इस पाण्डुलिपि को सुनते समय दो दो घण्टे तक 'एक-आसन-पर' निश्चल बैठे, बड़े ध्यान से एक एक शब्द सुनते रहे तथा अपने सदगुरुदेव की वाणी का अमृतपान करते हुए गद्गद् हो गए।

परमपिता परमात्मा श्री श्री लालाजी महाराज की पुत्रवधू श्रीमती भगवती देवी जी भी भगवान् की दया व कृपा से आज लगभग 77 वर्ष की आयु की हैं और प्रेमीभाइयों के हिताय सेवासमर्पित आदर्श जीवन धारण किये हुए हैं। वह परमपूज्य लालाजी महाराज के अतिनिकट संपर्क में सेवारत रहीं हैं और उनके जीवन के प्रत्येक क्षण का उन्हें निकट से से देखने-परखने का सुअवसर मिला है। उनको यह जीवनी सुनायी गयी। उन्होंने भी प्रत्येक घटना की प्रमाणिकता सिद्ध की। इन दो महानुभावों के अतिरिक्त यथा अवसर अन्यान्य प्रेमी-भाइयों को भी इस कृति को सुनाया गया तथा इसके सात्विक प्रभाव की दृष्टि से परखने की धृष्टता भी की गयी। आश्चर्य ही हुआ जब यह देखा गया कि पाण्डुलिपि सुनते समय प्रायः अभ्यासियों का

'शब्द' संचालित हो गया तथा अभ्यास की गंभीर अवस्था प्रकट हो गयी। प्रेमाश्रु बह निकले और शरीर में कम्प होने लगा। इस प्रकार सभी दृष्टियों से निरख-परख के पश्चात् इस कृति की प्रमाणिकता में कोई सन्देह नहीं रहा और इसके प्रकाशन का विचार किया गया।

इस कृति की बहुमुखी उपयोगिता दृष्टिगत हुयी। यदि परमपिता परमात्मा परमपूज्य लालाजी महाराज के जीवनकाल में यह कृति प्रकाशित होती तो अन्यथा आत्मप्रकाशन एवं प्रचार का साधन कही जाती। यद्यपि उन्होंने इस कृति में यथास्थान इस प्रकार के किसी भाव का कोई अंकुर अपने मन में नहीं देखा और मात्र प्रेमी-भाइयों की सेवा के लिए यह प्रयास आवश्यक समझा। आज यह प्रश्न भी शेष नहीं रहा। कदाचित यही आशंका उनके मन में रही हो जिससे उस समय इसको छिपाए रहे तथा इसको प्रकट एवं प्रकाशित न होने दिया। निश्चय ही उनका अपनी पौत्रवधू श्रीमती सुमन पर बड़ा अनुग्रह एवं अनुराग रहा है जो उनको इसका श्रेय व प्रेय देना स्वीकार किया या श्रीमती सुमन ने उन्हें अपने प्रेम एवं सेवा से मानसिक रुप से प्रसन्न कर लिया तथा वरदानस्वरुप यह अनुपम उपहार प्राप्त कर लिया। जो भी रहा हो, है परम अद्भुत, परमअनुपम। इस कृति की उपादेयता निम्नलिखित रूप में आंकी गयी तथा एतदर्थ भी इसका प्रकाशन आवश्यक समझा गया -

[01] अब तक किसी प्रामाणिक जीवनी के अभाव में अनेक भ्रांतियाँ परमपूज्य लालाजी महाराज के जीवन के सम्बन्ध में प्रचलित हो गयीं थीं। यों भी जब कोई संत जितनी अधिक मान्यता प्राप्त करता है, जितना अधिक उसका प्रचार होता है, उतनी ही अधिक अलौकिकता उसके चरित्र के साथ जुड़ती चली जाती है और ऐसा लगने लगता है कि वह कोई ऐसा पुरुष रहा है जिसके लिए मानव जीवन की कल्पना व्यर्थ सिद्ध हुयी है। इस प्रकार की अनेक भ्रांतियों का निराकरण होगा तथा प्रमाणिक जीवन प्रकाश में आएगा।

[02] प्रत्येक महापुरुष के जीवन की स्थिति एक साधारण मनुष्य जैसी होती है। वह भी अन्यान्य मानवीय दुर्बलताओं का शिकार होता है किन्तु अनवरत अभ्यास एवं साधना के द्वारा वह अपने चरित्र को उदात्त बनाता है और आदर्श स्थापित करते हुए महापुरुष की स्थिति को प्राप्त होता है। इन महापुरुषों के जीवन के इस अंश की प्रायः उनके भक्तों द्वारा उपेक्षा कर दी जाती है तथा ऐसा अनुभव होने लगता है जैसे वह मानव-जीवन की दुर्बलताओं से सर्वथा अछूते रहे हैं और सदा से रेव. ही उनका आदर्श जीवन रहा है। इसका परिणाम यह होता है कि वह महापुरुष देवता की श्रेणी में रख दिए जाते हैं और मानवमात्र को उनसे प्रेरणा लेने का कोई

आधार शेष नहीं रह जाता। परमपूज्य लालाजी महाराज के सम्बन्ध में भी यही हुआ। उनके जीवन के दुर्लभ पक्ष तिरोहित [छिपाना = conceal] हो गए और साधक यह सोचने लगे कि 'वह' तो अवतारी पुरुष थे। उनकी बराबरी एवं उनसे प्रेरणा लेने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इस जीवनी में परमपूज्य लालाजी महाराज ने अपनी स्थित स्पष्ट की है और अपनी दुर्बलताओं को सम्यक रूप से यथावत प्रस्तुत किया है। इस जीवनी को पढ़ने के पश्चात साधक साहस बटोर सकेगा और उत्साहित होगा कि जिस प्रकार परमपूज्य लालाजी महाराज ने अनवरत अभ्यास एवं साधना कर अपना जीवन बनाया, उसी प्रकार हम लोग भी बना सकते हैं।

[03] ब्रह्मविद्या एवं अध्यात्म-साधना क्या है, सांख्ययोग का सहज साध्यस्वरूप क्या है, साधक की कठिनाइयाँ एवं उनका निराकरण कैसे होता है, आदि तथा कथित रहस्यपूर्ण एवं गोपनीय तथ्यों का सुस्पष्ट विवरण इस जीवनी में देखने को मिला है जिससे सभी साधकों को चाहें वे किसी भी सम्प्रदाय के हों, लाभ होगा।

[04] 'गृहस्थ-जीवन' की इस साधना का व्यावहारिक रूप कैसा होना चाहिए, साधकों के आचार-विचार एवं व्यवहार की कौन सी कसौटी हो, जिसे वह प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहे तथा जिससे वह अपनी साधना की प्रगति को मापे - यह विवरण इस जीवनी में है तथा एक साधक ही एक आदर्श गृहस्थ एवं एक आदर्श नागरिक हो सकता है, यह परिकल्पना भी इस जीवनी में साकार हुयी है।

[05] परमपूज्य लालाजी महाराज ने अपने जीवन में किन-किन महानुभावों को दीक्षा दी और उनमे से कितने आचार्यपद के अधिकारी हुए और उन आचार्यों की क्या-क्या उपलब्धियाँ हैं अथवा उनसे परमपूज्य लालाजी महाराज की क्या-क्या आशा-अपेक्षाएँ हैं, ऐसे व्यक्तिगत सन्दर्भ इस जीवनी में हैं जो आज की सत्संग की अन्यान्य समस्याओं का समाधान करेंगे।

[06] महर्षि अरवविंद एवं श्रीमाँ ने 'शक्तिपात' को दृष्टिपात से सम्भव किया था, किन्तु उनका यह प्रयोग भी मानव तक ही सीमित था। परमपूज्य लालाजी महाराज ने काकभशुण्डिजी के आश्रम के अनुकूल इस प्रयोग का मानव के अतिरक्त प्रकृति एवं भूमा [earth] तक विस्तार किया। ग़ाज़ीपुर के दिलदारनगर व रावटी [रतलाम] की भूस्थलियों को ही उन्होंने शक्तिपात से

ऐसा शक्तिसम्पन्न बना दिया कि उन स्थानों की भूमि, बनस्पतियाँ इत्यादि सभी दिव्यप्रकाश से प्रदीप्त हो गए और ऐसा प्रभाव पड़ा कि वहाँ का घर-घर धार्मिक विचारों से ओतप्रोत हो गया तथा प्रत्येक निवासी सत्संग में सम्मिलित हुआ। यह अभिनव प्रयोग आध्यात्मिक जगत की अभूतपूर्व क्रान्ति रही है।

इस प्रकार यह प्रकाशन पूर्णतयः उपयोगी सिद्ध हुआ और प्रकाशन-योग्य समझा गया। मूल पाण्डुलिपि का पर्याप्त बृहद कलेवर है तथा उसमे उनके जीवन का कोई पक्ष अछूता नहीं रहा है। अतएव यह सोचा गया कि सम्पूर्ण पाण्डुलिपि एक बार में प्रकाशित करने के स्थान पर इसको उपयुक्त खण्डों में प्रकाशित किया जाय और प्रतिवर्ष एक-एक खण्ड प्रकाशित होता जाय। इस प्रकार चार-पाँच वर्षों में सम्पूर्ण कृति प्रकाशित हो जाय।

संस्थान के 'अनुसन्धान एवं प्रकाशन विभाग' की उनके योजनाएँ हैं। परमपूज्य लालाजी महाराज की कृतियों के प्रकाशन के साथ-साथ 'संत-मत' के प्रचार-प्रसार का कार्य करना, सत्-साहित्य उपलब्ध कराना जिसका लाभ उठा कर तथा आध्यात्मिक जगत के नए व सरल प्रयोगों की सुविधा प्राप्त कर जनसामान्य इस ओर उन्मुख होगा।

पत्रिका के प्रकाशन की योजना के अन्तर्गत 'संकुल' की सभी इकाइयों की उपब्धियों को प्रकाश में लाने का अवसर मिलेगा। साथ ही साधकों की साधनागत एवं व्यक्तिगत कठिनाइयों का समाधान सुलभ हो सकेगा।

अन्य संतों की वाणियों एवं साहित्य का प्रकाशन 'संस्थान' के उदार दृष्टिकोण का पोषक ही नहीं होगा अपितु इससे साम्रदायिक एकता तथा सद्भाव के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह हो सकेगा।

शोध की विभिन्न परियोजनाओं के अन्तर्गत साधना के तात्विक विवेचन के पक्ष को प्रस्तुत करते हुए वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाया जाएगा, जिसकी वर्त्तमान सन्दर्भ में अपेक्षा है तथा विदेश के जिज्ञासुओं की जिज्ञासाओं का जिससे समाधान संभव हो सकेगा।

'संस्थान' की अनुसन्धान एवं प्रकाशन योजना के अंतर्गत हस्तगत कृति एवं अभिनव शैली प्रयोग का प्रकाशन है और इस दृष्टि से श्रीमती सुमन भूरि-भूरि प्रशंसा एवं बधाई तथा साधुवाद

की पात्रा हैं। वह बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग की पीएच0 डी की शोध-क्षात्रा भी हैं तथा उनकी परिपक्व शोध एवं अनुसंधान वृत्ति का प्रस्तुत प्रकाशन अप्रतिभ उदाहण है।

श्रीमती सुमन के इस प्रकाशन से वस्तुतः संस्थान की वैज्ञानिक शोध-साधना का श्रीगणेश होता है तथा संस्थान को अपनी आकांक्षाओं के स्वप्न को साकार होता देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

'प्रकाशन एवं शोध' की परियोजनाओं में इस संस्थान के श्री बेनी माधव अग्रवाल, महामंत्री, श्री बी बी लाल ऍम ए पीएच डी, डी लिट् [अवकाशप्राप्त प्राचार्य] निदेशक शोध एवं अध्यन, तथा श्री ज़हूर मोहम्मद खाँ निदेशक 'कार्यक्रम एवं व्यवस्था' की महत्वपूर्ण भूमिकाएँ रहीं हैं। संस्थान की ओर से इनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करते हुए मैं बड़ी प्रसन्नता एवं संतोष का अनुभव कर रहा हूँ। श्री दिनेश कुमार जी [पौत्र ब्रह्मलीन महात्मा राम चन्द्र जी महाराज] संस्थान के संचालक एवं महानिदेशक के अथक प्रयास एवं प्रयत्नों का ही यह परिणाम है कि बहुत अल्प अवधि में इस संस्थान की एक निश्चित रूपरेखा उभर कर सामने आयी है। इनसे बड़ी आशापेक्षाएँ हैं। विश्वास है कि निकट भविष्य में संस्थान के उद्देश्यों के अन्तर्गत उसकी सभी आशापेक्षाएँ पूरी होंगी। बड़ी प्रसन्नता है कि इन उपलब्धियों के सन्दर्भ में श्री दिनेश कुमार जी के लिए वैदक साहित्य की विभूति महामना डॉ मुंशीराम जी शर्मा 'सोम' के भगवत्प्रसादस्वरुप आशीर्वाद एवं शुभकामनाएँ प्राप्त हुईं हैं। ऋषितुल्य श्री शर्माजी की वाणी अमोघ है और उनकी यह शुभकामनाएँ एवं शुभ आशीष श्री दिनेश जी के लिए सर्वथा सुफला एवं मंगलकारी होंगी। एतदर्थ हम श्री 'सोम' जी के हार्दिक आभारी हैं और संस्थान की ओर से श्रद्धापूर्वक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

रमेश चन्द्र माथुर
[पत्रकार एवं क्षेत्रीय प्रतिनिधि]
टाइम्स ऑफ़ इण्डिया, पायनियर, स्वतंत्र भारत,
आकाशवाणी- 29
निदेशक प्रकाशन विभाग, रामाश्रम संस्थान
फतेहगढ़ [उ०प्र०]
फतेहगढ़ 209601, बसन्त पञ्चमी 30 जनवरी 1982
"य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशय।।"
गीता - 18:68

[जो पुरुष मुझसे परम प्रेम करके इस परमरहस्ययुक्त गीताशास्त्र को मेरे भक्तों में कहेगा, वह मुझको ही प्राप्त होगा।]

"मुझको ही प्राप्त होगा" कह कर भगवान ने यह भाव दिखलाया है कि इस प्रकार जो भक्त, केवल मेरी भक्ति के ही उद्देश्य से व निष्काम भाव से मेरे भावों का, अधिकारी पुरुषों में विस्तार करता है, वह मुझे प्राप्त होगा - इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अर्थात यह मेरी प्राप्ति का एकान्तिक उपाय है।

==========

द्वितीय संस्करण की भूमिका

'दिव्य क्रांति की कहानी' के प्रथम संस्करण का प्रकाशन, परमपूज्य श्री श्री लालाजी महाराज के 109वें जन्मदिन, बसन्त पञ्चमी, सुदिन शनिवार दिनांक 30 जनवरी सन 1982 [ईस्वी०] के अवसर पर उनके पवित्र महासमाधिप्रांगण में एक सँक्षिप्त से सादे-समारोह के मध्य किया गया था।

'आत्मकथा' के सुलभ हो पाने से सम्बंधित अनेक प्रश्नों का व उसके संकलन, सम्पादन व आलेख की प्रस्तुति सम्बंधित अनुभवों का अब कोई न तो मूल्य ही शेष रहा है और न ही कोई सरोकार। क्योंकि पाठकों ने इसमें निहित सच को पहँचाना है और उसे स्वीकार भी किया है। अतः प्रकाशन की उपयोगिता व उसका अभीष्ट सिद्ध हुआ है और इस कृति ने सभी वर्गों व प्रत्येक सर्किल में अपनी पैठ बनायी है।

'कहानी' की प्रथम बार में कुल 500 प्रतियाँ छप पाईं थीं जो बहुत कम समय में ही हाथों-हाथ निकल गयीं। इसी से जुड़ी सच्चाई यह भी है कि इस [प्रस्तुत] संस्करण के प्रकाशन में विलम्ब के हेतु अन्य कारणों के अतिरिक्त, आप मानें या न मानें, उसके परिवर्धन, पुनः सम्पादन एवं प्रिंटिंग में हो गयी त्रुटियों के सुधार हेतु, आवश्यकता पड़ने पर, पुस्तक की दो प्रतियां भी एक

लम्बे अरसे तक नापैद रहीं। इसी प्रकार की अन्य कठिनाइयाँ भी आती-जाती रहीं। मूड भी बनता-बिगड़ता व बदलता रहा और इस संस्करण के प्रकाशन में अप्रयाशित विलम्ब होता गया। किन्तु पुस्तक के माँगकर्ताओं के आग्रह का घनत्व भी कुछ कम न था। अंततः प्रकाशन के मध्य संभावित व वास्तविक कठिनाइओं और पाठकों के आग्रह में सामंजस्य की स्थिति बनी। इस बीच हमारे राजस्थान अंचल के कुछ उत्साही बहन-भाई भी, अपना नाम गुप्त रखने की शर्त पर इसकी छपवाई से सम्बन्धित समस्त दायित्व के निर्वाह का प्रस्ताव ले कर सामने आये और मुख्यतः उन्हीं के बल-बूते पर इस कृति के द्वितीय संस्करण का सच आज आपके हाँथों में है।

सृष्टि का सृजनकर्ता जब किसी जिस्म का निर्माण करता है तो उससे दो हज़ार वर्ष पूर्व ही वह उसकी रूह [आत्मा] भी निर्धारित कर देता है। जिस्म की सुरक्षा और रूह की तरक़्क़ी का दायित्व संतों और फ़क़ीरों का होता है, जिसके निर्वाह का किया जाना बखूबी परिभाषित किया गया है। 'दिव्य क्रान्ति की कहानी' की विषय-वस्तु और उसकी भाषा को जीवन प्रदान करने वाली शब्द-संगत ध्वनियों से गुज़रती निरंतर उसकी चेतना का बहुआयामी विस्तार और परमपूज्य श्री श्री लालाजी महाराज के प्रति समस्त दिशाओं से बरसता हुआ उनका अस्तित्व, पाठक के मन-मस्तिष्क पर, बरबस अपना क़ब्ज़ा कर लेता है।

एक गृहस्थ-संत की, प्रथम-पुरुष में, जीवनगाथा इस कृति की अन्तर्वस्तु है, जो कि गूढ़ [गुह्य] और रहस्यमय है। ऐसे विषयों से सम्बद्ध साहित्य को हृदयङ्गम करने हेतु दर्शनशास्त्र, ब्रह्मविद्या और अध्यात्म के भेद को व्यावहारिक तौर पर समझ लेना अतिआवश्यक है। दर्शन का अर्थ है - किसी भी वस्तु या विषय का तात्विक स्वरुप। अध्यात्म - समस्त सिद्धांतों की सार्वभौमिक्ता पर प्रश्नचिन्ह स्थापित करता है तथा उनके अपवादों को प्रस्तुत व मुखर भी करता है। ब्रह्मविद्या साधारण मनुष्य से ईश्वर [ब्रह्म] में लय हो जाने तक की यात्रा की कार्ययोजना है। प्रस्तुत 'कहानी', इन तीनों की ही त्रिवेणी है।

'कहानी' के प्रथम संसकरण के प्रकाशन के समय, उसका पर्याप्त, बृहत कलेवर और उसमें एक गृहस्थ-संत के जीवन के प्रत्येक पक्ष और उसके बहुआयामी संस्पर्श को दृष्टिगत करते हुए यह निर्णय लिया गया था कि सम्पूर्ण पाण्डुलिपि का प्रकाशन, उपयुक्त खण्डों में किया जाय और प्रतिवर्ष, एक-एक खण्ड पाठकों के हाथों में पहुँचता रहेगा। यदि ऐसा किया जा पाता तो कलेण्डर वर्ष 1982 [ई0] के बाद, मात्र चार-पाँच उत्तरवर्ती वर्षों में 'कहानी' पूर्ण हो चुकी होती। किन्तु 'सोंच' और 'सच्चाई' में अंतर जो देखने को मिला उसके परिणामस्वरूप एक बार लिए गए निर्णय को बदलने के लिए मज़बूर होना पड़ा। इस प्रकार अब यह इस 'कहानी' का अगला खण्ड अथवा उसी खण्ड का दूसरा संस्करण न रह कर, यह उसका परिवर्धित संस्करण, पाठकों के हाथों में है। पूर्ववर्ती संस्करण में दी गयी कुल अंतर्वस्तु के अतिरिक्त इसमें चार अध्याय - [01] जीवनवृत्त के प्रकाशन की सार्थकता, [02] मेरे रहनुमाँ मेरे हुज़ूर, [03] सायुज्जता और [04] उत्तरदीप्ति नामक शीर्षक सन्निविष्ट करते हुए उनके क्रम में भी फेर-बदल करनी पड़ी है । पूज्यपाद श्री श्री लालाजी महाराज द्वारा लिखित शेष अप्रकाशित सामिग्री को, यथानुसार, अलग से प्रकाशित किया जाएगा।

कहानी के पूर्ववर्ती संस्करण के आलेख को तैयार करते समय, भाषान्तर [ट्रांसलेशन] की ईमानदारी के तहत, बीच-बीच में कुछ ऐसे क्लिष्ट व अलोकप्रिय शब्द प्रयोग में लिए गए, जिनपर पाठकों की प्रतिक्रिया सामने आयी। हमने उनकी आशापेक्षाओं के अनुरूप, उन शब्दों को यथा-सम्भव, साधारण बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले और सम्प्रत्यथानुरूप शब्दों को उनके स्थान पर प्रतिस्थापित कर दिया है।

सुखद अनभूति की आकंठ तृप्ति अनायास ही अभिव्यक्ति की पयस्विनी बन जाती है। प्रदर्शन और प्रकाशन इसका हेतु नहीं होता। होती है वस्तुतः वह आन्तरिक आत्मीयता एवं अपनत्व जिसके प्रेयस श्रेयस परिवेश में साधक अपने सभी अपनो को ले जाना चाहता है। ये अपने प्रेम की व्यापक परिधि में विकीर्ण किसी परिवार की सीमा में आबद्ध नहीं होते। मानव-मात्र की कल्याण कामना ही प्रत्येक साधक का मुख्य लक्ष्य होता है।

ब्रह्मविद्या युगों युगों तक परम गोपनीय तथा व्यक्तिगत रहस्य की स्थित में अवस्थित रही। अधिकारी पात्रों की खोज रही और वही इन-गिने व्यक्ति ही लाभान्वित हुए। इस सन्दर्भ में परमपिता परमात्मा प्रातःस्मरणीय श्री श्री लालाजी महाराज का दृष्टिकोण परिवर्तित हुआ और आज पूरे विश्व में उनके साधन और सिद्धान्तों का व्यापक प्रचार-प्रसार हो रहा है, लाखों साधक और भक्त आत्मकल्याण के परमलक्ष्य को प्राप्त करने के लिए तत्पर हैं।

नीव के पत्थर न कभी किसी को दिखाई दिए है, न दिखाई देंगे। लेखक, प्रकाशक व मुद्रक के नाम भी सदा सर्वदा श्रेय होते हैं किन्तु ऐसी भूमिका का निर्वाह करने वाले साधकों की ललक ही कुछ कम मर्मस्पर्शी नहीं होती। इसी क्रम में, इनके माध्यम से जन-जन की आर्त प्रार्थना प्रस्तुत हुयी है। हम समर्थगुरु महात्मा श्री श्री राम चन्द्र जी [लालाजी] महाराज से आग्रहपूर्वक विनय करते है कि वह अपनी दया व कृपा से, उरई के डॉ बृजवासी लाल, जोधपर [राजस्थान] के श्री ज्योति प्रकाश अरोरा, जयपुर [राजस्थान] के श्री राम अवतार शर्मा एवं श्री यशपाल जॉली इत्यादि शान्त और चुपचाप साधकों की, जिनके अथक परिश्रम व लगनशीलता के परिणामस्वरूप यह प्रकाशन संभव हुआ है, उन्ही के साथ वे जन-जन की प्रार्थना भी स्वीकार करें, प्रत्येक जन की झोली मुरादों से भर दें।

प्रकाशन की सुन्दर प्रिंटिंग तथा उसे समय से उपलब्ध कराने के सुप्रयास के लिए मुद्रण संस्था के प्रति हम ह्रदय से आभार व्यक्त करते हैं।

दिनेश कुमार सक्सेना

प्रिंसिपल ट्रस्टी

महात्मा राम चन्द्र पब्लिकेशन लीग

फतेहगढ़ (उ०प्र०) 209601 भारत

बसंत पञ्चमी मंगलवार 23 जनवरी 2007 [ई0]

आर्शीवाद

शील, सौजन्य एवं स्नेह के आदर्श कवि, मनीषी व वैदिक विश्रुत विद्वान् डॉ मुन्शी राम शर्मा सोम द्वारा

गृहस्थ संत एवं रहस्य - आचार्य श्री दिनेश कुमार सक्सेना, पौत्र एवं अधिकार प्राप्त पीठासीन उत्तराधिकारी - ब्रह्मलीन समर्थगुरु श्री श्री महात्मा राम चन्द्र जी [परमपूज्य लालाजी] महाराज के पक्ष में स्नेहपूरित, मंगलमय, शुभाशीष एवं आशीर्वाद

"दिनेश कुमारः विनीतोऽयं, लालितो वासवश्रिया।
साधको धर्मधीः, प्राज्ञो, स्वस्थो जीवेत शतः हिमा।।"
- डॉ मुन्शी राम शर्मा सोम

==========

क्षमा-याचना

परमसंत समर्थसद्गुरु श्रीमन महात्मा राम चन्द्र जी [परमपूज्य श्री श्री लालाजी महाराज
[03 फरवरी 1873 - 15 अगस्त 1931]

परमपिता परमात्मा
श्री श्री दादाजी !

आपने मन्द-मुस्कान से प्रमुदित कर यह दायित्व मुझे सौंपा कि आपकी दिव्य क्रान्ति की कहानी को प्रकाश लाऊँ। सो, यह आज्ञा पालन कर अति दीनता पूर्वक, क्षमा-याचना हेतु उपस्थित हुयी हूँ। कैसा बन पड़ा है, आप ही जानें। मेरा जी काँप रहा है कि अनजानें में कोई अपराध न बन पड़ा हो। मुझे क्षमा करें। दादाजी ! आप मेरे आध्यात्मिक दादागुरु भी हैं, मेरे सिर पर हाँथ रख कर आश्वस्त करें !! मेरा यह बाल-प्रयास कृपा कर स्वीकार करें !!!

त्वदीयं वस्तु गोविन्द
तुभ्यमेव समर्पये।

आपकी पौत्रवधू
सुमन

==========

03. श्रद्धा सुमन

साधना साधिता दिव्या राम चन्द्र महात्मना।
रक्षितव्या स्मृतिः तस्य सर्व भावेन साधकैः।।
- सोम

[महामना श्रद्धेय डॉ मुन्शी राम शर्मा 'सोम' जी ने 'दिव्य क्रान्ति की कहानी' के पाठकों के लिए जो दिव्य दिशा-निर्देश दिए हैं, उनके पीछे श्री 'सोम' जी की साधना के अपने अनुभव एवं जीवमात्र की कल्याण-कामना क्रियाशील है। प्रस्तुत कृति से साधक, पाठक क्या लाभ उठा सकते हैं और किस रुप में अपने अभीष्ट को प्राप्त कर सकते हैं, यह और इस प्रकार के व्यावहारिक निर्देश साधक पाठकों के ही नहीं प्रत्युत सामान्य अध्येता के लिए भी दिशानिर्देशक हैं। मान्यनीय श्री 'सोम' जी के एतदर्थ हम हार्दिक आभारी हैं। - प्रकाशक]

डॉ मुन्शी राम शर्मा 'सोम'

ऍम ए, पी-एच डी, डी लिट्

निदेशक, वैदिक शोध-संस्थान, कानपुर (उ०प्र०)

जीवन-चरित्र और वह भी एक उच्चकोटि के साधक संत का, हम साधारण मनुष्यों के लिए अतीव शिक्षाप्रद एवं लाभदायक होता है। प्रस्तुत ग्रन्थ ऐसे ही एक साधक की उन्नयनकारिणी जीवन-गाथा है। वंश-परिचय, अध्यात्म के प्रसंग, साधना के स्तर और उनका सुखद अवसानमय शिखर सभी पाठकों को प्रभावित करेंगे।

जीवन और मृत्यु के बीच त्रिशंकु बना हुआ यह व्यक्तित्व यदि सार्थक हो सकता है, तो केवल भौतिकता के चक्र से निकल कर शतऋतु इन्द्र बन कर। हम सभी इसी चक्र में पड़े हुए भटक रहे हैं। हमारे भीतर 'देवता' भी हैं और 'दैत्य' भी, उदात्त गुण भी हैं और अधम अवगुण भी।

'शुभ' और 'असुभ', नीति के क्षेत्र के दो विचित्र पक्ष हैं। इनमें से शुभ का ग्रहण और अशुभ का परित्याग, देवों का वरण और दैत्यों का निवारण करना है। यदि हम इस क्रिया में सफ़ल हो जाते हैं, तो दिव्यता की उपलब्धि हमें उस परमप्रभु के चरणों में उपस्थित कर देगी, जिसकी लालसा अब तक के हमारी जीवन-यात्रा के क्रम में हमारे साथ लगी रही है। दिव्यता का आँचल हमारे लिए, हमारे लालन-पालन के लिए, हमारी वृद्धि और पोषण के लिए, हमें ऊँचा उठाने के लिए, मानवता के शब्दार्थ को सिद्ध करने के लिए मनोरम सोपान हैं। यही सोपान एक के बाद एक, ऊपर चढ़ता हुआ हमें उस स्थिति को पहुँचा देता है, जहाँ जा कर समतलता है, सन्तुलन है, समरसता है और है सम्प्राप्ति। फ़िर उतार-चढ़ाव नहीं हैं, जो हमें भटकाने वाले हैं।

कहते हैं - चौरासी लाख योनियों के चक्र से निकल कर जीव, मानव-योनि प्राप्त करता है। यदि यह योनि 'भटकाव' से अलग रही, पुण्य-पथ का अनुगमन करती रही और निरन्तर अपने सखा, भ्राता, माता-पिता-रूप परमेश्वर को याद करती रही, तो इस योनि की सत्ता निश्चितरूप से उस परमसत्ता में विलीन हो सकती है। संतों ने इसी को 'सायुज्य' कहा है. पर 'सायुज्य' की प्राप्ति के लिए हमें 'सालोक्य', 'सामीप्य' और 'सारूप्य' तीनों श्रेणियाँ चढ़नीं पड़तीं है। संतों ने इन श्रेणियों के लिए भी अनेक सदुपाय बताये हैं। प्रस्तुत पुस्तक को पढ़ कर पाठक इन उपायों से अवगत हो कर, जान और समझ-बूझ कर आचरण करने लगें तो श्रीमन महात्मा राम चन्द्र जी के समान वे भी सद्गति प्राप्ति के अधिकारी बन सकेंगें। परमप्रभु हमें साधना के इस सत्पथ पर अग्रसर करें। इसी रूप में उनकी दिव्य-साधना के प्रति हमारी श्रद्धानिवेदन का उपक्रम तथा उनकी पावन स्मृति को सुरक्षित रखने का शुभ-संकल्प संभव हो सकेगा।

साधना साधिता दिव्या राम चन्द्र महात्मना।
रक्षितव्या स्मृतिः तस्य सर्व भावेन साधिकैः।।

- मुंशी राम शर्मा 'सोम'

[मान्यनीय डॉ हरवंश लाल जी शर्मा, हिंदी-जगत के मूर्धन्य विद्वान् हैं। वह अध्यात्म-साधना के क्षेत्र में भी उच्चकोटि की स्थिति प्राप्त किये हुए हैं तथा गृहस्थसंत के रूप में समादृत एवं सम्मानित हैं। बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय का बड़ा सौभाग्य है कि कुलपति के रूप में उनकी कुशल प्रशासनिक सेवायें सुलभ हुईं हैं। उनके श्रद्धासुमन प्राप्त कर हम 'संस्थान' को गौरान्वित समझते हैं तथा उनकी इस कृपा के लिए 'संस्थान' की ओर से हार्दिक आभार प्रकट करते हैं। - प्रकाशक]

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

डॉ हरवंशलाल शर्मा,
कुलपति दिनाँक 04. 04. 1982

संतप्रवर महात्मा राम चन्द्र जी द्वारा लिखित 'दिव्य क्रान्ति की कहानी' शीर्षक आर्ष पुस्तिका के अनुशीलन का सौभाग्य बंधुवर डॉ बृजवासी लाल जी के सौजन्य और सौहार्द से प्राप्त हुआ। यद्यपि कहानी आत्मकथा के रूप में प्रस्तुत की गयी है परन्तु यह सर्वथा समाधि-क्षणों में लिखित आत्मानुभूति की कथा है। महात्माओं और संतों की स्वान्तःसुखाय रचना ही लोक-कल्याण का साधन बनती है। गोस्वामी तुलसीदास जी का रामचरितमानस स्वान्तःसुखाय होते हुए भी लोक-कल्याण के अमोघ साधन के रूप में लोक में प्रचलित है। वास्तव में लोकमंगलकारी सच्चिदानन्दस्वरुप भगवान भी तो 'स्वानुभूत्यैक भान' है। इसी प्रकार महात्माजी [लालजी महाराज] की यह 'आत्मकथा' लोकमङ्गलकारिणी है, इसमें कोई संदेह नहीं है। यथार्थ के माध्यम से आदर्शोन्मुखता ही संतों के जीवन का लक्ष्य है। वेद, उपनिषद्, स्मृति, रामायण तथा महाभारत जैसे सभी ग्रंथों के अमूल्य रत्नों से यह मणिमाला ग्रथित है। पाठक को प्रेय से श्रेय की ओर ले जाने का यह अनुपम साधन है।

मुझे विश्वास है कि सुधी पाठक इससे लाभान्वित होंगे। मैं महात्माजी [लालाजी महाराज] के श्रीचरणों में नत हो कर अपनी श्रद्धासुमनांजलि अर्पित करता हूँ।
हरवंशलाल शर्मा 04. 04. 1982

04. श्रद्धांजलि

मुंशी सूरजनरायन 'मेहर' - देहलवी

[यह श्रद्धांजलि पूज्यपाद महात्मा ओंकारनाथ जी (भैय्याजी), कानपुर, के माध्यम से साभार प्राप्त हुयी है। उन्होंने यह भी बताया कि मुंशी सूरजनरायन 'मेहर' - देहलवी अपने समय के चोटी के शोहरा साहिबान में से एक थे एवं परमपूज्य लालाजी महाराज के जीवन-काल में उनसे मिलने आये थे और उनसे आध्यात्मिकरूप से लाभान्वित भी हुए थे।

वस्तुतः वे तत्कालीन ऋषिप्रवर स्वामी ब्रह्मानन्द जी, जो उन दिनों फतेहगढ़ में गंगा-किनारे 'धूमघाट' पर अपना आश्रम बना कर एकांतवास कर रहे थे, का नाम सुन कर उनके दर्शनार्थ आये थे और प्रथम-मिलन में ही स्वामीजी से प्रश्न कर बैठे कि "गँगा-स्नान का वास्तविक लाभ किस प्रकार प्राप्त किया जाय ?" इस पर पूज्यपाद स्वामीजी ने उन्हें बताया - "यदि गँगा-स्नान का वास्तविक भेद जानना है तो फतेहगढ़ में राम चन्द्र नाम के एक गृहस्थ संत मोहल्ला तलैया लेन में रहते हैं, उनके पास जा कर कुछ देर शांत बैठना। सारे आंतरिक भेद [चक्र] स्वयं ही संचालित हो जाएँगे।" प्रस्तुत नज़्म उनके प्रति श्रद्धाञ्जलिस्वरूप उन्होंने लिखी। बाद में यह 'चहल दर्वेश' नामक पुस्तक में छपी थी। - प्रकाशक]

==========

खुदा इस जगह है : खुदा इस जगह है

करूँ जुस्तजू क्यों कर तेरी या खुदा या,
तुझे मैनें दुनियाँ में ढूंढा न पाया।
कभी सूए मसजिद, कभी सूए मंदिर,
कभी इनके बाहर, कभी इन के अंदर।
मिला आबिदों से, मिला जाहिदों से,
मिला आलिमों से, मिला फ़ाज़िलों से।
हर इक में, ता-आ-सुब्ब की रूहें ख्वा थी,
शरीयत जो देखी, दुकाँ ही दुकाँ थी।
कहीं मारिफ़त ने नहीं रुख दिखाया,
हक़ीक़त का कोसों पता तक न पाया।
मजाहिब के झगडो से तंग आ गया मैं,
बखेड़े जो देखे कि हैरान था मैं।
मजाहिब को छोड़ा, लिया फ़लसफ़े को,
वहाँ भी वो बहसें थीं, कि बस कुछ न पूँछो।
हर इक बाल की खाल ही खींचता था,
मा-आ-नी को अपनी तरफ़ खींचता था।
किताबें बहुत नग़्ज़ से नग़्ज़ देखीं,
बहुत कम मगर उनमें पुरमग्ज़ देखीं।
क़ुतुब महज़ सूखी हुयी हड्डियाँ हैं,
चबाये इन्हें कौन ये सख़्त जां हैं।
बहुत कम मिलीं मुझको ज़िंदा किताबें,
नसीबों से मिलती हैं ख़ालिस शराबें।
मैं बैठा था मायूस गर्दन झुकाये,
मेरा फ़िक्र जाए तो किस तरह जाए।
इधर तो तरक़्क़ी का मक़सूद रस्ता,
उधर मेरा हाले अजब जां शिकस्ता।
दुआ को उठा हाँथ यारब बे अकबर,
मुझे अपने दीदार से बहर बर कर।

दुआ करने वाले को यह फ़ायदा है,
दुआ रहमतो फ़ज़्ल का माहेबा है।
हकीकत ने अपनी जो यूँ रुख़ दिखाया,
फ़रिश्ता नज़र एक मुझको जो आया।
कहने लगा जुस्तजू है तुझको,
खुदा किस जगह है ?
चल दिखाऊँ मैं तुझको,
खुदा इस जगह है,
खुदा इस जगह है।
खुदा कर्म में है, खुदा ध्यान में है,
खुदा इश्क़ में और इरफ़ान में है।
करम हो वो जिसमें सिद्क़ो सिफ़ाँ हो,
न वो कर्म जिसमें, कि मक्रो रियाँ हो।
जो भक्ति है, बिल्कुल चढ़ावे की भक्ति,
वोह बेसूद है बस दिखावे की भक्ति।
जहाँ इल्म है महज़ बहसों की ख़ातिर,
वहाँ कब हुआ, नूरे हक़ आके ज़ाहिर।
खुला है मुझे राज़ इस दर से 'मेहर',
खुदा इस जगह है, खुदा इस जगह है।

==========

05. चिरस्मरणीय सौभाग्य

इस दीपावली के 'ज्योति-महोत्सव' के अवसर पर जिस दिव्यज्योति की अनायास उपलब्धि हुयी, जिस महान अभीष्ठ की अप्रयास प्राप्ति हुयी, जिस काम्य-कृति की कमनीय कल्पना साकार हुयी, वह अद्भुत क्षण चिरस्मरणीय, सौभाग्य बन गया। आर्त पिपासु भक्तों को भगवान की वाणी मिल गयी, श्रुति स्मृतियों के साधकों को ब्रह्मविद्या की संहिता मिल गयी, आचार्यप्रवरों को साश्चर्य निर्देशिका मिल गयी, मैं क्या कहूँ मुझे तो वह सौभाग्य मिला, वह निःश्रेयस उपाधि मिली, वह श्रेय व प्रेय मिला जो सच ही उन परमसंत, परमपितापरमात्मा, प्रातःस्मरणीय मेरे दादा-श्वसुर, महात्मा राम चन्द्र जी [श्री श्री लालाजी] महाराज की पौत्रवधू के रूप में उनके परमस्नेही दया व करुणावतार साकार स्वरुप से प्राप्त होता है। मुझे विश्वास है कि यदि आज वह इस भू पर लीलारत होते तो, मुझे यह दायित्व सौंपते, मुझे यह धरोहर प्रदान करते। कदाचित उनकी वह ललक, वह भावविभोर कृपा-विलोकन, वह वरदा कामना की आकस्मिक रूप में ज्योति बन कर मेरे मनमानस को ज्योतित कर गयी, जिव्हा पर उनकी सरस्वती विराज गयी, नेत्रों में उनकी मन्द-मुस्कान समा गयी, श्रवणों में उनकी वाणी गूँज गयी, तब उनकी 'आत्मा-कथा', उनकी 'दिव्य क्रान्ति की कहानी' की सकल पाण्डुलिपि उनके पुराने पत्रों, पत्रावलियों, आलेखों, डायरी तथा पुस्तकों आदि से अनायास सुलभ हो सकी तो क्या आश्चर्य। शैली का प्रस्तुत प्रयोग उनके मनमानस को कहाँ तक अभिव्यक्त कर सका है और किस सीमा तक सफ़ल रहा है, यह तो विद्वान् पाठक स्वयं ही निर्णय करेंगे। मैं तो यह समझती हूँ कि मुझे उनका निर्देश मिला, उनकी आज्ञा हुयी और मैं अति विनम्रतापूर्वक उसका पालन कर सकी हूँ।

यदि इस प्रयास से किसी रूप में उनके प्रेमी भाइयों की किञ्चित सेवा हो सकी तो मैं अपने आप को धन्य समझूँगी।

मूल आलेखों को संकलित, क्रमबद्ध एवं वर्गीकृत करके पुस्तकाकार रूप में प्रस्तुत करने के उपक्रम में उर्दू में लिखी सामिग्री का हिन्दीकरण किया गया है। साथ ही यथास्थान कल्पना द्वारा समुचित सम्बन्ध-सूत्र योजित कर एकतारता प्राप्त की गयी है। मेरे इन प्रयासों के

सन्दर्भ में संभावित भूलों एवं भ्रांतियों के लिए मैं अपने-आप को दोषी मानती हूँ और ह्रदय से क्षमा-प्रार्थना करतीं हूँ।

हिन्दीकरण में मुझे मेरे पतिदेव के एक बुज़ुर्ग़ दोस्त सहयोगी व शुभचिंतक श्री ज़हूर मोहम्मद खां, मुख्य-नियंत्रक, पूर्वोत्तर रेलवे, फतेहगढ़ से जो एक साधक संत हैं और श्री श्री लालाजी महाराज के प्रेमी हैं, विशेष सहायता मिली है। उनके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ। प्रेस-प्रति के संशोधन एवं संवर्धन में मुझे अपने शोध-निर्देशक डॉ बी बी लाल पूर्व कुलपति, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी [उ0 प्र0] से मार्गदर्शन मिला है, पितातुल्य उनका स्नेह मेरा सम्बल बना है। उनके प्रति सादर नमन कर अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ। जिन सन्दर्भ-ग्रंथों से सहायता ली गयी है, उनके लेखकों एवं प्रकाशकों के प्रति अपना आभार व्यक्त करती हूँ। जिन महानुभावों ने अन्यथा मुझे प्रेरित-प्रोत्साहित किया है, विशेष कर हिंदी के उन मूर्धन्य विद्वानों के प्रति जिन्होंने कृपा कर अपनी सद्भावनाएँ एवं सम्मतियाँ प्रदान की हैं, हार्दिक आभार एवं सादर सद्भाव व्यक्त करती हूँ और उनके आशीर्वाद की कामना करती हूँ।

'रामाश्रम संसथान' फतेहगढ़ [उ0 प्र0] के अधिकारी एवं प्रकाशन विभाग के निदेशक ने कृपा कर इस कृति के प्रकाशन का संकल्प कर मुझे विशेषरूप से प्रोत्साहित किया है। मैं 'संस्थान' के महा-मंत्री श्री बनी माधव जी अग्रवाल के प्रति जो सच्चे अर्थों में श्रेष्ठजन हैं और अपनी धार्मिक उदात्तता के साथ मुक्त हस्त से सेवा, दान एवं आर्थिक सहायता के लिए सुविख्यात हैं, तथा श्री रमेश चन्द्र जी माथुर के प्रति जो लब्धप्रतिष्ठित पत्रकार एवं अन्यान्य उच्चकोटि के पत्रों तथा 'आकाशवाणी' के क्षेत्रीय प्रतिनिधि हैं और अपने उदात्त चरित्र तथा अपनी सामाजिक सेवाओं के लिए सुविख्यात हैं, सादर अपनी कृतज्ञता प्रस्तुत करती हूँ और धन्यवाद देती हूँ।

प्रिंटिंग सेंटर, जयपुर के प्रबंधको को मैं विशेष रूप से ससम्मान स्मरण करते हुए धन्यवाद देती हूँ। उन्होंने अपने सीमित साधनों के होते हुए भी बड़े उत्साह और सद्भाव से इस कृति के मुद्रण कार्य को पूरा किया है।

नमन की इस सुखद बेला में मैं अपने आराध्य अपने सर्वस्व, अपने प्राणाधार पतिदेव परम श्रद्धेय श्री दिनेश कुमार जी को समर्पण की सर्वभावभंगिमा में अति विनीत कृतज्ञता ज्ञापन हेतु स्मरण करती हूँ। वह इतने अपने हैं कि आशंका है कि उनके प्रति यह भाव ही कहीं

औपचारिकता के सन्दर्भ में दूरी का द्योतक हो कर अपराध न बन जाय। यह सोच कर ही हृदय काँप उठता है और धन्यवाद की औपचारिकता नहीं बन पा रही। मैं यहाँ यह रहस्य अवश्य प्रकट करना चाहूँगी कि मुझे लेखनी उठाने के लिए प्रेम-विवेश करने वाले वही हैं और वस्तुतः उनके प्रेम, प्रेरणा और आग्रह के सन्दर्भ में ही यह कृति प्रतुत हो सकी है। मैं उनसे जितना सम्मान समादर प्राप्त कर रही हूँ वह अधुना अभूतपूर्व है। वस्तुतः यह मेरा परमसौभाग्य ही है। सौभाग्यकांक्षिणी कन्या को राम जैसा वर प्राप्त करने एवं सुख-स्वप्न सँजोने की सुखद कामना भारतीय संस्कृति की सांस्कृतिक-धरोहर है किन्तु वर्त्तमान परिस्थियों में आज ऐसी कितनीं भाग्यशाली महिला हैं जिनकी यह कामना पूर्ण होती है। मेरे साथ कुछ बात ही और है। पूर्वजन्मों के पुण्यप्रताप से तथा गुरुजनों के अमोघ आशीर्वाद के फलस्वरूप मुझे तो अपने राम मिले हैं किन्तु मेरी अपनी आत्मवेदना यह है कि मैं उनकी सीता कहाँ बन पायी। इस कृति के माध्यम से सहृदय साधक समाज के समक्ष अति विनम्रतापूर्वक उनके इसी आशीर्वाद की कामना से उपस्थित हुयी हूँ कि "अपने राम के रंग में रंग जाऊँ, उनकी सीता बन जाऊँ और मीरा के शब्दों में गाऊं।"

"पचरंग चोला पहन सखी री, मैं झिरमिट रमवा जाती।"

डॉ [श्रीमती] सुमन सक्सेना

==========

06. निमन्त्रण

तुम जैसे भी हो,
जिस हाल में हो,
मेरे निमंत्रण को स्वीकार करो
और चले आओ।
मैं प्रतिपल तुम्हारी प्रतीक्षा में हूँ,
साहस करो और मेरे स्पर्श को छू लो ;
अंतर की तम अवस्था में समा जाओ,
मिलन के सुख को अङ्गीकार करो।
तो आओ। स्वागत है,
गंगा के दक्षिण तट पर, इस नगरी में
मेरा धाम फतेहगढ़ है -
यहीं आ जाओ, सिर्फ़ एक बार।
द्वार अब भी खुले हैं कुटिया के -
स्वागत को तत्पर हूँ
स्वयं प्रतीक्षारत हूँ।
आ जाओ, बस एक बार, बस एक बार।
आँखें उत्सुक हैं, अपलक चितवन है
खोज तुम्हारी अब भी जारी है।
एक बार, बस एक बार आ जाओ।
जैसे भी हो, एक बार, बस एक बार।
अभी तक तुम गीता और वेद पढ़ते रहे,
यज्ञ और हवन करते रहे,
और, जो दुर्गति होनी थी, होती रही।
तुम्हें फ़िर से अज्ञानी हो जाने की
हिम्मत जुटानी होगी।
अंतर में संग्रहीत ज्ञान से मुक्ति पानी होगी।

पूरी तरह से शून्य में जाना होगा
जिन विश्वासों से चिपके रहे हो,
नजात उनसे भी पानी होगी।
मैं सारी मानवता को, विश्व के इतिहास को,
उसमें निहित जो जीवन है, उस आभास को,
सभी में प्रेम और प्रेम के सच का संचार कर दूँगा।
यदि यही क्रान्ति है, तो आओ, मैं तुम्हें भयहीन कर दूँगा।
आ जाओ, बस एक बार, बस एक बार, बस एक बार।

- फ़क़ीर राम चन्द्र

==========

07 मानस मंथन

परम पिता जी !

यह सेवक जैसा है, आपके चरणों में उपस्थित है। इसे समझ नहीं कि आपको कैसे जानें अथवा कैसे आपकी स्तुति करें एवं आपके गुण किस प्रकार गाये जायँ। हाँ, कभी-कभी अपनी चेतना पर गर्व होता है किन्तु सत्य तो यह है कि जिसे मैं अपना ज्ञान व उपब्धि समझता था, वह सारे का सारा व्यर्थ ही प्रतीत होता है क्योंकि जब परख की घड़ी आती है तो कुछ भी काम नहीं आता। अब तक की सारी छान-बीन का परिणाम यह निकला है और यह जान पाया हूँ कि 'कुछ नहीं जाना'।

यों संसार के हर भाग में ज्ञान का मानों प्रवाह सा आया हुआ है। अनगिनत प्रकाशन ; पुस्तकों, समाचार-पत्रों एवं पत्रिकाओं के रूप में उपलब्ध हैं। इनमें प्रस्तुत सारे-के-सारे विचार ; ऐसा प्रतीत होता है कि पाठक के मानस-पटल पर उतर रहे हैं और उनके द्वारा मानों 'आपको' जानने और आपकी स्तुति करने, आपका गुणगान करने का साधन प्राप्त हो रहा है। किन्तु वहाँ इनका जमाव ऐसा अव्यवस्थित होता है कि कुछ दिन अंतस की इन कोठरियों में बंद रह कर फ़िर न मालूम कहाँ से कहाँ चले जाते हैं कि याद करने पर भी याद नहीं आते। और यदि याद भी आये तो बेसिर-पैर के कि कुछ किसी उपयोग के नहीं।

ये सारे विचार और उनसे सम्बद्ध दर्शन कहाँ से आते हैं और कहाँ समा जाते हैं ? क्या ये सब आप के नाम और रूप की गूँज और दृश्य तो नहीं हैं जो आपके ज्ञान के समुद्र से लहरों के रूप में उठते और फ़िर शान्त व मंद पड़ जाते हैं ? ज्ञान-अज्ञान, प्रकाश-अंधकार, विद्या-अविद्या, जड़-चेतन, मौत-ज़िन्दग़ी, शक्ति-दुर्बलता इत्यादि जितने भी द्वैत हैं, सब आपके और आपकी माया के क्रीड़ारत उपक्रम ही तो हैं। यह संसार एक रंगमंच है। प्राणीमात्र, इसमें अपनी भूमिका के अंतर्गत पात्र हैं एवं आपस में एक-दुसरे का खेल देखने वाले और दोहराने वाले हैं। कुछ लोग क्रीड़ामग्न हैं, कुछ इन क्रीड़ाओं को देख रहे हैं और अन्यत्र कुछ लोग इन की जा चुकी क्रीड़ाओं को दोहराने में व्यस्त हैं। यह चक्र ऐसा घूम रहा है कि इसके अंत का कोई निश्चय प्रतीत नहीं होता। संभव है कि महाप्रलय से जिस 'घड़ी' का आशय है, वही इस चक्र की अंतिम गति या ठहराव का दिन हो।

जो इस दृश्य से सिधार गए, मानों वे सभी मुक्त पुरुष रहे हैं जो अपनी-अपनी भूमिका का निर्वाह कर अंततः थक-थका कर एक कोने में बैठ रहे। ऐसा शांत व उन्मुक्त प्रयाण कि लौट कर दोबारा पीछे मुड़ कर भी नहीं देखा। एक से एक नाम वाले ऐसे अनाम व विलीन हुए कि किसी की स्मृति भी शेष नहीं रही। क्या हुआ कि उँगलियों पर गिने-गिनाये कतिपय महापुरुष, ऋषि, मुनि, पीर, पैग़म्बर, अवतार, औलिया के रूप में आज भी अपनी झलक दिखला देते हैं।

यह छायारूपी नाम और रूप, जब तक निजीप्रकाश शेष है, स्थित रहेगा। यों छाया तो छाया ही है। वर्तमान का यह व्यक्तित्व, किसी पहले हो चुके व्यक्तित्व का प्रतिरूप तो अवश्य ही है। यदि कोई व्यक्ति इस प्रकार चले कि अपने आप को अपने पिता की छाया या प्रतिरूप मान ले और अपने पिता को अपने दादा की, और इसी क्रम के सहारे अतीत में पीछे सरकता चला जाय, यहाँ तक कि उसको प्रतिरूप व छाया का क्रम समाप्त होता प्रतीत होने लगे और आधार मात्र के सिवाय कुछ समझ में न आये तो संभव है कि उक्त बिंदु, अंततः उस व्यक्ति का उद्‌गम स्थल हो।

हे परमात्मन ! यह सेवक भी ऐसे ही कितने, एक के बाद एक हो चुके व्यक्तित्वों के प्रतिरूपों का प्रतिरूप हो कर और अंततोगत्वा सत्पुरुष की किसी स्थिति के सत्य-रूप का प्रतिरूप और सत्यमार्ग के प्रारूप की सम्मिश्रित भूमिका बन कर आप की आशा-अपेक्षा के अनुकूल अपने दायित्व को निभाने का प्रयत्न कर रहा है। आप सबके ह्रदय को जाननेवाले हैं, इसलिए आप पर ही छोड़ता हूँ कि आप स्वयं निर्णय लें कि 'सेवक' अपनी भूमिका निभा पाने में कितना सक्षम है, एवं उसके द्‌वारा खेला गया खेल कितना सत्यार्जित अथवा कितना अन्यथा है, यदि वह किसी का प्रतिरूप है तो सत्पुरुष की किस स्थिति का सत्यरूप है ? मेरा दृढ़ विश्वास है कि आप की दया और कृपा की लहरों ने आप से दूर पड़े हुए इस शरीर को चारों ओर से इस दुनियां में पहले ही दिन से संरक्षण प्रदान किया, सत्यप्रकाश की प्रथम किरण मुझ पर मेरी परमभक्ता माँ की पवित्र गोद में डाली गयी तथा इस दिव्यप्रकाश की ऊष्मा में मुझे सात वर्ष तक पालित-पषित होने का सौभाग्य मिला।

हे परमदयालु ! आपकी असीम अनुकम्पा ने मुझे अधिक समय तक अपनी दिव्यधारा के प्रवाह से विलग नहीं रक्खा और अंततः, मेरी आयु के उन्नीसवें वर्ष के एक पावन दिवस को दया की साक्षात-मूर्ति, सत्यपथ के प्रदर्शक और ज्ञान-विज्ञान के दिव्यदीप को मेरे पथप्रदर्शक के रूप में भेज दिया एवं उन्हें मेरा सर्वस्व समर्पित करा दिया। इस सच्चे पथप्रर्दशक ने पहले ही दिन मेरे कान में यह मन्त्र फूँक दिया - "तेरा सत्य-रूप प्रारम्भ से ही सुपथ पर अग्रसरित

है अतः तू अपने आप को स-आशय, सत्पुरुष का प्रतिरूप हो कर सत्य को सत्य करके दिखला। प्रतिरूप प्रक्रिया को सत्पुरष के ध्रुवपद तक पहुँचने का दिव्यमार्ग बना। अपनी भूमिका का निर्वाह करने में 'माया' को अपनी आवशयक सामिग्री बना किन्तु सहारा मात्र 'सत्यपद' का ही ले।"

मेरे पथप्रदर्शक ने ऐसा संकेत दे कर मुझे, मात्र मेरे ऊपर ही नहीं छोड़ दिया किन्तु स्वयं छाया की भाँति हर समय साथ रह कर सोलह वर्ष तक अपनी विशेष आतंरिक व वाह्य कृपा से मेरी देख-भाल की। पंथ के बाहरी आडम्बरों से विलग रहने के लिए प्रतिपल प्रेरित किया व अंततः अपने ही रंग में रंग कर यह आदेश दिया कि उनका 'दिव्यसंदेश' जिस तरह और जहां तक हो सके भू-पटल पर ऐसा बिखेर दे कि कोई भी प्राणी उससे अछूता न रहे। आपका निर्देश था कि गिरे हुए जीवों और भूले-भटके दुखी संसारियों को उभारा जाय और उनकी आतंरिक स्थिति को शक्ति [power] दी जाय। आपका अभिप्राय यह था कि जब तक व्यक्तियों की आतंरिक स्थिति न सुधारी जायेगी, उनमें जागृति न आ पाएगी, आत्मसाक्षात्कार न होगा तथा तब तक उनका बौद्धिक-स्तर ज्यों का त्यों बना रहेगा और जीव, अनेकों विकारों के मध्य दबा पड़ा रहेगा अर्थात किसी प्रकार के विकास की संभावना नहीं होगी। इस प्रकार आपने इस बात पर ही बल दिया कि जहाँ तक बन सके 'आतंरिक-अभ्यास' किया व कराया जाय और इसके साथ-साथ धार्मिक सिद्धांतों, यम-नियम, आसन, ध्यान-धारणा इत्यादि का कठोरता से पालन करते हुए चरित्र का सही दिशा में निर्माण किया जाय। अध्यन-अनुशीलन व स्वाध्याय से भी समय-समय पर लाभ उठाया जाय। आप का मत था कि 'आतंरिक-अभ्यास' करने वालों का 'सत्संग' किया व कराया जाय जिससे चरित्रगठन व समाज के विकास का मार्ग सुलभ हो सके। इसके विपरीत यदि संसार के उन सम्प्रदाइयों, पन्थाइयों का प्रतिरूप उतारा जाएगा जो पुस्तकों से पूर्वजों की उपलब्धियों को सुन-सुना कर संतोष प्राप्त करते हैं और किसी प्रकार का 'आतंरिक-अभ्यास' नहीं करते ; तथा जिनका 'सत्संग' थोड़ी देर पुस्तकों का पाठ करना भजन या कीर्तन करके 'शब्दों' को गा कर अपने चित्त को बहला लेना होता है तो अभीष्ट सिद्ध न होगा।

अब मेरे प्रेमीजन थोड़ी देर इस बात पर ध्यान दें और विचार करें कि उपर्युक्त निर्देश मेरे पथप्रदर्शक ने मुझे दिए, उनकी आशा-अपेक्षाओं पर आधारित सिद्धांतों का किस स्तर तक अनुपालन हो रहा है। दुनियाँ के लोग चातक-नाटक, ऊपरी खेल-तमाशों और माया की झलक के भूखे हैं। उनके लिए केवल 'आतंरिक-अभ्यास' तक सीमित रहना एक भारी बोझ है। पुरानी आलसी आदतों को छोड़ कर धर्म-सम्बन्धी अनुशासन का पालन करना इतना बोझिल काम हो

गया कि एक पग उठाना भी दुःसह्य है। यही कारण है कि हमारे प्रेमिओं की संख्या बहुत थोड़ी है। जो हैं वे गिरते-पड़ते-भागते और मुहँ छुपाते दिखलायी देते हैं। कितने भाग गए और जाने कौन-कौन भागने को तैयार हो रहे हैं। फ़िर भी यह थोड़ी से संख्या जो अभी तक शेष है वे कितने निष्ठावान व आतंरिक-रूप से कितने भरे-पूरे हैं। इसका निर्णय वे ही कर सकते हैं, जो स्वयं 'अंतर' के अभ्यासी हैं। क्या कारण है कि हमारी यह संस्था इतना समय व्यतीत हो जाने के बाद भी अभी तक जिज्ञासुओं के मध्य अपना उचित स्थान प्राप्त न कर सकी, न इसे उचित प्रसिद्धि प्राप्त हो सकी, न इसकी कोई लिखित नियमावली है, न कोई 'कोष' [funds] है तथा न ही इसकी कोई आर्थिक सामाजिक पृष्ठभूमि है। इसका एक कारण तो यह प्रतीत होता है कि अब तक परंपरा के आप्तजनों की वाणी और संदेशों की आस्था के प्रति अव्यवहारिक कट्टरता रही है तथा लेशमात्र भी संशोधन या 'हेर-फेर' करना दुःसाहस समझा जाता रहा है। किन्तु अब ऐसा अनुभव किया जा रहा है कि मेरे प्रेमी व संस्था के अन्य सदसय-गणों में से पर्याप्त संख्या में व्यक्ति, यह चाहते हैं कि 'माया' के स्थूल रूप की आकृति को भी इस परंपरा के 'सत्संग' में स्थान दिया जाय तात्पर्य यह है कि परंपरागत मूक संदेशों और अपेक्षाओं को नियमबद्ध किया जाय तथा पुस्तकों व पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकट व प्रस्तुत किया जाय।

'सेवक' का विचार अब तक यह था [और अब भी है] कि प्राचीन आर्ष ग्रन्थ, संत-महात्माओं के अनुभव व वाणियाँ, उपनिषद्, गीता, रामायण, रामचरितमानस, और संत कबीर साहिब के 'शब्द', साखी और रमैय्या, गुरुनानक साहिब के ग्रन्थ, हाथरस वाले संत तुलसी साहिब की 'घट रामायण' शब्दावली, परमसंत रायसाहिब सालिगराम के पत्र और कुल्लियात, महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थ, स्वामी विवेकानंद जी और स्वामी रामतीर्थ जी के उपेश इत्यादि से सम्बंधित पुस्तकें इस मार्ग के जिज्ञासुओं के निमित्त पर्याप्त है। यदि किन्हीं महानुभावों को ये पुस्तकें अपने चित्त पर उतारने में कठिनाई होती हो अथवा वे इन आर्ष ग्रंथों की आत्मा तक पहुँचने में असमर्थ हों, तो उनके लिए महर्षि शिवव्रत लाल जी ने महान कृपा करके कुछ पुस्तकें साधारण भाषा में लिखीं हैं ; जो सीधे साधकों के लिए उपयुक्त हैं तथा भाषागत कठिनाइयाँ भी उनमें नहीं हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि जब ऐसे-ऐसे रत्न उपलब्ध हैं तो नयी कृतियों के सृजन का अहम् और मोह क्यों पीछा नहीं छोड़ता प्रत्युत यह लालसा दिन-दूनी, रात-चौगुनी बढ़ती ही जाती है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि जीवन की वर्तमान विषमताओं और दुर्बलताओं में उपर्युक्त उच्च कृतियाँ यथासम्भव सरल होते हुए भी दुरूह सी प्रतीत होतीं हैं तथा जनमानस और भी सहजमार्ग की अपेक्षा करता है। जिज्ञासा, मानव का प्राक्रतिक गुण है। निरंतर कुछ-न-कुछ जानने, नए प्रयोग करने एवं नए अनुभवों को प्राप्त करने की प्रक्रिया भी

मानव का ही स्वभाव है। यों एक बार किसी प्रक्रिया के अनुभव के उपरांत फ़िर पुनः उसमें वैसी जिज्ञासा शेष नहीं रहनी चाहिए किन्तु यह सदैव आवश्यक नहीं होता कि एक बार की गयी किसी प्रक्रिया में कुछ उपलब्धि हो ही गयी हो। इस प्रकार सतत प्रयोगशीलता बनी ही रहती है।

फ़िर कुछ ऐसी पुस्तकें भी हैं कि जिनके माध्यम से जो दर्शन पाठकों को उपलब्ध होता है उसका पूरा-पूरा लाभ उनको नहीं मिल पाता। इसका एक कारण यह है कि जो 'विचार' या 'दर्शन' उसमें निहित होते हैं वे लेखकों के अनुभवों के आधार पर उनके अपने निजी न हो कर कहीं से सुने-सुनाये हुये होते हैं या मानक-ग्रंथों की भ्रांतिपूर्ण प्रस्तुति होती है। कभी-कभी उनके उद्देश्य, जनसाधारण के निमित्त कल्याणकारी मार्ग की उपलब्धि न होकर अन्यथा विभिन्न प्रकार के निहित स्वार्थ हुआ करते हैं। यही कारण है कि ऐसी पुस्तकों व प्रकाशनों से जिसमें अच्छी भाषा, छपाई इत्यादि कितने भी आकर्षण होते हुए भी, जितना लाभ जिज्ञासुओं और साधकों को मिलना चाहिए, नहीं मिल पाता।

अपने अंतर में मैं अभी तक विचारों के इस तूफ़ान को दबाये रहा हूँ। मेरे प्रेमी भाइयों की व्यग्र दृष्टियाँ मेरे ऊपर पड़ीं, और उनका अनुरोध हुआ कि उपर्युक्त कठिनाइयों को दृष्टिगत रखते हुए मैं भी लिखूँ।उन्हीं के चिरस्नेही मौन निमंत्रण पर 'दिव्य क्रान्ति की कहानी' अपनी आत्मकथा के रूप में आपके करकमलों में प्रस्तुत है। यों मुझे एक आशंका ने इस प्रयास के लिए अपनी ओर से भी प्रेरित किया है और 'आत्मकथा' की शैली अपनाने के लिए आग्रह रहा। वह आशंका रही है, मेरे प्रेमी-भाइयों की अपार श्रद्धा और भक्तिजन्य असामान्य धारणायेँ, जिनके परिप्रेक्ष में भविष्य में कहीं वे मुझे देवता न बना दें, मेरी मानवीय दुर्बलताओं, जनसामान्य जैसी साधारण लालसाओं को कहीं ओझल न कर दें, मुझे कहीं अवतारी पुरुष न सिद्ध करने लगें जैसाकि प्रायः हुआ करता है जिससे साधारण साधक निराश हो जाता है और अपनी दुर्बलताओं से हताश होकर साधन-मार्ग से ही विमुख हो जाता है।

मेरी चेतना पूर्ण स्वस्थ है। फ़िर भी मेरी शैक्षणिक योग्यता इतनी परिपक्व नहीं कि कोई त्रुटिशून्य रचना आपके समक्ष प्रस्तुत कर सकूँ। इसमें भाषागत व अन्य तकनीकी त्रुटियाँ रहना स्वाभाविक है तथा अन्यत्र कहीं-कहीं ढेर सारे असंगत प्रसंग भी आपको मिलें क्योंकि मैं इस कला में प्रवीण नहीं हूँ।

इस कार्य में अपनी अहयमन्यता की तुष्टि का मेरा लेशमात्र भी प्रयास नहीं है, अपने स्वजनों, गुरुभाइयों व जिज्ञासुओं की सेवा के प्रयास स्वरूप ही मेरी यह रचना है। अतः अनेकों भूलों - त्रुटियों एवं असंगतियों पर मुझे लाज नहीं है।

आप प्रभु को प्रिय हैं। आपकी प्रार्थनाओं में जीवन है। उन्हीं प्रार्थनाओं के मध्य, भूले-बिसरे, कभी एक घड़ी मेरे लिए भी आप रखने की कृपा कर सकें, यही इस रचना से मेरी अपनी अपेक्षा है और यही मेरी कामना है।

"जमाले हमनशीं दरमन असर क़र्द।

वगर्ना माहुमा खाकम कि हस्तम।।"

[मेरे प्रियतम के जमाल ने मुझमें असर कर दियावरना मैं तो वही खाक़ का पुतला जो पहले था, वह अब भी हूँ ।

निरन्तर आपका सेवक,

- फ़क़ीर राम चन्द्र

==========

08 विनय प्रश्रय

साधनमार्ग की क्लान्त एवं शिथिल मनःस्थिति में विनय-प्रश्रय, घनी शीतल छाया बन कर मेरा प्रिय आश्रय रहा जिससे स्फूर्ति एवं उत्साह बना रहा है तथा आगे बढ़ने की शक्ति- सामर्थ्य संभव हो सकी है । समय-समय पर जो स्तुतियाँ मेरा अवलम्ब एवं सम्बल बनी है उन्हीं मेरी प्रिय स्तुतियों का यह संकलन यहाँ प्रतुत है। पातञ्जलि योग-शास्त्र में समाधिपाद सूत्र 23 के अंतर्गत "ईश्वर प्रणिधानाद्वा" कह कर विनय-प्रश्रय को समाधि-लाभ तथा ब्रह्मप्राप्ति का साधन बताया है। वस्तुतः पारब्रह्म परमात्मा को जानने और प्राप्त करने का सबसे उत्तम और सरल साधन 'प्रार्थना' ही है।

"सर्वे वेदा यत पदमामनन्ति
तपाँसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य चरन्ति।
तत ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत
- ॐ इति एतत [कठ0 - 01, 02, 15]

समस्त वेद नानाप्रकार और नाना छंदों से [आयनन्ति] जिसका प्रतिपादन करते हैं, सम्पूर्ण तप आदि साधनों का जो एकमात्र परम एवं चरम लक्ष्य है तथा जिसको प्राप्त करने की इच्छा से साधक निष्ठापूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, उस पुरुषत्तम भगवान् का परमतत्व मैं तुम्हें संक्षेप में बतलाता हूँ।

वह है एक अक्षर ॐ

- गुरुवंदना

गुरुब्रह्मा गुरुविष्णु गुरुदेवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात परब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है, गुरु ही महादेव है, गुरु साक्षात् परमब्रह्म है, उन श्री गुरुदेव को हम प्रणाम करते हैं, नमस्कार करते हैं, नमस्कार करते हैं।

ॐ भूर्भुवः स्वः। तत सवितुर्ववरेण्यम भर्गो
देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात।।
[यजु 0 - 36/30]

[भूर्भुवः स्वः] तीन महा व्याहृति या महावाक्य।

[ॐ] परमेश्वर [भू] सर्वाधार [भुवः] सर्वव्यापक और [स्वः] सुखस्वरूप है। [देवस्य] उस प्रकाशमय [सवितुः] सबको चलाने वाले जगदीश्वर की [तत] उस प्रसिद्ध [वरेण्यम] अति उत्तम [भर्गो] ज्योति को [धीमहि] धारण करें [यः] जो परमेश्वर [नः] हमारी [धियः] बुद्धियों एवं कर्मों को [प्रचोदयात] प्रेरित करें।

सबकी रक्षा करने वाले परमेश्वर, जो प्राणो के भी प्राण हैं, सब दुःखों से मुक्ति दिलाने वाले, स्वयं सुख स्वरुप और सबको सुख देने वाले हैं, उन सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति करने वाले कामना करने योग्य परमात्मा को जो अति श्रेष्ठ हैं, ग्रहण करने योग्य है, क्लेश-नाशक एवं पवित्र शुद्ध स्वरुप हैं ; हम लोग धारण करें ; उनका ध्यान करें जिससे वह परमात्मा हमारी बुद्धियों को उत्तम गुण कर्म स्वभावों के प्रति प्रेरित करें।

- मंगलभावना

ॐ विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद् भद्रं तन्न s आसुव।।

[यजु 0 30/03]

[देव] हे प्रकाशमय [सवितुः] सर्वनियन्ता परमेश्वर ! [विश्वानि] हमारे सम्पूर्ण [दुरतानि] संकटों को [परा-सुव] दूर करें और [यत] जो [भद्रं] मंगल हो [तत] वह [नः] हमारे लिए [आसुव] सुलभ करावें।

हे परमेश्वर ! आप शुद्ध स्वरुप हैं। आप ही सब सुखों के दाता हैं। हे नाथ ! आप सकल जगत के उत्पत्ति-कर्ता हैं और विश्व का समस्त ऐश्वर्य भी आप ही हैं।

हे प्रभो ! हमारे सारे दुर्गुणों, दुर्व्यसनों और दुःखों को दूर करें तथा जो कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं, वे सब हमको प्राप्त हों, यही आपसे हमारी विनम्र प्रार्थना है।

भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजात्रः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा सस्तनूभिर व्यशेमहि देवहितं यदायुः।।
[यजु0 25/21 ऋ. 01/81/08]

[भद्रं] भद्र भावनाओं को, [कर्णेभिः श्रृणुयाम] कानों से सुनें, [देवा] हे विद्वान पुरुषों ! [भद्र अक्षमिः पश्येम] उत्तम दृश्यों को हम आँखों से देखें [यजत्राः] हे कर्मठ पुरुषों ! [स्थिरै] स्वस्थ और सबल [अङ्गै तुष्टवाँसः] अंगों से स्तुति करते हुए [तनुभिः] शरीरों से [देव हितं] भगवान की उपासना करने के योग्य [यत] जो [आयुः] जीवन को [वि-अशेमहि] विशेष रूप से, व्यापक रूप में प्राप्त करें।

हे कर्मठ विद्वान पुरुषों ! अपने श्रवणो से हम मंगलवाणी का श्रवण करें, अमंगल एवं अभद्र का नहीं। अपनी आँखों से हम भद्र दृश्य देखें, अभद्र नहीं। स्वस्थ, सम्बल अंगों तथा शरीरों से युक्त हो कर, भगवान् की स्तुति प्रार्थना करते हुए हम लोग उच्चकोटि के जीवन को, दीर्घायु को प्राप्त करें,

यही प्रभु से प्रार्थना है।

शिव संकल्प

यज्ज्याग्रतो दूरमुदैति दैवं सुप्तस्य तथैवैति।
दुरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।।
[यजु0 : 34/01]

[यत] जो मन [जाग्रतः] जागते हुए का [दूरं] दूर-दूर तक [उदयति] उड़ता है, जाता है [दैवं] दिव्य-शक्तिओं से परिपूर्ण [तत + उ] वही [सुप्तस्य] सोये हुए का [तथा + एव] उसी प्रकार से [एति] जाता-आता है [दूरं गमं] दूरगामी [ज्योतिषां] आँख आदि इन्द्रियों को [ज्योतिः] प्रकाश देने वाला है [एकं] अकेला, केवल वही [तत] वह [मे मनः] मेरा मन [शिव संकल्पं अस्तु] कल्याणकारी शान्त संकल्प वाला हो।

यह अति चंचल मन जागते हुए मनुष्य का तो दूर-दूर तक जाता ही है, सोते मनुष्य का भी उसी प्रकार से दौड़ता रहता है। आत्मा का ज्ञान एकमात्र उसी के आधीन है उसके बिना सम्भव ही नहीं है। वह आँख आदि इन्द्रियों को शक्ति देने वाला है, उसके बिना इन्द्रियां कुछ नहीं कर सकतीं। वह संकल्प विकल्प-विकल्प दोनों करता है। है प्रभो ! वह हमारा मन शांत एवं कल्याणकारी संकल्प वाला हो, यही हमारी विनम्र प्रार्थना है।

अभयं

अभयं मित्रादभयममित्राद अभय ज्ञातादभयं परोक्षात।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा ममं मित्रं भवन्तु।।
[अथर्व0 19/15/06]

[अभयं] निर्भय हो [मित्रात] मित्र से [अभित्रात] शत्रु से [ज्ञातात] ज्ञात जनों से [परोक्षात] अज्ञात जनों से [नक्तं] रात्रि में [दिवा] दिन में [नः] हमारे लिये [सर्वा] सम्पूर्ण [आशा] दिशाएँ [मम मित्रं भवन्तु] मेरी मित्र हो।

[हे परमपिता परमात्मा ! मित्र से, शत्रु से, ज्ञातजनों से, अज्ञातजनों से, सबसे हम निर्भय हों। दिन और रात्रि में और सम्पूर्ण दिशाओं में हम निर्भय हो कर विचरण करें, यही आपसे हमारी विनम्र प्रार्थना है।]

शरणम [क़ुरान शरीफ़ से - सूरे फ़ातहा]

अऊजु बिल्लाहि मिनश शैत्वानिर रजीम।।
बिस्मिल्लाहिर रह मानिररहीम।
अल हम्दु लिल्लाहि रब्बिल आलमीन।
अर रह मॉनिर् रहीम, मालिकि यौमिद्दीन।
ईयाक न अबुदु व ईयाक नस्तईन।
इह् दिनस सिशतल मुस्तक़ीम।
सिरातल लज़ीन अन अम्त अलैहिम ;
ग़ैरिल मग़ज़ूबे अलैहिम व लज्जु आल्लीन।।
आमीन।।

[पापात्मा शैतान से बचने के लिए मैं परमात्मा की शरण लेता हूँ। प्रथम स्मरण करता हूँ अल्लाह का जो अत्यंत कृपालु व दयालु है। हर प्रकार की स्तुति भगवान के ही योग्य है।

वह परमपिता परमात्मा सम्पूर्ण विश्व का पालन-पोषण करने वाला, उद्धारक, परमकृपालु एवं परम दयालु है। न्याय के दिन का वही मालिक है।
प्रभो ! हम आपकी ही आराधना करते हैं और आपकी ही शरण एवं सहायता के प्रार्थी हैं।

हे दयानिधे ! हमें उस प्रशस्त मार्ग पर ले चलिए जिस पर चल कर साधक आपकी कृपा, दया व प्रसन्नता के अधिकारी बने हैं, उस मार्ग पर नहीं जिस मार्ग पर चल कर मनुष्य आपकी अप्रसन्नता और आपके दंड के भागी बने है अथवा जो भूले, भटके हुए हैं। ऐसा ही हो !!!]

- याचना [दरूद शरीफ़]

अल्ला हुम्मा सल्ले अला सैय्यदना मोहम्मदिन।
मादनिल जूदे वलकरम व अलेहि व सल्लम।

[हे परमपिता परमात्मा ! हमारे आश्रय हज़रत मोहम्मद पर जो बड़े कृपालु, दयालु व बड़े दाता हैं, अपनी कृपा-वृष्टि कर और उनकी संतान पर भी अपनी दया व कृपा-वृष्टि कर और उन्हें

दीर्घायु प्रदान कर, सदा प्रसन्न रक्खें।]

दिव्य प्रसाद

बिस्मिल्लाहिऱ रहमानिर् रहीम।
कुल हु वल्ला हु अहद। अल्ला हुस्समद
लम यालिद, वलम यूलद ;
व लम यकुल्लहू कुफ़वन अहद।

[ऐ पैग़म्बर ! लोग तुम्हें खुदा का बेटा बतावें और तुमसे खुदा का हाल पूँछें तो तुम उनसे कहना - " वह अल्लाह एक है। वह स्वतंत्र (बेनियाज़) है, उसको किसी आश्रय की आवश्यकता नहीं है। न उससे कोई पैदा हुआ है, न वह किसी से पैदा हुआ है और उसकी समता का कोई दूसरा है।"]

- Blessings :

[03] "Blessed are the poor in sprit ; for theirs is the kingdom of heaven."

["धन्य हैं वे जो अपने को दिन-हीन समझते हैं : स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है।]

[04] "Blessed are they that mourn ; for they shall be comforted."

"धन्य हैं वे जो शोक व परिताप करते हैं : उन्हें सान्त्वना मिलेगी।"

[06] "Blessed are they which do hunger and thist after righteousness : for they shall be filled."

"धन्य हैं वे जो अध्यात्म के बुभुक्षु एवं पिपासु हैं : वे तृप्त किये जाएँगे।"

[07] "Blessed are the merciful ; for they shall obtain mercy."

"धन्य हैं वे जो दयालु हैं : उन पर दया की जायेगी।"

[08] "Blessed are the pure the pure in heart ; for they shall see God."

"धन्य हैं वे जिनका ह्रदय निर्मल है : वे ईश्वर के दर्शन करेंगे।"

[09] "Blessed are the peacemakers ; for they shall be called the children of God."

"धन्य हैं वे जिनका ह्रदय निर्मल है : वे ईश्वर के दर्शन करेंगे।"

[10] "Blessed are they which are persecuted for righteousness' sake ; for theirs is the kingdom of heaven."

"धन्य हैं वे जो धार्मिकता के कारण अत्याचार सहते हैं : स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है।"

[11] "Blessed are ye, when men shall revile you. and persecute you and shall say all manner of evil against you Falsely, for my sake."

"धन्य हो तुम, जो लोग मेरे कारण तुम्हारा अपमान करते हैं : तुम पर अत्याचार करते हैं और तरहँ- तरहँ के झूंठे दोष लगाते हैं।"

[12] "Rejoice, and be exceeding glad ; for great is your reward in heaven ; for so persecuted they the prophets which were before you."

"प्रसन्न होओ और आनन्दित होओ : स्वर्ग में तुम्हें महान पुरस्कार प्राप्त होगा। तुम्हारे पहले नबीयों पर भी इसी तरह अत्याचार किये गए थे।"

[From new Testament : St. Matthew Chap 05 teachings from a mountain]

THY WILL BE DONE
There is really only one prayer
That we may offer "THY WILL BE DONE."
M.K.G.

समर्पण

"हे परमात्मन !
मुझको सिर्फ़ आपकी ज़ात और हुक्म जिसमें आपकी रज़ामन्दी हो, मंज़ूर है। यानि मेरा लक्ष्य वह ही है जिसमें आपकी मर्ज़ी है। मैंने इस लोक के ख़्याल को और परलोक के ख़्याल को आपके वास्ते छोड़ दिया है। आप अपनी दया और कृपा की दृष्टि मुझ पर कीजिये।"

"जैसी समुझौं अति नीकौ तैसोइ करौ नाथ निज जियकौ।
चित्त सोई चिंतन करै, वाक् बकै नित सोई
काया कर्म वही करै जो तम्हें अति प्रिय होइ।।"

सहकार एवं शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं
करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु। माँ विद्विषावहै।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः
[तैत्तिरीयारण्यके ब्रह्मानन्दवल्ली प्रप्रा ।।10।।]
प्रथमानुवाक् : ।।01।।

[हे परमपिता परमात्मा ! आप हम दोनों (गुरु-शिष्य) की साथ-साथ रक्षा करें, हम दोनों का साथ-साथ पालन करें, हम दोनों साथ-साथ शक्ति प्राप्त करें, हम दोनों की पढ़ी हुयी विद्या तेजोमय हो। हम दोनों में परस्पर द्वेष न हो, दोनों का द्वैत भाव मिट जावे, स्नेह सूत्र में बंध

कर एक हो जावें तथा परमलय अवस्था को प्राप्त हों।]
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।]

ॐ द्यौः शान्तिरअन्तरिक्षँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः
शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिविरश्वे देवाः
शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः सर्व ंकुं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः
सा मा शान्तिरेधि ।। [यजु0 36/17]
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

[हे प्रभो !

द्यु लोक और अंतरिक्ष लोक में पृथ्वी पर हमारे लिए शांति सुलभ हो। जल तथा औषधियाँ हमें शांति दें। बिना फूल के फलने वाले वृक्ष हमें शांति दें। सम्पूर्ण विद्वान और वेदवाणी से हमें शांति प्राप्त हो। सम्पूर्ण पदार्थ हमें शांति देने वाले हों। शांति भी शांति प्रदान करने वाली हो और वह शांति हमारे लिए सदा बृद्धि को प्राप्त होती रहे। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

==========

09. जीवन वृत्त के प्रकाशन की सार्थकता

आज के इस उपयोगितावादी युग में मेरी 'जीवन-गाथा' के मध्य यदि उन्हें कोई मूल्य-आधारित उपलब्धि नहीं हुयी तो लोग, खाली समय व्यतीत करने वाली साधन-सामिग्री अथवा किसी अन्य उपन्यास की भाँति इसे पढ़ कर, इसको भी एक तरफ़ डाल देंगे और बाद में उसी प्रकार की अन्य पुस्तकों की भाँति इसका भी अभीष्ट किसी कबाड़ी की दुकान में निर्धारित कर दिया जाएगा। बहुत हुआ, तो इस पर चर्चे होंगे, पत्र-पत्रिकाओं में समीक्षकों की राय छप जायगी। बस इसके बाद कुछ नहीं ; मानों, इसको भी मोक्ष-प्राप्ति हो गयी, जीवन-मरण के क्रम से मुक्ति मिल गयी।

एक प्रचलित वैदक सूत्र के अनुसार निर्देश यह है कि "जीवतां ज्योति रभ्येहि" - जीवन वाले लोगों से 'ज्योति' लो। जीवनवाले वे है जो सर्वदेशीय व सर्वकालिक हैं ; कल, आज और हमेशा उपस्थित रहने वाले हैं। किन्तु इसके साथ ही, सच यह भी है "आया है सो जाएगा।" तब ऐसा आदर्श कहाँ खोजा जाय कि जो सृष्टि की आदि से अंत तक हमेशा उपलब्ध रहने वाला हो।

मेरी सीमित बुद्धि के अनुसार "जीवन वाले" वे हैं जो श्रृंखलाबद्ध क्रमशः, कड़ी-दर-कड़ी, उत्तरोत्तर गतिमान हैं, जीवित हैं। इस दीन-हीन फ़कीर ने दर्शन व विभिन्न धर्मों के विश्वासों को, जहाँ तक मेरा विवेक सहायक हुआ है, छान-बीन की है और अंत में [मेरे] गुरुजनों के विश्वास व धारणा एवं तत्संबंधित ब्रह्मज्ञान को ही ऐसा पाया है कि जिस पर दृढ़तापूर्वक स्थिर रहने पर ही अंत समय तक सुरक्षित बने रहने की आशा की जा सकती है। आत्मसाक्षात्कार के कुशल निष्पादक चरित्रनिर्माण के अद्भुत शिल्पी व वास्तुकार, हज़रत शाह फ़ज़्ल अहमद खां साहिब [रायपुरी] रहमत उल्लाह अलेहि मेरे गुरुदेव ही नहीं, मेरे सम्पूर्ण अस्तित्व के मालिक हैं। मैंने उनसे केवल दीक्षा ही नहीं ली है - मैं उनके गुरुदेव के हाँथों पर बयत हुआ हूँ, बिका हुआ हूँ। उन्होंने मेरे अस्तित्व को अपने व्यक्तित्व की ओढ़नी व अपना 'निज-स्वरुप' प्रदान किया है। इसलिए मेरे चाहने वालों को, उनके स्वरुप को और उनकी गुरु-परम्परा के 'इष्ट' और जनक को पहँचानना होगा।

दरूद लक्खी

शुरू करता हूँ अल्लाह के नाम से जो बड़ा
मेहरबान, निहायत रहम वाला है।

ऐ अल्लाह रहमतकामिला नाज़िल
फ़रमा ऊपर सरदार हमारे और मालिक हमारे
साहब के, जो साहिबे ताज और मेराज और
बुर्राक़ व निशान के हैं।

दूर करने वाले सख़्ती और बवा और
क़हतसाली और बीमारी और दर्द के।

नाम उनका लिखा गया है बुलन्द किया
गया है, शफ़ाअत किया गया है, नक़्श किया
गया है, बीच लोह और क़लम के।

सरदार हैं अरब और अज़म के, जिस्म
उनका बहुत पाक, ख़ुशबूदा, पाक़ीज़ा,
रोशन बीच ख़ाना क़ाबा और हरम के,

आप आफ़ताब चाश्त के, माहेताब
अंधेरी रात के, मसनदनशीं बुलन्दी के,
नूर राहेरास्त के, पनाह मख़लूक़ात के,
चिराग़ तारीकियों के, नेक आदतों वाले,

बख़्शाने वाले उम्मतों के, साहबे बख़्शीश
और बुज़ुर्गों के, और अल्लाह निगहबान है उनका,
और जिब्रील ख़िदमतगुज़ार है उनका,
और बुर्राक़ सवारी है उनकी और मेराज सफ़र है

उनका और सदरत मुन्तहा मुक़ाम है उनका
और क़ाबा कौसीन विसाल इलाही मतलूब है
उनका, और मतलूब और मक़सूद है उनका
और मक़सूद उनके पास मौजूद है।

सरदार रसूल के, ख़ात्मा सब नबियों के,
बख़्शाने वाले गुनहग़ारों के, ग़मख़्वार
मुसाफ़िरों के, रहमत जहाँ के लोगों के
मूजिब आराम आशिक़ों के, मुराद
मुश्ताकों के, आफ़ताब खुदा शनासों के,
चिराग़ राहे ख़ुदा चलने वालों के, चिराग़
मुक़र्रिबों के, दोस्त रखने वाले मोहताजों के,
और मुसाफ़िरों और मुफ़्लिसों के सरदार ;

जिन व इन्स के नबी, मक्का मुअज़्ज़मां
और मदीना मुनव्वर के पेशवा, बैतुल
मुक़द्दस और काबा के वसीले, हमारे बीच,
दुनियाँ और आख़रत के साहबे मर्तबा,
मिक़दार दो कमानों के, महबूब, परवरदिगार
दो मशरिकों और मग़रिबों के ;

नाना हमाम हसन और हुसैन के, मालिक हमारे
और मालिक जिन व इन्स के, क़नीत अबदुल
क़ासिम नाम मोहम्मद, बेटे अब्दुल्ला के।

नूर हैं अल्लाह के, नूर से ऐ आशिकों,
नूर जमाल और हज़रत के,
दरूद भेजो ऊपर उनके और उनके औलाद के,
और उनके दोस्तों के और सलाम भेजो
सलाम भेजना।।

शुरू करता हूँ अल्लाह के नाम से जो
बड़ा मेहरबान, निहायत रहम वाला है।

ऐ अल्लाह ! रहमत कामिला और सरताज
नाज़िल फ़रमा ऊपर सरदार हमारे
और मालिक हमारे मोहम्मद साहब के,
और ऊपर आला सरदार मोहम्मद साहब के,
बेशुमार रहमत अल्लाह के।

ऐ अल्लाह ! रहमत कामिला और सलाम
नाज़िल फ़रमा ऊपर सरदार हमारे मालिक
हमारे मोहम्मद साहब पर और ऊपर आला सरदार
हमारे मोहम्मद साहब के बेशुमार बख़्शिश अल्लाह के।

ऐ अल्लाह ! रहमत कामिला और सलाम नाज़िल
फ़रमा ऊपर सरदार हमारे मालिक हमारे मोहम्मद
साहब के, और आला सरदार हमारे मोहम्मद
साहब के, बेशुमार अख्लूक़ अल्लाह के ;

ऐ अल्लाह ! रहमत कामिला और सलाम
नाज़िल फ़रमा ऊपर सरदार हमारे और मालिक
हमारे मोहम्मद साहब के और ऊपर आला सरदार
मोहम्मद साहब के, बेशुमार इल्म अल्लाह के ;

ऐ अल्लाह ! रहमत कामिला और सलाम नाज़िल
फ़रमा ऊपर सरदार हमारे और मालिक हमारे
मोहम्मद साहब के और ऊपर आला सरदार मोहम्मद
साहब के बेशुमार क़लमों अल्लाह के।

ऐ अल्लाह ! रहमत कामिला और सलाम
नाज़िल फ़रमा ऊपर सरदार हमारे और मालिक
हमारे मोहम्मद साहब के, और ऊपर आला
सरदार हमारे मोहम्मद साहब के,
बेशुमार बुज़ुर्ग़ी अल्लाह के।

ऐ अल्लाह ! रहमत कामिला व सलाम
नाज़िल फ़रमा ऊपर सरदार हमारे और मालिक
हमारे मोहम्मद साहब के और ऊपर आला सरदार
हमारे मोहम्मद साहब के
बेशुमार हसब-कलाम अल्लाह के।

ऐ अल्लाह ! रहमत कामिला व सलाम
नाज़िल फ़रमा ऊपर सरदार हमारे और मालिक
हमारे मोहम्मद साहब के और ऊपर आला सरदार
हमारे मोहम्मद साहब के
बेशुमार बूंदों - बारिशों के।

ऐ अल्लाह ! रहमत कामिला व सलाम
नाज़िल फ़रमा ऊपर सरदार हमारे और मालिक हमारे
मोहम्मद साहब के और ऊपर आला सरदार हमारे
मोहम्मद साहब के बेशुमार पत्तों और दरख़्तों के।

ऐ अल्लाह ! रहमत कामिला व सलाम
नाज़िल फ़रमा ऊपर सरदार हमारे और मालिक हमारे
मोहम्मद साहब के और ऊपर आला सरदार
मोहम्मद साहब के बेशुमार रेग व रेगिस्तानों के।

ऐ अल्लाह ! रहमत कामिला व सलाम

नाज़िल फ़रमा ऊपर सरदार हमारे और मालिक
हमारे मोहम्मद साहब के और ऊपर आला
सरदार मोहम्मद साहब के
बेशुमार उन चीज़ों के कि पैदा की गयीं हैं दरिया में।

ऐ अल्लाह ! रहमत कामिला व सलाम
नाज़िल फ़रमा ऊपर सरदार हमारे और मालिक हमारे
मोहम्मद साहब के और ऊपर आला सरदार
मोहम्मद साहब के बेशुमार दानों और फूलों के।

ऐ अल्लाह ! रहमत कामिला व सलाम
नाज़िल फ़रमा ऊपर सरदार हमारे और मालिक
हमारे मोहम्मद साहब के और ऊपर आला सरदार
मोहम्मद साहब के बेशुमार रात और दिन के।

ऐ अल्लाह ! रहमत कामिला और सलाम
नाज़िल फ़रमा ऊपर सरदार हमारे और मालिक
हमारे मोहम्मद साहब के और ऊपर आला सरदार
मोहम्मद साहब के बेशुमार चीज़ों के अन्दर हरेक चीज़
रात के और रोशनी डाली उन पर दिन को।

ऐ अल्लाह ! रहमत कामिला और सलाम
नाज़िल फ़रमा ऊपर सरदार हमारे और मालिक
हमारे मोहम्मद साहब के और ऊपर आला
सरदार मोहम्मद साहब के
बेशुमार लोगों के जिन्होंने आप पर दरूद भेजा।

ऐ अल्लाह ! रहमत कामिला और सलाम
नाज़िल फ़रमा ऊपर सरदार हमारे और मालिक हमारे
मोहम्मद साहब के और ऊपर आला सरदार

मोहम्मद साहब के
बेशुमार लोगों के जिन्होंने आप पर
दरूद नहीं भेजा।

ऐ अल्लाह ! रहमत कामिला और सलाम
नाज़िल फ़रमा ऊपर सरदार हमारे और मालिक हमारे
मोहम्मद साहब के और ऊपर आला सरदार मोहम्मद साहब के
बेशुमार साँसों मख़लूक़ात के।

ऐ अल्लाह ! रहमत कामिला और सलाम
नाज़िल फ़रमा ऊपर सरदार हमारे और मालिक हमारे
मोहम्मद साहब के और ऊपर आला सरदार
मोहम्मद साहब के
बेशुमार सितारों और आसमानों के।

ऐ अल्लाह ! रहमत कामिला और सलाम
नाज़िल फ़रमा ऊपर सरदार हमारे और मालिक हमारे
मोहम्मद साहब के और ऊपर आला सरदार
मोहम्मद साहब के बेशुमार कुल चीज़ों के जो दुनियाँ और
आख़िरत में मौजूद हैं, रहमत ख़ुदाए वाला की
और उनके फरिश्तों की और उनके नबियों की और
उनके रसूलों की और तमाम विलायत की। नाज़िल हों।

ऊपर सरदार रसूलों के और पेशवा
परहेज़गारों के और खींचने वालों तरफ़ बातिन के,
रोशन पेशानियों और हाँथ पाँव वालों के,
और बख्शाने वाले गुनहग़ारों के, सरदार
और मालिक हमारे मोहम्मद साहब के, और
ऊपर आल उनके और यारों उनके
बीवियों उन्ही के, और औलाद उन्हीं के,

और घर वालों उन्हीं के, और अहलतात तेरे
इन सब पर जो लोग आसमानों और
ज़मीनों के हैं, साथ रहमत तेरी के।

ऐ निहायत रहम करने वालों के और
ऐ बख़्शिश करने वाले, परवरिश करने वालों के
और दरूद भेजो अल्लाह बरतर
ऊपर सरदार हमारे मोहम्मद और
उनकी आल और उनके यारों के सब पर
और सलाम भेजो
सलाम भेजना हमेशा वह्य
बहुत
सब तारीफ़ अल्लाह के वास्ते है
जो पालने वाला कुल जहाँ का है।
आमीन।

==========

स्वरूपानन्द के आच्छन्न होने के कारण अज्ञान की विक्षेप शक्ति के प्रभाव से, सुख या आनन्द, समस्त जगत में बिखर गया है। जीव स्वरूपगत वैशिष्टय तथा विक्षेप-शक्ति के संसर्ग के कारण विक्षिप्तता में भी तारतम्य होता ही है। प्रत्येक जीव का स्वरूपानंद खण्ड-खण्ड हो कर अनंत विश्व में सर्वत्र - न्यूनाधिक भाव से फ़ैला हुआ है। जब तक ये बिखरे हुए आनन्द के कण समष्टि भाव में समवेत हो कर घनीभूत न हो जायेंगें तब तक जीव को अपने स्वरूपानंद की झलक नहीं मिल सकती। साधना का उद्देश्य है, आनन्द के इन कणों को संचित कर उन्हें एक आकृति प्रदान करना। इष्ट के साथ "गुरुप्रदत्त बीजमन्त्र' का अभेद्य सम्बन्ध है। 'गुरुप्रदत्त बीजमन्त्र' ही साधक के खेत [अंतःकरण] में गिर कर इष्ट-रूप में परिणित होता है। बीज के साथ वृक्ष का जो सम्बन्ध है, गुरुप्रदत्त मन्त्र के साथ इष्ट का ठीक वैसा ही सम्बन्ध है। बीज से जिस प्रकार, प्राकृतिक नियमानुसार, अपने आप ही वृक्ष प्रकट होता है, ठीक उसी प्रकार, गुरुशक्ति से, इष्ट का आविर्भाव हुआ करता है।

हम जो इच्छा करते हैं, उसकी प्राप्ति ही, हमारी साधना-लक्ष्य बन जाता है। जो इच्छा का

विषय है ; वही सुख है। सुख की प्राप्ति ही इष्ट की प्राप्ति है। जाने-अनजाने सभी सुख की खोज में हैं। सच्चा और स्थायी सुख हमारे आत्म-स्वरुप से पृथक - अन्यत्र कुछ भी नहीं है। यही कारण है कि सुख के अपेक्षाकृत कोई अन्य वस्तु अधिक प्रिय नहीं हो सकती। किसी को चाहे कोई भी वस्तु कितनी भी प्रिय क्यों न हो, वह आत्मा के लिये ही प्रिय होती है। अतः आत्मा, सुख और इष्ट, मूलतः एक ही वस्तु हैं। चाहें कोई किसी वस्तु की इच्छा क्यों न करे, अज्ञात भाव से, वह अपने आप को ही चाहता है, किसी अन्य को नहीं। परन्तु समझ में न आ पाने के कारण प्रत्येक व्यक्ति यह समझता है कि उसकी इच्छित वस्तु उससे पृथक है और इसी अज्ञान के अंधकार में वह भागा-भागा फ़िरता है।

मेरे कुछ प्रगतिशील मित्रों की यह सलाह लगातार मेरा पीछा करती रही है कि रामायण, गीता, महाभारत, वेद, उपनिषद् इत्यादि आप्तग्रन्थ और ऐसे ही अन्य धर्मग्रंथों के पढ़ने से कुछ नहीं होगा, "तुहें अपनी रामायण, महाभारत और गीता की रचना स्वयं करनी होगी, राम या कृष्ण, तुम्हें स्वयं बनना होगा।" उनके इसी सिद्धांत के अंतर्गत मैंने हज़रत पैग़म्बर सलल्लाहो व् सल्लम [क्योंकि कि मेरी गुरु-परम्परा के समस्त संत, पीढ़ी-दर-पीढ़ी क्रमशः उन्हीं की ज़ात-पाक में विलीन व शेष हैं, उनकी अलग कोई सत्ता है ही नहीं] के जीवनचरित्र की विषयवस्तु निम्नलिखित शीर्षकों में प्रबुद्ध करते हुए अपने स्वयं के जीवन में ढालने का प्रयास किया है और आजीवन मेरी यही साधना रही है और उन पर लगातार, इस सीमा तक दृष्टि रक्खी है, मनन किया है कि मुझे देख कर कोई 'उनके' बारे में अनुमान लगा सके कि वे कैसे और क्या थे।

"या इलाही अपनी अज़मत और अता के वास्ते।
नूरे ईमां दे मोहम्मद मुस्तफ़ा के वास्ते।।"

उन्ही की दया व कृपा का प्रतिफ़ल है कि मेरी जीवनगाथा लिपिबद्ध हो कर इस स्तर तक संपन्न हुयी है कि उसका प्रकाशन सुलभ हो। इनमें से छन-छन कर मेरे इष्टदेव यदि पाठकों पर प्रगट हो सकें, उन्हें 'मूल्य-आधारित' आध्यात्मिक शिक्षा के मूलमन्त्र प्राप्त हो पायँ और सही अर्थों में जीवनप्राप्ति के उद्देश्य पूरे हों, तभी मैं इस कृति के प्रकाशन को सार्थक समझूँगा। मेरे जीवन में कई बार अँधेरे और काली रातें भी आईं हैं किन्तु प्रत्येक स्तर पर मेरी यही कोशिश रही है कि पाठकों पर उनकी छाया भी न पड़ सके। मेरा तो यही प्रयत्न

रहा है कि जो भी मेरी जीवनगाथा को पढ़े, उसके मन, प्राण और शरीर में चिर-यौवन-ऊर्जा का सञ्चार हो और समस्त प्रकार के क्लेश व अभावों का सदा-सर्वदा के लिए नाश हो, 'चरित्र-निर्माण' उसका सम्बल बने और उसकी राह के समस्त कण्टक स्वतः ही दूर हो जायँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि जो भी निम्नलिखत सूत्रों पर मनन करते हुए अपनी जीवनयात्रा को गति देगा उसको, उसकी लक्ष्य-प्राप्ति के साधन सदा-सर्वदा उपलब्ध होते रहेंगे, और जीवन की राह आसान हो जाएगी। उनकी जीवन-शैली उस पथ के चलने वालों के हेतु 'संकेत दीप' [beacon] का कार्य करेगी।

जिन बिंदुओं पर दृष्टि रखनी है, उनका ब्योरेवार विवरण है -

[01] परिवार के सदस्य, मय बाल-बच्चों के उनकी सुख-सुविधा पर आने वाले व्यय के प्रबंध का उत्तरदायित्व का निर्वाह पूरे मनोयोग से करना।

[02] घर-गृहस्थी के दैनिक उपयोग में आने वाली वस्तुओं का प्रबंधन, निर्बाध रूप से करते जाना जिससे किसी को भी कष्ट या अभाव का सामना न करना पड़े। सभी को उनके पसंद की वस्तुएँ उपलभ्ध रहें, यहाँ तक कि, उनके शेष न रहने पर स्वाद, गुरुता या रूचि के मामले में कोई समझौता भी न किया जाय।

[03] (सँयुक्त परिवार में) अपनी पत्नी व बच्चों को अति साधारण जीवन-यापन का पाठ पढ़ाना और प्रत्येक स्थिति में प्रसन्न रहने के लिए प्रेरित करना।

[04] (गृहस्थ-जीवन में) अपनी पत्नी/ पति के साथ पारस्परिक-क्रिया (interaction) किस प्रकार सहमति व एकधर्म-विश्वास वाले हो कर रहा जाय।

[05] अपने वंश व नातेदारों में यदि कोई ऐसी पीड़ा से ग्रसित हो जाय जिसकी चिकित्सा संभव न हो अथवा किसी की मृत्यु हो जाने पर उसके घर जा कर शोक प्रकट करना और सहानुभूति में दो-शब्द कहना व कठिनाई की घड़ी में, उनके दुःख दर्द बाँटना।

[06] ह्रदय में दया और करुणा का भाव होना। हज़रत मोहम्मद साहिब की एक उपाधि -

'रहमते आलम' [अर्थात - संसार के लिए साक्षात ' दया' और 'कृपा'] भी है - यह हमेशा अपने अंतःकरण में जाग्रत रखना।

[07] प्रेम- अकारण, बदले में किसी भी प्रकार की इच्छा से रहित, सबके लिए और बिना भेदभाव के, अर्थात सर्वधर्म मैत्री भाव।

[08] पशुओं पर दया - उनकी आवश्यकताओं का ध्यान रखना और भावनात्मक स्तर पर उनसे सम्बन्ध बनाना। उनके दुःख-दर्द को समझना और अपने घर के ही एक सदस्य की भाँति उनकी सेवा करना।

[09] महिलाओं के साथ व्यवहार - सामान्य स्तर पर उनके साथ समादर, शिष्टाचार और उदारता पूर्वक सम्मुख होना।

[10] सेवकों पर दयालुता व करुणा करना।

[11] शत्रुओं के पक्ष में भलाई व शुभेक्षा।

[12] शत्रुओं को क्षमादान और उनके व्यवहार की अनदेखी।

[13] ग़रीबों के प्रति प्रेम व दया।

[14] यहूदी व ईसाइयों के साथ व्यवहार - धार्मिक कट्टरता से ऊपर उठकर उनसे मिलना।

[15] नास्तिक व ऐसे लोग जो दूसरों को परमात्मा के बराबर सम्मान देते हैं उनसे दूरी बना कर रखना किन्तु उनसे घृणा भी न करना।

[16] दुश्मनों से ब्यवहार की शिष्टता और दीन-दुखियों की आर्थिक सहायता करना।

[17] परमात्मा की उपासना व बन्दग़ी और उस पर भरोसा करना।

[18] दिए गए वचन व संविदा के प्रति प्रत्येक स्तर पर अडिग रहना और उसका निर्वाह करना, उसको पूरा करना।

[19] परिणाम की इच्छा या भय के बग़ैर, सच बोलना।

[20] अपने संकल्प पर बहादुरी से दृढ़ [जमे] रहना। कष्ट और भय [ख़तरा] के समय में भी उत्साह, बहादुरी और चिरस्थायित्व के साथ स्थिर रहना।

[21] जिस परियोजना या कार्य को आरम्भ किया जाय उसकी सम्पूर्णता व निष्पत्ति तक उसे पहुँचाया जाय।

[22] यदि नीतिविरुद्ध नहीं है तो दूसरों की इच्छापूर्ति व उनके कार्य कर देना।

[23] दैनिक जीवन के समस्त कार्य, यथासंभव अपने हाँथ से करना।

[24] एक निश्चित दूरी बना कर रखने वाला सतर्क और लज्जावान व संकोची स्वभाव।

[25] आमने-सामने [अनावश्यक] प्रशंसा करने वालों को, ऐसा करने से उन्हें रोक देना।

[26] सब को एक जैसी बराबरी के अधिकार मिलने का पक्षधर होना।

[27] अधिनायकवाद व डिक्टेटरी की इच्छा अथवा उसके प्रति विरोध व उससे अलग रहना। विनम्रता और निरंतर सहज व साधारण वर्ग में बने रहने के प्रति झुकाव व इच्छा।

[28] सादग़ी का पक्षधर, अन्तरंगता एवं संकोचरहित व्यवहार। दिखावा, 'टीम-टॉम व बनावट के व्यवहार से दूरी।

[29] सम्बोधित व्यक्ति के आमने-सामने उसकी प्रशंसा और दूसरों की अनावश्यक आलोचना व बुराई इत्यादि का निषेध।

[30] ईश्वरोपासना के हेतु घर-गृहस्थी को न छोड़ना।

[31] अहिंसा।

[32] अहसान या कृतज्ञता अर्थात दयापूर्वक, पक्षपात करके की गयी अनुचित सहायता या समर्थन, जिसके कि हम हक़दार नहीं हैं उसको अङ्गीकार न करना। कोई भी ऐसा कार्य [अनुग्रह] जिसके लिए कृतज्ञ होना पड़े, उसको स्वीकार न करना। उपरोक्त को स्वीकार करना अथवा ऐसा किसी अन्य के पक्ष में किया जाना, दोनों ही का निषेध और अस्वीकार्य।

[33] आधीनता पूर्वक दिए गए दान, भेंट व उपहारों को स्वीकार न करना।

[34] दान, उपहार व भेंट को [पूर्ण व यथोचित] सम्मानपूर्वक देना।

[35] पुण्यार्थ दिए जाने वाले दान को ग्रहण न करना।

[36] भीख माँगना और दीनतापूर्वक सहायता की याचना का निषेध।

[37] आतिथ्य-सत्कार ; पूरे मनोयोग से।

[38] "ईसार" [presenting = a gift or an offering] अर्थात दूसरों के हित के लिए अपना हित त्याग देना ; स्वार्थ-त्याग इस सीमा तक कि अपनी मौलिक आवश्यकताओं की वस्तुएँ दे कर भी लोगों की सहायता कर देना।

[39] समाज की मुख्यधारा से विरत हो कर न्याय कर पाना आसान है व सरल है किन्तु सब के साथ सम्बन्ध बना कर रखते हुए तटस्थता व पक्षपात-रहित हो कर किसी विषय पर निर्णय व न्याय करना।

[40] मनुष्य जिस किसी भी मत को स्वीकार करे, उसके सिद्धांतों पर, इस सीमा तक, दृढ व अटल रहना कि मानों वह उसका स्वभाव या आदत ही बन जाय।

[41] 'तवक़्क़ुल' [complete trust] का अर्थ है - सांसारिक साधनों से भरोसा हटा कर समस्त कार्य भगवान [मालिक] की इच्छा पर छोड़ देना। मनुष्य को अपने प्रयासों के परिणाम और दुनियाँ भर की घटना-दुर्घटनाओं के परिणाम और उनका प्रभाव भी परमपिता परमात्मा के सुपुर्द व उन्हीं की मर्ज़ी पर छोड़ देना चाहिए।

[42] ईश्वर-प्रेम के वास्ते, उसके प्रति शंका अथवा किसी प्रकार का संदेह और डर, भय या त्रास का उपदेश न देकर उसके प्रेम की वास्तविक परिभाषा करते समय 'संदेह-रहित' और 'अनमोल' जैसे शब्दों का प्रयोग करना। उसकी उपासना में कोई कष्ट न होना और सुख, चैन व शान्ति की अनुभूति का होना और उसका कारण समझ में न आना कि हम उसकी आराधना क्यों करते हैं।

[43] "ख़शीयते एलाही।" अर्थात - उसके भय से काँप उठना। तात्पर्य यह है कि अपनी उपासना का भरोसा, बिलकुल न होना। बल्कि "ख़ौफ़े खुदा", अर्थात भगवान [मालिक] का भय बना रहना। ऐसी भावना बनी रहे कि "मेरी बारी आने पर न जाने क्या होगा"।

[44] 'मैदाने-जंग' अर्थात 'समर-क्षेत्र' अथवा कर्म करते समय ईश्वर [मालिक] की याद, निरंतर बनी रहे।

[45] 'दवाम ज़िक्रे-एलाही'। अर्थात - ईश्वर के नाम-जप की नित्यता। 'नाम-जप' की नित्यता की स्पष्टता के हेतु 'गीता' का निम्नलिखित श्लोक यहाँ पर विशेष महत्व का है -

"अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन।।"
[08/08]

अर्थात - हे पार्थ ! यह नियम है कि परमेश्वर के ध्यान के अभ्यास रूप योग से युक्त, दूसरी ओर न जाने वाले चित्त से निरंतर चिंतन करता हुआ मनुष्य प्रकाश स्वरुप दिव्यपुरुष को अर्थात परमेश्वर को ही प्राप्त होता है।

[46] "ज़ोको शौक़" अर्थात पूरी रूचि और रसिकता। ईश्वरोपासना पूरे मओनोयोग से। 'रूचि और रसिकता' से तात्पर्य है - "सात्विक प्रसन्नता"। "सात्विक प्रसन्नता" के हेतु आवश्यक है कि कर्मयोग के साधन से पापों का नाश हो गया हो। पापों का नाश हो जाने से अंतःकरण पवित्र हो जाता है और साधक को सात्विक या आध्यात्मिक प्रसन्नता मिलती है। इस प्रसन्नता के प्राप्त हो जाने पर वह क्षणभर की उस सुख और शान्ति का त्याग नहीं कर सकता। इस कारण उसके अंतःकरण की वृत्तियाँ सब ओर से हट जातीं हैं और उसकी बुद्धि शीघ्र ही परमात्मा के स्वरुप में स्थिर हो जाती है।

[47] हज = यह मुसलमानों का एक धार्मिक कृत्य है जो मक्के [अरब] में जा कर अदा करना पड़ता है और धनाढ्य लोगों को जीवन में एक बार उसके करने का आदेश है।

[48] ज़कात। इस्लाम धर्म के अनुसार 02.50 % का दान, उन लोगों को देना पड़ता है, जो मालदार हों और उन लोगों को दिया जाता है जो कि अपाहिज या असहाय और साधनहीन हों। पूरे वर्षभर जो रुपया या अन्य सामिग्री अपने उपयोग के बाद शेष रह जाय, उस पर ज़कात फ़र्ज़ अर्थात परमात्मा की ओर से लगाया हुआ, धार्मिक कृत्यों का आदेश हुआ है।

[49] संजः या उपवास।

[50] तिलावत, अर्थात किसी धर्मग्रन्थ का पाठ।

[51] दुआ-जो-नमाज़। नमाज़ ; मुसलामानों की ईश्वर-प्रार्थना है, जोकि दिन-रात में पाँच [पूर्वनिर्धारित समय पर] बार होती है और उसमें 42 रक़्अत नमाज़ पढ़ी जाती है। एक रक़्अत, एक बार खड़े हो कर बैठने तक ही होती है, जिसमें दो सजदे और एक रुकूअ होता है।

[52] हज़रत पैग़ंबर [ईश दूत] का सम्बोधन व उसकी बातचीत का स्वभाव और संभाषण की शैली।
सार्थकता जीवन की - एक बात है , और सार्थकता जीवनवृत्त [के प्रकाशन] की, ये दोनों भिन्न-भिन्न बातें हैं। "बड़े भाग मानुष तन पावा" अर्थात - बड़े भाग्य से यह मनुष्य-शरीर मिला है। यह साधन का धाम और मोक्ष का द्वार है ; यह बात सर्वविदित है। बात, बन जाने वाली बात

अथवा व्यक्तिगत मोक्ष को मेरे गुरुजनों ने अपना इष्ट कभी नहीं बनाया। उन्होंने तो जिस लक्ष्य को सामने रक्खा, वह है - "मोक्ष सभी के लिए", और वह इस सीमा तक कि जबतक, शिष्य-परंपरा की सीढ़ी - दर - सीढ़ी, अंतिम जांनिसार - भक्त और सत्य की खोज करने वाला व अनुयायी अपनी अध्यात्म-यात्रा के चरमबिंदु [तक्मील = जिसके आगे कुछ भी शेष न रह जाय] तक अपनी पहुँच बना कर, स्थित नहीं हो जाता, तब तक अपने व्यक्तिगत हितों व साधन-पथ की धुर-पद की ऊँचाई और ईश्वरत्व के चरमबिंदु की प्राप्ति के अधिकारी हो जाने के बावजूद [सत्यपि] भी उसे दरकिनार [अलग या दूर] रखना। मेरे हज़रत क़िब्ला इसी बात को साधारण भाषा में उदाहरण दे कर समझाया करते थे कि जिस प्रकार, रेलगाड़ी, बस अथवा किसी भी पुब्लिकट्रांस्पोर्ट में हम तब तक सवार नहीं होते अथवा आसन या सीट ग्रहण नहीं करते, जब तक हमारी पत्नी , बच्चे अथवा हमारे साथ व हमारे आधीन अन्य व्यक्ति उसमें प्रवेश [चढ़] कर जाने के बाद अपना समुचित व सुरक्षित स्थान ग्रहण करके बैठ नहीं जाते हैं। ऐसा कभी नहीं करते कि हम उसमें स्वयं चढ़ कर एक अच्छी सी सीट देख कर, उस पर आसन ग्रहण कर लें और अपनी पत्नी, बच्चे व अन्य को अपनी-अपनी सीट इत्यादि तलाशने के लिए, उन्हें उन पर ही छोड़ दें। इसी प्रकार गुह्य-विद्या के उत्कर्ष के मामले में भी वहाँ के चरम-बिंदु की प्राप्ति व वहाँ पर स्थित हो जाने के अधिकारी हो जाने के पश्चात भी, हम प्रत्येक ऐसे अंतिम व्यक्ति की वैसी ही उपलब्धि जैसी कि हमें सुलभ हो चुकी है, उनकी प्रतीक्षा करते हैं और आवश्यकता की प्रत्येक घड़ी में उसकी सहायता करते हैं, उसके पक्ष में स्वयं प्रार्थना भी करते हैं।

मेरे जीवनवृत्त के पुस्तकीकरण व उसके प्रकाशन की सार्थकता तभी सिद्धि को प्राप्त हो सकेगी जब उससे प्रेरित हो कर, इसी परंपरा का निर्वाह आगे आने वाली पीढ़ियां भी करें और पद्यति का आगे भी विस्तार हो, जो कि यहाँ पर पूर्व में निवेदन किया जा चुका है। अर्थात यही परंपरा हमारी संस्कृति बन जाय और उसका आगे और बहुत आगे तक विस्तार हो। श्रीगीता के तीसरे अध्याय के 21वें श्लोक से भी इस बात की पुष्टि होती है -

"यद्यदाचरित श्रेष्ठस्तंतदेवेतरो जनः
स यत्प्रमाणं कुरुते लोक स्तदनुवर्तते।।"

अर्थात - श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वो जो कुछ प्रमाण देता है, समस्त मनुष्य-समुदाय उसी के अनुसार बरतने लग जाता है।

जो संसार में अच्छे गुण और आचरणों के कारण धर्मात्मा विख्यात हो गया है, जगत के अधिकांश लोग जिस पर श्रद्धा और विश्वास करते हैं - ऐसे प्रसिद्ध माननीय महात्मा ज्ञानी का वाचक यहाँ श्रेष्ठ पद है। यहाँ पर भगवान् ने यह दिखाया है कि उपर्युक्त महात्मा यदि अपने वर्ण आश्रम के धर्मों का भली-भांति अनुष्ठान करता है तो दूसरे लोग भी उसकी देखा-देखी अपने अपने वर्णाश्रम के धर्मों का पालन करने में श्रद्धापूर्वक लगे रहते हैं, इससे श्रष्टि की व्यवस्था सुचारु रूप से चलती रहती है, किसी प्रकार की बाधा नहीं आती। किन्तु यदि धर्मात्मा ज्ञानी महात्मा पुरुष अपने वर्णाश्रम के धर्मों का त्याग कर देते हैं तो लोगों पर भी यही प्रभाव पड़ता है कि वास्तव में कर्मों में कुछ नहीं रक्खा है, यदि कर्मों में ही कुछ सार होता है तो अमुक महापुरुष उन सब [कर्मों] को क्यों छोड़ते - ऐसा समझ कर वे उस श्रेष्ठ पुरुष की देखादेखी अपने वर्ण-आश्रम के लिए निहित नियम और धर्मों का त्याग कर बैठते हैं। ऐसा होने से संसार में बड़ी गड़बड़ी मंच जाती है और सारी व्यवस्था टूट जाती है। अतएव महात्मा पुरुष को लोकसंग्रह की ओर ध्यान रखते हुए अपने वर्ण आश्रम के अनुसार सावधानी के साथ यथायोग्य समस्त कर्मों का अनुष्ठान करते रहना चाहिए। कर्मों की अवहेलना या त्याग नहीं करना चाहिए। इस श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण जी महाराज स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि श्रेष्ठ पुरुष स्वयं आचरण करके और लोगों को शिक्षा दे कर जिस बात को प्रमाणित कर देता है, अर्थात - लोगों के अंतःकरण में विश्वास करा देता है कि अमुक कर्म मनुष्य को इस प्रकार करना चाहिए और अमुक कर्म इस प्रकार करना चाहिए, उसी के अनुसार साधारण मनुष्य भी चेष्टा करने लग जाते हैं। इसलिए मान्यनीय श्रेष्ठ ज्ञानी महापुरुष को श्रष्टि की व्यवस्था ठीक रखने के उद्देश्य से बड़ी सावधानी के साथ स्वयं कर्म करते हुए लोगों को शिक्षा दे कर उनको अपने-अपने कर्तव्य में नियुक्त करना चाहिए और इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिये कि उसके उपदेश या आचरणों से संसार की व्यवस्था सुरक्षित रखने वाले किसी भी वर्ण-आश्रम के धर्म की या मानव-धर्म परंपरा को किंचित मात्र भी धक्का न पहुँचे, अर्थात उन कर्मों में लोगों की श्रद्धा और रूचि कम न हो जाय।

संसार में सब लोगों के कर्तव्य एक से नहीं होते। देश, समाज और अपने-अपने वर्णाश्रम, समय एवं स्थिति के अनुसार सब के कर्तव्य भिन्न-भिन्न होते हैं। श्रेष्ठ महापुरुषों के लिए यह संभव नहीं कि सब के योग्य कर्मों को अलग-अलग स्वयं आचरण करके बतलाते। इसलिए श्रेष्ठ महापुरुष जिन-जिन वैदिक और लौकिक क्रियाओं को वचनों से भी प्रामाणित कर देता है, उसी के अनुसार लोग आचरण करने लगते हैं।

==========

10. मेरे पूर्वज

- **"माता होती बड़ी भूमि से,**
- **पिता स्वर्ग से उच्च महान।**
- **यही सोच कर श्री गणपति ने**
- **की प्रदक्षिणा तज अभिमान।।**
- **एक दन्त गजबदन चतुर्भुज**
- **गणनायक विश्वेश सुजान।**
- **आदि पूज्य बन गए**
- **तभी से मंगलमय सुखप्रद भगवान।।"**

मेरे पूज्य पिताजी। ऐसा सम्बोधन मैंने अनेकों बार, सद्गुरु कृपा से, अपने प्रभु के लिए भी किया है किन्तु न जाने क्यों आज अपने अंतर में एक ऐसी सुखद अनुभूति के दर्शन कर रहा हूँ जिसका वर्णन करने में ह्रदय के उद्गारों एवं भाषागत शब्दों में असंगति का बोध होता है। मेरे पित्ररत्न, मेरे जनक, मेरे ईश्वरतुल्य पिता स्वर्गीय चौधरी हरबख़्श राय जी 'अधोलिया', जिनका रक्त आज भी मेरी धमनियों में एक अनकहे व्यक्तित्व की कहानी कहते नहीं थकता, उन्हीं की सुखद कल्पना का मैं आकार हूँ, उन्हीं के स्वप्न का मैं सुफ़ल हूँ। मेरा अस्तित्व उन्हीं की पुत्रप्राप्ति की कामना* का प्रसाद है।

THREE BIRTHS:

AITAREYA UPANISHAD
[Chapter II]

o1. "puruse ha va ayam adito garbho bhavati, yad etad ratas tad etad sarvebhyas' ngebhyas tejah sambhutam,atmany evatmanam vibharti, tad yatha striyam sincaty athainaj janayati, tad asya prathamam janma."

Explanation by Dr. S. Radhakrishnan : "In a person, indeed, this one first becomes an embryo. That which is semen is the vigour come together from all the limbs. In the self, indeed, one bears a self. When he sheds this in a woman, he then gives it birth. That is its first birth."

02. "tat striyd atmabhuyam gacchati, yatha, svam angam tatha, tasmad enam na hinasti sasyaitam atmanam atra gatam bhavayati."

Explanation by Dr. S. Radhakrishnan : "It becomes one with the woman, just as a limb of her own. Therefore it does not hurt her. She nourishes this self of his that has come into her."

03. "sa bhavayatri bhavayitavya bhavit, tam stri garbahm vibharti, so'bra eva kumaram janmano'gre'dhi bhavayati, sa yat kumaram janmano'gre'dhibhavayaty atmanam eva tad bhavayaty esam lokanam smitatya evam smtata hime lokah, tad asya dvitiyam janma."

Explanation by Dr. S. Radhakrishnan : "She being the nourish-er, should be nourished. The women wears him as an embryo. He nourishes the child before birth and after the birth. While he nourishes the child before birth and after the birth, he thus nourishes his own self, for the continuous of these worlds; for thus are these worlds continued. This is one's second birth."

04. "so'syayam atma punyebhyah karmabhyah pratidhiyate, athasyayam itara atma krta-krtyo vayo-gatah pariti, sa itah prayann eva punar jayate, tad asya trtiyam janma. tad uktam rsina."

Expiation by Dr. S. Radhakrishnan : "He [the son] who is one self of his [father] is made his substitute for [performing] pious deeds. Then the other-self of his [father's] having accomplished his work, having reached his age, departs. So departing hence, he is, indeed, born again. This is his third birth.

That has been stated by the seer."

मेरी माँ की भाँति वह भी रामायण के भक्त थे। वह एक निष्ठावान कर्मयोगी एवं सच्चे अर्थों में कर्तव्यनिष्ठ थे। न जाने कितनी ही आसक्त कल्पनाओं के मध्य मेरा नाम उन्होंने 'राम चन्द्र' रक्खा होगा। संभवतः भगवान राम के मर्यादापुरुषोत्तम चरित्र की आकांक्षा मुझ से भी उन्होंने की होगी। गोस्वामी तुलसीदास जी की वाणी वह यदाकदा दोहराया करते थे -

" धन्य जनमु जगती तल तासू। पितहिं प्रमोदु चरित सुनि जासू।।
चारि पदारथ करतल ताके। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाके।।"

[इस संसार में उसी का जन्म धन्य है जिसके चरित्र को सुन कर पिता को आनंद हो। उस पुत्र के हाथों में चारो पदार्थ सुलभ समझने चाहिए जिसको माता और पिता प्राणों के समान प्रिय हों।]

अपने अभीष्ट की प्राप्ति में साधना-रत मैंने आजीवन अपनी जीवन-यात्रा में पिताजी की उपर्युक्त कामना को निरंतर अपने साथ पाथेय के रूप में पाया। यही कारण था कि जीवन-संग्राम में मैं कभी थका नहीं।

वे मेरे दशरथ और मैं उनका राम। मेरी प्रत्येक हठ को, मेरी प्रत्येक लालसा को, उचित अनुचित का विचार न कर निरंतर पूरा करते हुए आजीवन उन्होंने मुझे 'राजकुमार' बनाये रक्खा। और मेरी माँ, परमभागवत, परमभक्ता थीं। मेरी दृष्टि में वे मीरा भी थीं और सहजोबाई भी। प्रभु के प्रेम में छकी हुयी, प्रभु के आलिंगन में डूबी हुयी, प्रभु के रूप में भूले हुए उनके दर्शन हुए, मुझे गर्व है माँ के चिरस्नेही स्वरुप पर। उनके अपार वात्सल्य-प्रेम के कारण जीवन में प्रतिक्षण मैं यह अनुभव करता रहा कि मैं ममतामयी जननी के अंक में हूँ, वह मुझे सदा अपनी छाती में चिपकाए हैं और आँचल से ढांके हुए हैं, संसार की कुदृष्टि मुझ पर नहीं पड़ सकती। इतने दिन हो गए उनकी छवि ज्यों की त्यों अंतरमन में आज भी सजीव दृष्टिगोचर है।

'रामचरितमानस' का वह नित्यप्रति, सभाव पाठ करतीं। जब वे भावविभोर हो अपनी साधना में मग्न होतीं, हम दोनों भाइयों को सामने बिठा लेतीं। अपने प्रभु को नित्य नए चरित्र सुनाते हुए उनकी अविरल अश्रुधाराएं प्रवाहित होतीं जो हम दोनों भाइयों के मानस-पटल पर ऐसा गहरा प्रभाव छोड़तीं कि प्रभु से निकटतम संबंधों की स्थापना हो जाती और फलस्वरूप ऐसे संस्कार

हमारे हृदयों पर अंकित हुए और ऐसे भक्तिभाव के अंकुर उगे जो सैकड़ों और हज़ारों वर्षों की तपस्या और योग-साधना के फलस्वरूप भी दुर्लभ थे। माँ की इस महान कृपा से मेरे सर्वस्व, मेरे स्वामी एवं मेरे पथप्रदर्शक प्रथम दृष्टि में ही अवगत हुए। प्रेमोद्गार में कोई अतिश्योक्ति नहीं है कि सद्गुरुतत्व के प्रथम दर्शन मैंने अपनी माँ में किये हैं। फ़िर भी न मैं श्रवणकुमार बन सका न नचिकेता। मैं जैसा जो कुछ भी हूँ उन्हीं के पुण्-यप्रतापों का प्रतिफ़ल हूँ और उन्हीं के सहारे टिका हुआ हूँ। उनकी श्रद्धांजलि में मेरा सर्वस्व भी अर्पण हो जाय तो भी मैं उऋण नहीं हो सकता। अविस्मरणीय थे वे क्षण, पुनः ऐसा भाव जगे न जगे, एक दीप इनके भी नाम।

मेरी वंशावली व मेरे पूर्वजों का इतिहास बहुत पुराना है। मेरी माँ ने जैसा कुछ मुझे बताया आपके समक्ष प्रस्तुत करता हूँ। देहली प्रदेश के निकटस्थ ही कहीं 'अध्योली' गांव है - यही हमारे पूर्वजों का निवास था, इस स्थान के नाम पर हमारी 'अल्ल' [sub-division of a community = family line] - 'अध्योलिया' पड़ी। जो भी वंशावली उपलब्ध हो सकी उसके अनुसार हामारा वंश चौधरी मंतोखराय से प्रारम्भ होता है। कहते हैं कि तत्कालीन मुग़ल सम्राट अकबर ने उनकी वीरता, कर्तव्यनिष्ठा व कार्य-कुशलता से प्रसन्न एवं प्रभावित हो कर ससंपत्ति 555 गाँव व 'चौधरी' की उपाधि प्रदान की। यह पूरा क्षेत्र आज संयुक्तप्रदेश [अद्यतन - उत्तर प्रदेश] के ज़िला मैनपुरी के 'भोगावं', व इसके चारों ओर स्थित है, जो उन दिनों 'भूमिग्राम 'कहलाता था, बाद में बिगड़ कर उसका नाम भोगावं पड़ा। चयधरी मंतोखराय के तीन पुत्र हुए -

[01] श्री सेवाराम,
[02] श्री भुवनदास,
[03] चौधरी हेम चन्द्र।

इन्हीं तीसरे पुत्र चौधरी हेम चन्द्र से हमारी मुख्य वंशावली की शाखा निकली।

हमारे पूर्वजों की वंशावली के अनुक्रम में चौधरी नरपर राय, चौधरी हुलास राय, चौधरी मक्खन लाल व चौधरी चुन्नी लाल हुए, जो हमारे परदादा थे। चौधरी चुन्नी लाल जी के पुत्र चौधरी बृंदावन लाल थे, जो हमारे दादाजी थे। मेरे पिताजी - दो भाई थे [01] चौधरी हरबख्श राय व [02] चौधरी उल्फ़त राय। दोनों भाइयों के दो-दो संतानें हुईं - हमारे पिताजी के हम दो भाई ;

मैं राम चन्द्र व मेरे छोटे भाई, श्री रघुबर दयाल [नन्हें] व मेरे चाचाजी, चौधरी उल्फ़त राय जी के भी दो ही पुत्र हुए - श्री राम स्वरुप व डॉ कृष्ण स्वरुप [दोनों मेरे चचेरे भाई]। मेरे पिताजी दोनों भाइयों में ज्येष्ठ थे। उनके पर्याप्त लम्बे समय तक कोई संतान उत्पन्न नहीं हुयी थी अतः अपने छोटे भाई [चौधरी उल्फत राय] के आग्रह पर उनके बड़े बेटे श्री राम स्वरुप को गोद ले लिया था।

उन्नीसवीं शताब्दी के 1857 में स्वतंत्रता संग्राम की प्रथम क्रान्ति हुयी जिसकी लपटों की चपेट में उक्त भूमिग्राम क्षेत्र भी आया। फलतः हमारा परिवार छिन्न-भिन्न हो गया। हमारे पूर्वज, आसपास या दूर, जहाँ जिसे स्थान मिला, बस गए। मेरे पिताजी भी फर्रुखाबाद आ कर बसे व नौकरी करने लगे। यहीं पर चुंगी के अधीक्षक पद पर वह नियुक्त हुए। वह आजीवन यहीं रहे। वह बताया करते थे कि अपनी सेवा-काल में उन्हें पूरे क्षेत्र की 'जनगणना' का एक अतिमहत्वाकांक्षी प्रोजेक्ट दिया गया था जिसका निर्वाह उन्होंने पूरी तल्लीनता व ईमानदारी से संपन्न कराया। शासकों को वह इतना परिशुद्ध लगा कि बाद में अन्य क्षेत्रों में कराये गए इसी प्रोजेक्ट [जनगणना] के लिए आधार और आदर्श बनाया गया ।

अपने सेवाकाल में अपनी असाधारण कार्यकुशलता इत्यादि के लिए उन्हें वर्त्तमान ब्रिटिश-शासन से अनेकों सराहना व योग्यता के प्रमाणपत्र भी मिले। उन्हें मैंने सुरक्षित रक्खा हुआ है। उनकी कर्तव्य-निष्ठा व ईमानदारी पर मुझे गर्व होता है।

==========

11. वात्सल्य विभा

जब मैं [राम चन्द्र] अपनेवर्त्तमान स्वरुप में नहीं था, कहीं न कहीं मेरा अस्तित्व अवश्य ही पल रहा था। जिस प्रकार दर्पण में मुख का प्रतिबिम्ब सपष्ट दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार इस मनुष्य-देह में ही आत्मा के दर्शन होना संभव होता है और यदि जीवन रहते हुए ही शरीर का पतन होने से पूर्व 'साधक पुरुष' ऐसा न कर सका अर्थात उस सत्पुरुष के ध्रुवपद को न प्राप्त कर सका, ब्रह्म को न जान सका, उसमें स्थित न हो पाया तो सृष्टव्य प्राणियों की रचना की श्रेणी में आ जायगा, पृथ्वी आदि लोकों में शरीरत्व भाव को प्राप्त होने के क्रम में आ जायगा तथा शरीर ग्रहण कर लेगा। मेरे प्रभु की यही व्यवस्था है। प्रभु के दया और प्रेम के इस उन्मुक्त प्रवाह से अनेकों जन्मों में भी मेरा साथ नहीं छूटा। यह मेरे प्रभु का ही निमंत्रण था कि मेरे पिताजी का मन भी क्षुब्ध हो उठा -

- **"एक बार भूपति माहीं। भै गलानि मोरे सुत नाहीं।।"**

जहाँ मैं और मेरा सारथी, दोनों अपने भावी शरीर-रूपी रथ को पाने के लिए लालायित थे, मेरे जनक भी मुझे पाने के लिए व्यग्र व बेचैन थे।

मेरे पूज्य पिताजी सर्ववैभवसंपन्न थे। माना कि पूर्वजों की भोगविलासीय प्रवृत्ति से पर्याप्त संपत्ति नष्ट तो चुकी थी, फ़िर भी इतना धन अभी शेष था कि वह स्वयं अपना एवं अपनी पतिपरायणा व ईश्वर-भक्ता पत्नी का निर्वाह सुख-सुविधा पूर्वक कर सकते थे। मैंने अपने स्वजनों से यह भी सुना कि पड़ोसी मैनपुरी के राजा से हमारे पूर्वजों की किसी बात को ले कर यों ही तना-तनी हो गयी थी। पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह विद्वेष निरंतर बढ़ता ही गया। 'लड़ाइयाँ' भी हुईं। भोगांव वाले अपना बड़प्पन बखानते हुए अभी भी कहते हैं कि एक सशस्त्र लड़ाई में हमने मैनपुरी के राजा को हरा दिया था और प्रमाणस्वरूप उनके क़िले का एक फाटक उखाड़ लाये थे जो अभी भी सुरक्षित रख छोड़ा गया है। इस प्रकरण को ले कर न्यायलयों में 'वाद' प्रस्तुत हुए। कहते हैं हमारे पूर्वज इसमें हार गए व भारी धनराशि दण्ड-स्वरुप उन्हें देनी पड़ी। कहने का तात्पर्य है कि इन तमाम क्षतियों के उपरांत भी आर्थिक-स्थिति पर्याप्त अच्छी थी। ज़मीदारी के वैभव व मान-मर्यादा के अतिरिक्त, पिताजी 'चुंगी' में अधीक्षक के जिस पद पर आसीन थे, उसका भी उन दिनों बड़ा मान-सम्मान था तथा अँगरेज़ अधिकारियों की दृष्टि में भी उसका

समादृत स्थान था। हमारा कुटुम्ब व बिरादरी भी बड़ी थी। इसमें भी अभी उनका राजा-तुल्य मान व आदर था।

अनेकानेक सुख-सुविधाओं के साधन व मान-मर्यादा की उपलब्धि के होते हुए भी पिताजी के निर्मल मन को निरंतर एक बात कचोटती रहती कि उनके कोई संतान नहीं थी। दशरथ की भाँति यदि उन्हें भी सद्गुरुतत्व की उपलब्धि हो चुकी हुयी होती तो मेरी आत्मकथा में भी गोस्वामीजी की यह पँक्ति दोहराई जा सकती थी -

- **" धरहु धीर होइहहिं सुत चारी।"**

और तुरंत ही शृङ्गी ऋषि को बुलावा कर उनसे विधिवत पुत्रकामेष्टि शुभ-यज्ञ कराया जाता।

वशिष्ठजी जैसे समर्थगुरु तो उन्हें प्राप्त नहीं थे और न ही शृङ्गी ऋषि जैसे याज्ञिक, फ़िर भी उनकी धर्मपत्नी जो पतिपरायणा तो थीं ही, ईश्वर की निरंतर व परमभक्ता भी थीं, स्वयं ही याज्ञिक बनी।

प्रसंगवश एक बात और भी। मुझे गर्व है, अपनी जन्मभूमि फर्रुखाबाद पर जो आदिकाल से ही ऋषिकुल एवं ईश्वर-भक्तों की भूमि रही है।

यहाँ तत्कालीन कपिलमुनि का आश्रम है। साथ ही 'कम्पिल' है। जहाँ 'जैन' भाइयों का

तीर्थस्थल है। पास ही संकिसा है। भगवान बुद्ध की कहानी में इस स्थल की महत्वपूर्ण भूमिका बतायी जाती है। यहीं इसी क्षेत्र में राजा द्रुपद का क़िला है जिसके अवशेष अब भी उपलब्ध हैं। मैंने भी देखे हैं। यहीं पास एक ऐतिहासिक तालाब था, 'रुद्रायण'। 'रुदायन', अद्यतन एक ग्राम, रेलवेस्टेशन भी है उसी का अपभ्रंश है। कहते हैं महाभारतकाल में राजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी का स्वयंबर यहीं पर रचा गया था। अर्जुन ने अपनी असाधारण धनुर्विद्या का परिचय, ऊपर ऊँचे बाँस में टंगी मछली की परछाईं को नीचे रक्खे तेल-भरे पात्र में देख कर, उस पर सफलतापूर्वक निशाना लगा कर दिया था और इसी प्रकार उन्होंने यहाँ द्रोपदी का वरण किया था। यहीं पास 'जिजौता' नाम का एक ग्राम है। यह 'यज्ञौटा' का अपभ्रंश है। यहीं पाण्डवों ने यज्ञ किया था। इसके अतिरिक्त आस-पास और भी स्थल हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। यहाँ से कुछ दूर पर ही 'कन्नौज' है। यहीं पास ही विश्वामित्र का आश्रम है। कन्नौज से फतेहगढ़ आने वाली सड़क पर 'काली' नदी के दोनों ओर दो महान ऋषियों के आश्रम थे। एक ओर उद्यालक ऋषि का आश्रम था। कठोपनिषद यहीं पर लिखा गया तथा मूँज से सींक निकाल कर 'अंगुष्ठ मात्र' पुरुष [अंतरमात्मा] का प्रायोगिक ज्ञान भी यहीं पर किया व कराया गया। नदी के दूसरी और श्रृंगीऋषि का ऐतिहासिक आश्रम था। उन्हीं के नाम पर यहाँ पर बसी बस्ती का नाम 'श्रंगीरामपुर' पड़ा।

अनायास ही यह संयोग बन पड़ा कि इसी 'श्रंगीरामपुर' में एक महान संत उन दिनों निवास किये हुए थे। इन महापुरुष का आना-जाना फर्रुखाबाद भी हुआ करता था। संयोगवश एक दिन यह महापुरुष हमारे पड़ोस में ही कहीं पधारे हुए थे। हमारी पूज्या माताजी भी, चाचा चौधरी उल्फत राय जी के साथ उक्त संत के दर्शनार्थ व सत्संग के लाभार्थ वहाँ गयीं। संतप्रवर उस समय कबीर साहिब की साखियों की व्याख्या कर रहे थे। माताजी को उसमें इतना आनन्द आया कि अपनी सुध-बुध खो बैठीं और अपार आनन्द विभोर हो गयीं। आँखों से प्रेम-अश्रु-धारा प्रवाहित होने लगी। एक रमणीय-समाधि जैसी स्थिति की सुखद अनुभूति में वह कुछ देर खोयीं रहीं। कुछ देर बाद आँखें खोलीं। एक अद्भुत आनन्द का समुद्र लहरा रहा था। 'सत्संग' की समाप्ति पर जब वह घर चलने लगीं तो संतजी महाराज ने उनके सिर पर हाँथ रख कर आशीर्वाद दिया - "बेटी जाओ, परमात्मा करे फूलो-फलो और प्रभु तुम्हें अपने प्रेम से मालामाल कर दे।" इस आशीर्वाद ने अपना असर दिखाया। जैसे-जैसे दिन बीतते गए उनकी आत्मिक उन्नति होने लगी और ईश्वर-प्रेम दिनोंदिन बढ़ता गया -"रोम रोम नखसिख सब निरखत ललकि रहे ललचाय।" वाली मीरा उनमें प्रवेश करने लगीं।

यह शरीर 'पुर' [नगर] के सामान होने से 'पुर' कहलाता है। द्वारपाल और अधिष्ठाता आदि अनेकों 'पुर' सम्बन्धी व्यवश्था होने के कारण शरीर - 'पुर' है और जिस प्रकार सम्पूर्ण व्यवस्था सहित प्रत्येक 'पुर' अपने से असह्रत [बिना मिले हुए] स्वतंत्र स्वामी के उपयोग के लिए देखा जाता है, उसी प्रकार 'पुर' की सदृश्यता में यह अनेक व्यवस्था-संपन्न शरीर भी अपने से पृथक राजस्थानीय अपने स्वामी [आत्मा] के लिए होना चाहिए।

यह 'शरीर' नामक 'पुर' ग्यारह द्वारों वाला है। दो कान, दो आँख, दो नासारन्ध्र और एक मुख ; इस प्रकार सात मस्तक सम्बन्धी व तीन - नाभि, शिश्न और गुदा निम्नदेशीय तथा ब्रह्मरंध्र, सिर में स्थित, इस प्रकार इन सभी द्वारों से युक्त होने के कारण यह 'पुर' एकादश द्वार वाला है।

- **"पुरमेकादशद्व्वारामजस्यावक्रचेतसा**
- **अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्च्यते।। एत द्वैतत।।"**
- **कठ - 02/02/01**

यह आत्मा का पुर है। और वह आत्मा गमन करने वाला है, आकाश में चलने वाला सूर्य है, बसु है, अंतरिक्ष में विचरने वाला सर्वव्यापक वायु है, वेदी [पृथवी] में स्थित होता अग्नि है, कलश में स्थित होता सोम है। इसी प्रकार वह मनुष्यों में गमन करने वाला है, आकाश, जल, पृथ्वी, यज्ञ और पर्वतों में उत्पन्न होने वाला तथा सत्यरूप और महान है।

मेरी ममतामयी जननी, मेरी माँ निरंतर सत्यरूप अपने प्रभु में लय होतीं जा रहीं थीं। उनकी उपासना, उनकी भक्ति, उनका तप ऐसे थे जिससे वह स्वयं भी प्रकाशित होतीं एवं अपने स्वामी को भी जिसके रस में निरंतर आनन्द-विभोर रखतीं।

भगवान् कृष्ण गीता के नवें अध्याय, श्लोक - 09 में कहते हैं -

"ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम" - "जो भक्त मेरे को भक्ति से भजते हैं वे मेरे हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ ।" जैसे सूक्ष्म रूप से सब जगह व्याप्त हुआ भी

अग्नि साधनों द्वारा प्रकट करने से ही प्रत्यक्ष होता है, वैसे ही सब जगह स्थित हुआ परमेश्वर भी भक्ति से भजने वालों के ही अंतःकरण में प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होता है।

प्रभु के प्रताप से ऐसा संयोग हुआ कि एक कम्बलधारी अवधूत उन दिनों फर्रुखाबाद आये। उनका विशेष परिचय कोई नहीं जानता था क्योंकि न उन्हें इससे पहले किसी ने देखा था न उसके बाद किसी के देखने में आये। मानों अपने पूर्वनिहित कार्यक्रमानुनासर वह उस गली से निकले जहाँ हमारा मकान था। अनायास ही उन्होंने हमारे द्वार पर दस्तक दी और भोजन की इच्छा प्रकट की। मेरी माताजी ने सादर उन्हें नमस्कार किया व पूरी, मिठाई इत्यादि जो उपलब्ध था, अत्यंत आदर-भाव से प्रस्तुत किया। इसे ग्रहण करने से पूर्व ही उन्होंने 'मच्छली' खाने की इच्छा प्रकट की। [परिशिष्ट - क] माताजी पूर्ण वैष्णव थीं अतः मांस-मछली का घर में होना संभव न था। उनके लिए यह परीक्षा की घड़ी थी। गृहस्थ एक तपोबन है, जिसमें संयम, सेवा और सहष्णुता की साधना करनी पड़ती है। वह अपने प्रभु का आव्हान करतीं हैं - "शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।" [मैं आपका शिष्य हूँ, शरणागत हूँ] प्रभु तो प्राणिमात्र में वास करते ही हैं, मात्र दृष्टि उधर करने की देर है। वह तो स्वयं अपने भक्तों को अपने अस्तित्व में समेटने के लिए लालायित रहते हैं।

- **"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।**
- **अहम् त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिश्यामि मा शुचः।।"**
- **[गीता 18/66]**

उन्हीं के आशीर्वाद-स्वरूप अपने समय से ठीक दस माह बाद बसंतपंचमी के दिन सोमवार दिनांक 03 फ़रवरी सन् 1873 [ईस्वी] को सायंकाल 06 बज कर 14 मिनट पर

सम्पूर्ण धर्मों को [सम्पूर्ण कर्मों के आश्रय को] त्याग कर केवल मुझ एक सच्चिनन्दघन वासुदेव परमात्मा की ही अनन्य शरण को प्राप्त हो। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू चिंता न कर।

कैसी है प्रभु की लीला। अपार प्रेममय उनके कृत्य। जिस राह वह भक्त को ले जाना चाहते हैं, स्वयं उसकी उंगली पकड़ कर साथ ले जाते हैं। राह कैसी भी दुरूह हो, प्रभु के सानिध्य में पल झपकते कट जाती है।

साधु की सेवा में जब माताजी आतिथ्यभाव से उपस्थित हुईं थीं, उनकी स्वामिभक्ता एक नौकरानी भी उनके साथ ही थी जो अभी भी उनके पीछे खड़ी थी। असमंजस की इस घड़ी में उन्होंने स-आशय युक्तियुक्त दृष्टि से उसकी ओर देखा। इससे पहले कि वह उससे कुछ कहतीं, उसने उन्हें सूचना दी कि 'शमसाबाद' प्रान्त [state] के नवाब साहिब के यहाँ से उपहार-स्वरुप पकी-हुयी दो मछलियाँ हमारे स्वामी के लिए आयीं थीं जो अतिथिगृह में ज्यों-की-त्यों रक्खीं हैं। यदि वह उसे आज्ञा दें तो साधु की इच्छा-तृप्ति कराई जा सकती है। माताजी ने तुरन्त ही वह मछलियाँ मंगवा कर उक्त साधु की सेवा में आदरपूर्वक उपलब्ध करा दीं, जिन्हें उन्होंने बड़े चाव से प्रेम-पूर्वक ग्रहण किया। प्रभु की लीला का एक और प्रकरण माँ ने अपनी आँखों से आगे देखा।

हमारी नौकरानी जो अभी भी माँ के पीछे खड़ी थी, यद्यपि पढ़ी-लिखी न थी किन्तु अत्यंत बुद्धिमान व स्वामिभक्ता थी। मछलियों को पान कर लेने के उपरांत साधु के मुखमण्डल के तुष्टि व प्रसन्नता-मिश्रित मगन भाव उसकी दृष्टि से छिप न सके। तुरंत ही अत्यंत भक्ति व अधीर-भाव से अवधूत-साधु को सम्बोधित करके निवेदन किया कि उसकी स्वामिनी के पास ईश्वर का दिया हुआ सब कुछ उपलब्ध है, फ़िर भी 'गोद' अभी सूनी है। अतः ऐसा आशीर्वाद दें कि उनको पुत्र-रत्न की प्राप्ति हो।

नौकरानी की याचना व माताजी की मूक-भक्ति-भावना, दोनों का अवलोकन कर उक्त अवधूत संत ने एक गगनभेदी अट्टहास के साथ उसी स्वर में "अल्लाहोअकबर" का आव्हान किया और दोनों हाँथ उठा कर "एक दो, एक दो" कहते हुए वहाँ से चले गए। कहते हैं उसके बाद उन कम्बलधारी अवधूत संत को फ़िर कभी किसी ने नहीं देखा।

उन्हीं के आशीर्वाद-स्वरूप अपने समय से ठीक दस माह बाद बसंतपंचमी के दिन सोमवार दिनांक 03 फ़रवरी सन् 1873 [ईस्वी] को सायंकाल 06 बज कर 14 मिनट पर एवं तदानुसार लगभग ढाई वर्ष बाद गुरुवार दिनांक 07 अक्टूबर 1875 [ई0] को, एक के बाद एक, दो पुत्रों की प्राप्ति हमारे माता-पिता को हुयी। पहला व बड़ा मैं स्वयं [राम चन्द्र] व दूसरे प्राणो सामान मेरे प्रिय भाई - रघुबर दयाल।

शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान दिन-प्रति-दिन बढ़ते हुए हम-दोनों भाइयों का लालन-पालन बड़े ही मनोयोग से होने लगा। माँ कहीं जातीं तो हमें ह्रदय से लगा ले जातीं। पिताजी हमें कन्धों पर बिठा कर छलांगें भरते और हमें आनंदित होते देख कर स्वयं आनंदमग्न जाते। वे दिन आज भी स्वप्न की भाँति सुहावने दृष्टिगोचर होते है।

विस्मृत एवं धुंधली स्मृतियों के झरोखे से झांकती एक घटना, आज भी मेरे मानस-पटल पर किसी स्पष्ट चित्र की भाँति अंकित है। अपने उस सुखद अतीत में ले जाने से पूर्व, प्रसंगवश, मध्यकालीन कवि, चन्द्रवरदायी की अमर रचना - "पृथवीराज रासो" की कुछ पंक्तियाँ आपको सुनाता हूँ। उक्त कवि अपनी रचना-अवधि के अंतिम भाग में, शहाबुद्दीन गौरी के दरबार में थे। पृथ्वीराज चौहान जब शब्दवेधी वाण चलाने बैठते हैं, उस समय चन्द्रवरदायी उनको धर्मनीति का कुछ उपदेश करते हैं। एक छप्पय में वह बताते हैं कि विभिन्न जाति के लोग जब प्रधान बनते हैं तब किस प्रकार का व्यबहार करते हैं। छप्पय स्मृति से दे रहा हूँ -

- **"खत्रि होय परधान खाय, खंडौ दिखरावै,**
- **साहु होय परधान भरै घर, राज थंभावै,**
- **कायथ होय प्रधान अहो निसि रहै पियंतो,**
- **बम्मन होय प्रधान सदा रखवै निचिंतौ,**
- **नाई प्रधान नहीं कीजिये, कवि चन्दविरद साँची चवै।**
- **चहु आन-बान गुन सट्टवै, मत चुक्किस मौटे तवै।"**

जी हाँ ! मैं भी कायस्थ कुलोद्भव हूँ। और मेरे पिताजी भी 'पीते' थे।

उस दिन कुछ उत्सव था। संभवतः मेरा ही जन्मदिन था। पिताजी के कुछ मित्र व सरकारी अफ़्सर घर पर पधारे थे। रात्रि-भोज भी हुआ। उस साँझ मदिरा का विशेष दौर रहा। माताजी को यह सब अच्छा न लगता, फ़िर भी वह कुछ कहतीं नहीं थीं। भोज की समाप्ति पर जब सभी अतिथि विदा हो गए, पिताजी घर के अंदर पधारे। मेरी वह चौथी 'वर्षगाँठ' [birth-anniversary] थी। अब मैं गोद का बच्चा न रहा था। फ़िर भी पिताजी मेरे प्रति अपने अंतर में उठते हुए प्रेम के ज्वार को न रोक सके और मुझे अपनी गोद में बरबस उठा लिया। न जानें क्यों उस समय उनकी श्वाँस व मुख से कुछ विशेष प्रकार की गंध के कारण उनके प्रेम का वह प्रदर्शन मुझे अच्छा न लगा एवं उनकी इस निकटता से मेरा जी ऊबने लगा। एक सफ़ल चेष्टा के उपरांत मैं उनसे अनायास ही यह कहते हुए अलग हो गया कि - "आपके मुँह से बदबू आती हैं।" मेरे इस व्यवहार का उन पर मनोवैज्ञानिक रूप से गहरा प्रभाव पड़ा और स्वयं ही उन्हें अपनी उस स्थिति पर ग्लानि हुयी। मुझे ध्यान है, माताजी ने उनसे इतना ही कहा था - "बच्चे अब बड़े हो रहे हैं, इसका आपको ख्याल रखना चाहिए।" पिताजी उसके बाद वहाँ नहीं रुक सके थे और अपने शयन-कक्ष में सो रहे।

कहते हैं उसके बाद से उन्होंने 'पीना' छड़ दिया। इतना ही नहीं, उन्हें उससे घृणा भी हो गयी। उसके बाद आजीवन, मदिरापान क्या उसका नाम भी उनकी जिह्वा पर नहीं आया। उनके चरित्र के इस आमूल परिवर्तन की चिर-सुखद घटना को माँ बार-बार सुनाते नहीं अघातीं थीं।

माँ और पिताजी दोनों का ही मुझ पर अपार स्नेह था और मेरा बचपन बड़े ही लाढ़-प्यार एवं राजसी ठाठ-बाट में बीता। नौकर-नौकरानियों की पर्याप्त व्यवस्था थी। सैर-सपाटे के लिए सवारी घर की ही थी।

साथ के अथवा अपनी उम्र के बच्चों में खेलना मुझे कभी नहीं भाया। माँ जब तक जीवित रहीं, मेरी मित्र-सखा, जो कुछ भी थीं, वे ही थीं। जो वह करतीं, मैं भी करता। रामचरितमानस का दैनिक-पाठ मानों उनका जीवन ही था। हमारी मानसिक-चेतना अभी उन दिनों इतनी परिपक्व न थी, फ़िर भी हम-दोनों भाई उनके पास बैठ कर, मानस का पाठ, ऐसा मगन हो कर सुनते कि जैसे सब-कुछ समझ रहे हों। **कभी-कभी किन्हीं प्रसंगों को वह विशेष चाव से पढ़तीं व प्रेम-विभोर हो अनायास ही उनकी आँखों से अविरल अश्रु-धारा प्रवाहित हो उठती। उन्हें रोते देख हम भी रोने लगते। जब वह हमसे पूछतीं - "क्यों रो रहे हो " तो हम-दोनों कहते - "क्योंकि आप रो रहीं हैं। हमें आप के साथ रोने में अच्छा लगता है।" बच्चों के इस प्रकार के उत्तर सुन कर वह हमें छाती से लगा लेतीं। वह अपने आँसू पोंछतीं एवं उसी गीले आँचल से हमारे पूरे मुँह को भी पोंछ डालतीं। उनके इस व्यवहार में हमें अपार 'आनन्द' आता।**

उनका कण्ठ बड़ा ही मधुर था। गायन-विद्या का भी उन्हें पर्याप्त ज्ञान था। 'मानस' का पाठ भी वह सस्वर करतीं। उनकी संगति में जहाँ एक-ओर मेरी प्रवृति सत-चेतना व धार्मिक ज्ञान की ओर अग्रसर हुयी, दूसरी ओर गाने व कविता की ओर भी जाग्रत हुयी। उनकी कृपा से आत्मज्ञान का जो बीज मेरे अन्तर में पड़ा, वह आजीवन मेरा आश्रय रहा और मेरा जीवन उसके आध्यात्मिक पालन-पोषण का आधार बना।

आयु के सातवें वर्ष में प्रवेश करते-करते माँ ने संसार से विदा ली, वह स्वर्गवासिनी हो गयीं। अब वह जहाँ भी हों, परमात्मा उनकी आत्मा को पूर्ण शान्ति दे एवं उन्हें ऊँचे से ऊँचा आध्यात्मिक पद प्राप्त हो।

मेरा शैशव [infancy] विफ़ल हो गया। ऐसा लगा कि ममतामयी मात्र-अंक [mother's-embrace] की छाया दूर हो गयी और मैं निराश्रित हो गया हूँ। किन्तु मेरे पूज्य पिताजी ने अपने अपार प्रेम एवं स्नेह से माँ के अभाव की पूर्ति की। माँ की मृत्यु के बाद पिताजी का उत्तरदायित्व अब बढ़ गया था। उन्होंने माँ के दायित्व को स्वयं संभाल लिया था। उन्हें हर

समय हमारी ही चिंता लगी रहती थी। यों वह अब स्पष्टतः गंभीर व उदासीन हो गए थे फ़िर भी निरंतर इसी चिंता में रहते कि उनके लाड़लों को किस प्रकार एक सफ़लतम व्यक्तित्व का स्वामी बना दिया जाय। वह हमें सफ़लता की चरम-सीमा पर देखना चाहते थे।

सुबह-शाम टहलने की उनकी प्रारम्भ से ही आदत थी। अपने इस कार्यक्रम में वे हमें साथ ले जाने लगे। मार्ग में वह अपने जीवन के अनुभवों की व्याख्या करते। हम-दोनों भी उनसे अपनी कोई बात छिपाते नहीं थे। इसी बीच, जब वह मौज में होते तो हमें ऐतिहासिक, जीवंत एवं अन्य अनुभवी कहानियाँ भी सुनाते। कभी-कभी इन कहानियों को सुनाने के उपरांत वह हमसे पूंछते - "क्या समझे ?" उसके बाद वह स्वयं अनेक व्याख्याएँ करते और इसी बीच हमें अनेकों निर्देश भी दे डालते। कभी-कभी हमसे पहले सुनायी गयी कहानियाँ सुनीं जातीं। मेरे छोटे भाई नन्हें [हम-दोनों के घर के नाम, क्रमशः - 'पुत्तू' व 'नन्हें' हैं] इसमें विशेष रूचि लेते। इस प्रकार कुछ समय के लिए मानों उनका अपना बचपन लौट आता। हम कम आयु के होते हुए भी इन शिक्षाप्रद कहानियों के द्वारा जीवन के गहनतम अनुभवों के अधिकारी होने लगे। मानसिक विकास की दूरी व अंतर होते हुए भी दोनों ही पक्ष लाभान्वित होते। हम शिक्षा ग्रहण करते, वह आनन्द-विभोर होते। इस कार्य-कलाप में हमारी स्मरण-शक्ति का अच्छा व्यायाम होता रहा।

पिताजी अपने अनुभवों को सुनाते समय अपनी सेवा-काल के दौरान उनके द्वारा कृत विशेष योगदानों की चर्चा वे विशेषतौर पर करते और हमें क्रमबद्ध अनुच्छेदों-वार समझाते कि 'जनगणना' के दौरान उन्होंने किस-प्रकार एक नयी तकनीक का अन्वेषण करके ब्रिटिश प्रशासन के प्रशंसा के पात्र बने थे। काल-चक्र ने गति ली और मेरे भी जीवनवृत्त में उनकी इस उपलब्धि की पुनरावृत्ति हुयी। वर्ष 1901 [ई0] में जब मैं 'अलीगढ़' तहसील [जिला - फर्रुखाबाद] में कार्यरत था, मुझे भी ठीक वैसा ही 'कार्यभार' [assignment] तत्कालीन कलैक्टर द्वारा सौंपा गया।

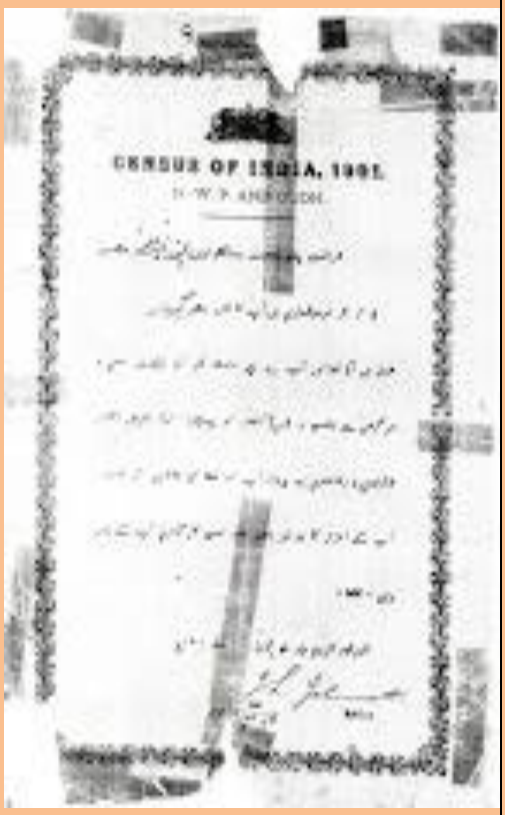

उसके निष्पादन में मुझे पिताजी के सुनाये गए उनके [अपने] उपरोक्त अनुभव बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए। फ़लस्वरूप मेरी तत्कालीन 'शासन' द्वारा प्रशंसा की गयी एवं एतदर्थ मुझे भी इनाम के तौर पर प्रशाति-पत्र दिए गए।

बचपन में मेरा स्वास्थ्य अच्छा था, पढ़ाई की ओर रूचि भी थी, किन्तु पिताजी ने पर्याप्त बड़े हो जाने पर भी मुझे स्कूल नहीं जाने दिया जिसका एक-मात्र कारण उनका वात्सल्य प्रेम ही था। 'विद्यारम्भ संस्कार' माँ के जीवन काल में ही बड़ी धूम-धाम से हो गया था। उसके बाद घर पर ही उर्दू, फ़ारसी पढ़ाने के लिए एक मौलवी साहिब की नियुक्ति कर दी गयी थी। उक्त मौलवी साहिब ने मुझे कविता करना भी सिखाया था।

माँ के स्वार्गावासी होने के समय हम-दोनों भाइयों की अवस्था क्रमशः सात व पाँच वर्ष थी। दोनों ही छोटे बच्चे थे। अतः पिताजी ने हम लोगों के लालन-पालन के लिए एक अन्य महिला को नियुक्त कर दिया था, जो मुस्लिम थीं। यह महिला तीन-चार वर्ष हमारे घर रहीं। वह बड़ी अनुभवसम्पन्न व सांसारिकता में प्रवीण थीं। हम दोनों को ह्रदय से प्यार करतीं। उन्होंने एक दिन के लिए भी हमें अपनी माँ का अभाव न खटकने दिया। हम-लोगों ने भी उन्हें समुचित आदर व भरसक प्यार देने का आजीवन प्रयास किया। उन्होंने लम्बी आयु भोगी। हमारे सभी भाइयों व मेरे मुत्र-पुत्रियों व भतीजों आदि सभी की शादियों में वह बराबर आतीं तथा बड़े-बूढ़ों के योग्य जो रस्म होती उनका वह निर्वाह करतीं। अंतिम बार वह मेरे पुत्र चिरंजीव जगमोहन नरायण की शादी में आईं एवं उसकी बहू [सौ0 भगवती देवी] को आशीर्वादस्वरूप एक रुपया मुहंदिखाई [present given to the bride by he female relative-in-laws] दे कर गयीं। उनके व्यक्तित्व व सद्शिक्षा का मेरे व्यक्तित पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा।

लगभग दस वर्ष की अवस्था में मेरा प्रवेश, फ़र्रुख़ाबाद नगर के स्थानीय 'मिशन हाईस्कूल' में कराया गया।

यहाँ से 18 वर्ष की आयु में मैनें वर्ष 1891 [ई0] में "मिडिल क्लास एंग्लो वर्नाकुलर एग्जामिनेशन" द्वितीय श्रेणी में पास किया। उक्त परीक्षा का प्रमाणपत्र प्रदान करने वाली संस्था का नाम "एजुकेशन डिपार्टमेंट, नार्थ - वेस्टर्न प्रॉविन्सेस एंड अवध" था।

मिशन स्कूल के अध्यन-काल की अवधि में अपने अध्यन के अतिरिक्त मेरी जो उपलब्धि थी, वह थी - ईसाई धर्म व उक्त मिशन से मेरा निकटस्थ परिचय। महामना ईसा के इस महावाक्य का मेरे हृदय पर बहुत ही गहरा व अमिट प्रभाव पड़ा - "यह संभव है कि सुई के 'नकुए' से ऊँट निकाल दिया जाय किन्तु यह कभी भी संभव नहीं कि धनवान व्यक्ति उस [ईशु] का कृपापात्र बन जाय।" यही कारण था कि जीवन की कितनी ही अभावग्रस्त स्थितियों का सामना करने में मुझे कठिनाई नहीं हुयी।

कालचक्र ने मुझे राजसी ठाट-बाट एवं सुख-सुविधाओं की चरम सीमा से पल झपकते जीवन की कठोरतम एवं दुरूह कठिनाइयों के अंधकार के बीच ला पटका किन्तु सद्गुरु-कृपा से प्रभु-प्रेम में मेरी आस्था अडिग रही और प्रभु के प्रति भक्तिभाव में किञ्चितमात्र भी कभी कमी नहीं आयी।

==========

12. प्रकृति पुरुष दर्शन

- **"उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां**
- **जेष्ठ उत व कनिष्ठः।**
- **एको ह देवी मनसि प्रविष्टि प्रथमों**
- **जातः स उ गर्भे अन्तः।।"**
- **[अथर्व. 10 - 08 - 28]**

- यह जीवात्मा कभी इन [बालकों] का पिता बनता है और कभी इनका पुत्र बन जाता है। कभी इनका ज्येष्ठ भाई और कभी कनिष्ठ भाई। एक जीवात्मा [मनसि] ज्ञान में प्रविष्ट रहता हुआ पूर्व शरीर को धारण करता है और तत्पश्चात गर्भ के अंदर रहता हुआ पुनः नवीन शरीर को प्राप्त होता है।

एक कहानी अनायास स्मरण हो आयी जो मेरे पिताजी ने, उनके साथ प्रातः घूमने जाते समय एक दिन हम दोनों भाइयों को सुनायी थी, आप सुनें - देवर्षि नारद को भगवान ने किस प्रकार कृपा कर ज्ञान प्राप्त कराया, इसी का वृत्तान्त इस कहानी में है -

देवर्षि नारद एक बार भगवान् कृष्ण के पास द्वारिका पहुँचे। उन्होंने बड़ी आव-भगत से उनका स्वागत किया - "आओ नारद ! कैसे आना हुआ ?" नारद ने याचना की - "भगवान मैं यह जानना चाहता हूँ कि प्रकृति या माया क्या है ? कृपया बतावें।" भगवान ने अत्यंत कृपा कर उन्हें बताया - "नारद, प्रकृति को बताया नहीं जा सकता। इसे अनुभव से ही जाना जा सकता है। मेरे साथ चलो।" कृष्ण और नारद यों द्वारिका से चले। और, वे चलते-चलते मरुस्थल में जा पहुँचे। नारद ने आश्चर्य से कहा - "कहाँ ले जाओगे मुझे ? भला मरुस्थल में माया का अनुभव कैसे होगा, देव ?" कृष्ण ने आगे बढ़ते हुए कहा - "धीरज रक्खो नारद।" पर्याप्त दूर चल लेने के उपरान्त कृष्ण अचानक रुक गए और अत्यंत ही अधीर भाव से बोले - "और नहीं चला जाता, नारद। मेरा कण्ड सूख रहा है।" अपना जल-पात्र उनकी ओर बढ़ाते हुए, आग्रह किया, "यह लो ---- और --- कहीं से जल लाओ।" नारद ने उन्हें सान्त्वना दी - "घबराओ मत कृष्ण ! मैं अभी जल ले कर आता हूँ।" और नारद जल की खोज में निकल पड़े। दूर कहीं उन्हें बस्ती दिखाई दी। संभवतः यही माया का स्थूल रूप था। आश्चर्यचकित भाव से उन्होंने देखा -

"आह ! कुआँ।" एक सुन्दरी, जो युवा थी, कुँए पर अपनी गगरी भर रही थी। उनका मन चकित हो गया, "अहा कैसा देवी जैसा रूप है।" खोए-खोए तुरन्त ही उसकी ओर दोनों हाँथ बढ़ा दिए - "देवी, थोड़ा सा जल पिला कर मेरी प्यास बुझाओगी ?" युवती जितनी सुन्दर थी, उतनी ही विनम्र भी। अत्यंत ही भक्ति-भाव से बोली - "अभी लीजिये महाराज।" वह जल तो पी रहे थे किन्तु उनकी दृष्टि व मन दोनों ही उसके रूप लावण्य व उठते हुए यौवन के ज्वार में डूबने उतराने लगे। और नारद सुन्दरी के पीछे-पीछे उसके घर पहुँचे। वहाँ कोई पुरुष बैठा था। जिज्ञासावश, तुरन्त ही उसको सम्बोधित किया, "तुम इस घर के स्वामी हो ?" पुरुष, जो सम्भतः उस गाँव का ज़मींदार था, बोला - "घर का ही नहीं, सारे गाँव का। तुम्हें क्या काम है, महाराज !" नारद तो मानों सुंदरी के यौवनाकर्षण में अंधे ही हो रहे थे - "तुम्हारी पुत्री से विवाह करना चाहता हूँ।" बूढ़े ने भी इसका कुछ बुरा न माना और अपनी एक-मात्र कन्या के लिए उपयुक्त वर जान, बोला - "क्यों नहीं ? तुम नवयुवक हो। स्वस्थ हो, बलवान हो। परन्तु एक शर्त। मेरी पुत्री से विवाह करके, इस गाँव में, इसी घर में रहना होगा।" नारद मानों उसके रूप रस-यौवन में डूब ही चुके थे - "इतनी सी बात ! तुम्हारी बात मुझे स्वीकार है।" और यूँ दोनों का विवाह हो गया। विवाह के कुछ दिन बाद ज़मीदार की मृत्यु हो गयी। उसका सारा काम-काज नारद को संभालना पड़ा। नारद के चार संतानें हुयी। उनका अपना छोटा सा संसार बस गया। जब वह अपने एक पुत्र को गोद में उठाते, दूसरा हठ करता - "पिताजी, उसे उतारो मुझे गोदी लो।" नारद इसी को जीवन की सफ़लता का चरम सोपान समझ अपने सौभाग्य को सराहते न अघाते थे किन्तु तभी आंधी-तूफ़ान, वर्षा और बाढ़ के रूप में उन पर आपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। बच्चे भय से चिल्लाये - "पिताजी !" पत्नी ने उधर से पुकारा - "घर पानी में डूब जाएगा, कैसे जान बचाएँ ?" पत्नी और बच्चों को नौका में ले नारद हरहराते पानी में जान बचाने के लिए छटपटाने लगे, किन्तु नाव पलट गयी। नारद न तो पत्नी को बचा सके न बच्चों को। एक बच्चा पुनः सहायता के लिए चिल्लाया - "पिताजी" वह उसे झूठी सांत्वना देते पुकारते "कहाँ हो तुम ? घबराओ मत। मैं आ रहा हूँ।" डूबती पत्नी की गोद से दूसरा बच्चा चिल्लाया - "पिताजी !" बुरा हाल था नारद का। एक बड़ी सी लहर ने नारद को किनारे ला पटका। वह किनारे पर पड़े कराहते और आत्मग्लानि के भाव से विलाप कर रहे थे - "पत्नी गयी। बच्चे गए। मैं अकेला जी कर क्या करूँगा ?" तभी उन्हें सुनायी - "नारद मैं प्यासा हूँ। जल लाये क्या ?" यह वाणी कृष्ण की थी। नारद ने घूम कर देखा, सामने कृष्ण खड़े थे। दौड़ कर लिपट गए। "कृष्ण ! मेरी पत्नी ! मेरे बच्चे ! उन्हें फ़िर जीवित कर दो !" तब कृष्ण ने उन्हें सावधान किया "नारद, किस भ्रम में हो ? न कोई पत्नी थी, न कोई बच्चे थे। वह सब

माया थी।" नारद को चेतना हुयी। उन्हें कृष्ण के पुरुष रूप में दर्शन हुए जो भृकुटि-विलास से प्रकृति को नचाते हैं।

"जीव चराचर बस कै राखे सो माया प्रभु सो भय भाखे।
भकुटि विलास नचावइ ताही
अस प्रभु छाँड़ि भजिय कहु काही।"
[मानस 01/199/05, 06]

वह गिड़गिड़ाए - "प्रभो ! मुझे ज्ञान दे कर आप ने मेरा बड़ा उपकार किया है। आप ने प्रकृति पुरुष दोनों के साक्षात दर्शन करा दिए। वस्तुतः जीवन ही स्वयं 'माया' है। उससे छुटकारा पाना बड़ा कठिन है। 'पुरुष' की कृपा हो देव ! तभी मनुष्य प्रकृति पर विजय प्राप्त कर सकता है, तभी आप को जान सकता है, अपने आप को पहँचान सकता है।"

"प्रकृति पुरुषं चैव विद्वयेनादी उभावपि।
विकरांश्च गुणांश्चैव विद्धिव प्रकृतिसंभवान।।
-[गीता 13/19]

हे अर्जुन ! प्रकृति अर्थात त्रिगुणमयी मेरी माया और जीवात्मा अर्थात क्षेत्रज्ञ, इन दोनों को ही तू अनादि जान और रागद्वेषादि विकारों को तथा त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण पदार्थों को भी प्रकृति से ही उत्पन्न हुए जान।

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते।।
[गीता 13 : 23]

- इस प्रकार पुरुष को और गुणों के सहित प्रकृति को जो मनुष्य तत्व से जानता है वह सब प्रकार से बर्तता हुआ भी फ़िर नहीं जन्मता अर्थात पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होता है।

कहने को यह कहानी थी। किन्तु मैं आजीवन इस कहानी की व्याख्या करता रहा। वास्तव में हमारी सब की 'नारद' जैसी ही दशा है। भोगों की कामना और कामना की सिद्धि से सुख की प्राप्ति, यही भ्रम भटकाए रखता है। किन्तु यह कभी संभव नहीं। भगवान की कृपा से ही शरणागति या ज्ञान की प्राप्ति होगी। तभी दुःख का नाश और सुख की प्राप्ति संभव है। भोग-कामना की अग्नि प्रचण्ड है। विषयों के सेवन से, बहुत से भोगों के भोगने से शांति नहीं होती प्रत्युत अग्नि में जितना ही भोगरूपी ईंधन व घृत पड़ता है, उतनी ही अग्नि भड़कती जाती है। इसीलिए भगवान ने इस कामना को "महाशन" कहा - इसका पेट कभी भरता ही नहीं।

"बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ विषय भोग बहु घी ते।"

इस माया-जाल को समझना आसान नहीं। विषय बहुत लम्बा व गहन है और दर्शनशास्त्र से समबन्ध रखता है। अपनी अपनी मान्यताएँ हैं, जिनमें मतभेद भी हो सकते हैं। हाँ तो बात चल रही थी - 'सुख' 'दुःख' क्या हैं ? यह भ्रमजाल क्या है ? इत्यादि इत्यादि। बात को आगे न बढ़ाते हुए, **हम उपर्युक्त कहानी के 'नारद' को ही ले लें, एवं उनकी स्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण करें। जिस भ्रमजाल में वह फंसे उस पर उनका अपना क्या अधिकार था ? यह 'मन' और 'बुद्धि' भी ईश्वर के ही दिए हुए हैं। यह मायारूपी संसार इत्यादि जो कुछ भी हैं, उसी का ही तो है। हमारा किसी पर भी कुछ अधिकार नहीं। 'नारद' की भांति हम स्वयं ही अपने भावी दुःखों के कारण बनते हैं। यों मन समझाने के लिए हम कहते हैं - यह 'कालचक्र' है, यूँ ही चलता रहेगा ; इत्यादि किन्तु ऐसे अनेकों भ्रामक दर्शन हमारे किसी प्रयोजन के नहीं होते। आत्मा और शरीर की स्थिति स्पष्ट करते हुए ऋषि-वाणी दिशानिर्देश करती है -**

"अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वनता विषूचना वियंता न्य न्यं चिक्य युरँ नि
चिक्यु रन्यम।।"
[ऋग्वेद 01. 164. 38]

जीवात्मा अपने कृत कर्मों के कारण निम्न और उत्कृष्ट योनियों को प्राप्त होता है। अमर आत्मा मरणधर्मा शरीर के साथ रहता हुआ, एक रूप हो जाता है। वह दोनों विविध योनियों में सदैव साथ रहते हैं। मनुष्य, शरीर को तो भली भाँति जान लेते हैं, किन्तु उसमे स्थित आत्मा को नहीं जान पाते।

जीव और प्रकृति में भोक्ता और भोग्य का सम्बन्ध है। जीव चेतन होने के कारण भोक्ता है और प्राकृति 'जड़' होने से भोग्या।

"पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते।।"
[गीता : 13/20]

जीवात्मा सुःख - दुःखों के भोक्तापन में हेतु कहा जाता है। परन्तु कोई कोई अंतःकरण को भोक्ता मानते हैं। पर उनकी ऐसी मान्यता युक्तियुक्त नहीं। कारण यह है कि अन्तःकरण 'जड़' होने से उसमे भोक्तृत्व संभव नहीं। शुद्ध आत्मा भी भोक्ता नहीं है। जो केवल शुद्ध आत्मा भी मानता है, उसे भगवान ने 'मूढ़' कहा है। अतएव "प्रकृतिस्थ पुरुष" ही भोक्ता है। ऐसे ही मुझ 'भोक्ता' की कहानी यहाँ अपने तीसरे चरण में है। मुझे नहीं मालूम मैं जब इस संसार में आया था तो मेरा क्या उद्देश्य था ? संसार-रूपी इस कर्मक्षेत्र में आने से पूर्व मेरी क्या कामना शेष थी अथवा क्या संकल्प-विशेष था, इस विषय में मेरी चेतना मौन थी। मेरी इस स्थिति पर यदि कोई कहे कि जब इसमें चेतना ही नहीं तो फ़िर क्रिया कैसे होती थी ?

समष्टि चेतन की व्यवस्था से चिंतन को दिशा मिलती है तथा स्थिति, व्यष्टिभाव से हट कर शुद्ध-चेतन में समाहित हो जाती है। समष्टि-चेतन की सत्ता में स्फूर्ति है, क्रिया है और कोई बाधा नहीं होती तथा व्यष्टि-चेतन की मौन-अवस्था समष्टि में मुखर हो उठती है। इनकी स्पष्ट व्याख्या आगे के अध्याओं में उपयुक्त स्थलों पर करने की चेष्टा की जाएगी। संसार की गति एक सी नहीं है। इसका रंग हमेशा बदलता रहता है। इसके गर्म और सर्द हवा के झोंके जब लगातार कोई व्यक्ति सहन कर लेता है तब वह अनुभव-संपन्न बन जाता है तथा उसकी समझ में आता है।

"देह धरे का दण्ड है सब काहू को होय।
ज्ञानी भोगै ज्ञान से, मूरख भोगै रॉय।"

उन दिनों बाल-विवाह का प्रचलन था। अभी हम किशोर ही थे एवं अध्यनरत भी, एक के बाद एक हम-दोनों की ही शादियां कर दीं गयीं। ज़मीदार घराना जो था, अतः शादियाँ बड़े ही धूम-धाम से की गयीं। दूसरे पक्ष भी नामीं रईस व ज़मीदार ही थे। मेरे अपने अंतर में, अपने विवाह

की स्मृतियाँ भी बचपन की अन्य स्मृतियों की भांति ही अंकित हैं, वैसी ही धुंधली व विस्मृत सी। ऐसा लगता है मानों वह भी एक कृत्य था जो, होना था, और हो गया। इसी प्रकार मेरे जीवन की और भी चाँदनी-रातें आईं और निकल गयीं। जीवन के वे बीते दिन अभी कुछ याद हैं, और कुछ याद करने पर भी याद नहीं आते। सारे-के-सारे सुदिन यों ही किसी चलचित्र की भांति आये और चले गए। ठीक ही तो है, समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता।

मेरे अंतर में, सुख-सुविधा की चरम-सीमा पर विराजता जो एक राजकुमार था, धीरे-धीरे अब उसकी आकृति भी धुंधली पड़ने लगी और ऐसा लगने लगा मानो अब वह विदा होना चाहता था। पुनः प्रकृति के चक्र ने अपनी गति ली और उसकी एक-और तस्वीर उभर कर सामने आयी। उसने तो जैसे मेरे अपने समूचे व्यक्तित्व को झकझोर कर ही रख दिया। वे दिन, जो कथित रूप से सुखद थे, स्वप्न की ही भाँति मेरी स्मृति में मेरा पीछा करते रह गए। यों उनका आकर्षण भी अपने ढंग का निराला था। किन्तु मैं लेश मात्र भी विचलित नहीं हुआ। मुझे विश्वास था कि यह कालचक्र रुकेगा नहीं, यह गतिमान है, और अभीष्टतः मुझे अपने अपने प्रभु की राह पर ही ले जाएगा।

और अंततः जीवन-सरिता की बीच मझधार में, नारद की ही भाँति मेरी भी नाव उलट गयी। अनेक संकटों व कष्टों के बीच में मैं एक ऐसे मोड़ पर खड़ा था जहाँ मुझे अपने भविष्य के बारे में निर्णय लेना था। मेरे सुखद स्वप्नों एवं संकलपों के आश्रय, मेरे पूज्य पिताजी भी जिन पर हमारा छोटा सा संसार आश्रित था, स्वर्ग सिधार गए थे। माँ पहले ही स्वर्गवासी हो चुकीं थीं। मुझे अपनी आशाओं का संसार छिन्न-भिन्न सा होता प्रतीत हुआ। मुझे अपने भावी-जगत का चित्र बिगड़ता सा लगने लगा। सम्भतः यह भावी जीवन की कोई भूमिका थी।

ज़मीदारी की भारी सुख-सुविधा व वैभव पिताजी के साथ ही विदा हुए। मेरे प्रभु की यह कैसी विचित्र लीला थी। हमारी आय का अब कोई निश्चित स्रोत शेष नहीं रह गया था।

तमाम सुख-सुविधाओं से संपन्न अपना महल-जैसा मकान हमें छोड़ना पड़ा। जिस नगर में हमेशा हम घोड़ा-गाड़ियों व पालकियों में चलते थे उन्हीं मार्गों पर हमें अब नंगे-पाँव या लकड़ी की चट्टियाँ [wooden sandals] पहन कर चलना होता। मेरी अपनी कहानी का यह दुःखान्त भाग है। जीवन का यह प्रकरण मुझे कितना भी प्रिय क्यों न हो, किन्तु आपको अपने इस अतीत में ले-जाकर क्यों दुखित करूँ।

हाँ, मुझे अच्छी तरह से याद है, न जानें किस प्रसंग में मैं अपने 'हज़रत क़िब्ला', हुज़ूर महाराज को अपनी यह करूण कहानी सुनाने लगा। सुनते-सुनते वह इतने विकल हो गए कि बोले, "पुत्तूलाल बस करो, अब नहीं सुना जाता।"

फ़िर भी, विपत्ति की उन घड़ियों में भी, मैंने स्पष्ट अनुभव किया कि मैं बाहर-भीतर, सर्वत्र, भगवान की कृपा से घिरा हुआ हूँ। मुझपर चारों ओर से, भगवान की दया बरस रही है। मैं सर्वथा उसी का हूँ। मेरे प्रभु ने अपनी ही वस्तु की भाँति मेरी सदा देख-रेख की है।

"न कामयेऽहं गतिमीश्वरात परा-मष्टदिर्धयुक्तामपुनर्भवं वा।
आर्ति प्रपद्येऽखिलदेहभाजः - मन्तः स्थितो येन भवन्त्युदुःखा।।"
[श्रीमद्भागत 09/21/12]

रन्तिदेव का भाव प्रभु-कृपा से ही मुझमें भी उदित हुआ - "मैंने भी भगवान से आठों सिद्धियों से युक्त परमगति नहीं चाही। मैंने केवल यही चाहा कि सम्पूर्ण प्राणियों के ह्रदय में स्थित होकर, उनका सारा दुःख मैं ही भोगूँ, जिससे और किसी भी प्राणी को दुःख न हो।"

इस प्रकार मैं अपने जीवन-संघर्ष की कहानी तो प्रस्तुत कर रहा हूँ किन्तु अपने जीवन के दुःखान्त प्रकरणों को जो यों मुझे अतिप्रिय है, आपके लिए अप्रकट ही रखना चाहूँगा।अपने कर्मक्षेत्र में उतरने से पूर्व मुझे प्रभु का संकेत निरंतर याद रहा। यही कारण था कि मैं कभी विचलित न हुआ, पथभ्रष्ट न हुआ।
"निराशीनिर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः।"
[गीता - 03/30]

"युद्ध करो, परन्तु तीन वस्तुओं से अलग रह कर - राजयभोगों की आशा छोड़ कर, देह तथा देह-सम्बन्धी सारी ममता छोड़ कर और कामना के ज्वर को उतार कर।"

नारद की ही भाँति मेरी भोग-रत आसक्तियों व मेरे अनेकों संकल्प की नाव को उलटने वाले मेरे प्रभु ही थे और तूफ़ान की लहर के साथ किनारे पर ला पटकने व चिताने वाले भी वही आनन्दघन - सच्चिदानन्द थे।

प्रकृति विरति की अपार व्यथा में नारद को पुरुष के दर्शन हुए। नारद ही क्यों, प्रत्येक ऐसे भाग्यशाली जीव को होते हैं जो सांसारिक दृष्टि से इस प्रकार दुर्भाग्य का मारा दिखलाई देता है। मेरे ऊपर जब इतनी विपत्तियाँ आईं, मेरी प्रकृति विरति की व्यथापूर्ण स्थित हुयी तो मेरे ऊपर भी प्रभु-कृपा हुयी।

आख़िकार एक दिन ऐसा आया कि उस [आजिज़ हक़ीक़ी] यानी परमपिता ने अपनी मेहर से मेरी तरफ़ निगाह की और अपनी महान शक्ति की ज़िन्दा इन्सानी सूरत को मेरी सच्ची हमदर्दी करने के लिए मुझ तक पहुँचा दिया। यह विश्वरूप दर्शन था जिसने आत्मदर्शन के रूप में आ कर मेरी हमदर्दी की और मेरा हाँथ पकड़ कर एक पलक मारते में मुझको कहीं-से-कहीं ले जा कर खड़ा कर दिया। यह वह जगह थी जहाँ दुनियाँ की हर चीज़ अपनी अज़्मत और जलाल के साथ चमकती है। मैंने जो देखा वह देखा और जो पाया वह पाया। आप लोग इसकी मिसाल श्रीभगवत्गीता के पहले अध्याय के उन मन्त्रों [श्लोकों] में पा सकते हैं जहाँ अर्जुन ने हताश होकर अपने हथियार रख दिए और मेरी तरह मायूस हो कर उम्मीद और ख़ौफ़ से मिली हुयी हालत में फँस कर अपने मन्सबी काम के करने से इंकार कर दिया था। अगर श्रीकृष्ण महाराज आनन्दकन्द उस मौके पर अपनी अज़मत और जलाल के साथ अर्जुन को उस मुक़ामिहू तक खेंच कर न ले जाते और फ़िर अर्जुन की दरख्वास्त पर अपनी जमाली सूरत उनके दिल में न बैठाल देते तो नतीज़ा ज़ाहिर था। ग़र्ज़ेकि मैं खैंच कर शाहिराय क़ामयाबी पर खड़ा कर दिया गया और मुझको मेरे काम करने के लिए अकेला ही न छोड़ा बल्कि अपनी छोटी सी मूरत धारण करके मेरे अँधेरे और नापाक दिल की कोठरी में हमेशा के लिए बैठक अख्तियार की ।

श्रीकृष्ण- स्वरुप अपने हज़रत क़िब्ला का आश्रय पा कर मैं भी अर्जुन की भाँति "युध्यस्व विगत ज्वरः" के लिए सन्नद्ध हो गया और सांसारिक आपत्तियों का साहस, और निर्भीकता के साथ सामना करने की शक्ति मुझे प्राप्त हो गयी। यों मुझे अपनी सांसारिक परेशनियाँ उन्हें लिखने में संकोच होता था किन्तु उनके अपार शील, स्नेह और सौजन्य से मेरा यह साहस भी होने लगा। उन्होंने एक बार मुझे इस प्रकार की तकलीफ़ों से भी उनको अवगत कराने के लिए प्रोत्साहित करते हुए लिखा था -

"आप बहुत खुशी से अपनी पूरी क़ैफ़ियत लिखिए, मुझे खुशी होगी। तकलीफ़ क्यों होने लगी। भाई, मैं तो आख़िरत में भी, इन्शाअल्लाह, साथ होऊँगा। तुम दुनियाँ में मुझे तकलीफ़ से बचाते हो। मैं तो तुम्हारे वॉइस जो तकलीफ़ हो उसको राहत जानता हूँ। तुम लोग मेरे लख्तेजिगर हो।

तुम्हारी थोड़ी भी तकलीफ़ मुझे ग़वारा नहीं।"

उन दिनों, फतेहगढ़ स्थित कलेक्टर महोदय हमारे स्वर्गीय पिताजी के दोस्त थे। हमारी स्थिति के उतार-चढ़ाव उनसे छिप न सके। उन्होंने एक दिन मुझे बुलवा भेजा। उन्हीं की कृपा से मेरी नियुक्ति उनके कार्यालय में हो गयी। प्रारम्भ में, मैं 'सवेतन लिपिक-प्रशिक्षु' [paid apprentice] रहा। बाद में कुछ समय बाद मुझे स्थायी कर दिया गया। मेरा वेतन उन दिनों मात्र 10/- रूपये मासिक था। इसी अल्प धनराशि से हम-दोनों भाइयों के सँयुक्त परिवार का, प्रभु-कृपा से, भरण-पोषण होता था।

अपने सेवा-काल में, मैं अधिकतर, फ़र्रुख़ाबाद जनपद के मुख्यालय, फतेहगढ़ में ही रहा। बीच-बीच में दो-तीन बार तहसील अलीगढ व कायमगंज में भी रहा। अपने सेवा-काल व गृहस्थ-जीवन में अनेकों बार, भगवतकृपा का मुझे सौभाग्य मिला।

ऐसी ही एक घटना है। उन दिनों मैं फतेहगढ़-कचहरी में 'रिकॉर्ड-रूम में मुहाफ़िज़-दफ्तर [मुख्य-लिपिक] के पद पर कार्यरत था। अगले दिन आयुक्त महोदय का मेरे कार्यालय में निरीक्षण था। किन्तु उस आगामी दिवस की पूर्व-सन्ध्या में ही कुछ प्रेमी व सत्संगी-भाई मेरे निवास पर पधारे। उनके साथ काफ़ी देर गए-रात तक भगवतचर्चा चलती रही। अगले दिन भी भागत्कृपा व प्रभु-चर्चा का कुछ ऐसा दौर रहा कि संकोच-वश वहाँ से निकलना ही न हो सका। अपने नियत समय पर ठीक दस बजे कचहरी पहुँच जाता था किन्तु आज दोपहर का एक बज गया और मैं अपने कार्यालय न पहँच सका।

आयुक्त महोदय के आगमन एवं उनके निरीक्षण का ध्यान आते ही मैं यकायक हड़बड़ा गया। किसी प्रकार भागा-भागा 'राम-राम' करता कार्यालय पहुँचा। मेरे दिल में यही डर था कि अब ख़ैर नहीं।

कार्यालय पहुँचते ही धीरे से डरते-डरते मैं कुर्सी पर जा बैठा तथा विचार करने लगा कि आयुक्त महोदय के निरीक्षण के समय मेरी अनुपस्थिति का उनके ऊपर बड़ा ही बुरा प्रभाव पड़ा होगा और कलेक्टर साहिब सहित अन्य अधिकारियों को भी मेरे कारण क्या-क्या सुनना पड़ा होगा। यों अनेकानेक अनहोनियों की कल्पना से ही मेरा जी घबराने लगा।

अंत में डरते-डरते अपने निकटस्थ एक लिपक से मैंने धीरे से पूँछा - "कहो भाई, निरीक्षण ठीक प्रकार तो हो गया ? कोई अनहोनी घटना तो नहीं घटी ? भाई मैं बड़ी विचित्र स्थित में फ़ंसा था, मैं विवश था। कुछ अतिथि घर पर आ गए थे, अतः आने में इस प्रकार इतना विलम्ब हो गया। अपनी अनुपस्थिति में निरीक्षण की कल्पना से ही जी घबरा रहा है। जीवन में पहली बार ऐसी त्रुटि हुयी है। न जाने आप लोग मेरे बारे में कैसी-कैसी धारणाएँ बना रहे होंगे। कलेक्टर साहिब तो मुझसे बड़े ही रुष्ट होंगे। उन्होंने कहीं उन्होंने मुझे बाद में बुलवाया तो नहीं ?" एक ही सांस में अपराधी की भाँति कहता गया। मेरे चेहरे की हवाइयाँ उड़ रहीं थीं। लगता था मानों चोरी करते, मैं 'रंगे-हाँथों' पकड़ा गया था। कार्यालय में बिना पूर्व-सूचना देर से उपस्थिति का यह मेरा पहला अपराध था। अतः मैं कुछ अधिक ही घबरा गया था।

मेरी इस दयनीय स्थिति पर उक्त लिपिक आश्चर्य से हँसने लगा और उलाहने भरी भाषा में कहने लगा - "क्यों बड़े बाबू ! इस बुढ़ापे में, मैं ही बचा हूँ इस प्रकार के मज़ाक के लिए। अभी-अभी साहिब लोग मुआइना करके गए हैं। आपने स्वयं ही तो इस कुशलता से पूरा मुआइना कराया कि वे सब अचम्भे में पड़ गए थे। पूरे रिकॉर्ड-रूम से जो-जो भी फाइल वे माँगते थे, आप एक झटके से निकाल कर प्रस्तुत कर देते थे। और अब यूँ मुझसे मज़ाक कर रहे हैं। पहले तो कभी ऐसी हरकत आप ने नहीं की।" उसके इस उत्तर से मानों मेरे मुँह पर एक ज़ोर का भरपूर तमाचा-सा पड़ा। मैं तिलमिला उठा।

मुझे यह समझते देर न लगी कि यह लीला किसकी थी। स्वयं मेरे प्रभु ने आ कर मेरी अनुपस्थिति में पूरा मुआइना करवाया। उन जैसा कुशल और कौन हो सकता है। मुझ अकिंचन दास के लिए उन्हें इतना कष्ट उठाना पड़ेगा, मुझे आशा न थी ।

मैंने आत्मग्लानि से कातर हो कर निश्चय कर लिया कि अब सेवा-अवधि-बृद्धि की शासकीय अनुकम्पा के प्रति उदासीन हो जाऊँगा और अविलम्ब नौकरी छोड़ दूँगा, और उसी दिन सेवा-निवृत्ति के लिए प्रार्थना-पत्र दे आया। शीघ्र ही उसकी स्वीकृति हो गयी। 30 जून 1928 का दिन सरकारी सेवा का मेरा अन्तिम दिन था। अब मैं सेवा-निवृत्त हूँ ? जी नहीं। सरकारी नौकरी छोड़ कर अपने प्रभु की चाकरी कर ली है और उन्होंने भी महान कृपा करके मुझ दास को अपनी सेवा में ले लिया है। मैं 'पुरुष' के दर्शन कर धन्य हो गया हूँ।

==========

13. मेरे रहनुमा ! मेरे हुज़ूर

मेरे मन व प्राण के देवता ! जो एक बार मेरे जीवन में आये तो रोम रोम में समाते ही चले गए। मेरा अपना जो भी था, तुमने हठात अपने अस्तित्व में समेट लिया। स्वप्निल आनंद की छटा के श्रोत ! मैं कैसे तुमसे निवेदन करूँ - देव ! एक बार तुम मेरी और निहारो, कुछ तो बोलो। मैं कैसे समझूँ, तुम्हारा संकेत क्या है? जब तक तुमसे परिचय न था, जब तक तुम्हें जाना न था, तब तक कोई बात न थी। रास्ता रोक कर, बलात हठ पूर्वक, तुम मेरे जीवन - पथ में आये, मेरी सारी अल्हढ़ता और नादानी पर मुस्कराहट की वर्षा करते हुए आये, मेरे अबोध ह्रदय में अपनी मोहिनी डाल कर अपने आकुल-स्पर्श से मुझे नहला दिया, मेरा रोम रोम उस स्पर्शजन्य आनंद में भीग गया। अर्ध चेतन, स्पर्श विस्मृत दशा में तुमने मेरी बाहें थाम लीं, मेरे सिर को, या मानों मेरे सारे अहंकार को अपनी विशाल छाती [जो मेरे लिए मानों समस्त श्रष्टि ही थी] में छिपा लिया और मेरे सारे शरीर को अपने मर्मस्पर्शी हांथों से सहलाया, मेरी समस्त कालिख और कुसंस्कार धो डाले।

तुम्हारी ही गुनगुनी ओढ़नी, तुम्हें भी याद होगा, तुम्हीं ने अपने ही हाँथों से उढ़ाई थी - इस काँपती हुयी काया को। क्यों, तुम दूर ही दूर रहे थे, मैं सुन रहा था अपने सीने में तुम्हारी धड़कनों को - आग ही आग, मैं लेकिन उससे झुलस जानें के बजाय, सो गया - अचेत। मेरे जन्म जन्म के पुण्य उदय हुए। तुम्हें देखा, साक्षात, हाँ बिलकुल वैसा - जैसा कि तुम हो किन्तु बाहर नहीं, अपने अंतर में। हाँ इन आँखों से नहीं, अंतर की आँखों से।

मेरी आध्यात्मिक यात्रा के प्रारम्भिक अध्याय की एक घटना जो कि उस समय की है जब मैं अपनी किशोरावस्था समाप्त करके युवावस्था की दहलीज़ पर था। मेरा विवाह बचपन लाँघते-लाँघते, किशोरावस्था में ही हो चुका था। उस समय तक मैं हुज़ूर महाराज के सम्पर्क में नहीं आया था, उनकी खुशबू से अनभिज्ञ था। माताजी के बाद पिताजी का पवित्र साया भी हमारे सिर से उठ चुका था। इसी बीच जहाँ एक ओर साँसारिक अभावग्रस्तता का ज्वार, वहीं दूसरी ओर परिवार-वृद्धि का नया मोड़। मेरी प्रथम सन्तान - चि0 हरिश्चन्द्र का जन्म के एक माह के उपरान्त ही स्वर्गवास, उसके ठीक एक वर्ष के उपरान्त एक कन्या [सौ0 पुष्पा रानी] का जन्म; इस सब ने मुझे झकझोर कर रक्खा हुआ था। नौकरी थी नहीं, पैतृक जमा-पूँजी भी समाप्त हो चुकी थी अतः अब तक 'फ़ाक़ःकशी' [भूकों मरने] की कगार पर हम थे। कई-कई

दिन चूल्हा नहीं जलता था। इसी बीच बेटी पुष्पा रानी गंभीर रूप से बीमार पड़ गयी। हालत नाज़ुक थी। घर से बाहर किसी डॉक्टर को लेने के लिए निकला। अचानक ही एक 'प्रकाश-पुञ्ज' के मध्य एक अति तेजस्वी महापुरुष के दर्शन हुए। [कालान्तर में जाना कि वह ही मेरे सर्वस्व, मेरे सदगुरुदेव, मेरे हज़रत क़िब्ला, 'हुज़ूर महाराज' ही थे]। स्वचालित ढँग उन्हें प्रणाम निवेदन किया। उन्होंने प्रश्न किया - "इतनी तेज़ी से कहाँ जा रहे हो ?" मैंने निवेदन किया - "घर में लड़की की तबीयत ज़्यादा ख़राब है, इसलिए डॉक्टर को लेने के लिए जा रहा हूँ।" 'महापुरुष' ने फ़रमाया "शुरू में मैंने कुछ 'तिब' [चिकित्सा-शास्त्र] पढ़ा था। चलो मैं तो देखूँ, शायद मरज़ [बीमारी] समझ में आ जाय तो दवा दे दूँ।" मैं उन्हें घर लिवा लाया। [अनजाने ही सही, **"सेवक सदन स्वामि आगमनू।"** की अवचेतना मुझे अनुभूत हो रही थी। .. . इत्यादि]। उन्होंने बेटी की नब्ज़ देखी और कहा "बेटी ठीक हो जायगी, चिंता मत करो।"

मेरे अवचेतन मन में उठ रहे भावों का सार संत तुलसीदास जी की वाणी में समाहित था -

"सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू।।
तदपि उचित जनु बोलि सप्रीती। पठइअ काज नाथ असि नीती।
प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आजु यहु गेहू।।
आयसु होइ सो करौं गोसाईं। सेवकु लहइ स्वामि सेवकाई।।"
[मानस 02/03-04]

[यद्यपि सेवक के घर स्वामी का पधारना मङ्गलों का मूल और अमङ्गलों का नाश करने वाला होता है, तथापि हे नाथ ! उचित तो यही था कि प्रेमपूर्वक दास को ही कार्य के लिए बुला भेजते, ऐसी ही नीति है। परन्तु प्रभु ने [आप] प्रभुता छोड़ कर [स्वयं यहाँ पधार कर] जो स्नेह किया, इससे आज यह घर पवित्र हो गया। हे गोसाईं ! अब जो आज्ञा हो, मैं वही करूँ। स्वामी की सेवा में ही सेवक का लाभ है।]

उन्होंने कुछ दवा ले कर दी और कहा कि "माँ के दूध में घोल कर दे दो।" पाँच मिनट बाद दरियाफ़्त किया - "कैसी हालत है ?" मैंने बतलाया कि "अब हालत ठीक है।" बस धीरे-धीरे उनके सामने ही बेटी की हालत सँभलने लगी। तब तक भोजन का समय हो गया था। मेरे यहाँ गत कई दिनों से खाना नहीं बना था, ऐसी तंगहाली थी। लेकिन बाज़ार में मेरी साख थी कि

उधार सामान मिल सकता था। लिहाज़ा कुछ इंतज़ाम करने के लिए जाने लगा। उन्होंने फ़ौरन मुझे रोक दिया और फ़रमाया, बाज़ार से कुछ सामान लाने की ज़रुरत नहीं है, घर में जो कुछ हो ले आओ।" मैंने अन्दर आ आकर कहा "वह बाज़ार से कुछ लाने नहीं देते और बार-बार कह रहे हैं कि घर में जो कुछ हो तो ले आओ। "तो देखो, भुने हुए चने या और कोई चीज़ खाने लायक हो तो निकालो।" जवाब मिला कि "अगर कुछ होता तो फ़ांके [लँघन=starvation] क्यों होते ?" बड़ी मजबूरी दरपेश थी। वह 'महापुरुष' समझ गए, फ़रमाया "उस दिन जब हमारी बेटी [मेरी धर्मप्रिया - बृज रानी] ने रोटी बनायी थी तो एक टिकिया आटे की जो एक तरफ़ जल गयी थी, वह अब भी पड़ी होगी। वही ले आओ और उसके साथ किसी चीज़ का अचार लेते आना।" मैं अंदर गया, देखा तो वाक़ई चूल्हे पर एक तरफ़ जली हुयी रोटी की टिकिया पड़ी थी। मैंने उसे उठाया और अचार के एक टुकड़े के साथ उन फ़रिश्तेनुमा बुज़ुर्ग़ के सामने पेश किया। 'आप' खा कर उठे। इसी बीच मैंने कहीं से एक रूपया उधार ला कर चलते वक़्त आपको 'फ़ीस' पेश की। आपने फ़रमाया "बेटे ! देखो, इसकी ज़रुरत नहीं है, क्योंकि यह मेरा पेशा नहीं है।" चलते समय मैंने चाहा उन्हें 'इक्के' [one horse vehicle] पर बैठा दूँ। उन्होंने इन्कार कर दिया और कहा - "मैं रोज़ाना दो-ढाई मील टहलने निकलता हूँ, आज इधर ही निकल आया।" इस प्रकार वह पैदल ही घर के लिए वापस चले गए।

समस्त विश्व के सुखों के अम्बार की कल्पना से परे हट कर, सब कुछ भूल कर, उस चेतना की स्मृतियाँ ही स्मृतियाँ, जो आज मेरे ह्रदय के कण कण में समायी हुयी हैं। उन अविस्मरणीय क्षणों का स्मरण मात्र भीतर बना हुआ है। उस स्पर्श की हलकी सी सिहरन भर रह गयी है। असीम व्याकुलता और आतुरता भरी ललक को ले कर, अपने भीतर डूब कर तुम्हें पकड़ना चाहता हूँ, तुममें पुनः समां जाना चाहता हूँ, तुम्हें बाँध लेने का विफल - प्रयास भी करता हूँ, और कभी कभी ऐसा बोध भी होता है कि तुम आ गए, किन्तु मत पूँछो, तुम्हारा ही छल तुम्हें कैसे बताऊँ। तुम्हारा यह तरसाना भी तो क्या है ? कैसे कहा जाय। जहाँ प्राणों में हाहाकार, अतृप्त उत्कट - लालसा है, वहाँ परछाईं के ही दर्शन हों - यह तुम्हारी कैसी निष्ठुर लीला है।

हे नाथ ! तुमसे कैसे निवेदन करूँ कि यह सम्बन्ध भी तो तुम्हारा ही स्थापित किया हुआ है। तुम्हारी ओर जीवन में एक ही बार दृष्टि उठी है, तुम्हें देखने का प्रयास किया है। और तभी मेरी समग्र चेतना, समस्त धमनियों व शिराओं ने एक स्वर में कहा था - यही तुम्हारी माँ है यही तुम्हारा स्वामी है और यही तुम्हारा सब कुछ है। किन्तु मैं कहाँ हूँ ? मेरे अस्तित्व का

कण कण हँसा था मेरी बेवकूफियों पर - "अरे मूर्ख ! जिसे तू मैं मैं कहते थकता नहीं था, उसी का परिवर्तित रूप है यह।"

सुखद अनुभूति की आकण्ठ तृप्ति अनायास ही अभिव्यक्ति की पयस्वनी बन जाती है। प्रदर्शन और प्रकाशन इसका हेतु नहीं होता। होता है वस्तुतः वह आतंरिक आत्मियता एवं अपनत्व जिसके प्रेयस श्रेयस परिवेष में साधक अपने सभी अपनों को ले जाना चाहता है। इसी आशय से अपने प्रियतम, अपने सदगुरु स्वामी का वर्णन करके पाठकों को अपनी आतंरिक - चेतना की अनुभूति के दर्शन कराना चाहता हूँ व ऐसा कर पाने में पाठक कदाचित मेरी कठिनाई का आभास भी पा चुके होंगे।

विषयगत मुख्य - प्रवाह में जानें से पूर्व, पाठक यदि मुझे आज्ञा दें तो कुछ क्षणों के लिए उन्हें मैं "मानसलोक" में ले चलूँ। संभवतः कुछ दिशाबोध हो जाय, क्योंकि बात से बात निकलती है। कुछ इस प्रकार का प्रयास करूँगा कि मेरे अंतर्मन की अभिव्यक्ति तब तक मुखरित हो जाय।

'श्री रामचरित मानस' में अनासक्ति भक्ति योग के उपासक हैं - श्रीमन अगस्त मुनि के एक प्रिय शिष्य - सुतीक्ष्ण जी, जिनकी भगवान राम में अनंत प्रीति है। वोह मन, वचन और कर्म से उन्ही के सेवक हैं, उन्हें स्वप्न में भी किसी दूसरे देवता का भरोसा नहीं है। सूफी संतमत दर्शन की भी यही जान है। इन संतों का कहना है - "किसी को अपना बना लो या किसी के हो जाओ" वे अपने इष्ट के दर्शनों की प्रतीक्षा में सारा जीवन लगा देते हैं और दूसरी ओर आँख उठा कर भी नहीं देखते। यही हमारे यहाँ की साधना है।

उन्होंने [सुतीक्ष्ण जी] ज्यों ही प्रभु का आगमन कानों से सुन पाया, त्यों ही अनेक प्रकार के मनोरथ करते हुए वे आतुरता से दौड़ पड़े - "हे विधाता ! क्या दीनबंधु - श्री रघुनाथ जी मुझ जैसे दुष्ट पर भी दया करेंगे? क्या स्वामी श्री राम जी, छोटे भाई लक्षमण जी सहित मुझ से अपने सेवक की तरह मिलेंगे? मेरे ह्रदय में दृढ़ विश्वास नहीं होता; क्योंकि मेरे मन में भक्ति, वैराग्य या ज्ञान, कुछ भी तो नहीं है। मैंने न तो सत्संग, योग, जप अथवा यज्ञ ही किये हैं और न प्रभु के चरण-कमलों में मेरा दृढ़ अनुराग ही है। हाँ, दया के भंडार प्रभु की आन है कि जिस किसी को दूसरे का सहारा नहीं है, वह उन्हें प्रिय होता है।"

भगवान की इस आन का स्मरण आते ही मुनि आनंदमग्न हो कर, मन ही मन कहने लगे - "अहा ! भवबंधन से छुड़ाने वाले प्रभु के मुखारबिंदु को देख कर आज मेरे नेत्र सफल होंगे।"

"दिसि अरु विदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउ कहाँ नहिं बूझा।
कबहुँ फिरि पाछे पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई।
अविरल प्रेम भगति मुनि पायी। प्रभु देखे तरु ओट लुकाई।
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे ह्रदय हरन भव भीरा।"

इस प्रकार मन ही मन में मगन हो कर मुनि बीच रास्ते में स्थिर हो कर बैठ गए मानो प्रेम समाधि में निमग्न हो गए हैं। किन्तु -

"मुनिहिं राम बहु भाँति जगावा। जाग न ध्यान जनित सुख पावा।
भूप रूप तब राम दुरावा। ह्रदय चतुर्भुज रूप दिखावा।
मुनि अकुलाइ उठा तब कैसे। बिकल हीन मणि फणि गन जैसे।
आगे देखि राम तनु स्यामा। सीता अनुज सहित सुख धामा।"

श्री राम जी ने मुनि को बहुत प्रकार से जगाया पर मुनि नहीं जागे, क्योंकि उन्हें प्रभु के ध्यान का सुख प्राप्त हो रहा था। तब श्री राम जी ने अपने भूप रूप को छुपा लिया और उनके ह्रदय में अपना चतुर्भुज रूप प्रगट किया। तब अपने इष्ट स्वरुप के अंतर्ध्यान होते ही, मुनि इस प्रकार व्याकुल हो उठे जिस प्रकार श्रेष्ठ मणिधर सर्प मणि के बिना व्याकुल हो जाता है। मुनि ने अपने सामने सीता जी और लक्षमण जी सहित श्यामसुंदर विग्रह सुखधाम श्री राम जी को देखा।

यहाँ पर समझनें योग्य बात यह है कि सुतीक्ष्ण जी के इष्ट हैं - दशरथ पुत्र राजा राम। किन्तु क्या वे सचमुच ही, 'राजा राम' अथवा 'मनुष्य' हैं ? वे तो समस्त सृष्टि के सृजक स्वयं परमब्रह्म ही हैं। इसी प्रकार मेरे हज़रत क़िब्ला प्रगट में तो एक सूफी संत मात्र हैं किन्तु मुझ पर उनकी ऐसी-ऐसी कृपाएँ हुईं हैं कि मैंने परमब्रह्म के रूप में उनके दर्शन किये हैं। वे जो हैं, उसका वर्णन तो जन्मजन्मांतर के प्रयास के बाद भी न कर पाउँगा किन्तु उनका स्वरुप जो सभी पर प्रगट है, उसका चित्रण भी कुछ कम रमणीय नहीं है।

प्रसंगवश एक बात और स्पष्ट कर दूँ। प्राचीन इतिहास के अध्यन से एक तथ्य उभर कर सामने आता है कि उन दिनों जो भी पीठासीन धर्मगुरु होता था वही शासनाध्यक्ष भी होता था।

शासन में मुख्य-मुख्य विभागों के प्रभारी भी भिन्न-भिन्न स्तरीय धर्मगुरु ही हुआ करते थे। इसी व्यवस्था के अंतर्गत न्यायाधीश भी ऐसे ही धर्मगुरु ही होते थे। उदाहरणार्थ : 'काज़ी जी', फौज़दारी [criminal] के मुक़दमें और 'मुफ्ती साहिब', माल [civil] के मुक़दमें तय किया करते थे।

फतेहगढ़ जो कि उत्तर प्रदेश सरकार के नागरिक प्रशासन के हेतु यहाँ का जनपदीय मुख्यालय है, से फर्रुखाबाद जानें वाला मुख्य मार्ग, जो कि फर्रुखाबाद नगर के गर्भ से होता हुआ आगे तहसील की ओर जाता है। इसी सड़क पर जैसे ही फर्रुखाबाद नगर प्रारम्भ होता है - एक मोहल्ला पड़ता है, जिसका नाम है 'नितगंजा'। इसी नितगंजा मोहल्ले में मुख्य मार्ग पर 'मुफ्ती साहिब का मदरसा' के नाम से एक 'मदरसा' है जिसमें प्राइमरी स्तर के बच्चों के विशेष तौर पर उर्दू - फारसी के अतिरिक्त इस्लामी दर्शन एवं अनुशासन की शिक्षा दी जाती है। उन दिनों, मैं यह नहीं जानता था कि इसी मदरसे के परिसर से ही मुझे लगाव क्यों था।

पिताजी का शरीरांत हो चुका था। घर की आर्थिक- स्थिति अब ऐसी न रह गयी थी कि कुछ न कर के भी काम चलाया जा सकता हो। तत्कालीन कलेक्टर महोदय की कृपा से कचहरी में नौकरी मिल गयी। वहाँ वेतन कम होते हुए भी इतना था कि रोटी-दाल की कमी न रही। कम पैसों में किराए का मात्र इतना ही मकान था कि हमारे परिवार के लिए सोने - लेटने की व्यवस्था भर थी। इसके अतिरिक्त ले - दे कर थोड़ी सी अतिरिक्त जगह थी जो रसोई कही जा सकती थी। इन दिनों अतिरिक्त समय भी हमारे पास पर्याप्त बचता था जिस में धार्मिक व दर्शन से सम्बंधित पुस्तकें पड़ने का मुझे शौक था। पुस्तकों के रख-रखाव व एकांत में पढ़ाई की व्यवस्था इस छोटे से मकान में न थी। हम इस टोह में थे कि किसी ने बताया कि पास में स्थित 'मुफ्ती साहिब की पाठशाला' के परिसर में एक कोठरी [किराए की] उपलब्ध है।

यह भी एक संयोग ही था कि वह हमें मिल भी गयी। अगले दिन मैंने अपनी पुस्तकों व कुछ आवश्यक सामान ले जा कर उस कोठरी में जमा लिया और रहना प्रारम्भ कर दिया। हमारे पिता जी के समय में मकान की ऐसी व्यवस्था थी कि पुरुषों का आवास, महिलाओं से अलग रहता था। इस कोठरी के मिल जाने पर मुझे ऐसा लगा, मानों उसी पूर्व व्यवस्था की पुअरावृत्ति हो रही हो। अब मैं अपने मकान में जहाँ मेरी पत्नी इत्यादि रहते थे, विशेष आवश्यकता के समय, जैसे भोजन इत्यादि के लिए ही जाता था अन्यथा, कचहरी के समय के अतिरिक्त मेरी रहनी - सहनी इसी पाठशाला की कोठरी तक ही सिमट कर रह गयी

थी क्योंकि व्यर्थ घूमना फिरना मुझे प्रारम्भ से ही अच्छा नहीं लगता था।

'मुफ्ती साहिब की पाठशाला' के मुख्य द्वार

Main Gate of The 'Madarssa-Mufti Sahib'

से घुसते ही एक पक्की इमारत, मसजिद की है। इससे सटा हुआ ऊँचे चबूतरे से प्रारम्भ होने वाला पक्का विशाल भवन पड़ता है - यही 'पाठशाला' है। बायीं ओर से किनारे- किनारे, छोटी-छोटी कोठरियों का चलता हुआ क्रम 'ऐल' शेप में घूमता हुआ, पुनः उसी मुख्य द्वार तक आता है। इन्ही कोठरियों की कतार के बीच से क्रम को तोड़ता हुआ एक छोटा द्वार है जो पाठशाला भवन के सहारे निकलती हुयी एक पतली गली में खुलता है। जहाँ पर कि, पूर्वलिखित एक छोटे से मकान के भाग में मेरे परिवार के अन्य सदस्य रहते हैं।

कोठरियों की कतार में फ़ाटक [मुख्य द्वार] से तीसरी कोठरी में [इसी इमारत के निकट 'पीपल-मन्दिर' के स्थान में समाहित, स्थान पर पूर्वी भाग में कोठरीनुमा एक कमरा जीने =stait-way के पास है] 'राम चन्द्र' नाम का यह सेवक, और अंतिम व 'पाठशाला भवन' से सटी हुयी कोठरी, जो मुख्य द्वार से प्रवेश करते ही लगभग ठीक सामने स्थित है, इसी कोठरी में उन दिनों 'मौलवी साहिब' रहते थे जो इस पाठशाला में बच्चों को पढ़ाया करते थे। इन मौलवी साहिब में आकर्षण था या यों कहिये कि आकर्षण शक्ति स्वयं अवतरित हो कर वहाँ उनमें अभिव्यक्ति हो गयी हो। पौलवी साहिब पाठशाला से बाहर बहुत कम निकलते थे। बच्चों को पढ़ाने के समय के अतिरिक्त अधिकतर वे अपनी कोठरी में ही विराजमान रहते थे। जहाँ तक मुझे ध्यान है मैं पाठशाला परिसर या उसके भवन में पहले कभी नहीं गया था किन्तु जैसा कि पहले ही निवेदन कर चुका हूँ, बाहर से इस परिसर के प्रति बहुत ही ज़्यादा लगाव था और इस कारण अनायास, यूं कहिये कि बिना कारण ही मैं इस पाठशाला के सामने हो कर बार बार निकलता था। यही क्रिया, पर्याप्त समय तक चली। जिस प्रकार आत्मा के दर्शन न होते हुए भी शरीर से आकर्षण होता है, उसी प्रकार, यह तो उन मौलवी साहिब की एक झलक मिलने के बाद ही ज्ञात हो सका कि यह तो वह गुलाब है जिसकी महक से समस्त वातावरण मस्त व सुगन्धित हो रहा है। मैं तो केवल इतना जानता हूँ कि मैं निवेदन नहीं कर सकूँगा कि मैंने कब उन्हें देखा और कब नहीं देखा क्योंकि यह मेरी सामर्थ्य से परे की बात है।

अन्ततोगत्वा कुछ ऐसी लौ लगी कि जब तक बार बार देख कर उनकी छवि अंतर में इतनी न उतार कर उसी में बेसुध हो जाऊं, मुझे चैन न पड़ता था। अब तो यह स्थिति हो गयी है कि -

"प्रेम प्रीति की चुनरि हमारी, जब चाहों तब नाचौं महारवा ।
ताला कुँजी हमें गुरु दीनी, जब चाहीं तब खोलौं किवरवा । "

जब आँखें बंद होतीं हैं तो ह्रदय के रंगमहळ में, और जब आँखें खुलतीं हैं तो समस्त सँसार के बृंदाबन में, बस वोह ही वोह दीखते हैं।

कचहरी की मेरी नौकरी, कम वेतन में गृहस्थी की घिसटती गाढ़ी और न जानें क्या-क्या ; सभी कुछ एक ओर, और मौलवी साहिब, जो मुझ पर तो क्या, किसी पर भी प्रगट नहीं हैं, एक ओर। कुछ तो है, बात जो किसी से कहते नहीं बनती और कह भी नहीं सकता। देखे बिना रहा जाता नहीं और देखने में आता नहीं - इसी असमंजस में प्राण अटके हैं। वोह तो शीशमहल में बैठा बैठा मेरी ओर देख रहा है परन्तु मेरी इन अभागिन आँखों के लिए तो वोह पर्दानशीं ही बना हुआ है -

"तू मोहिं देखै, तोहि न देखूं - यह मति, सब बुधि खोई।
सब घट अंतर रमसि निरंतर, मैं देखन नहिं जाना।
गुन सब तोर, मोर सब अवगुन, कृत उपकार न माना।
मैं तय तोरि मोरि असमझि सौ हो, कैसे निस्ताना।
कहिं रैदास कृष्ण करुणामय, जय जय जगति अधारा।"

मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूँ कि पाठशाला - प्रांगण में स्थित मेरी कोठरी के पास ही एक छोटा द्वार है जो मेरे किराए के मकान [जहाँ मेरा परिवार था] के ठीक सामने ही खुलता था। किन्तु जानबूझ कर मैं, पहले मेन-रोड पर जाता, और पाठशाला के मुख्यद्वार से हो कर ही अपनी कोठरी तक पहुंचता जिसका कारण - मौलवी साहिब के आकर्षण के अतिरिक्त कुछ और न था। इस 'परेड' को करते, अभी बहुत अधिक समय भी नहीं बीता था कि मौलवी साहिब से किसी औपचारिक परिचय के आदान-प्रदान के बग़ैर ही "आदाब अर्ज़ हुज़ूर" का सिलसिला, संभवतः मेरी ही ओर से न जानें, कैसे प्रारम्भ हो गया, मुझे आज तक पता नहीं। पता तो मुझे यह भी नहीं कि प्रति-उत्तर में उधर से कब और कैसे कुछ ऐसा मूक आशीर्वाद स्फुरित होने लगा जिससे मेरा रोम रोम खिल उठता और ऐसी स्फूर्ति और चेतना प्राप्त होती कि उसकी मुझे लत ही लग गयी, मानों यह भी मेरा कोई ऐसा व्यसन हो कि जिस पर मेरा नियंत्रण ही न रह गया हो। इस प्रक्रिया में हुयी प्रेमानुभूति का वर्णन शब्दों में कर पाना भी मेरे बस की बात नहीं। किन्तु इतना होश बाकी था कि यही सिलसिला जल्दी ही मुझे ऐसे मुक़ाम पर ले आया कि लगता था कि मानों इन सबको छोड़ कर अब मेरी जीवन-ज्योति ही कहीं न बुझ जाय। घूँघट का पट खोल देने पर प्रियतम तो मिल गए। पर अब तो प्रतिपल उनके मधुर दर्शन

के पीछे पीछे मन भागता है, बेचैनी ऐसे कि रुकने का नाम ही नहीं लेती थी। प्रतिदिन एक ही पल की झांकी, दिन-रात के लिए आँखों का निरंतर व्यापार बन चुकी थी। अब तो सर्वत्र वोह ही दीखने लगे थे ; इस सहज समाधि का स्वरुप भी कुछ कम लुभावना न था।

"जहँ जहँ डोलौं सो परिकर्मा, जो कुछ करौं सो सेवा।
जब सोवों तब करौं दण्डवत, पूजौं और न देवा।
कहौं सो नाम, सुनौं सो सुमिरन, खावौं - पिवौं सो पूजा।
गिरह उजाड़ एक सम लेखौं, भाव मिटावौं दूजा।"

और;

"खुले नैन पहिचानौं हँसि हँसि, सुंदर रूप निहारौं।"

वह घड़ी मेरे जीवन की सबसे महत्वपूर्ण घड़ी थी। ईस्वी सन 1891 की दिसम्बर की एक रात। उस दिन कचहरी में कार्य की कुछ असाधारण अधिकता, पैदल ही घर वापसी, अतः घर आते-आते दिन मुन्द गया था और रात अपने पैर पसारने लगी थी। वर्षा ऋतु तो न थी फिर भी घटाटोप बादल व वर्षा, घुप अँधेरा और बिजली रुक रुक कर कौंधती। वारिश थी कि रुकने का नाम ही न लेती थी। पूरी तरह से भीग चुका था और पानी मेरे ऊपर से गुज़रता हुआ लगातार नीचे गिर रहा था। मैं ही क्या कोई भी होता, उसका पूरा शरीर काँपता व दांत किटकिटाता होता। बुरी हालत थी। कोई भी अथवा किसी के लिए भी मैं दया का पात्र बन सकता था किंतु मैं इस सबसे बेखबर, आज भी नित्य की ही भाँति, दीवानों की तरह डगमगाते पग, पाठशाला में अपनी कोठरी की ओर बढ़ा चला जा रहा था कि इसी बीच, मौलवी साहिब की प्रेममयी कृपा द्रृष्टि ने सिर से पैर तक ढाँप लिया। मैंने स्पष्ट महसूस किया कि मेरे भीतर एक गुनगुना अहसास सक्रिय हुआ। जिस प्रकार लोहे का टुकड़ा, बड़े चुम्बक के पत्थर की ओर, स्वचालित गति से बढ़ा चला जाता है, ठीक उसी प्रकार खिंचा हुआ न जानें कैसे मैं उनके अति समीप पहुँच गया। आज का सलाम, आँखों आँखों में ही हुआ, अस्त व्यस्तता में, विक्षिप्तता में स्वप्नवत। उन्होंने मुझे देखा, मेरे अहोभाग्य। उनकी अमृतमयी वाणी मेरे कानों में पडी - "अरे !

इस तूफान में और इस समय आना।" मैं उनके प्रेमावेग के उफनते हए सागर में डूबनें उतराने लगा। सुधबुध जो शेष थी, धीरे धीरे वोह भी समाप्त हो गयी। अब क्या था, आँसुओं की अविरल झड़ी थी और अभेद्यता का आनन्द दिलाने वाली वर्षा ऋतु। ऐ वाणी ! तेरा होना भी आज सुफल हुआ। आँखों ! तुम भी आज धन्य हो गयीं। कानों ! तुम्हारा पुरुषार्थ भी पूर्ण हुआ। यह आनन्दमय मिलन मुबारक हो, मुबारक हो, मुबारक हो।

उनसे नज़र क्या मिली कि मेरे तो होश ही जाते रहे। तुरन्त ही पैरों की उँगलियों से ले कर, सिर की छोटी तक सारी देहराशि में बिजली सी दौड़ गयी। तन-मन में एक अजीब सी सिहरन भरी गुदगुदी व्याप्त हो गयी। ऐसा अनुभव होता था कि मानों एक दूसरी आत्मा मेरी आत्मा को अपने अस्तित्व में समेटने का प्रयास कर रही हो। मौलवी साहिब की मिश्री सी घोलती वाणी पुनः मेरे कानों में एक दिव्य संगीत की भांति पडी - "बेटे ! जाओ, जल्दी से भीगे कपडे बदल डालो और फिर मेरे पास आ कर थोड़ी देर को आग से हाँथ-पैर सेंक कर, तब घर जाना। मुझ अकिंचन ने तुरंत ही आज्ञा का पालन किया और उन हुज़ूर के श्री चरणों में आ कर उपस्थित हुआ। हुज़ूर महाराज ने इसी बीच एक मिट्टी की अँगीठी में आग बनायी थी जो अब खूब धधक रही थी। उन्होंने अपनी चारपाई पर ही मुझे लिटा लिया और अपनी रजाई भी उढ़ाई।

उस समय तल्लीनता, आनंद व प्रकाश की वर्षा का वेग इतना उत्कृष्ट व घनीभूत था कि पानी की वारिश और बिजली की चमक उस आवेग के समक्ष फींकी पड़ रही थी। ह्रदय व मस्तिष्क और सारे तन-मन में भीतर-बाहर, निरंतर एक गति की अनुभूति होती थी। एक दिव्य-प्रकाशमयी आनन्द का वातावरण था, जिसमें ऐसा लगता था मानो आत्मा, ह्रदय और ,मन-प्राण को, अपने में लीन कर लेना चाहती थी अथवा यों कहें कि ह्रदय और शरीर, आत्मा में लीन हो रहे थे और वोह समस्त सृष्टि को उसके सृजक की ओर खींच कर लिए जा रही थी। कभी कभी ऐसा भी अनुभव होता था कि सारा शरीर ही पिघल पिघल कर, परमाणु रूप में प्रकाशवान हो कर बहता चला जा रहा हो और मैं पूर्ण प्रकाशस्वरुप हो कर शेष रह गया हूँ।

इसी प्रकार लगभग पूरे दो घण्टे तक हुज़ूर महाराज के पावन श्रीचरणों में सत्संग का यह प्रथम अवसर था। जब वारिश कुछ थमी तो आज्ञा पा कर घर वापस आया। हज़रत क़िब्ला की कोठरी से निकल कर ऐसा लगता था कि पृथ्वी, आकाश समस्त जीव-जन्तु, पेड़-बनस्पतियाँ इत्यादि सभी, उस दिव्य प्रकाश में लीन थे, नृत्य-मग्न थे। प्रारम्भ से अंत तक के सारे आत्मिक चक्र

स्वतः ही जागृत हो हो कर अपने प्यारे के गुण-गान में लीन हो रहे थे। यही नहीं, इस दलित-देह और रूप में अब इस 'राम चन्द्र' के स्थान पर समर्थ संत सद्गुरु हुज़ूर महाराज मौलवी शाह फ़ज़्ल अहमद खान साहिब रायपुरी, कायमगंजी, नक्शबंदी - मुजद्दिदी - मज़हरी समा गए थे।

घर वापसी हुयी तो किन्तु बरायनाम; खाना खाना इच्छा के विपरीत लगा। उधर मन ही नहीं गया। वोह तो अब उस पूर्ण तेजस्वी प्रभाव व लय अवस्था में डूबता जा रहा था। लेट गया सो गहरी नींद सी घिर आयी। बड़े सवेरे, लगभग चार बजे स्वप्न देखा : अपार जन समूह के मध्य कुछ तेजस्वी संत व महात्मा वहाँ पर उपस्थित थे। अकस्मात प्रकाशपुँज के मध्य, एक सिंघासन आकाश मार्ग से उतरा और उस भीड़ के सम्मुख एक अत्यंत दिव्य एवं मनमोहक सत्पुरुष उस पर विराजमान दिखाई दिए। इतने में मेरे हज़रत क़िब्ला जनाब मौलबी फ़ज़्ल अहमद खाँ साहिब क़ुद्ससिर्रहु ने बड़े ही विनीत भाव के साथ उन दिव्यरूप सत्पुरुष के समक्ष मुझ मुमुक्ष को प्रस्तुत किया। उन दिव्यात्मा ने इस नाचीज़ को स्वीकार किया और रु-बरु हुए - "तेरा झुकाव सत्य की ओर जन्म से ही है।" उनका शेष सम्बोधन शब्दों में न हो कर अन्तःसंचार के माध्यम से हुआ, अर्थात उन्होंने कहा, मैंने सुना - भीतर ही भीतर। उधर सुबह हुयी, नींद पूरी हुयी और अपने हज़रत क़िब्ला का यह मुरीद, दैनिकचर्या के अनुसार जब सायंकाल श्री चरणों में उपस्थित हुआ तब पूर्वनिवेदित स्वप्न मैंने उन्हें भी ज्यों का त्यों सुनाया। सुनते सुनते वे निहाल हो गए, रोने लगे। मुझे अपनी छाती से लगा लिया - तत्काल फ़रमाया "सचमुच तुम्हारा रुझान जन्म से ही सत्य की ओर है, इसमें कोई शक नहीं है। यह ख्वाब और यह फरमान तुम्हें मुबारक हो।" उसके पश्चात् कुछ क्षण शांत व मौन हो कर आँखें बंद करके बैठे रहे - ध्यानावस्थित थे। पुनः जैसे कुछ याद हो आया हो - "तुम सचमुच ही अज़ीज़ और दुलारे हो। मैं तुमको रोज़ ही आते-जाते देखा करता था और महसूस करता था कि हर रोज़ जब तुम सलाम पेश करते थे तो कितनी तैयारी के साथ। मेरा रोयाँ रोयाँ खिल उठता था। खुद-ब-खुद इतनी दुआएँ; ऐसा लगता था बेचैन हूँ तुम्हें छू लेने के लिए। मैं दिन भर तुम्हारा इंतज़ार करता था, रोज़ देखता था, जी भरता था, कितनी कशिश है, कितनी मोहब्बत है। हर रोज़ नए नए अरमान ले कर बैठता हूँ। मेरे पास जो कुछ भी है, तुम्हारा ही है, जब चाहो ले लो आ कर, और न जानें क्या क्या पेशबन्दियाँ करता हूँ, मैं जानता था, यह इंतज़ार महज़ इंतज़ार न था और इस तरह रेशा रेशा, मैं तुम्हारे अंदर पैबस्त होता चला गया, मेरी अंदरूनी हालतें ज्यों की त्यों तुम्हारे भीतर उतरती चली गयीं। बेटे ! यह ख्वाब, महज़ ख्वाब नहीं है। तुम्हारे जैसे जीव ज़मीन पर कदाचित ही आते हैं जिनकी राह, मालिक के न जानें

कितने बन्दे, संत महात्मा और दूसरे भूले-भटके लोग सैकड़ों और हज़ारों साल इंतज़ार करते हैं। हाँ बेटे ! वही हो तुम। उन्हीं की दुआओं का नतीजा है कि पहली ही बैठक में तुमने जो हाँसिल किया वोह बड़ों-बड़ों को बरसोंबरस की रिआज़त के बाद भी नहीं मिलता। मैंने महसूस किया जैसे कोई बच्चा जो दिन भर के बाद अपनी माँ के पास आया हो और जैसे उसने उसकी छाती से सारा दूध सूंत कर उसने पूरी भूँख मिटाई हो, ठीक उसी तरह मेरी ज़िन्दगी भर की रूहानी कमायी आसानी से पा ली। बेटे मैं बहुत खुश भी हूँ और नाज़ भी है अपने आप पर कि तुम मुझे मिल ही गए। 'फनफिलशेख शेख' होना तो बहुत मामूली बात है, इन्शाअल्लाह, 'फनाफिलमुरीदी' तुम पर नाज़ करेगी।"

मेरे हज़रत क़िब्ला

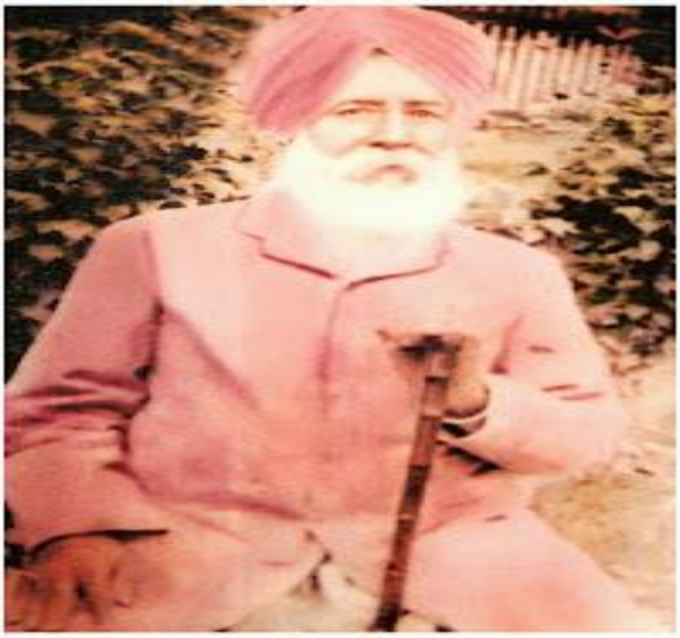

HUZUR MAHARAJ,

सत्पुरुष के ध्रुव पद पर प्रतिष्ठित, ऐसे व्यक्तित्व थे जिन से लोग कभी उकताते नहीं थे और न वे ही कदाचित किसी से उकताते थे। वोह प्रेम की मूर्ति में स्थित ऐसी दिव्यात्मा थे जो आनंद, शोक, भय, सुख-दुःख इत्यादि सभी मानसिक स्थितियों से मुक्त व सदैव अपने आप में निश्चिन्त रहा करते थे। तीनों गुणों के किसी भी प्रभाव से जिनका मन कभी चंचल न होता था।

हुज़ूर महाराज का जन्म, यहीं फर्रुखाबाद जनपद [उत्तर प्रदेश] की तहसील - कायमगंज, जिसके अंतर्गत क़स्बा - रायपुर आता है, में हुआ था। यहीं आपका पालन-पोषण एवं शिक्षा-दीक्षा संपन्न हुयी। जीविकोपार्जन हेतु फर्रुखाबाद गए और बाद में पुनः रायपुर वापस आ गए। आपके पिताश्री का शुभनाम जनाब ग़ुलाम हुसैन साहिब था जो सूबा कश्मीर के महान सूफी संत हज़रत मौलाना वली उद्दीन [रहमत उल्ला अलै] के मुरीद थे और उनके खलीफ़ा भी थे। वोह तत्कालीन फ़ौज में निशानवरदार के पद पर कार्यरत थे। हुज़ूर महाराज की माता जी हज़रत मौलाना अफज़ल शाह नक्शबंदी से बैत थीं। हज़रत मौलान शाह साहिब जो मौलाना अबुल हसन नसीराबादी के मुरीद व खलीफा थे, बड़ी ही मोहब्बत से हुज़ूर महाराज की पूज्य माताजी के विषय में फरमाते थे "मेरी बेटी मशीयते एजदी तब्दील कर देती है। " [अर्थात वह ईश्वर की इच्छा और उसका विधान बदलने की क्षमता रखती है] पूज्य माताजी के स्वभाव के अलौकिक गुणों के बारे में हुज़ूर महाराज के गुरुभाई हज़रत मौलाना अब्दुल गनी खां साहिब की अपनी एक घटना है कि एक दिन हुज़ूर महाराज के छोटे भाई हज़रत मौलवी विलायत हुसैन खां साहिब और हज़रत मौलाना अब्दुल ग़नी खां साहिब दोनों एक ही परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए जाने लगे तो दोनों ने अलग अलग, पूज्य माता जी से अपने अपने पक्ष में सफलता हेतु प्रार्थना किये जाने का निवेदन किया। उन्होंने हामी भर दी। वापस आने पर उनसे दोनों बच्चों ने अपनी अपनी जिज्ञासा रक्खी और उनकी सफलता हेतु प्रार्थना किये जाने का परिणाम जानना चाहा। वे चूँकि इतनी सीधी सच्ची थीं कि प्रतिउत्तर में उन्होंने सच- सच बता दिया कि अपने बेटे अर्थात हुज़ूर महाराज के छोटे भाई के लिए प्रार्थना हेतु जब-जब हाँथ ऊपर उठती थीं हर बार उसका [जनाब अब्दुल गनी खां साहिब] चेहरा सामने आ जाता था। और यह भी बता दिया कि इस प्रकार वे अपने स्वयं के बेटे के पक्ष में प्रार्थना नहीं कर पायीं। हुज़ूर महाराज, पढ़ाई लिखाई में सदैव प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए - मिडिल स्कूल की परीक्षा अथवा क्या - नार्मल ट्रेनिंग की परीक्षा। अरवी - फ़ारसी की शिक्षा, हज़रत ख़लीफ़ा जी साहिब [जनाब अहमद अली खां साहिब - रहमत उल्ला अलेहि] से प्राप्त की जो उनके अध्यात्म दीक्षा-गुरु भी थे। आप ने सदैव आध्यात्मिक शिक्षा और अपने सदगुरुदेव की निकटता को दुनियावी जीवनवृत्ति से ऊपर रक्खा। इसी क्रम में अपना एक संस्मरण सुनाया करते थे - "एक बार मैं बेकार हो गया था और दिसम्बर महीने की दसवीं तारीख़ थी। आपने [पूज्य गुरुदेव खलीफा जी साहिब] मुझसे दरियाफ़्त किया कि किस क़दर तन्खाह में [कितने वेतन में] तुम्हारी गुज़र हो जाएगी ? मैंने अर्ज़ किया कि हज़रत, पाँच रुपया माहवारी अलावः खुराक़ के वास्ते दुआ कीजियेगा। हज़रत ने ज़रा से तअम्मुल [विचार] के बाद फ़रमाया कि तुम पहली दिसंबर से इस तनख़ाह पर नौकर हो गए। यह सुनकर मुझे यक़ीन न हुआ। फ़िर हज़रत ने फ़रमाया कि तुझे यह बात झूटी मालूम

हुयी? मैंने अर्ज़ किया कि हज़रत सच होगी, मगर दसवीं तारीख़ तक मुझे ख़बर न हो, यह कैसी बात है। उस वक़्त हज़रत ख़लीफ़ा जी साहिब ने बन्दे को नसीहत की, अपने मश्क़ूफ़ात को [गुप्त बातों को जो आध्यात्मिक साधना से प्रगट होने लगती हैं] सब लोगों से छिपाना चाहिए। देखो तुमसा मुरीद मुख्लिस [निष्ठावान] भी यक़ीन नहीं करता तो फ़िर औरों से क्या उम्मीद हो? जब मैं हज़रत से जुदा हुआ तो उसी वक़्त अपनी नौकरी का हाल मालूम हो गया कि मुंशी बद्री प्रसाद वकील ने ज़राद नौकर करा दिया है। उसी वक़्त अपने काम पर गया और बीस रोज़ बाद पूरी तनखाह पायी [पहली दिगम्बर से इकत्तीस दिसम्बर तक का पूरा वेतन प्राप्त किया]।

अपने सद्गुरु भगवान के श्री चरणों में, अभी अधिक समय न बीता था कि मेरे जीवन की अविस्मरणीय व महत्वपूर्ण घटना, एक बार पुनः घटित हो गयी। उस सायं मैं, अपने रहनुमा हुज़ूर महाराज के साथ, उसी मार्ग जो फर्रुखाबाद नगर के गर्भ से निकलता हुआ, फतेहगढ़ की ओर हमें लिए जा रहा था, धीरे धीरे चलते हुए हम आगे बढ़े जा रहे थे। मार्ग में चलते समय, मैं अपने अतीत में, क्या-क्या खो चुका था, उन्हें अपने ही अंदाज़ में निवेदन करता जा रहा था। राजघराने जैसे ठाट-बाट से ले कर, जूतियों से खटपुलिओं, कीमती वेश-भूषा से ले कर मारकीन के तहबन्द और आधी-आस्तीन के कुर्ते और बड़े ही भव्य आलीशान महलों से लेकर, तत्कालीन पाठशाला की कोठरी के प्रवास तक की आप-बीती, मैं नहीं बता सकता, कि क्या समझ कर और किस भावावेश से, उन्हें सुना गया था। इसी बीच नगर की बस्ती हमसे पर्याप्त पीछे छूट चुकी थी - यहाँ पर 'बढ़पुर' नामक ग्राम है जो मुख्यमार्ग के किनारे पर ही बसा है, एक छोटी सी पुलिया है,

-यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते मेरे हज़रत क़िब्ला द्रवित हो उठे थे। दुःख व दुआ का मिला-जुला भाव उमड़ कर उनके भीतर से तूफ़ान की तरह उठा और उसी आवेग के साथ अक्समात उन्होंने मेरे दाहिनें कंधे पर अपना बायाँ हाँथ रख दिया और इस क्रिया के साथ ही हम दोनों यन्त्रवत पीछे की ओर घूम गए। मुझे सम्बोधित करके वोह फ़रमानें लगे - "बस भाई बहुत हो गया। अब नहीं सुना जाता। आइये अब वापस चलें।" कुछ क्षण वोह शान्त रहे व मौन उन्हीं ने तोड़ा - "भाई ! बड़े खुशकिस्मत हो। बड़े होनहार हो। शुक्र अदा करो उस परमात्मा का कि तुमने बहुत ही सस्ते दामों में, वोह दौलत हाँसिल की है जिसका कोई मोल नहीं हो सकता। ... . "

उस समर्पण के मध्य भी मेरी चेतना पूर्ण स्वस्थ थी। मैंने स्पष्ट अनुभव किया कि जिस समय उक्त पुलिया तक मैं अपने दुःख भरे उदास अतीत को उनसे निवेदन कर रहा था, वह चुपके - चुपके सुनते जा रहे थे। उस समय तक दुनियाँ का स्थूल रूप मेरे भीतर था किन्तु जैसे ही उनके आदेश पर वापसी हुयी, मैंने एक ऐसी चौखट में प्रवेश किया, जहाँ मात्र दीन और परमार्थ ही था। सारी चिंताएँ और दुःख के भाव ह्रदय से सदा-सदा के लिए सिधार गये थे। मुझे ऐसा लगा मानों मेरा सारा भार, किसी ने उठा लिया हो और उसके स्थान पर अनन्त शांतिमयी प्रेम की प्रतिमा के प्रवेश की अनुभूति मेरे अंतर में हुयी। यह एक आश्चर्यजनक अनमोल सहायता का सम्बल था जिसनें पलक झपकते मुझे कहाँ से कहाँ ले जा कर खड़ा कर दिया।

इस घटना के बाद, मैं नित्यप्रति दोनों प्रहर, सेवक भाव से हुज़ूर महाराज की सेवा में लगातार उपस्थित होता रहा और उनके सत्संग से लाभान्वित होता रहा। तेईस जनवरी ईस्वी सन 1896 के मुबारक दिन इस सेवक की अर्ज़ी मंजूर हुयी -

"मुदित नाथ नाथ नावत, बनी तुलसी अनाथ की ;
परी रघुनाथ सही है।" - विनय पत्रिका [279]

मेरे जीवन के सर्वाधिक पवित्र इसी जनवरी माह की तेईसवीं साँझ [05 बजे सांय काल] इस अधम राम चन्द्र का हाँथ मेरे हज़रत क़िब्ला ने थामा और अपने सद्गुरुदेव जी महाराज हज़रत

मौलवी अहमद अली खां साहिब [रहमत उल्ला अलैहि] के मज़बूत हांथो में थमा कर सिलसिला-ए-आलिया नक्शबंदिया - मुजद्ददिया - मज़हरिया में 'बैत' फ़रमाया। दीक्षा दी। मेरी असंख्य जन्मों की साध पूरी हुयी। उन्होंने मुझे अपने श्री चरणों में आश्रय दिया, मुझ अधम को अपनाया। उनके अपार वात्सल्य से, प्यार से मैं नहा रहा हूँ। इस अप्रत्याशित दुलार से मैं विमूढ़ सा हो रहा हूँ - कहीं इसका ओर छोर नहीं मिलता।

मैं आपसे क्या कहूँ ; अब तो चलाचली का समां है। हो सकता है, आगे आने वाली पीढ़ियों को मुझ से सम्पर्क या साधन, बस मेरा यह बयान ही रह जाए। आज से 35 वर्ष पहले मैं एक ऐसी जगह खड़ा हुआ था, जहाँ पर मेरे सामने अनगिनत राहें खुली हुयी थीं। मैं निस्तब्ध था कि इन में से किस पथ पर चल निकलूँ। विवेक और दो वस्तुओं में अंतर समझ सकने की बुद्धि तो थी, किन्तु वोह सब कुछ काम नहीं आया क्यों कि प्रत्येक मार्ग पर कुछ न कुछ लोग, किसी पर काम और किसी पर अधिक, चल रहे थे और उन सब से टोह लेने पर प्रत्येक गिरोह [संप्रदाय] अपने साथ ले चलने पर राजी था। राजी ही नहीं, बल्कि हर व्यक्ति अपनी समझ के अनुसार दलीलें प्रस्तुत करके कोशिश करता था कि मेरी तबीयत का झुकाव उनकी तरफ हो जाय, पर किसी की दलील, मेरे दिल को लगती हुयी न मिली क्योंकि मेरी दृष्टि चकाचौंध हो रही थी और निर्णय करने की क्षमता इस खींचातानी के सबब से एक बात पर जम जानें के लिए तैयार न हुयी। परिणामतः मैं एक बार तो थक कर बैठ ही गया।

आखिर एक दिन ऐसा आया कि परमपिता परमात्मा ने अपनी दया करते हुए मेरी तरफ निगाह की और अपनी महान शक्ति का साक्षात स्वरुप मनुष्य देह में मेरी सच्ची हमदर्दी करने के लिए मुझ तक पहुँचा ही दिया। यह विश्वरूप दर्शन, जिसने आत्मभाव दर्शन के रूप में आ कर मेरी हमदर्दी की और मेरा हाँथ पकड़ कर पलक झपकते, मुझको कहीं से कहीं ले जा कर खड़ा कर दिया। यह वोह जगह थी, जहाँ दुनियाँ की हर चीज़ अपने प्रताप और तेज से चमकती है। मैंने जो देखा वह देखा और जो पाया सो पाया। आप लोग भी इसकी मिसाल श्री भगवत गीता के पहले अध्याय के श्लोकों में पा सकते हैं, जहाँ अर्जुन ने निराश हो कर अपने हथियार रख दिए थे और मेरी तरह मायूस हो कर आशा और भय की मिश्रित हालत में अपना कर्तव्य पालन करने से इंकार कर दिया था। यदि श्री कृष्ण जी महाराज आनंदकन्द भगवान अपनी महात्म्य और प्रताप के साथ अर्जुन को उस केंद्र तक खींच कर न ले जाते और अर्जुन ही की प्रार्थना पर अपनी दिव्यज्योति, उनके दिल में स्थापित न करा देते तो परिणाम स्पष्ट था। तात्पर्य यह है कि सफलता के राजपथ पर ला कर खड़ा कर दिया गया और मुझ को मेरे काम

करने के लिए अकेला नहीं छोड़ा। अपनी छोटी सी सूरत धारण करके मेरे अँधेरे और नापाक दिल की कोठरी में हमेशा के लिए बस गए। वोह मोहिनी सूरत दिल में ऐसी बसी कि मै अपना आपा खो बैठा और यह समझने लगा कि मैं नहीं हूँ, वह ही वह हैं। हलके-हलके, हर रोंगटे-रोंगटे में उसने ऐसा रंग जमाया कि फिर मैं नहीं वह ही था और अंततः यह कि न वह और न मैं, दोनों मौजूद और ग़ैर मौजूद हो गए। जैसा था वैसा रहा।

मेरे मालिक और हाँथ-पकड़ने वाले का उच्च कोटि का साहस और उत्साह तथा स्वाभाविक दया-कृपा, लगातार हर हालत में इस प्रकार व्यस्त और ध्यान देने वाली रही कि सम्प्रदाय और धर्म का कोई भेद-भाव न रखते हुए ईश्वर कृपा की अमृत वर्षा हर प्राणी मात्र पर करते रहे। उनकी हर अंदर आने वाली साँस लोगों के दिलों की कालिमा को साफ़ कर बाहर फेंक देने वाली थी और हर बाहर जानें वाली साँस दिल, दिमाग़ और हर रगों-पट्ठों में ईश्वर कृपा की अमृत-धार को भर देने वाली थी। वोह शरीर में रह कर अपना काम कर गए और अब आज़ाद हो कर उसी काम में तल्लीन हैं। जो जान सके वह जानें, और जो देख सकता है वह देखे।

मैं पहले भी निवेदन कर चुका हूँ और अब पुनः बताता हूँ कि मेरे मालिक क्या चाहते थे - अब पुनः दोहराता हूँ कि उनका हर ख्याल और हर कृत्य, जीव-मात्र के उद्धार के लिए होता था और अब यह उनका स्वाभाव ही बन गया था। उनकी प्रत्येक प्रार्थना फलीभूत होती थी और हर कार्य, परिणामपरख था। जो उनको जानते हैं, वोह जानते होंगे कि उनके व्यक्तित्व से, प्रगट तथा अप्रगट रूप में, जानें क्या-कया लाभ हमको पहुँचे हैं। अत्यंत संक्षेप में यह है कि हमारे हर पारमार्थिक कार्य को प्रारम्भ करने, उसको जारी रखने और परिणाम तक पहुँचाने के लिए जो उपाय प्रचलित हैं, उसमें आज-कल की आवो-हवा का रंग देख कर आसानी की एक ताज़ा और दिलचस्ब मगर धर्म का हर पहलू लिए हुए जान फूंक दी।

अपनी नौकरी के दौरान वर्ष 1896 से अप्रैल 1903 तक तहसील 'अलीगढ़' में नायब-नाज़िर के पद पर रहा, इस दौरान तहसील के 'मवेशी-खाने' [पशु-गृह] का कार्यभार भी मुझे ही देखना होता था। गुरु-कृपा से इस 'मवेशी-खाने' का दायित्व पूरी सूझ-बूझ व ईमानदारी से निभाया। वर्ष 1903 [ईस्वी0] में मेरा स्थानान्तरण तहसील 'अलीगढ़' [ज़िला फ़र्रुख़ाबाद] से इसी ज़िले की तहसील - क़ायमगंज के लिए 'स्याह-नवीस' के पद पर कर दिया गया। प्रारम्भ से ही वर्ष 1898 [ईस्वी0] तक मेरा व मेरे सहोदर-भाई नन्हें जी [महात्मा रघुबर दयाल] का परिवार एक-साथ, एक ही मकान में सँयुक्त-परिवार के तौर पर रहता था। इन्ही दिनों औरतों [लालाजी

की पत्नी - सुश्री ब्रिज रानी व चच्चा जी की पत्नी - सुश्री जय देवी ; देवरानी-जिठानी] में अक्सर मनमुटाव हो जाया करता था। अतः दिन-रात की 'चख़-चख़' [wrangling] के निदान-स्वरुप, आपसी सहमति से यह निर्णय लेना पड़ा कि 'खाना-पकाना' व 'रहना-सहना' पृथक कर लिया जाय। संयोग से उन्हीं दिनों क़स्बा अलीगढ में तहसील मुख्यालय की इमारत के निकट ही दो छोटे-छोटे किराए के मकान जो कि एक साथ जुड़े हुए थे, ख़ाली हुए और हम तत्काल उन्हीं मकानों में रहने लगे। वर्ष 1903 [ईस्वी0] में अपने स्थानान्तरण के समय मैं सपरिवार क़स्बा अलीगढ के इस मकान को ख़ाली करके क़ायमगंज आ गया।

अपने क़ायमगंज के प्रवास के दौरान यह मेरा नित्यप्रति का नियम था कि साँझ के समय दफ़्तर बन्द हो जाने के बाद क़ायमगंज से क़स्बा- रायपुर हुज़ूर महाराज के दर्शनों के लिए जाता था और लगभग 10-00 बजे देर-रात घर वापस आता था। क़स्बा-रायपुर और क़ायमगंज [नगर] के बीच लगभग चार मील की दूरी है। एक दिन की घटना है कि क़स्बा-अलीगढ़ से मुंशी चिम्मन लाल साहिब 'मुख़्तियार' क़ायमगंज तशरीफ़ लाये थे। नित्य-प्रति की भाँति जब हम क़स्बा रायपुर की ओर अभी-अभी चले ही थे कि चारों-ओर काले बादल छाने लगे और शीघ्र ही तेज़ वारिश शुरू हो गयी। हाँथ को हाँथ नहीं सूझता था। आगे जाना बिल्कुल असंभव हो गया था। विवश हो कर हम लोग एक पेड़ के नीचे बैठ गए। पेड़ में पत्ते भी नहीं थे जो वर्षा के पानी से बचाते। मैंने उनसे निवेदन किया कि हज़रत क़िब्ला का ध्यान करो और उनसे दया की भीख मांगो। हम लोग थोड़ी ही देर में ऐसा अनुभव करने लगे कि अब हम पानी में नहीं उनकी दया की वारिश से भीग कर उसी में सराबोर हो रहें हैं। धीरे-धीरे पानी की ठण्डक की जगह अब हमारे एहसास में उनकी दया की गुनगुनाहट अनुभूत होने लगी। कुछ देर बाद जब आँख खुली तो क्या देखते हैं कि चारों ओर पानी-ही-पानी भरा हुआ था लेकिन जिस स्थान पर हम बैठे हुए थे वह जगह बिलकुल सूखी थी। जब हम-लोग 'रायपुर' पहुंचे तो सबसे पहिले हुज़ूर महाराज ने प्रश्न किया कि "तुम-लोग भीगे तो नहीं ?" मैनें सारा हाल निवेदन किया। हुज़ूर महराज ने फ़रमाया कि जिस पर परमात्मा की कृपा होती है, प्राकृतिक शक्तियां भी उस पर कृपा करतीं हैं ; फिर फ़रमाया "तुम-लोग इस वर्षा और तूफ़ान में भी आ गए, वर्षा और तूफ़ान भी तुमको मेरे पास आने से न रोक सके। तुम्हारा विश्वास और प्रेम अथाह और अलौकिक है। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। परमात्मा तुम पर सदा अपनी विशेष कृपा-दृष्टि बनाये रक्खे।" हुज़ूर महाराज कुछ देर ख़ामोश रहे, उसके बाद दोनों हाँथ ऊपर करके कुछ मूक प्रार्थनाएं पढ़ीं और आँखें बंद कर लीं। लगभग एक घण्टे तक वे अपनी इसी मुद्रा में अवस्थित रहे। इस बीच एक अलौकिक आनन्द की अनुभूति में हम सराबोर रहे। सम्पूर्ण वातावरण मानों राधा और कृष्ण की 'रहस्य-

लीलाओं' में मग्न और बेसुध था। हमें पता ही नहीं चला कि इतनी जल्दी दो घण्टे कब और कैसे निकल गए। आज उनका यह मूक-प्रवचन था। जब उन्होंने आँखें खोलीं तो स्निग्धता के छोटे-छोटे रश्मि-बिंदु, उनके अस्तित्व से किरणों के मानिन्द प्रवाहित हो रहे थे। बड़ी देर तक यही समां रहा। इस सब में पूरी-रात उन्हीं के श्री चरणों में व्यतीत हुयी। भूख-प्यास का कहीं नामों-निशान न था।

अगले दिन रविवार की छुट्टी थी। वहीं पर जल्दी-जल्दी सभी ने दैनिक-क्रिआओं से निवृत्ति पायी। 'बेबे' [हमारी गुरु-माता] ने हमारे लिए खाने का प्रबंध किया। और हम शीघ्र ही छोटे-छोटे बच्चों की भाँति पुनः हुज़ूर महाराज के चारों ओर दोनों हाँथ बाँध कर बड़े अदब से बैठ गए। हम सोच रहे थे वे कुछ फरमाएंगे। किन्तु ठीक उसके विपरीत उन्होंने बड़े ही मनमोहक अंदाज़ में फर्माया - "हमें तो, जो भी सुनना-सुनाना था, अपना काम कर चुके अब आप में से कोई साहबान कुछ फ़रमावें तो बेहतर होगा। अब मैं कुछ सुनने का मुन्तज़िर हूँ।"

मुंशी चिम्मन लाल साहिब उर्दू-अदब [उर्दू साहित्य] के जानकार हैं, एक जाने-माने शोहरा [कवि] हैं।

MUNSHI CHIMMAN LALL 'MUKHTIYAR'

इस बार क़स्बा अलीगढ से चलते समय वह हज़रत क़िब्ला की शान में एक 'गुरु वंदना' लिख कर लाये थे। उन्होंने बड़े ही अदब से उसे सुनाने की इजाज़त माँगी। आज मेरे सरताज अपने पूरे उरोज पर थे। फ़रमाया - "आप सभी की दुआएं और प्रार्थनाएं मुझ नाचीज़ तक ज्यों की

त्यों सीधी पहुंचतीं हैं लेकिन चूँकि आज आप कुछ लिख कर लाये हैं तो आपको आज़ादी है कि आज आप तरन्नुम से सुनाइये। " उनके आदेश पर हम दोनों ही स्कूली-बच्चों की तरहँ हाँथ जोड़ कर उनके सामने 'दोजानू' बैठ गए और अब हम सुना रहे थे, वे सुन रहे थे -

"हे कृपा सिंधु दयालु गुरु केहि भाँति तव गुण गाऊं मैं ;
तुम्हरे चरित्र पवित्र केहि विधि नाथ कहि के सुनाऊँ मैं।
जिह्वा अपावन है मेरी गुरु नाम कैसे लीजिये ;
संसार सागर में फँसा गुरु-ध्यान कैसे कीजिये।
मन फंस रहा भाव-जाल में वह किस तरह प्रभु दीजिये ;
धन-धान्य माया रूप हैं क्यों कर निछावर कीजिये।
तन कैसे अर्पण कर सकूं यह तो महाँ पापी अधम ;
धन और तन-मन दे के गुरु तुमसे नहीं उद्धार हम।
श्रृद्धा सुमिरिणी भेंट कर मैं दीं हो चरणों पड़ा ;
मैं पतित हूँ तुम पतित पावन आपका है आसरा।
भव सिंधु में हूँ फँस रहा गुरु देव मुझे उठाइये ;
गहि बांह दीनानाथ अपराधी को पार लगाइये।
जो दीन हो चरणों पड़े हे नाथ वे सारे तरे ;
तेरा भिखारी तुम बिना प्रभु आसरा किसका करे।
मैं दीन हूँ तुम दीन बंधू मैं अधम तुम नाथ हो ;
मैं हूँ अनाथ कृपा निधान तो तुम अनाथों के नाथ हो।
माता पिता सुत भ्रात भार्या कोई साथ न जाएंगे ;
उस पाप कुम्भी नरक में कोई न हाँथ बढ़ाएंगे।
स्थूल में है दास प्रभु सूक्ष्म तुम्हारा रूप है ;
गुरुदेव इसको निकालिये सेवक पड़ा भवकूप है।
धन और धरणी सब प्राकृत वस्तु इक दिन छोड़ना ;
संसार से चित मत लगाना सब से है मुहँ मोड़ना।
हे मुर्ख मन परिवार के है मोह में क्यों फंस रहा ;
तू उनको या वह तुझको त्यागें इसमें है संदेह क्या।
धन क्या इकट्ठा कर रहा यह सब यहीं रह जायगा ;
सब छोड़ दे ऐ मन्दमति क्यों उसका लोभ बढ़ घेरता।
धन और कुटुंब का प्रेम अंतिम समय दुखदायी बड़ा ;

यह जगति है ठगनी बड़ी क्यों इसकी ओर निहारता।
जो अन्त में दुःख दे अभी से उसको मूरख छोड़ दे ;
जो मर गए खाली गए क्या साथ अपने ले गए।
बालक अवस्था खेल में तरुणाई में भार्य्या प्रिया ;
जब बृद्धता व्यापक भई अत्यंत भय पैदा हुआ।
भ्रमित फिरा संसार में काहू ने हाँथ गहा नहीं ;
मैं हूँ अधर्मी जगत में कोई मेरा साथी नहीं।
गिर कन्दरा बन और उपवन नग्र नग्र फिर किया ;
भव जाल से जो पार कर दे ऐसा कोई मिला नहीं।
एक रायपुर बस्ती में दीना नाथ संत मुझे मिले ;
गहि बाहँ मोहिं सनाथ करि सब पाप मेरे हर लिए।
श्री राम के दर्शन कराये उनकी भेंट मुझे किया ;
उनकी अनुग्रह दृष्टि से तन मन मेरा निर्मल हुआ।
आनन्द से मेरा दिन उन्हीं के ध्यान में हूँ लग रहा ;
भव जाल से मैं छूट गया जम दण्ड का भय मिट गया।
जो राम सब में रम रहा मन बुद्धि वाणी से परे ;
स्थूल में हूँ देखता दिन रात अपने सामने।
गुरु देव जी यह प्रार्थना मेरी स्वीकार कीजिये ;
हो मृत्यु की मोहिं मूर्छा श्री राम के चरणों तले।
अब ऐ फ़क़ीर आनन्द अपना कैसे सब को दिखाऊँ मैं ;
मैं मुक्त जीवन हो गया गुरु देव पर बलि जांऊ मैं।"

हुज़ूर महाराज ने [मुंशी चिम्मनलाल साहिब द्वारा लिखित] हमारी प्रार्थना बड़े ध्यान से सुनी। संयोग से उस समय [इस दास सहित] हुज़ूर महाराज के सभी ख़लीफ़ा साहिबान [जिनकी की लिस्ट निम्नलिखित है] वहां पर मौजूद थे। -

[01] मौलवी विलायत हुसैन खां साहब;
[02] मौलवी यूसुफ खां साहब;
[03] मौलवी हुरमत अली खां साहब;
[04] मौलवी दीन मोहम्मद साहब;

[05] हाफ़िज़ नूर मोहम्मद साहब;
[06] मोहम्मद इब्राहिम साहब [urf - बाली]
[07] मौलवी अब्दुल गनी खां साहब;
[08] मुंशी जहूर अली खां साहब;
[09] नवाब साहब;
[10] सय्यद ऐवाज़ रज़ा साहिब;
[11] मुंशी राम चंद्र साहिब; [यह सेवक]
[12] मुंशी चिम्मन लाल साहब;
[13] मौलवी मुहम्मद इस्माइल खां साहब;
[14] मौलवी अली शेर खां साहब;
[15] काज़ी मुहम्मद इरदत उल्ला साहिब;
[16] मुंशी अब्दुल रहमान खान साहब;
[17] हकीम समद आशिक अली साहब;

हुज़ूर महाराज एक चमत्कारी रहस्याचार्य थे। एक बार की घटना है कि जब वे कायमगंज से रायपुर जा रहे थे, रास्ते में एक गांव पड़ता था। वहां पर बहुत से आदमी खड़े थे। हुज़ूर महाराज चाहते थे कि उन लोगों से बच कर निकल जायँ लेकिन कुछ लोगों ने जो आपके 'इल्म-रूहानी' से रू-ब-रू हो चुके थे, उन्हें देख लिया और बड़ी विनम्रता पूर्वक बुलाया। अतः आपको विवश हो कर उन लोगों के पास जाना पड़ा। वहां पर एक सुन्दर युवती खड़ी थी और कह रही थी - "मैं जिन्न हूँ और इस सुंदरी पर आसक्त हूँ। इसे ले कर ही जाऊँगा।" कुछ लोग झाड़ा-फूंकी कर रहे थे और कुछ अन्य विभिन्न दवाइयों का प्रयोग कर रहे थे। लेकिन सब बेकार साबित हो रहा था। सभी जन बहुत ही परेशान थे और समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें। मेरे हज़रत क़िब्ला को देख कर सभी लोग उनसे प्रार्थना करने लगे कि उस स्त्री की सहायता करें और इस मुसीबत से उसको छुटकारा दिलाएं। हुज़ूर ने पहले तो मना किया क्योंकि वह झाड़-फूंक व तावीज़ इत्यादि के क़ायल नहीं थे और न कभी इन सब विश्वासों को प्रोत्साहित ही करते थे। लेकिन जब लोगों ने हद से ज़्यादः ही अनुग्रह व विनती की तो आपने एक कागज़ के पुर्ज़े पर कुछ इबारत लिखी, उसको लपेटा और उसके एक सिरे को जलते हुए लैंप पर रख दिया। काग़ज़ जलना था कि युवती चिल्लाने लगी "मुझको मत जलाओ मैं जाता हूँ, अब कभी नहीं आऊंगा।" जिन्न, हुज़ूर महाराज की खुशामत करने लगा। आपने कागज़ बुझा

दिया ; युवती अपनी सामन्य दशा में लौट आयी और फिर कभी उसकी वह पूर्वलिखित पुनरावृत्ति नहीं हुयी।

हुज़ूर महाराज अपनी इस उपरोक्त घटना को सुनाने के पश्चात हमें अतीत के उस गर्भ में ले गए जहाँ पर कि इस नाचीज़ को उनके दिव्य-स्वरुप के प्रथम दर्शन हुए थे। वे उससे जुड़ी हुईं अनेक रहस्यमयी बातें बतलाने लगे। आप ने फ़रमाया - "बेटे तुम्हारा 'मदरसा मुफ्ती साहिब' में आ कर रहना कोई साधारण घटना नहीं थी। क़ुदरत का यह इंतज़ाम बहुत पहले से मुक़र्रर था।" उस समय वे पूरे जज़्ब में थे। उस मदरसे के बारे में उन्होंने बहुत से रहस्योद्घाटन किये। उनके अनुसार, 'मदरसा मुफ़्ती साहिब' की स्थापना करने वाले सूफ़ी संत, हज़रत अलहाज़ मुफ़्ती वली उल्लाह साहिब का जन्म क़स्बा 'साण्डी' ज़िला हरदोई [उ प्र] में शुभदिन शुक्रवार दिनांक 11 अगस्त 1752 [ईस्वी0] को आपके वालिद सय्यद अहमद के परिवार में हुआ था। आपका शुमार भारत के मशहूर जैयिद-आलिमों [धुरन्दर विद्वानों], दान-हक़ीमी [सुपात्र मीमांसक] और उस समय के हरदिल अज़ीज़ मुन्सिफ [जस्टिस] के तौर पर भारत से भी बाहर अरब दुनियाँ तक होता था। आपके पूर्वज, जद् अमजद, तिरमीज़ [ईरान] के रहने वाले थे। आप का 'शज्रः शरीफ़' [वंशावली] हज़रत मोहम्मद सल्लम0 के दामाद हज़रत अली [रजि0] से मिलता है। आपके पूर्वज 'तिरमिज़' से लाहौर, और उसके बाद कन्नौज [भारत] आये। वह शाह मुरादुल्लाह साहिब [रहमत0] जो कि हमारी 'आध्यात्मिक-वंशावली' [शिज्रः शरीफ़] में 14वें रहस्याचार्य हुए हैं, के नवासे [मुत्री के पुत्र] थे। मेरे हज़रत क़िब्ला फ़रमाते थे कि शाह मुरादुल्लाह साहिब [रहमत0] ने अपने शरीरांत से पूर्व अपनी अध्यात्म साधना से सम्बंधित सभी वस्तुएँ [पुस्तकें, लेख, पत्र तथा वस्त्रादि] हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन साहिब नसीराबादी [क़ु0 सि0] को सौंप दिया और आपको अपने सामने ख़लीफ़ा के पद पर सुशोभित किया। परन्तु हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन [रहमत0] ने हज़रत वलीउल्लाह साहिब [रहमत0] को जो आपके विद्यार्थी, मुरीद व 'ख़लीफ़ा' थे ; वह सभी उपरोक्त वस्तुएं उन्हें प्रदान कर सतगुरु की पदवी पर बैठाया और 'नज़र' [भेंट] दे कर फ़रमाया कि हमको हमारे हज़रत 'पीर' [धर्मगुरु] की मोहब्बत काफ़ी है और जो-जो भेंटें आपको मिलतीं सब-की-सब हज़रत वलीउल्लाह साहिब [रहमत0] को प्रदान कर देते थे, बावज़ूद इसके कि हज़रत वलीउल्लाह साहिब [रहमत0] आपके ख़लीफ़ा और मुरीद थे। कालान्तर में आप साण्डी [जिला हरदोई] में जा कर बस गए। आपके वालिद मोहतरम ने आपकी बेहतरीन तालीम का इंतज़ाम किया। आपने आला तालीम [उच्च शिक्षा] 'ख़ैराबाद' [ज़िला सीतापुर] से हाँसिल की। जो उस ज़माने में तालीम का उच्च मर्क़ज़ [केन्द्र] था। कन्नौज के मशहूर आलिमे-दीन [धर्म-विद] मौलाना अब्दुल वासित कन्नौजी से भी आपने तालीम हाँसिल की। उनके निर्देशानुसार ही आप

रहमताबाद [आंध्र प्रदेश, भारत], हज़रत ख़्वाजा रहमतुल्लाह के पास उच्च तालीम के लिए गए। पहिली बार आप 1189 हिज्री [वर्ष 1775 ईस्वी] में हज के लिए मक्का व मदीना शरीफ़ पैदल हिन्दुस्तान से गए। यूँ तो आपने पयादःपा [पदयात्रा] सात हज फ़र्रुख़ाबाद से किये। आख़री हज के बाद आप सात वर्ष वहाँ रह कर शेख़ अहमद सफ़रू के शाग़िर्द रह कर इल्में दीन [ब्रह्मविद्या] की उच्च-शिक्षा हाँसिल करते रहे। हिजरी सं 1194 [1780 ईस्वी] में हिन्दुस्तान आने के बाद आपने अपने बुज़ुर्गों के बेहद इस्रार [हठ] पर एक बेवा [बिधवा] से निकाह [पाणिग्रहण] भी किया था। लेकिन परिवार में अधिक समय न दे कर केवल तालीम पर ही वक़्त देते थे। आपने इल्मेबातिन [गुह्य-विद्या] हाँसिल करने के बाद अपना तख़ल्लुस 'वासिती' [वासित इराक़ में बसरे और बग़दाद के बीच का एक नगर जहाँ का कलम बहुत अच्छा होता है, का रहने वाला] रक्खा था।

आप एक अच्छे तबीब [उपचारक, चिकित्सक] थे। हज़ारों मरीज़ रोज़ाना शिफ़ा [रोगमुक्ति] हाँसिल करते थे। आपने इसके लिए एक शिफ़ाख़ानः [चिकित्सालय], मद्रिसः [पाठशाला], ख़ानक़ाह [फ़क़ीरों और साधुओं के रहने का स्थान, आश्रम] और मस्जिद तामीर [निर्माण] करवाई। आप ने इस इमारत को 1224 हिज्री [1809 ईस्वी] में बनवाना शुरू किया [इसी समय उन्हें 'शहर-क़ाज़ी' और 'और मुफ़्ती-आज़म' नियुक्त किया गया था। इस पद पर वह तीन वर्ष तक कार्यरत रहे।] 18 साल बाद 1242 हिज्री [1827 ईस्वी] में यह इमारत बन कर तैय्यार हुयी। इस इमारत की तामीर व जगह के लिए आपने साण्डी [हरदोई] और दाईपुर [कन्नौज] की ज़ायदाद भी बेंच डाली। 'मद्रिसः मुफ़्ती साहिब' में उस समय की हर तरह की तालीम का इन्तज़ाम था। क़ुरान का फ़िक़ः [वाक्य], हदीस के साथ इल्मे तिब [चिकित्साशास्त्र] भी पढ़ाई जाती थी। आप के द्वारा लिखी किताबों से यह बात साबित होती है कि उस समय ईरान तक से तालिब-इल्म [विद्यार्थी] इस मद्रिसः में इल्म हाँसिल करने आते थे। मद्रिसःकी इमारत के ऊपर मुर्दे चीरने [anatomy] लैब आज भी बनी है। एक बहुत बड़ी लाइब्रेरी [मुफ़्ती वलीउल्लाह लाइब्रेरी] इसी मद्रिसः में थी। मुफ़्ती वली उल्लाह सदरुल सुदूर का इन्तक़ाल 84 वर्ष की उम्र में रविवार 18 नवम्बर 1833 को फ़र्रुख़ाबाद में हुआ।

हूज़ूर महराज इस्लामिक दर्शन के अतिरिक्त 'वेदान्त' दर्शन के भी अच्छे जानकार थे। इसी इसी बीच उन्होंने बतलाया कि 'जिन्न' भी मनुष्य की भाँति एक प्राणी है ; 'मनुष्य' - 'क्षिति' = पृथवी, जल, पावक = अग्नि, गगन = अन्तरिक्ष, अवकाश और समीर = वायु, नामक पाँच तत्वों से बना है किन्तु चूँकि 'जिन्न' की उत्पत्ति केवल 'अग्नि' से मानी गयी है अतः वे [साधारण मानव चक्षुओं से] दिखलाई नहीं देते हैं।

क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा ; जीवन जिन तत्वों से मिल कर बना है, वे हैं पृथवी, जल, वायु, अग्नि और आकाश। तीन तत्व स्थूल हैं और दो सूक्ष्म। प्रथवी, वायु व जल से देह बनी है, अग्नि यानि ऊर्जा है, मन अथवा विचारशक्ति, और आकाश में ये दोनों स्थित हैं। शास्त्रों में परमात्मा को आकाश-स्वरुप कहा गया है, जो सबका आधार है। परमात्मा के निकट रहने का अर्थ हुआ - हम आकाश की भाँति हो जायँ। आकाश किसी का विरोध नहीं करता, उसे कुछ स्पर्श नहीं करता, वह अनन्त है। मन यदि इतना विशाल हो जाय तो उसमे कोई दीवार न रहे, जल में कमल की भाँति वह संसार की छोटी छोटी बातों से प्रभावित न हो, सब का सहयोगी बने तो ही परमात्मा की निकटता का अनुभव उसे हो सकता है। मन की सहजावस्था का प्रभाव देह पर भी पड़ेगा। 'स्व' में स्थित होने पर ही वह भी स्वस्थ रह सकगी। मन में कोई विरोध न होने से सहज ही संतुष्टि का अनुभव होगा। वे 'जिन्नात' के बारे में अनेकानेक सारगर्भित ऐतिहासिक और दार्शनिक बातें बताते रहे, साथ ही उन्होंने उस 'जिन्न' विशेष के बारे में भी कुछ रहस्योद्घाटन किये, जिनका कि विवरण आगे के समुचित अध्यायों में देने का प्रयास करूँगा।

हुज़ूर महाराज ने उपरोक्त सत्रह 'ख़लीफ़ा' साहिबान के अतिरिक्त कुछ अन्य भाग्यवान जिज्ञासुओं को भी बै'अत [दीक्षा] फ़रमाया था। दरअस्ल उनका तरीक़ यह था कि वह किसी भी जिज्ञासु को एकबारग़ी 'बै'अत [दीक्षा]' नहीं फ़रमाते थे। आमने-सामने तवज्जोः [प्राणाहुति] देने की क्रिया को 'बैठक' कहा जाता था। प्रथम 'बैठक' की क्रिया स्वयं अथवा किसी अन्य समकक्ष / सम्मानित बुज़ुर्ग़ के द्वारा और उसके बाद द्वितीय के पश्चात् तृतीय 'बैठक' की आनुष्ठानिक औपचारिकता स्वयं 'पीर' [आध्यात्मिक-गुरु] के द्वारा सम्पन्न कराई जाती थी। उनके द्वारा हमारे वर्ग में जिन ग़ैर-मुस्लिम साहिबान को उन्होंने बै'अत [दीक्षा] फ़रमाया उनका विविरण निम्नलिखित है

-

[01] राम चन्द्र -

[i] बैठक - मौलाना फ़ज़्ल अहमद खां साहिब रायपुरी नक़्श0 मुजद्दिदी,

[ii] बैठक - फ़ज़्ल अहमद खां साहिब रायपुरी नक़्श0 मुजद्दिदी,

[ii] बैठक - मौलाना फ़ज़्ल अहमद खां साहिब रायपुरी नक़्श0 मुजद्दिदी।

टिप्पणी - मौलाना फ़ज़ल अहमद खां साहिब । [आचार्य पद की कुल-इजाज़त दी गयी]

[02] अहलियः [भार्या] राम चन्द्र [सुश्री बृज रानी] -

[i] बैठक - राम चन्द्र ,

[ii] बैठक - राम चन्द्र,

[iii] बैठक - फ़ज़्ल अहमद खां साहिब रायपुरी नक़्श0 मुजद्दिदी।

[03] रघुबर दयाल बरादर राम चन्द्र -

[i] बैठक - इज़ान [as above],

[ii] बैठक - फ़ज़्ल अहमद खां साहिब रायपुरी नक़्श0 मुजद्दिदी नीज़ [और] राम चन्द्र,

[iii] बैठक - फ़ज़्ल अहमद खां साहिब रायपुरी नक़्श0 मुजद्दिदी।

टिप्पणी - मौलवी अब्दुल गनी खां साहिब व नीज़ [और] अज़ [से] राम चन्द्र - इजाज़त बैअत व इजाज़त तालीम।

तौफ़ीक़ - ब्रादरे तरीक़त।

[04] अहलियः [भार्या] रघुबर दयाल = सुश्री जय देवी -

[i] बैठक - इज़ान [as above],

[ii] बैठक - रघुबर दयाल,

[iii] बैठक - मौलाना फ़ज़्ल अहमद खां साहिब रायपुरी नक़्श0 मुजद्दिदी।

[05] कृष्ण स्वरुप बरादर राम चन्द्र -

[i] बैठक - इज़ान [as above],

[ii] बैठक - चन्द्र,

[iii] बैठक - फ़ज़्ल अहमद खां साहिब रायपुरी नक़्श0 मुजद्दिदी।

तौफ़ीक़ - ब्रादरे तरीक़त।

[06] राम कृष्ण बरादर राम चन्द्र -

[i] बैठक - कृष्ण स्वरुप,

[ii] बैठक - राम चन्द्र + कृष्ण स्वरुप,

[iii] बैठक - मौलाना फ़ज़्ल अहमद खां साहिब रायपुरी नक़्श0 मुजद्दिदी।

[07] मुन्शी चिम्मन लाल मुख़्तियार -

[i] बैठक - राम चन्द्र,

[ii] बैठक - राम चन्द्र,

III- मौलाना फ़ज़्ल अहमद खां साहिब रायपुरी नक़्श0 मुजद्दिदी।

- टिप्पणी - अज़ मौलाना साहिब [हुज़ूर महाराज] बज़रिये तहरीर खत बनाम राम चंद्र। [संभवतः

आचार्य पद की इजाज़त दी गयी]

[08] बाबू कृष्ण सहाय हितकारी वकील साकिन - फ़तेहपुर [हाल - कानपुर]

[i] बैठक - राम चन्द्र।

[ii] बैठक - राम चन्द्र।

[iii] बैठक - मौलाना फ़ज़्ल अहमद खां साहिब।

टिप्पणी - [इजाज़त द्वारा] मौलवी अब्दुल गनी खां साहिब व नीज़ राम चन्द्र। [ब्रादरे तरीक़त]

[09] मुंशी कालका प्रसाद मोहर्रर जुडीशियल।

[i] बैठक - राम चन्द्र।

[ii] बैठक - राम चन्द्र।

[iii] मौलाना फ़ज़्ल अहमद खां साहिब।

टिप्पणी - ब्रादरे तरीक़त। [Permission to conduct Satsang].

[10] मुंशी कुञ्ज बिहारी लाल निवासी - तहसील घौसी, जिला - आज़मगढ़।

[i] बैठक - राम चन्द्र।

[ii] बैठक - राम चन्द्र व नीज़ मौलाना साहिब।

[iii] मौलाना फ़ज़्ल अहमद खां साहिब।

[11] बाबू गोपाल सहाय [क्लर्क] मुंसिफ़ी ज़िला - बिजनौर।

[i] बैठक -रघुबर दयाल।

[ii] अब तक किसी का सत्संग नहीं किया है।

[iii] बैठक - मौलाना फ़ज़्ल अहमद खां साहिब।

[12] बाबू खुशी राम वक़ील साकिन - कुरावली [हाल - मैनपुरी]

[i] बैठक - कृष्ण स्वरुप।

[ii] बैठक - कृष्ण स्वरुप व मुन्शी चिम्मन लाल व राम चन्द्र।

[iii] बैठक - मौलाना अब्दुल गनी खां साहिब।

[13] बृज मोहन लाल पिसर [पुत्र] रघुबर दयाल।

[i] बैठक - राम चन्द्र।

[ii] बैठक - राम चन्द्र व रघुबर दयाल।

[iii] बैठक - मौलाना अब्दुल गनी खां साहिब।

टिप्पणी - ब्रादरे तरीक़त [सत्संग कराने की इजाज़त]

[14] जगमोहन नरायन पिसर [पुत्र] - राम चन्द्र।

[i] बैठक - राम चन्द्र।

[ii] बैठक - राम चन्द्र व रघुबर दयाल।

[iii] बैठक - मौलाना अब्दुल गनी खां साहिब।

टिप्पणी - ब्रादरे तरीक़त [सत्संग कराने की इजाज़त]

[15] राधा मोहन लाल पिसर [आत्मज] रघुबर दयाल

[i] बैठक - राम चन्द्र व रघुबर दयाल।

[ii] बैठक - राम चन्द्र व रघुबर दयाल।

[iii] बैठक - मौलाना अब्दुल गनी खां साहिब।

टिप्पणी - ब्रादरे तरीक़त [सत्संग कराने की इजाज़त]

[16] पुष्पा रानी दुख्तर [पुत्री] - राम चन्द्र - बुलन्दशहर।

[i] बैठक - राम चन्द्र व रघुबर दयाल।

[ii] बैठक - राम चन्द्र व रघुबर दयाल।

[iii] बैठक - मौलाना अब्दुल गनी खां साहिब।

टिप्पणी - ब्रादरे तरीक़त [सत्संग कराने की इजाज़त]

[17] ज्वाला प्रसाद, मोहल्ला - काज़म, गली - सीकलगरान, कायमगंज।

[i] बैठक - राम चन्द्र व मुन्शी कुञ्ज बिहारी लाल।

[ii] बैठक - राम चन्द्र व मुन्शी कुञ्ज बिहारी लाल।

[iii] बैठक - मौलाना फ़ज़्ल अहमद खां साहिब।

टिप्पणी - ब्रादरे तरीक़त [सत्संग कराने की इजाज़त]

[18] तोता राम, मोहल्ला - काज़म, गली - सीकलगरान, कायमगंज।

[i] बैठक - राम चन्द्र व मुन्शी कुञ्ज बिहारी लाल।

[ii] बैठक - राम चन्द्र व मुन्शी कुञ्ज बिहारी लाल।

[iii] बैठक - मौलाना फ़ज़्ल अहमद खां साहिब।

टिप्पणी - अक़ीदत [श्रृद्धा, विश्वास]

[19] मंगू लाल सुनार - काज़म, गली - सीकलगरान, कायमगंज।

[i] बैठक - राम चन्द्र व मुन्शी कुञ्ज बिहारी लाल।

[ii] बैठक - राम चन्द्र व मुन्शी कुञ्ज बिहारी लाल।

[iii] बैठक - मौलाना फ़ज़्ल अहमद खां साहिब।

टिप्पणी - अक़ीदत [श्रृद्धा, विश्वास]

[20] चित्तर कहार - साकिन मौजा कुतरा, फतेहगढ़।

[i] बैठक - राम चन्द्र व रघुबर दयाल।

[ii] बैठक - राम चन्द्र।

[iii] बैठक - मौलाना फ़ज़्ल अहमद खां साहिब।

टिप्पणी - ब्रादरे तरीक़त [सत्संग कराने की इजाज़त]

[21] पण्डित प्यारे लाल मुदर्रिस [अध्यापक] साकिन - मौजा मेहरापुर, सदर तहसील, ज़िला - फ़र्रुख़ाबाद।

[i] बैठक - राम चन्द्र।

[ii] बैठक - राम चन्द्र।

[iii] बैठक - राम चन्द्र।

[22] डॉ चतुर्भुज सहाय कुलश्रेष्ठ - एटा।

[i] बैठक - राम चन्द्र।

[ii] बैठक - राम चन्द्र व रघुबर दयाल।

[iii] बैठक - राम चन्द्र।

इजाज़त बैअत व इजाज़त तालीम। राम चन्द्र।

[23] मुंशी सूरज सहाय मुख्त्यार। साकिन -एटा।

[i] बैठक - डॉ चतुर्भुज सहाय।

[ii] बैठक - राम चन्द्र व रघुबर दयाल।

[iii] बैठक - राम चन्द्र।

[24] पण्डित गँगा प्रसाद - साकिन अमरोहा ; साकिन हाल एटा।

[i] बैठक - डॉ चतुर्भुज सहाय।

[ii] बैठक - राम चन्द्र व रघुबर दयाल व डॉ चतुर्भुज सहाय।

[iii] बैठक - राम चन्द्र।

[25] बाबू मेहर सिंह साहिब - साकिन मौजा बड़ोला ज़िला एटा।

[i] बैठक - डॉ चतुर्भुज सहाय।

[ii] बैठक - राम चन्द्र व रघुबर दयाल।

[iii] बैठक - चतुर्भुज सहाय।

[26] ठाकुर भाल सिंह मुख्त्यार - साकिन मौजा बड़ोला ज़िला एटा।

[i] बैठक - डॉ चतुर्भुज सहाय।

[ii] बैठक - चतुर्भुज सहाय।

[iii] X X X X X X

टिप्पणी - छोड़ गए।

[27] पण्डित गङ्गा प्रसाद। - आगरा।
[i] बैठक - डॉ चतुर्भुज सहाय।
[ii] बैठक - डॉ चतुर्भुज सहाय।
[iii] बैठक - राम चन्द्र।
[28] शिव नंदन लाल - एत्मादपुर जिला आगरा।
[i] बैठक - डॉ चतुर्भुज सहाय।
[ii] बैठक - डॉ चतुर्भुज सहाय।
[iii] बैठक - राम चन्द्र।
[29] लाला मुसद्दी लाल - एत्मादपुर जिला आगरा।
[i] बैठक - डॉ चतुर्भुज सहाय।
[ii] बैठक - डॉ चतुर्भुज सहाय।
[iii] बैठक - राम चन्द्र।
[30 पण्डित राम भरोसे - एत्मादपुर जिला आगरा।
[i] बैठक - डॉ चतुर्भुज सहाय।
[ii] बैठक - डॉ चतुर्भुज सहाय।
[iii] बैठक - राम चन्द्र।

[सम्पादकीय टिप्पणी - उपरोक्त प्रकार से 150 [एक सौ पचास] प्रेमीजनों की लिस्ट परमपूज्य लालाजी महाराज की 'हस्तलिपि' में प्राप्त हुयी थी। उसके प्रथम पृष्ठ पर ही उसके अपूर्ण होने की बावत इंद्राज़ था। काग़ज़ बहुत ही पुराना जीर्ण-क्षीर्ण व पतला [thin] होने की वजह से बहुत कुछ पढ़ने में नहीं आ रहा है ; प्रारम्भ के 30 [तीस] नामों का व्योरा ही दिया जा पा रहा है। असमर्थता के लिए कृपया क्षमा करें।]

मेरे गुरु-भाइयों में से एक नौजवान ऐसे थे जो हुज़ूर महाराज के सत्संग के अलावः एक वेश्या की सोहबत में भी शरीक़ होते थे। कुछ दोस्तों ने इस बात की सूचना हुज़ूर महाराज को दे दी। आप ने फ़रमाया - "अब जब भी वोह, वहां जायँ, मुझे बतलाना" . अगली बार जब वोह महाशय वैश्या के घर की ओर मुड़े तो उनके दोस्तों ने गुप्त रूप से इसकी इत्तला, हुज़ूर महाराज को दे दी। हुज़ूर महाराज ने स्नान किया। धोबी का धुला कुरता - पाजामा निकाला, उस पर इत्र वगैरह लगा कर उसको पहना। आँखों में सुरमा लगाया और उस वेश्या के घर की ओर चल दिए। बस्ती छोटी थी अतः उस वेश्या ने भी उनके बारे में सुन रक्खा था और वह उनके प्रति

सम्मान भी रखती थी। वह उनको देख कर हैरान रह गयी कि ये हज़रत, इधर कहाँ और कैसे आ गए। हुज़ूर महाराज के वह शौकीन शाग़िर्द वहाँ मौजूद थे और वह उन्हें देख कर घबराये भी। वैश्या ने बड़ी ही विनम्रता व शालीनता के साथ, सम्मानपूर्वक आपको बैठा कर निवेदन किया - "क़नीज़ के लायक क्या खिदमत है जिसके लिए आप ने यहां आने की ज़हमत फ़रमाई ? इस लौंडी से जो खिदमत हो सकती, आपके दौलतखाने पर बजा लाती।" आपने फ़रमाया - "हम गाना सुनना चाहते हैं। कोई गाना सुनाइये।" वेश्याओं को तो हर प्रकार के दो-चार गानें याद ही रहते हैं। उसने अपने विवेकानुसार, आपको कुछ गाने सुनाये। गाने सुनने के बाद आपने फ़रमाया - "तुम्हारी एक रात की क्या उजरत होती है ? हम आज रात तुम्हारे यहाँ ही ठहरेंगे।" वैश्या सकते में आ गयी। जो अन्य शिष्य-गण हुज़ूर महाराज के साथ गए थे सब के सब अचम्भित हुए कि वोह क्या फ़रमाँ रहे हैं। साठ साल से अधिक की आयु, चांदी सी सफ़ेद दाढ़ी व सिर के सफ़ेद बाल और चोटी के सूफी-फकीर इस पर भी आप वैश्या के घर रात बिताएंगे। ख़ैर ; उसने अपना पारिश्रमिक बताया, बात तय हुयी। आपने अपनी जेब से रुपये निकाल कर दिए और साथ में गए शिष्यों से फ़रमाया - "भाई, तुम-लोग अब जाओ, हम आज यहीं ठहरेंगे।" उसके बाद उस वैश्या से मुखातिब हुए - "आज रात के लिए अब तुम मेरी हो गयी हो। अब जो मैं कहूँगा, वह तुमको मानना होगा। मेरा पहला कहना यह है कि तुम्हारे यह गहने बिलकुल पसंद नहीं हैं, इन्हें उतार डालो और जा कर ग़ुस्ल [स्नान] कर लो।" उसने गहने उतार दिए और नहाने चली गयी। आप अपने साथ में अपनी पत्नी के वस्त्र ले गए थे, जब वह स्नान कर के वापस आयी तब आपने उन वस्त्रों को दे कर फ़रमाया - "इस पोशाक को पहन लो।" उसने आदेश का पालन किया। तब इस बार वोह उनकी लायी हुयी पोशाक पहन कर, उसके वापस आने पर आपने फ़रमाया - "अच्छा अब तुम मेरे साथ पाँच रकअत नमाज़ पढ़ो।" अब वोह परेशान थी कि यह मैनें क्या परेशानी मोल ले ली, उसने निवेदन किया कि - "नमाज़ तो न मैंने पढ़ी और और न ही मेरी माँ ने पढ़ी। मैं तो जानती भी नहीं कि नमाज़ कैसे पढ़ी जाती है।" हुज़ूर महाराज ने तब उस-पर दया कर के फ़रमाया "अच्छा देखो, तुम्हें नमाज़ अदा करनी नहीं आती तो फिक्र मत करो। जैसे जैसे मैं उठूँ - बैठूँ, तुम भी वैसा ही करती जाओ। तुम्हें मेरी नक़ल भर ही तो करनी है। घबराओ मत।" मजबूरी थी। वैश्या भी हुज़ूर महाराज की नक़ल करने लगी। इस प्रकार जब हुज़ूर महाराज सिज़दे में गए, तो वेश्या ने भी उन्हीं की तरह अपना भी माथा टेका। उसी सिज़दे में हुज़ूर महाराज ने अल्लाह से प्रार्थना की "या खुदा ! तेरे फ़ज़्लो-क़रम से इसको यहाँ तक ला दिया, अब तू जानें और यह जानें।" इसके बाद हुज़ूर महाराज उठ कर अपने घर वापस पधार गए किन्तु [बताते हैं कि] वह वेश्या सिज़दे में ही बेहोश पड़ी रही। सुबह होने पर जब उसकी माँ और अन्य घर वाले उसे होश में लाये तब वह उठी। पहले तो

भौंचक्की हो कर, इधर-उधर देखती रही। उसके बाद अपनी माँ से बोली - "मुझसे अभी तक जो कमाई हो सकती थी वोह मैनें की और सब की सब, वोह तुम्हें दे भी चुकी हूँ। तुम्हारे दिए हुए गहने भी यह रक्खे हैं। ये कपड़े और पोशाक जो मैं पहनें हुए हूँ वोह तुम्हारी नहीं है। बस अब मै चली।"

लगभग दस-ग्यारह बजे दिन का समय था, वह लड़की [वेश्या] हुज़ूर महाराज के घर के सामने स्थित नीम के पेड़ के नीचे आ कर बैठ गयी। वे उसकी प्रतीक्षा में ही थे, अतः अपनी पत्नी [हम लोग उन्हें 'बेबे' कह कर सम्बोधन करते थे] को बुला कर इस लड़की [जिसका नाम अमीरन था] को ससम्मान अंदर ला कर खाना खिलाने इत्यादि का निर्देश किया। इस सबसे निवृत्त हो कर अमीरन से हुज़ूर महाराज ने फ़रमाया - "उस घिनौनी ज़िन्दगी से निकल कर पाक और बाइज़्ज़त ज़िन्दगी बसर करने का इरादा रखती हो तो बताओ।" अमीरन उनके इस अंदाज़ पर खुशी से फूली न समायी और वह उनके कहे अनुसार तुरन्त रज़ामन्द हो गयी। तब हुज़ूर महाराज ने उससे गुनाहों के लिए दिली तौबा कराई और अपने उस शिष्य [जो उसके पास जाया करता था] को बुला कर बड़े अपनत्त्व भाव से समझाया कि "यदि तुम्हें अमीरन पसंद है तो इससे निक़ाह [विवाह] करके पाक ज़िन्दगी बसर करो।" उसी समय आप ने अपनी उपस्थिति में इन दोनों का विवाह संपन्न करा दिया। बाद में उन दोनों को अपनी शिष्य-परंपरा में आपने 'बैत' भी फ़रमाय

IDGAH - Qasba Raipur, Kaimganj, District - Farrukhabad UP 209502.

हुज़ूर महाराज अपने विसाल [देवलोक गमन] के समय तक अपनी पूर्ण मानसिक चेतना में रहे। जिस समय विसाळ हो रहा था आप कलमा-शरीफ़ [प्रार्थना] में तल्लीन थे। प्राणान्त के अंतिम क्षणों में वह फर्माते जा रहे थे - "मेरी रूह पैरों से खिंच गयी, घुटनों से खिंच गयी, कमर से

खिंच गयी।" अंत में फर्माया - "अब सब लोग अल्लाह की तरफ रुज़ू हो जाइये। मेरी रूह अब क़ल्ब [ह्रदय] से भी खिंचने जा रही है।" सब लोग उस समय फैज़ की धार में ग़र्क़ [डूबे हुए] थे। आँख खोलने पर देखा कि हुज़ूर महाराज की आत्मा, पार्थिव शरीर त्याग कर उस परम सत्ता में लीन हो चुकी थी, उस समय तीसरे प्रहर तीन बज चुका था, तीस नवम्बर 1907 ईस्वी।
आपकी मज़ार शरीफ़ क़स्बा रायपुर,

तहसील - कायमगंज, पश्चिम दिशा में ईदगाह [दक्षिण मीनार] की तरफ स्थित है।

Dargah Sharif - Hazrat Maulana Fazl Ahmad Khan Sahib Naqshbandi [RA]

हुज़ूर महाराज के महत्वपूर्ण पत्र -

[01]भाई जान ! मद्द उम्रकुम [चिरायु हो] - बाद दुआ के वाज़े शरीफ [ज्ञात] हो कि मैं घर से बा-ग़रज़ ज़ियारत [तीर्थ यात्रा के मक़सद से] क़बूर [कब्र का बहु-बचन] औलिया अल्लाहे क़राम [परम संतों की] निकला। और कन्नौज - मकनपुर - लखनऊ में एक-एक क़याम किया। जो-जो अनावारो [प्रकाश] बरकात महसूस हुयी उनके बयान से जवान क़ासिर है [असमर्थ है] - तुम्हारी सेहत के वास्ते भी दुआ की है।

[02] भाई जान - मद्देउम्रकुम [चिरायु हो] . बाद सलाम के वाज़े शरीफ़ हो [ज्ञात] कि

गिरामीनामा [कृपापात्र] सादिर हो कर बाइसे [कारण] मसर्रत [खुशी] हुआ। आप बहुत खुशी से अपनी पूरी कैफ़ियत [ब्यौरे-वार हाल] लिखिये, मुझे खुशी होगी। तक़लीफ़ क्यों होनें लगी। भाई मैं आख़िरत [परलोक या क़यामत] में भी इन्शाअल्लाह साथ होऊँगा। तुम दुनियाँ में मुझे तक़लीफ़ से बचाते हो। मैं तो तुम्हारे वायस जो तक़लीफ़ हो उसको राहत जानता हूँ। तुम लोग मेरे लख्ते-जिग़र हो। तुम्हारी थोड़ी भी तक़लीफ़ मुझे ग़वारा नहीं।

[03] अज़ीज़ अज़ जान मद्द उम्रकुम। बाद दुआए तरक़्क़ी मदारिज़ के वाज़े शरीफ़ हो कि मैं 11 मुहर्रम को देहली से वापस आया। जो-जो इनामों-बरक़ात महसूस हुए उनका बयान नहीं हो सकता। और ग़ालिबन आप लोगों को भी उसका हिस्सा महसूस हुआ होगा। अपनी सेहत का हाल इरकाम [लिखिए] कीजिये। 'या सलामो' अक्सर जबानी पढ़ना सेहत को बहुत मुफीद है। मेरा सारा घराना तुम्हारे तमामी खानदान को दुआ और सलाम कहते हैं। मेरा इरादा था कि तुम लोगों के पास हाज़िर होऊं मगर अभी चंदे-मुल्तबी रहा।

[04] भाई साहब उम्रफय्यूज़कुम। बाद सलाम के वाज़े शरीफ़ है कि आपका कार्ड मौसूल हुआ। लड़कों व नीज़ अपने ज़ुकाम वग़ैरह के वाइस जवाब में तसाहुल हुआ। मुआफ़ फरमाइयेगा। मेरी ऐसी किस्मत कहाँ जो मेरी बेटियाँ आएँ। कहीँ आँखों पर पलकें भारी होती हैं। मुझे तो बसरोचश्म मँज़ूर है, मगर तुम लोगों की तक़लीफ़ का ज़रूर ख़याल है। इसका यह मतलब नहीं कि मैं तुमको मना करता हूँ। नहीं हर्गिज़ नहीं। बल्कि सचमुच मौसमें सरमा में सफर मुश्किल ख़याल करता हूँ। मैं तो तुम लोगों से अज़हद खुश हुँ और शबोरोज़ दुआ करता हूँ। नज़दीकोदूर यकसाँ हूँ। मुझसे ऐसे अमर में इस्तिफ़सार की ही क्या ज़रुरत थी। अज़ीज़ान रघुबर दयाल और लाला चिम्मन लाल को दुआ।

[05] अज़ीज़मन - बाद दुआ के वाज़े हो कि आपके दो ख़तूत और मनीऑर्डर मौसूल हो कर वइसे इंशरार हुए। अल्लाह ज़ल्लेशानहू तुमको सलामत बकरामात रक्खे। मैं दशहरे के अय्याम में इंशाअल्लाह घर पर रहूँगा। आप लाला चिम्मन लाल पर मेहनत कर के तकमील करा दीजिये। ताकि आपके बाद आपकी जानशीनी करें। मेरी तबीयत नासाज़ थी। इस सबब से जबाब में भी ताख़ीर हुयी।

[06] अख्वीअर्शदी मद्दउम्रकुम। बाद दुआ के वाज़ेशरीफ हो कि दिनों से आपका हाल मालूम नहीं हुआ। बिंदी सबब मुत्तफ़क्किर हूँ। तुमने रुख्सत ली या नहीं। रमज़ानशरीफ आया। इरादा है

कि रात को बक़द्रे ताक़त जागूँ। और खुदा की याद करूँ। और अहबाबों में से जिस को तौफ़ीक़ हो तो वोह भी ऐसा करें तो ज़हेसआदत वर्ना नहीं। गो मैं हरतरह बेसामान हूँ मगर इरादा क़वी है। तुम भी दुआ करो।

[07] अज़ीज़अज़जान मद्दउम्रकुम। बाद दुआएदराज़ी उम्रोदरज़ात के वाज़े शरीफ हो कि आप के दो कार्ड मौसूल हुए। वाक़ई पीराने उज़्ज़ाम की मुहब्बत मुसमिरे बरकात है। आतिशे दुनियाँ तो क्या है, आतिशे आख़िरत भी सर्द है। अल्लाह जल्ल-ए-शानहू तुम को अलुद्द्वाम [सदासदा] अपने हिफ़्ज़ओ अमन में रक्खे। अज़ीज़ी चिम्मन लाल साहब का दिनों से कोई खत नहीं आया मुझे ख़याल है। उनसे मेरा सलाम ज़रूर कह दीजियेगा। मैं सख़्त अलील रहा हूँ और अभी हूँ। दुआ करो कि अल्लाह-ता-आला रूहानी और जिस्मानी सेहत आता फरमाएं।

[08] मख़दूम भाई मद्द ज़िल्ल्हूउलआली। बाद सलाम मसनूनानं कि आपका करामतनामा सादिर हो कर इफ़्तिख़ार का बाईस हुआ। मेरी तबीयत अच्छी नहीं। वही सर घूमता है, नकीह [निर्बल] हूँ। भाई आज-कल तो पीरी - मुरीदी तो नाम को भी बाक़ी नहीं रही। लोगों का कसूर भी नहीं। हमारी ही बुरायिओं का नतीज़ा है। लोग जहाँ और खेल खेलते हैं वहाँ पीरी-मुरीदी भी करते हैं। सादिक़ मुरीद मिलाना उनका [एक अस्तित्त्व-हीं पंक्छी] की तरह न-पैद है। और यही हाल पीरों का भी हो गया। इल्ला-माशा अल्लाह [अतिरिक्त पुरुष जिसकी ईश्वर रक्षा करें], बहुत थोड़े मुरीद फिदायी [समर्पित] होते हैं। और बहुत थोड़े पीर भी। पस अब क्या किया जाय। 'जमानां बातो साज़द, तू बा जमानां ब साज़' . पस आप से अगर हो सके तो पीराने उज़्ज़ाम को बदनाम न करो। और ख़ल्के खुदा [सारी श्रिष्टि] से मेहरबानी खुशखुलकी [सुन्दर व्यवहार] और तलीफ़ क़लबी से [दिलजमई प्रेम] से पेश आओ। और इस पर भी अगर वोह लोग नफ़रत करें तो उनके वास्ते दुआ करो कि शैतान नें उनको मंगलूग कर लिया है। वाज़िबउलरहम [दया के पात्र] हैं। और अगर न कर सको तो खुद दिन-रात यादे-खुदा में मसरूफ़ रहो। और खुद को अपनी जमीय मुरादात [सभी इच्छाओं और अरमानों को] नेस्त नाबूत समझो। और अपनी दीद में महब रहो। उम्र ज़ैद से कोई सरोकार न रक्खो। अपना सरकारी काम किया और यादे-खुदा में मसरूफ़ रहो। जो वोह चाहेगा वोह होगा। अगर कोई आया तो ख़ातिर की और जो न आया तो कुछ शिकायत नहीं। बेहमा और बाहमा यही है। हमारी जानिब से खैर ख्वाही में कोई कसूर न हो कि जिन्होंनें हमारा हाथ पकड़ा कहीं उनको शैतान न छीन ले। उसके वास्ते दुआ और हिम्मत से मदद लो। मैं तो तुम को अपना क़ायम मुकाम ख़याल करता हूँ। और मेरी हिम्मत ऐसी आली है कि मैं किसी अमर को अनहोना नहीं ख्याल करता हूँ। जिस बात पर हिम्मत

करता हूँ, वोह ही होती है, उसी का ज़हूर होता है। फिर तुम क्यों पस्तहिम्मत होते हो। हाय, मेरी कमज़ोरी ने तुम में सरायत किया है। ऐसा न हो कि जलसा ख़राब हो जाय। सब अहबाब को बुला कर फिर हिम्मत करो और खुदा से तौबा करो और मेरे वास्ते दुआ करो। और कामिल मोहब्बत से एक-दूसरे की ख़ैरख़्वाही करो। एक-दूसरे में फ़ानी होओ। और भाई, मुझे मुर्दा ख्याल करो। मेरे बाद जो करते वोह अब करो।

[09] 31. 05. 1899 : अखबी अइज़्ज़ी सल्लम कुम अलेकुम। बाद सलाम और दुआ आँकि आपका कार्ड मौसूल हो कर मसर्रत का वाइस हुआ। अल्लाह जल्ले शानहू। आप को दीनी और दुनियाबी मुरादात पर सरफ़राज़ करे। आमीन। मैं दोनों उमूर में हिम्मत और दुआ करूंगा। और उम्मीद है कि दोनों मुस्तशिब होंगे। मैं देखता हूँ कि पीराने उज़्ज़ाम की अरवाह की तवज्जहआत आप की जानिब मूतवज्जह है। ऐसी सूरत में कोई मुश्किल नहीं जो आसान न हो। और क्यों न हो, तुम मोहब्बत और ऐतक़ाद में अपना सानी नहीं रखते। चिम्मन लाल साहब को दुआ।

[10] अज़ीज़ मुंशी राम चंद्र साहब मद्दउम्रकुम। बाद सलाम के वाज़े शरीफ कि भाई तुम औरतों को सलाहे कुल की तवज़्ज़ुह दो। और उनको अपने ख़याल से नेक बनाओ। और नज़र खुदा पर रख्खो। खुदा ने तुमको वोह हिम्मत दी है कि जो ख़याल करोगे, इंशाअल्लाह वही होगा। मुशी चिम्मन लाल साहब को सलाम। यादे ख़ुदा से ग़ाफ़िल न होना। और इस कज़ीए [झगड़े] को अक्ल से फैसिल [निबटारा] कराना चाहिए।

[11] 22. 10. 1899 : अखवी अइज़्ज़ी मद्दउम्र कुम। बाद सलाम के वाज़े शरीफ़ हो कि आपका करामातनामा सादिर हो कर वायिसे इंशराह हुआ। अल्लाह जल्ले शानहू बा मुराद रक्खे। आमीन। पीरान की नज़रे इनायत [कृपा दृष्टि] तुम्हारी जानिब मुलताफिस [लगी हुयी] है। तुम्हारे मुब्तदी [साधक] औरों के मुन्तही [सिद्ध] से कहीं बढ़ कर हैं। ख्वाज़ा नक़्शबंद फरमाते हैं

"अव्वले माँ आख़िरे हर मुन्तहीस्त।
आख़िरे माँ जेबे तमन्ना तिहीस्त।

"

जब खुदा चाहता है मुब्तदी मुन्तही हो जाते हैं। उम्मीद की अपनें हालात ज़ाहिरी और बातिनी से जल्द-जल्द मुत्तले फरमाते रहा करोगे।

[12] ब्रादरम अज़ीज़ मदद मद्दउम्रकुम। आपका कार्ड मौसूल हो कर वाईसे तमानियत [इत्मीनान, तसल्ली] और इंशराह हुआ। अल्लाह जल्लएशानहू आपको दारेन [दोनों लोकों में] शादकाम [खुश] और सुर्खरूह [मुँह उजला] रक्खे। आमीन। लड़कों के बुखार का सुन कर सख्त अफसोस हुआ। अल्लाह ता आला उनको बहुत जल्द शिफाये कुल्ली [पूर्ण स्वस्थ] अता करे। आमीन।जैल में ताबीज दोनों के वास्ते दो लिखता हूँ। उनको काट कर उनके गले में बाँध देना। यह नाम पाक हैजा व चेचक और ग़ालिबन ताऊन को अज़हद मुफीद है। तुम को इसकी इजाज़त है जिसको चाहो लिख दिया करो। इन्शाअल्लाह ज़रूर फ़ायदा होगा। अज़ीज़ी रघुबर दयाल का खत आया था और उसमें कुछ शिकायत लिखी थी, फिर उसके बाद कोई खत नहीं लिखा कि उसका क्या अन्जाम हुआ। इस अम्र को को जरूर लिखना चाहिए। उस अज़ीज़ से बाद सलाम के कह दीजियेगा। और अज़ीज़ी बाबू चिम्मन लाल साहब को बाद सलाम के वाज़े हो कि तुम भी इन ताबीजों की नक़ल कर के अपनें बच्चों के गले में डाल दो। और तुम सब यादे इलाही में शामिल और मसरूफ़ रहो।

[13] 02 . 04 . 1900 : मुंशी चिम्मन लाल साहब का हाल मालूम हुआ। अल्लाह जल्लेशानहू जल्द उनकी मुख्तारी चमका दे। मैं उनसे बहुत ख़ुश हूँ। अल्लाह ताला आप को और उनको दारैन में सुर्ख़रू और कामयाब रक्खे।

अल्लहमदो लिल्लाह कि मैं उर्स शरीफ [अजमेर शरीफ] से फ़ारिग़ हो कर बख़ैरओखूबी अपनें मकान पर आया। जो इनायत इस ज़र्राएबैमिकदार [तुच्छतितुच्छ] पर हुयी उसका बयान कभी जबानी करूँगा। इस इनायत के काबिल मेरा मुँह न था। आपके वास्ते और अज़ीजों के वास्ते दुआ कर दी है।

[14] 13 . 11 . 1901 : बाद सलाम आंकि आपका करामतनामा आया। अहवाल मालुम हुआ। आपने तो अब लिखा और मैं दिनों से फ़ितूर देख रहा हूँ। अल्लाह जल्ले -शानहू के दस्ते कुदरत [समर्थ हाँथ] में हिदायत और जलालत, दोस्ती और दुश्मनी है। जिनको चाहता है मेहरबानियां देता है और जिनको चाहता है नामेहरबान कर देता है। इसी तमाशे का नाम दुनियाँ है। इसी में गिरफ्त रहना मना है। आप यह नामेहरबानीयाँ देखो और खुश रहो। देखिये

अंजाम हो। अल्लाह ता आला की जाते मकद्दस के सिवा हर एक से नाउम्मेद हो जाओ। सब फानी हैं। सब की दोस्ती और दुश्मनी की इन्तेहा है। इस में दिल लगाना बेजा है। खैरियत मिजाज़ से गाहे ब गाहे मुत्तिले फरमाते रहियेगा। फलाहेदारैन के वास्ते दुआ गो हूँ ।

[15] 26. 02 . 1902 : अखवियम मद्दउम्रकम। बाद सलाम आँकि आपका लिफाफा पहुंचा। बदरज़ा ग़ायत सुरूरो इनविसात [खुशी] पैदा। अल्लाह ता आला आपकी ज़ात से आलम को मुनव्वर करे। सब अज़ीज़ों से कह दो कि दुनिया चन्दरोज़ा है। जो वक़्त यादे खुदा में गुज़रे ग़नीमत है। आप ज़रूर लाला मदन मोहन लाल को लिखिए, इंशाअल्लाह फ़ायदा होगा। यह शख्स भी बहुत अलैह [अधिकारी] आदमी है। अज़ीज़ी कृष्ण सहाय वाक़ई मस्त हैं। लड़कियों की शादी इंशाअल्लाह अच्छी होगी। जरूर कोई सबब होगा। हमारी शर्म खुदा के हाँथ में है। इत्मीनान रखियेगा।

==========

14. मेरी सहधर्मिणी

मैंने श्रीमद्भागवत में गोपियों के चरित्र पढ़े हैं -

"जो गायों का दूध दुहते समय, धान आदि कूटते समय, दही बिलोते समय, आँगन लीपते समय, बालकों को पालनें में झुलाते समय, रोते बच्चों को लोरी देते समय, घरों में जल छिड़कते समय और झाड़ू-देने आदि कर्मों को करते समय, प्रेम भरे चित्त से आँखों में आँसू भर कर गदगद वाणी से कृष्ण का गान किया करती हैं, इस प्रकार सदा कृष्ण में ही चित्त लगाए रखने वाली ये ब्रिजवासिनी गोपियाँ धन्य हैं।"

गोपियों के इस लय-अवस्था के पावन चित्रों में अनायास ही खो जाता हूँ। और यों ही इन्ही गोपियों के मध्य लुकी-छिपी सी कहीं मुझे मेरी सती भी दिखने लगती हैं।

''मेरी सहधर्मिणी''

जी हाँ उनका नाम भी 'बृजरानी' है।
वह भी गोपियों की भाँति निरंतर बृज में रमी 'कृष्ण-भक्ता', पावन चरिता हैं। मेरा सौभाग्य है कि इस जन्म में वह मेरी सहधर्मिणी हैं। उनकी अन्यान्य चारित्रिक उपलब्धियों से मैं इतना प्रभावित रहा हूँ कि आज उनका उल्लेख करते हुए अपने अन्तःस्थल में श्रद्धा का भाव अनुभव कर रहा हूँ। पृथ्वी में जितने भी तीर्थ हैं, वे सब के सब सती स्त्रियों के चरणों में विराजमान

रहते हैं तथा समस्त देवताओं और मुनिओं का तेज भी सती स्त्रिओं में ही रहता है। "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।"

मैंने जीवन पर्यन्त उनके सभी चरित्रों में अगाध-प्रेम व श्रद्धा के मौन भावों को देखा है। उनका कोई भी कृत्य मैंने ऐसा नहीं देखा जिनमें उन्होंने पूर्णसर्वभाव समर्पण में अपने चिंतन का मुझे आराध्य न बनाया हो। मैं भी उन्हें अपनी इस 'दिव्य कहानी' की पूज्य नायिका बनाये बिना न रहूँगा। वह कितना भी क्यों न पीछे हटें, मैं यहाँ उनकी एक न सुनूंगा। मेरे प्रभु मेरी सहायता करें। मेरी हठ भी रह जाय और भगवान मनु के आदेशों का पालन भी हो जाय। मैं प्रारम्भ में ही अपना अनुभव व्यक्त कर चुका हूँ।

मानव जीवन यज्ञ के सामान है और इस यज्ञ में सहधर्मिणी की सहभागिता अपेक्षित ही नहीं अपरिहार्य है।

"वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पति सेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्नि परिक्रमा।।"
[यजु0 02/67]

जो पुरुष कोई भी धार्मिक कृत्य अपनी पत्नी के बिना अकेला करता है, उसका वह कार्य अधूरा रहता है। गृहस्थाश्रम में विवाह एक महत्वपूर्ण अनुष्ठान ही नहीं वह एक आदर्श संस्था भी है, परिवार जिसका स्थूल रूप है।

इस विषय पर मनुस्मृति सहित अनेकों धर्मग्रंथों में पर्याप्त लिखा जा चुका है और कुछ भी कहने को शेष नहीं रह जाता। फिर भी मैं अपनी आत्मकथा की इस नायिका के परिचय व विधिवत चरित्र-चित्रण के सन्दर्भ में अपना अनुभव प्रस्तुत करूँगा किन्तु इससे पूर्व अपने पाठकों को एक सूफी संत के सत्संग में ले जाना चाहूँगा। हो सकता है कि भावों का जो क्रम चल रहा है, प्रारम्भ में उनका कुछ तारतम्य व उचित प्रवाह न प्रतीत हो। विद्वान पाठक-गण क्षमा करेंगे।

श्रीमन ख़्वाजा मोहम्मद बाक़ीबिल्लाः साहिब* [उन पर ईश्वर कृपा हो], सूफी संतों की नक्शबंदिया शृंखला के एक महान स्तम्भ हैं। उक्त परम्परा की वंशावली में वह चौबीसवें

आचार्य थे। उनके सत्संग में एक एक आध्यात्मिक पर्व पर एक नवयुवक जिनका विवाह अभी कुछ दिन पूर्व ही संपन्न हुआ था, उनकी सेवा में उपस्थित हुए। आचार्यप्रवर ख्वाजा साहिब ने उन पर ईश्वर की दयालुता व शुभेक्षा हो, उस नवयुवक की स्थिति पर अत्यंत कृपा की और बैठने का आदेश दिया। एक क्षण बाद आचार्यप्रवर ने यों अपना मुखारबिंदु खोला और फ़रमाया कि विवाह से तीन प्रकार की हानियाँ होती हैं।

पाद-टिप्पणी :

*** हज़रत ख्वाजा बाकिबिल्लाह को हज़रत ख्वाजगी इमकिंनकी से रूहानी निस्बत हाँसिल हुयी थी। आपका शुभ जन्म काबुल में 971 [हिजरी] में हुआ था। बचपन में ही आपके चहरे से एक तपस्वी एवँ इन्द्रियनिग्रही महात्मा के लक्षण प्रगट होते थे। आप अधिकतर एकांत स्थान में बैठे रहा करते थे। आप ने उस समय के उत्कट विद्वान मौलाना मोहम्मद सादिक़ हवायी से सांसारिक विद्या ग्रहण की और थोड़े ही समय में आप अपनी तीव्र बुद्धि के फलस्वरूप अपने दूसरे सहपाठियों से बहुत आगे बढ़ गए। अभी आपने सांसारिक विद्या पूर्ण रूप समाप्त नहीं की थी कि इसी बीच आपने ईश्वर-भक्ति के मार्ग में कदम रक्खा और मावराउल नहर के बहुत से सद्गुरुजनों की सेवा में उपस्थित हुए, परन्तु कहीं भी उनको साधना में स्थिरता नहीं प्राप्त हुयी। एक रोज़ सूफी संतमत की एक पुस्तक पढ़ रहे थे कि उसी समय एक तजल्ली का ज़हूर हुआ [उनमे एक प्रकार का आत्मिक प्रगट हुआ] और वोह बेचैन हो गए और उस समय ख्वाजा बहाउद्दीन नक़्शबंद की पवित्र आत्मा ने उनके अन्तःकरण में नामजप का अभ्यास करने की तौफ़ीक़ [सामर्थ्य/क्षमता] उत्पन्न की और ईश्वर-प्रेम के जज़्बात से उनके ह्रदय को भर दिया। इसी दशा में हज़रत बाकिबिल्लाह साहिब किसी कामिल शेख़ [पूर्ण समर्थ सद्गुरु] की तलाश में इतने परेशान रहते थे और इस तलाश में इतना परिश्रम व प्रयत्न करते थे, जो मनुष्य की शक्ति से बाहर है। अतः उनकी यह दशा देख कर उनकी पूज्य माता का ह्रदय करुणा से भर गया और उन्होंने ईश्वर से यह आद्र आराधना कि "या अल्लाह ! तू मेरे बेटे का उद्देश्य पूरा कर या मुझको मौत दे क्योंकि मुझमें इसकी बेचैनी की दशा देखने की शक्ति नहीं है।"**

हज़रत बकीबिल्लाह फर्माया करते थे कि मुझे ईश्वर-भक्ति के मार्ग में जो सफलता प्राप्त हुयी वोह मेरी पूज्या माता जी की दिली दुआ से हुयी। अपने सदगुरु की तलाश में तमाम मावराउल नहर, बल्ख़, बदरूसा, लाहौर, कश्मीर बग़ैरह छान डाला और बड़े बड़े मशाइख़ [सद्गुरुजनों] की सोहबत से फ़ैज़याब हुए।

कहा जाता है कि जिस जमानें में आप लाहौर में थे वहाँ एक मज़्ज़अब [अवधूत]रहता था। आप उसके पास जाय करते थे वोह कभी आपको गालियाँ देता और कभी पत्थर मारता और कभी आपसे भागता था। मगर आपने उसका पीछा न छोड़ा। आख़िरकार एक दिन उसको इनकी दशा पर दया आ गयी और अपने पास बुला कर उनके उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ईश्वर से हार्दिक प्रार्थना की। हज़रत ख्वाजा बकीबिल्लाह फ़रमाया करते थे कि यद्यपि कि मैने पुराने जिज्ञासुओं और साधकों की तरह इन्द्रियनिग्रह और तपस्या नहीं की लेकिन सद्गुरु की खोज एवं उनके मिलन की प्रतीक्षा में बड़ी व्याकुलता और बेचैनी का समय व्यतीत किया है। अंततोगत्वा हज़रत ख्वाजा बाकीबिल्लाह सद्गुरु की तलाश में मौलाना शेरगानी के पास पहुँचे और वहाँ समरकन्द को आये। रास्ते में आपने हिंदुस्तान [भारत] के अपने कुछ मित्रों को एक ख़त लिखा जिसमे यह शेर अंकित था

-

"मन अज़ मुहीत मोहब्बत निशाँ हमी दीदम,
कि उस्तख्वाने अज़ीज़ां बसाहिल उफ़्ता दास्त।"

[मैं मोहब्बत की दरिया से यह निशनियाँ देख रहा था कि अज़ीज़ों अर्थात मोहब्बत करने वालों की हड्डियाँ उसके किनारे पडी हुईं हैं]

इसी यात्रा में आपको आत्मिक-प्रेरणा से यह ज्ञात हुआ कि हज़रत ख्वाजा अहरार फरमाते हैं कि मौलाना ख्वाज़गी इमकिनकी के पास जाओ और हज़रत मौलाना इमकिनकी को स्वप्न में देखा कि फरमाते है "ऐ फ़रज़न्द ! मेरी आंखें तेरी तरफ लगी हुयी हैं।" यह देख कर हज़रत ख्वाज़ा बाकीबिल्लाह बहुत ख़ुश हुए और यह शेर ज़बान से निकल पड़ा -

"मी गुज़ शतम जे ग़म आलूदा कि नाला जमगीन,
आलमे आशोब निगाहे सरेराहम बगिरफ़्त।"

[मैं दुःख से निश्चिन्त हो कर कर जा रहा था कि दुनियाँ में हलचल पैदा करने वाली एक दृष्टि ने मार्ग में मुझे अपनी ओर आकृष्ट कर लिया]

हज़रत ख्वाजा बाकीबिल्लाह मौलाना ख्वाजगी इमकिनकी की खिजमत में पहुँचे और वहां तीन

दिन-रात एकांत में उनसे सत्संग किया और अपने तमाम बातिनी हालात उनको सुनाये। हज़रत मौलाना इमकिनकी ने हज़रत ख्वाजा बाकीबिल्लाह से फ़रमाया कि ईश्वर की असीम कृपा से आध्यात्मिक शिक्षा तथा इस सिलसिले के सद्गुरुजनों की साधना-पद्यति का अभ्यास तुमको पूर्णरूप से प्राप्त हो गया। अब तुम हिन्दुस्तान जाओ। तुमसे वहाँ एक साधना-पद्यति प्रचलित होगी। पहले तो हज़रत बाकीबिल्लाह ने अत्यंत विनम्रता एवं दीनता के साथ अपनी विविवश्ता प्रगट की परन्तु बाद को हज़रत मौलाना इमकिनकी के आदेशानुसार हिन्दुस्तान को रवाना हुए।

जब आप लाहौर पहुंचे, एक साल तक वहाँ रुके। वहाँ के सभी विद्वान् व संत-महात्मा आपसे प्रेम करने लगे। इसके बाद देहली के लिए प्रस्थान किया। वहां क़िला फिरोज़ी में रहने लगे और फिर अपने जीवन के अंतिम समय तक यहां से अलग नहीं हुए। आपकी समाधी

The first 'Naqshbandiya' Sufi Saint in India, from Afghanistan

मोहल्ला रामनगर में नई-दिल्ली स्टेशन से थोड़ी दूर अजमेरी दरवाज़े की तरफ स्थित है। कहा जाता है कि एक बार आप अपने कुछ शिष्यों के साथ इस जगह पर आये थे। इस जगह को पसन्द कर यहीं आपने बुज़ू करके दो रक़ब नमाज़ पढ़ी थी। उस समय यहाँ की मिट्टी आपके

दामन में लग गयी थी। आपने उस समय यह फाममाया कि यहाँ की मिट्टी दामनगीर होती है [दामन पकड़ कर रोकती है।]

==========

पहली हानि मन या अहम् को पहुँचती है क्योंकि मानस पटल पर इसका प्रवेश होते ही कामेच्छा-रूपी अनेक संकल्पों का जन्म होने लगता है।

सृष्टि की उत्पत्ति के क्रम में यह प्रकृति का प्रथम दर्शन है। इसकी शरणागति में आकर ही संसार की जितनी भी शक्तियाँ हैं, वे व्यक्ति के परिवेश में कार्य करने लगती हैं। इच्छा या वासना, शक्ति [power] का प्रथम स्वरुप है। इसे काम-शक्ति की संज्ञा इस कारण भी दी गयी है, क्योकि सृष्टि का प्रथम कृत्य उत्पत्ति ही है अथवा एक ऐसी अन्तर्निहित चेष्टा जो हमें आगे बढ़ने और एक से दो व दो से तीन हो जाने की ओर प्रेरित करती है। इस चेष्टा के फलस्वरूप शनैः शनैः नयी नयी कठिनाईयाँ उत्पन्न होती हैं, एवं हो गयी हैं। यही विभिन्न 'शक्तियाँ' हैं। विद्वान लोग इन शक्तियों की सामूहिक उपलब्धियों को 'चरित्र-गठन' की संज्ञा भी देते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार इत्यादि विभिन्न प्रकार के संकल्प बताये गए हैं। संकल्प से तात्पर्य इच्छा व निश्चय से है। सृष्टि की प्रथम इच्छा, काम - वासना की तृप्ति या विवाह ही है, जो उत्पत्ति के क्रम में सर्वोपरि है। अतः प्रकृति का प्रथम तत्त्व अहंकार है।

हिन्दू, इस्लाम, पारसी, बौद्ध इत्यादि सभी संतों ने अहँकार की उपमा सर्प से दी है। भगवान कृष्णा की 'काली-देह' की कथा का तात्पर्य यही है कि अहंकार रूपी इसी नाग को काली-दह में उन्होंने नाथा था अर्थात उन्होंने अपनी योग - शक्तियों के द्वारा काम, क्रोध, मद, लोभ इत्यादि अनेक वासनाओं को अपने वश में कर लिया था। अभीष्ट यही है कि इन सभी वासनाओं को सम-अवस्था के बिंदु पर लाया जाय।

अविवाहित या ब्रह्मचारी व्यक्ति का चित्त [अहम्] शीत का मारा हुआ सर्प जैसा है अथवा स्त्री की अनुपस्थिति भी सर्प-रूपी मन के लिए शीत जैसी ही है। जब विवाह हो गया तो मानो सूर्य की तीव्र ऊष्मा से उसका साक्षात्कार हो गया। इससे मानो उसके अंतर में दबी हुयी काम-शक्ति का उदय हुआ और संयमादि का सम्पूर्ण सुप्रभाव क्षीर्ण हो गया, विलीन हो गया।

इसका निदान यह कि हर समय काम-वासना में रत न रहें और संयम के नियंत्रण में आबद्ध बना रहे। इस सम्बन्ध में अपनी सम्पूर्ण आयु के अनुभव को यहाँ प्रस्तुत करता हूँ।

हर समय काम-वासना में मग्न रहने की स्थिति मुर्ग़ों व बकरों इत्यादि जैसी ही प्रतीत होती है। इस प्रकार के ध्यान में लीन व्यक्ति जानवर जैसा ही है, जिसका चित्त सम-अवस्था को कभी प्राप्त नहीं हो सकता और सर्वत्र चलायमान रहता है। वह संयम रूपी नियंत्रण को हमेशा ढील दिए रहता है। मेरे स्वजनों ! मानव तो सर्वत्र विवश है - "Man is born free but everywhere he is in chains". 'कामवासना' ऐसी विचित्र शक्ति है कि योगी एवं परमयोगी भी इसके समक्ष टिके नहीं। जिस घड़ी तक शीत का प्रभाव शेष है, काम रूपी सर्प चेष्टा-हीन पड़ा रहेगा। जिस क्षण उसे थोड़ी सी भी उष्मा मिली वह सचेष्ट हो जायगा। फ़िर भी जहाँ तक संभव हो यथोचित उष्मा या ताप उस तक पहुँचने न दें, इसके अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय प्रतीत नहीं होता। तात्पर्य यह है कि चित्त की अभीष्ट सम-अवस्था का उद्योग करें और एक सीमा का भी निर्धारण करें। यों यहाँ भी सारी साधनाओं का अनुभव यही है कि सीमा में बंधे रहना व चित्त को सम-अवस्था तक सीमित रखना न मात्र अत्यंत कठिन है प्रत्युत असंभव जैसा ही रहा है

हाँ, एक और साधना ऐसी भी है जिसकी आशा दूसरे पक्ष अथवा स्त्रियों से की जाती है। संयोग से किसी संस्था विशेष में यदि स्त्रिओं के लिए इस प्रकार के कार्यक्रमों का निर्माण किया जाता हो तो उक्त दशा में एक सीमा तक सुरक्षा की संभावना है।

मेरे सद्गुरदेव के मिशन से सम्बद्ध सत्संग समाज में यद्यपि, स्त्रियों की संख्या अभी तक अधिक नहीं है। अतः इस प्रकार की विषेश कठिनाइयाँ सामने नहीं आ रही है, फिर भी मुझे परम्परा के आप्तजनों के आशीर्वाद पर पूर्ण विश्वास है कि जन-जन में इस दिव्य धारा का निरंतर प्रसार होगा। स्पष्ट है इस बिंदु को समस्या मान कर अभी से इस पर दृष्टि रक्खी जाय। जो मित्रगण व भाई जहाँ-जहाँ इस दिव्य मिशन के प्रचार प्रसार में आचार्य पद से कार्य कर रहे हैं, इस दिशा में उनका दायित्व और भी बढ़ जाता है।

संकेत के रूप में कुछ शब्द यहां छोड़ रहा हूँ, आने वाली पीढ़ी को संभवतः कुछ मार्गदर्शन मिल सके।

विद्वानों का मत है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में काम - शक्ति की नौ गुनी ऊष्मा वास करती है, जो शरीर से कुछ अनदेखी किरणों के रूप में स्फुटित होती रहती हैं। प्रसंगवश, उल्लेख करूँ कि हज़रत मोहम्मद साहिब को [उनपर ईश्वर की दयालुता हो], यह दिव्य सन्देश मिला कि 'स्त्री - पुरुष' के बीच विशेष सीमाओं का निर्धारण किया जाय तो उनकी ओर से तुरंत

ही इसका प्रचार हुआ एवं उसका विधिवत पालन होने लगा। उसके कुछ दिन बाद, एक दिन जब हज़रत घर के अंदर गए तो वहाँ उनकी धर्मपत्नी के अतिरिक्त एक पुरुष भी उपस्थित था जो अँधा था। हुज़ूर महाराज ने अत्यन्त ही विस्मित भाव से उनसे प्रश्न किया - "बीबी, क्या तुम्हें अल्लाह का हुक्म नहीं मालूम?" उन महामहिला ने तुरंत ही उत्तर दिया - "हुज़ूर, यह तो नाबीना है।" हज़रत की पुनः संक्षिप्त सी जिज्ञासा थी - "बीबी तुम तो नाबीना नहीं हो ?" इस दृष्टान्त से मेरे पाठक गण उचित शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

अपने वक्तव्य को साहित्यिक अलंकारों का आवरण दिए बिना स्पष्ट ही कहूँगा कि स्त्रियाँ, कृपया ऐसे वस्त्रादि वेशभूषा एवं प्रसाधन प्रयोग में न लायें जिनसे दूसरे पक्ष की दबी हुयी काम-वासना' को उत्तेजित होने में सहायता मिले। शास्त्रों में मेरे मत की अनेकों प्रकार से पुष्टि की गयी है।

"मा वां ब्रको मा ब्रकीरादधर्षीनमा परिवर्तमुत मातिधक्तम।
अयं वा भागो निहित इयँ गीर्दस्त्राविमे वामं निधयों मधुनाम।।"
[ऋग्वेद 01 / 183 / 04]

संदर्भगत आशश है कि हे स्त्री पुरुषो ! तुमको न तो कुटिल, हिंसक स्वभाव वाला पुरुष सताये और न कुटिल और हिंसक वृत्ति वाली स्त्री सताये। तुम दोनों एक-दूसरे का कभी परित्याग न करो और न कभी मर्यादा का उललंघन करके एक दूसरे के हृदय को दुखाओ, तुम दोनों के लिए यह अनुपालनीय है। हे दर्शनीयो ! एक-दूसरे के दुःख का नाश करने वाले यह मधुर अन्न-जल और फलों के कोष तुम-दोनों के लिए हैं।

"अधः पश्यस्व मोपारि सन्तरार पादकौ हर।
मा ते कशप्लकौ द्रशनस्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ।।"
[ऋग्वेद 08 /33 /19]

अर्थ - हे नारी नीचे देख। ऊपर न देख। दोनों पैरों को सम्यक रूप से उठाकर चल। तेरे निम्न-अंग पीठ, पेट, नितम्ब, जांघें, पिंडलियाँ और टखनें दीख न पड़ें।

स्त्रियों को लज्जा व शालीनता का प्रतीक होना चाहिए। उन्हें हाव-भाव, चंचलता अपने अंगों का प्रदर्शन न करना चाइये, यह क्रियाएँ समाज को विनाश की ओर ले जानें वाली हैं।

सत्संगी देवियों से मेरा द्वितीय निवेदन है कि जब साधना के मध्य ध्यान-मग्न हों तो वे अपनी अन्य प्रार्थनाओं के मध्य अपने उन साधक भ्राताओं के लिए प्रभु से निवेदन करती रहें कि उनका भाव निरंतर उनके बीच भाई-बहन या माँ-बेटे जैसा बना रहे और वे एक दूसरे को शक्ति प्रदान करने वाली हों।

स्त्रियाँ जब पुरुषों के मध्य हों तो वे अपनी यौन-चेतना [sex/gender consciousness] को छोड़ कर स्वयं को पुरुष देह में प्रविष्ट मानें। यह मेरा तृतीय परामर्श है।

स्त्रिओं की एक भ्रान्ति भी दूर करना चाहूँगा। मैं समझता हूँ कि स्त्री की सौंदर्य साधना जो उसकी अभीप्सा होती है, उसकी अस्मिता समझी जाती है और जो उसकी चेतना का अवलम्ब बनती है, सौंदर्य प्रसाधनों अथवा अंगों के प्रदर्शन से संभव नहीं होती है। वह इन माध्यमों से जो कुछ लगे किन्तु सुन्दर नहीं लगती चाहें वह अपने आप को जितना सुन्दर समझती हो। तब सुन्दर कैसे लगेगी, यह जिज्ञासा स्वाभाविक है।

तथ्य एवं वास्तविकता यह है कि यह मुख एवं यह शरीर, जिसे बाहरी प्रसाधनों से सजाने का प्रयत्न कर सुन्दर बनाने की कल्पना और कामना की जाती है, अंतर का प्रतिबिम्ब है, दर्पण है। यदि आपका अंतर सुन्दर है तो आप बाहर अपनी मुखाकृति में, अपने शरीर की रचना में सुन्दर लगेंगे। यदि अंतर कुरूप है तो बाहरी सौंदर्य साधना ऐसा ही प्रयत्न है जैसे गन्दगी को ढाँकने के लिए ऊपर मिट्टी डाल दी जाय। तब अंतर का सौंदर्य कैसे प्राप्त हो, यह जिज्ञासा हुयी?

अंतर की सुंदरता प्राप्त होती है मन की निर्मलता से और मन की निर्मलता प्राप्त होती है ध्यान की एक-चित्तता, एकाग्रता एवं निष्ठा से। ध्यान की एक-चित्तता कैसे प्राप्त होगी, यह आगे अभ्यास और साधना के प्रसंग में स्पष्ट करूँगा। यहाँ यह अवश्य बता दूँ कि मन की निर्मलता की पहिचान यह है कि हमारा अपने आराध्य से, अपने इष्ट से, अपने प्रियतम से मानसिक सम्बन्ध स्थापित हो जाय, हम बिना कहे अपने प्रियतम के मन की बात को जान लें और तदअनुकूल आचरण करें। यह स्त्री-पुरुष दोनों के लिए अपेक्षित है। पत्नी अपने पति की मन की बात को जानने लगे, पति अपने गुरुदेव, अपने माता-पिता अथवा इष्ट भगवान की मर्ज़ी जाननें लगें तथा तदानुकूल आचरण करें तो समझ लें कि मन की निर्मलता प्राप्त हो गयी है। पत्नी का पतिव्रत-धर्म यही है। पति के शरीर की सेवा करना एवं पूजा करना और मन से

विमुख रहना पतिव्रत धर्म नहीं और कुछ भले ही हो। सीता जी के पतिव्रत धर्म की यही विशेषता थी जिसके कारण वह ऐसी पुण्यशीला हो गयी थीं कि अनुसुइय्या जी के आशीर्वाद की सुपात्रा बनीं -

"सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं"
[03 - 05 : रामचरित मानस]

सीता जी के पतिव्रत धर्म की यह अपेक्षा थी - पति के मन की बात जान लेना। यह उनकी अन्यतम उपलब्धि थी।

"पिय हिय की सिय जाननि हारी"
[02 - 10 : रामचरित मानस]

इसी रूप में पत्नी विमुखी से सुमुखि बन कर पति के सम्मान समादर की अधिकारिणी बनती है -

"तस मैं सुमुखि सुनावौं तोहि। समुझि परइ जस कारन मोही।
[01 - 120 - 05 रामचरित मानस]

मुझे गर्व है अपनी चिरसंगिनी पर जिन्होंने इस क्षेत्र में मेरा कंधे से कंधा मिला कर सहयोग किया एवं उपर्युक्त प्रयोग के मध्य सूक्ष्म से सूक्ष्मतर अध्यन व अनुशीलन में निरंतर मेरी सहायक रहीं और अभीष्ट तक पहुँचने में मेरी पथ-प्रदर्शक भी रहीं।

अपने विद्वान पाठकों को पुनः आचार्यप्रवर ख्वाजा साहिब [उन पर ईश्वर की कृपा हो], के सत्संग में ले चलता हूँ जहाँ वह अत्यंत कृपा एक नवविवाहित युवक को सम्बोधित कर रहे हैं।

"विवाह से दूसरी हानि ह्रदय या अन्तःकरण को होती है जो उसके विश्वास को भी प्रभावित करती है, क्योंकि इस मोड़ पर उसकी चेतना में एक मात्र सत्य के इस विश्वास में कि ईश्वर सर्वशक्तिमान है, द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

ख्वाजा साहिब [ईश्वर की दयालुता उन पर हो] ने, विवाह से होने वाली पहिली हानि के अंतर्गत स्पष्ट किया कि स्त्री-पुरुष के संबंधों के मध्य वाँछित सीमाओं का निर्धारण व उनका पालन न करने के कारण यह हानि होती है कि मन बेलग़ाम घोढ़े की भांति अपने नियंत्रण में नहीं रहता। उसकी दूसरी हानि के अंतर्गत ह्रदय व अंतःकरण की निर्मलता आहत होती है। अतः सूफी संतों ने चेतना व समर्पण को अपनी साधना में प्रथम स्थान दिया है जिससे ह्रदय चक्र या अंतःकरण स्वच्छ रहता है।

विश्वास की द्वन्द्वमय अवस्था राह का सबसे बड़ा काँटा है जो कार्य को संपन्न नहीं होने देता। ह्रदयरूपी दर्पण की स्वच्छता जितनी आवश्यक है, उसका ठहराव भी उतना ही आवश्यक है, क्योंकि गतिमान दर्पण में सही प्रतिबिम्ब नहीं दिखता। द्वन्द्वावस्था की स्थिति दुर्भाग्यपूर्ण है।

भ्रम एक पाप है और यही द्वन्द्व है जो भाव की एकाकी स्थिति के विपरीत है। भ्रम क्या है? एक स्थान पर मात्र एक से अधिक भावों या विचारों का एकत्रित हो जाना और इसके साथ पूर्व स्थिति के विश्वास का मिट जाना। और, भ्रमरहित स्थिति होती है - एक ईश्वर के अलावः दुसरे का विश्वास न होना; एक शक्ति के अतिरिक्त अन्य किसी शक्ति का आभास दृष्टिगोचर न होना। यही शक्ति [Power] है एवँ यही चित्त का ठहराव है। अब विद्वान पाठकगण कृपया ख्वाजा साहिब [ईश्वर की दयालुता उनपर हो], की वाणी पर ध्यान दें और उसका सूक्ष्म विश्लेषण करें।

पहले स्वयं एक था। एक के पोषण की चिंता थी। अब दो हो गए और आगे के क्रम को गति मिली। पोषण एवं व्यवस्था की चिंतारूपी कठिनाइयों की वृद्धि होने लगी। विश्वास का द्वंद्धीकरण क्या है? स्वयं अपना ध्यान व अपना विश्वास, दो के हो जाने पर विश्वास का बटवारा हो गया। विश्वास का बटवारा ह्रदय या अंतःकरण की क्षति है। पोषण व व्यवस्था की चिंता क्या है - मात्र विश्वास का एक से हट कर दूसरे में पैदा होना और ऐसी स्थिति में, "जो एक मात्र पोषक व व्यवस्थापक है" - उस सर्वशक्तिमान परमात्मा एवं उसके प्रति विश्वास में क्षति होना। ह्रदय जो एक स्थान पर जमा हुआ है, वह स्थिति अब नष्ट हो गयी।

अब सुने कि विश्वास या समर्पण क्या है? ग्रामीण व क़ानून को न जानने वाले नगर-वासी भी अपनी टूटी-फूटी भाषा में, अपनी सारी स्थिति 'वकील' को सुना देते हैं व वकालतनामे पर हस्ताक्षर करने के बाद अपने पूरे मामले को उन पर भरोसा करके छोड़ देते हैं और स्वयं चिंता-

मुक्त हो जाते हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि उनको विधि सम्बन्धी जानकारी कुछ भी नहीं, अतः स्वयं उसकी पैरवी नहीं कर सकते हैं। वे चिंताविहीन भाव से उस पर ऐसा भरोसा करते हैं कि वह जो चाहे या जैसा ठीक समझे करे।

इस प्रकार हमारा सभी का पालन पोषण करने वाला मात्र ईश्वर ही है और वही सच्चे अर्थों में हमारा वकील है। जो पुरुष सच्चे ह्रदय से उसको अपना वकील समझते हैं वे शांत हैं। अपने वकील के भरोसे अपने मान-सम्मान, जान-माल इत्यादि सब कुछ को छोड़ देना एवं स्वयं चिंता मुक्त हो जाना, यही सच्चे अर्थों में 'समर्पण' है। मानव अपनी जीविका की चिंता में रात-दिन बावला रहता है और समझता है कि वह स्वयं ही इसकी व्यवस्था करेगा। यह विश्वास की भावना या समर्पण के विपरीत है। इस प्रकार ईश्वर-आधीनता में अंतर आ जाता है, यह ह्रदय की हानि है।

इसके बाद हज़रत ने फ़रमाया कि इसका निदान यह है कि जीविका के लिए प्रयत्न तो करें किन्तु परेशान न हों। इसका कारण स्पष्ट कि वह ईश्वर ही सारी सृष्टि का पालन करने वाला है, वह हमारी भी चिंता करेगा।

आप यह भी फरमाते हैं कि इस वक्तव्य का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि ईश्वर को वकील बना कर अकर्मण्य हो कर बैठे रहें, क्योंकि यह ईश्वर-परायणता नहीं है। स्वामी की इच्छा यह है कि हाँथ-पैर हिलाना चाहिए। ईश्वर में क्रिया शक्ति है। वह समस्त चेतन सत्ता का स्वामी है। समष्टि चेतन की सत्ता में स्फूर्ति है, क्रिया है और कोई बाधा नहीं है। अतः मानव बिना कर्म व स्फूर्ति के कैसे रह सकता है; और यदि ऐसा करता है अर्थात कर्म से विमुख होता है तो अनेकों भावी दुखों का कारण स्वयं बनता है। धर्म-शास्त्र के अनुसार, जीविका होनी ही चाहिए। जीविका साधन-द्वार है, जिसे बंद करके बैठना नहीं चहिये।

इसी विषय पर भगवान कृष्ण गीता के दूसरे अध्याय के 48 वें श्लोक में अर्जुन को आदेश देते हैं -

"योगस्थ: कुरु कर्माणि संग त्यक्त्व धनञ्जय।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते"। ।
[गीता 02 - 48]

अर्थात - "हे धन्जय ! तू आसक्ति को त्याग कर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धिवाला हो कर योग में स्थित हुआ कर्तव्य-कर्मों को कर, समत्व ही योग कहलाता है"

विवाहोपरांत तृतीय कुप्रभाव आत्मा पर पड़ता है। कारण यह है कि आकर्षणशक्ति क्षीर्ण व हीन हो जाती है। सुरत [तवज्जः] उस मौलिक उद्गम स्रोत से सात्विक प्रकाश की धार को आत्मा की ओर निरंतर प्रवाहित कराती है। जब यही सुरत [तवज्जः] लौकिक आकर्षणों से अनुबंधित हो जाती है तो, उसका प्रवाह अभी तक जो ईश्वरीय स्रोत से जुड़ा हुआ था, मंद व क्षीर्ण पड़ जाता है। सत्य पद की धारा एवं किरणे सीधी आत्मा पर पड़ती व उसे चिर-आनंदित किया करती हैं। इस अपार प्रवाह का साधन, सुरत [तवज्जः] है जो एक प्रकार से परमात्मा का प्रतिबिम्ब है। जब यही सुरत अपना सम्बन्ध उस सतपुरुष के ध्रुवपद से हटा कर प्रकृति के प्रकाशों को खींचने में लग जाया करती है तो अनायास ही उस वास्तविक प्रकाश [परमात्मा] के आने में कमी होने लगती है, आत्मा को यही तीसरी हानि पहुँचती है।

संभवतः मेरे भावी पाठकों के मन में कुछ संशय के बीज अंकुरित हो रहे होंगे कि अभी-अभी तो लालाजी अपनी 'सहधर्मिणी' के बारे में वर्णन करने की भूमिका बाँध रहे थे कि अनायास ही यह उन्हें क्या सूझा कि नीरस दर्शन हमारे सामने खोल कर रख दिया। मेरा पुनः नम्र निवेदन है कि इन पृष्ठों को कृपया बार-बार पढ़ें। कारण स्वयं ही स्पष्ट हो जाएगा। जो नवयुवक अभी-अभी आपके सामने उपस्थित थे, उनकी कुछ दिन पूर्व ही शादी हुयी है और वोह एक अपरिचित महिला के संसर्ग में पधारे हैं। यदि आप एक साधक हैं तो यह कुछ विशेष बातें, जो अभी-अभी चर्चा के मध्य आईं हैं, किसी भी लौकिक रूप से सुन्दर व आकर्षक वस्तु के संपर्क के समय आपको एक समुचित मार्गदर्शन व चेतना देंगी। उन समस्त वस्तुओं का आकर्षण आपको साधना पथ से लेश-मात्र भी विचलित न होने देगा, यह मेरा निजी अनुभव है। ईश्वर आपका मार्ग-दर्शक हो।

मेरी छवि जो आपके मानस-पटल पर स्पष्ट है - एक ऐसा व्यक्तिव जो जन्म से हिन्दू किन्तु दिखने में सजीव मुसलमान। मझला क़द। गेहुआँ रंग। माथा चौड़ा, आँखे चमकीली। बाल पर्याप्त कोमल, केवल आगे का एक दांत शेष दांतों से कुछ बढ़ा हुआ। मूंछे व दाढ़ी दोनों बढ़ी हुयी। दाढ़ी छोटी सी घनी। कान न बड़े न छोटे। शरीर मामूली, न दुबला न मोटा। सभी कुछ अपने प्रियतम में खोया खोया सा।

किन्तु इसके ठीक विपरीत, वोह जो मेरी धर्मपत्नी हैं, भयङ्कर हिन्दू-वैष्णव परम्परा व संस्कारों में पली एवं रोम रोम में पवित्रता से ओत-प्रोत, लौकिक भी व पारलौकिक भी। वह मेरी

आत्मकथा की नायिका हैं।

बरेली - लखनऊ रेलमार्ग पर स्थित एक प्राचीन स्थल है - शाहजहांपुर। इसी जनपद में एक स्थान है - 'कँवलनयनपुर'। यही मेरा 'जनकपुर' है, [ससुराल; in-laws' house] श्वसुरमंदिर है। मेरे श्वसुरजी यहीं के एक रईस थे, उनका सुनाम था श्री यदुनाथ सहाय कंचन।

इस क्षेत्र पर मुग़लिया सल्तनत की स्पष्ट छाप आज भी दृष्टिगोचर होती है। आम लोग भले ही समर्थ न हों किन्तु बाबू यदुनाथ सहाय कंचन जैसे यशस्वी ज़मीदार के घर-परिवार में मॉस-मदिरा का भरपूर चलन हैं, बड़े-बड़े लोगों के घर जो भी अच्छा-बुरा चलन में होता है, सभी की इफ़्रात [प्राचुर्य] हैं । किन्तु मेरे हिस्से में आयी इस परिवार की 'लाड़ली' [सुश्री बृजरानी] की परवरिश इस वातावरण से बहुत दूर, की एक रियासत, 'सकीट', सँयुक्त-प्रान्त [United Province, - वर्त्तमान समय में यह उतरप्रदेश के बृज - क्षेत्र, जिला एटा के अंतर्गत आता है] के राजा के परिवार में अपनी 'ननिहाल' [Family-house of maternal grandfather] में हुयी थी। वहाँ की रहनी-सहनी और संस्कृति ठीक इसके विपरीत थी। मेरी धर्मप्रिया के अनुसार उनके 'मामा जी' [Maternal uncle] के परिवार में संतानें जन्म तो लेतीं थीं किन्तु अधिकतम, अल्पायु में ही परलोक सिधार जातीं।इसी कड़ी में उनके मामा जी अपनी भान्जी [बड़ी बहिन की बेटी - बृज रानी] को 'सकीट' ले आये और विवाह योग्य हो जाने तक वे यहाँ पर अपनी 'ननिहाल' में ही रहीं। 'राजासाहब' के घर में समस्त प्रकार की राजसी सुख-सुविधाएँ थीं, कोई अभाव नहीं था। उनकी लाड़ली 'धेवती' [सुश्री बृजरानी] ने उन्हें 'मामा जी' कह कर कभी सम्बोधन नहीं किया, वे उन्हें "राजा साहिब" के सम्बोधन से ही स्मरण करतीं हैं। समस्त प्रकार की धन-दौलत के बावजूद भी राजासाहिब के घर का वातावरण और खान-पान अत्यंत ही साधारण और सात्विक था जिसका प्रभाव उनकी लाड़ली भान्जी [बृजरानी] के ऊपर पड़ा और

उसी अनुशासन को उन्होंने अपनी संतानों पर लागू रक्खा, मैं स्वयं भी उसी में ढल गया। बाद में राजा साहिब को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुयी, जिसका शुभनाम इन्द्रनरायन सक्सेना है। कालान्तर में उसी जागीर के वे भी राजा बने। वे भी बहुप्रतिभासम्पन्न और संयमी हैं। ब्रिटिश शासन की ओर से उन्हें भी 'रायबहादुर' के ख़िताब से नवाज़ा गया।

वोह पवित्रात्मा, श्रद्धा व प्रेम दोनों की मानों मूर्तरूप, चिरसुहागन हैं। संसार की किसी भी महासती से उनकी यदि मैं तुलना करूँ तो अतशयोक्ति न होगी। उन सारे के सारे गुणों का जो एक पतिव्रता सती स्त्री में होने चाहिए ऐसा सुन्दर समन्वय, मैंने अन्यत्र नहीं देखा। वोह मेरी चिरसंगिनी, मेरे जीवन यज्ञ में हर आहुति पर स्वयं समर्पण की मूर्ति। सत्यमार्ग की ओर प्रेरित करने वाली स्वयं सत्यता जिन्होंने मुझे सदा-सर्वदा सचेष्ट बनाये रक्खा।

"या पति हरिभावेन भजेच्छीरिव तत्परा।
हर्यत्मना हरेलोके पत्या श्रीरिव मोदते। ।
[श्रीमद भागवत 7 - 11 -29]

अर्थात - जो लक्ष्मी के सामान पतिपरायणा हो कर अपने पति की उसे साक्षात भगवान का स्वरुप समझ कर सेवा करती है, उसके पतिदेव बैकुंठ लोक में भगवतसारूप्य को प्राप्त होते हैं। और वह लक्ष्मीजी के सामान आंनदित होती है।

शुभा व सुकला के समान मेरी धर्म-रूपा अर्धांगिनी प्रेम-मुग्धा हैं तथा मुझसे दूर रह कर वह जीवित नहीं रह सकती हैं। मैं उनके ह्रदय को जानता हूँ। आदर्श पति-पत्नी के शीलयुक्त एवं प्रेम-पूर्ण अपने दाम्पत्य जीवन के कुछ संस्मरणों को सुनाने से पूर्व मैं एक रहस्योद्घघाटन करूँगा। आप सुनें।

"लछिमन गए बनहिं जब, लेन मूल फल कन्द।
जनकसुता सन बोले, बिहँसि कृपा सुख बृंद।।"
[रामचरित मानस 03 -23]

सुनहुँ प्रिया व्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करवि ललित नर लीला।।
तुम पावक महुँ करहुँ निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा ।।
जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हिय अनल समानी।।
निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता। तैसेइ सील रूप सुबिनीता।।
लछिमहूँ यह मरम न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना।।"

राम कथा के इस प्रसंग में महात्मा तुलसीदास जी बताते हैं -

"जब लक्षमण जी बन में कन्द-मूल, फल लेने गए तब कृपा और सुख के समुद्र श्री राम जी जनक नन्दिनी से हँस कर बोले - हे सुन्दर पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली सुशील प्रिया सुनो ! मैं कुछ ललित लीला करूँगा। अतः जब तक मैं राक्षसों का नाश करूँ तब तक तुम अग्नि में वास करो। जैसे ही श्री राम ने ऐसा कहा वैसे ही सीता जी प्रभु के चरणों का ध्यान कर अग्नि में समा गयीं। सीता जी ने वहाँ अपनी छाया-मूर्ति रख छोड़ी। उसका रूप, विनय तथा शील वैसा ही था। भगवान ने जो कुछ चरित्र रचा इस मर्म को लक्षमण जी ने भी नहीं जाना।"

भगवान राम के इस चरित्र की पुनरावृत्ति मेरी भी कहानी में हुयी। जैसे शक्तिमान अपनी शक्ति से, शरीर अपनी छाया से, चन्द्रमा अपनी चांदनी से, सूर्य अपनी प्रभा से कभी पृथक नहीं हो सकता, वैसे ही मेरा अभेद्य सम्बन्ध अपनी प्राणप्रिया से रहा है।

यह घटना उस समय की है जब मेरी अंतिम संतान के रूप में एक कन्या [जिसका नाम सुशीला है] का जन्म हुए लगभग एक वर्ष ही अभी बीता था कि मेरी धर्मपत्नी को एक रात्रि स्वप्न में सूर्य के सामान तेजस्वी, मुकुटधारी, श्याम शरीर, लाल वस्त्र पहने और हाँथ में पाश लिए एक पुरुष दृष्टिगोचर हुआ। वोह बोलीं "आप कौन हैं और यहां पधारने का आपका क्या आशय है।" कांतिमान उस पुरुष ने प्रतिउत्तर में कहा - "मैं यमराज हूँ। तेरी आयु अब समाप्त हो चुकी है अतः तुझे मैं ले जाऊँगा।" उन्होंने पुनः उसको सम्बोधित किया - "भगवन ! मनुष्यों को लेने तो आपके दूत आया करते हैं ? यहाँ स्वयं आप ही कैसे पधारे?" यमराज ने उन्हें बताया - "आप स्वयं एक पतिव्रता देवी हैं एवं अनेकानेक दिव्य गुणों से संपन्न हैं। अतः मेरे दूतों द्वारा ले जानें योग्य नहीं हैं। इसी से मैं स्वयं आया हूँ।" इसके बाद यमराज मेरी प्राणप्रिया के शरीर से अंगुष्ठमात्र परिमाण वाले सूक्ष जीवात्मा को निकाल कर दक्षिण दिशा की ओर चल दिए।

प्रारम्भ से ही मेरी ब्रह्ममुहूर्त में प्रातः चार बजे जागने की आदत थी। प्रातः की पहली बैठक में सत्संग व संध्या हम एक-साथ ही करते रहे थे। अतः नित्य के आचरण के विपरीत जब मैंने

उन्हें अपनी शय्या पर ही पाया तो कौतूहल वश मैंने उनके आवरण को उघार कर देखा तो देखता ही रह गया। वोह कांतिहीन एवं मृत थीं। मैं व्याकुल हो गया और मैनें प्रथम बार अनुभव किया कि मैं स्वयं पत्नि हूँ और वोह मेरी पति थीं। मेरा संसार मानों अब सूना हो गया। मुझे अब मेरा जीवन मिथ्या जान पड़ा।

कहते हैं की एक बार किसी प्रेमोन्मादिनी गोपी को यह शंका हो गयी कि मैं जो श्री कृष्ण का ध्यान करती हूँ सो कहीं ध्यान करते करते स्वयं श्री कृष्ण न हो जाऊँ। और यदि ऐसा हुआ कि मैं श्री कृष्ण बन गयी तो फिर मुझे अपने प्रेमास्पद श्री कृष्ण के साथ प्रेमविलास का आनन्द कैसे मिलेगा। दूसरी गोपी ने उससे कहा - इसके लिए तू चिंता न कर, श्री कृष्ण के ध्यान में जब तू कृष्ण बन जाएगी तो श्री कृष्ण भी तेरे ध्यान में गोपी बन जायेंगे। प्रेमी-प्रेमास्पद का आनंद ज्यों का त्यों बना रहेगा। अतएव तू श्री कृष्ण के ही ध्यान में मग्न रह।"

मैं उनका पति, वोह मेरी पत्नी अथवा मैं उनकी पत्नी, वोह मेरे पति, सत्य जो भी हो, बिछोह की यह घड़ी मुझे अति भयंकर व दुःखदायी लगी। अंत में सद्गुरु कृपा से एक और आश्चर्य मैनें देखा। वोह पुनः जागीं - सजीव ! वोह जब उठ कर सचेत हुईं तो प्रथम नमस्कार के उपरांत उन्होंने अपना स्वप्न निवेदन किया।

उपर्युक्त पूर्व निवेदित स्वप्न में देखे दृश्य के बाद उन्होंने बताया कि, जहाँ उन्हें ले जाया गया वहाँ प्रकाश ही प्रकाश था, कुछ अन्य नहीं। एक अभूतपूर्व शांति का अनुभव होता था। एक दिव्य वाणी की भांति उनकी चेतना ने अनुभव किया कि कोई कहता है - "तेरी आयु तो अवश्य समाप्त हुयी किन्तु हमारा कार्य शेष है, तू धर्मात्मा है अतः चिरसुहागन बन। सौभाग्यरत्न तेरा पति जो सत्पुरुष है, उसकी सहायिका व पूरक बन। दिव्य आशीर्वाद तुझे प्राप्त है। तू पुनः मुक्त हो कर जा और शास्त्रोक्त कर्म कर। सतचेष्टा से तेरा मोहरूपी आवरण नष्ट कर दिया गया है। अब तू चलते-फिरते शव की भांति, स्वेच्छा से जब तक जी चाहे आसक्ति मुक्त हो कर पुनः जीवन प्राप्त कर और अंत में इच्छा-मृत्यु के सुयोग की भागी बन।" अपने स्वप्न को सुनाने के उपरांत उन्होंने एक लाल गोल चिन्ह भी मुझे दिखाया, जो उनकी कटि-प्रदेश के उत्तर-भाग में, उपर्युक्त दृश्य से विदा लेने से पूर्व, अंकित किया गया था। प्रभु की लीला अपरम्पार है। अतः आश्चर्य का प्रश्न ही नहीं। इस दिन के बाद से हम-दोनों के सम्बन्ध आपस में पति-पत्नी के अतिरिक्त कुछ और ही हो गए।

वोह अपने निष्कलंक चरित्र से हमारे सत्संग-समाज को पवित्रता प्रदान करने वालीं है। उनमे लोकोत्तर पतिव्रत, शील, करुणा, अनुपम क्षमा, वात्सल्यता, सहज सौंदर्य, सदाचार, अदम्य

साहस, त्याग, संयमनियम एवं चरित्र की दृढ़ता इत्यादि गुण विद्यमान हैं। मैं जिस क्रांति की व्याख्या को जीवन देना चाहता हूँ, उसे वोह भली भांति समझती हैं व मेरे हर कार्य में सहायक बनना चाहतीं हैं। वोह मेरी पत्नी के रूप में मेरे लिए भार या दुःखदायिनी नहीं बनना चाहती हैं। वह मेरे दुःखों को घटाने में समर्थ होती हैं एवं यथासंभव मेरा मन बहलाती हैं। मुझ साधक को उत्तरोत्तर सफलता के सोपान पर देखना चाहती हैं। तदन्तर उन्होंने एक समय नियम पूर्वक ब्रह्मचारिणी बन कर मेरी सहायिका बनने का वचन भी दिया एवं आज भी उस पर आरूढ़ हैं। मुझ फ़कीर की कुटिया में रहते-रहते प्रेमी प्रेमास्पद के आनंद में वोह निरंतर लीन हैं। अपने पिताजी के घर के राज्योचित सुख-वैभव इत्यादि को जो मैं आजीवन उन्हें न दे सका, मानों वह भूल ही गयी हैं।

अब वह पूर्ण योगिनी हैं। क्षमा का गंभीर समुद्र उनके विशाल ह्रदय में विद्यमान है। उनके चरित्र की दृढ़ता में हिमालय की अडिगता दृष्टिगोचर होती है।

अवस्था में वह मुझसे कुछ माह बड़ी हैं। वह अत्यंत ही गंभीर व पवित्रता के नाम पर मानों उसकी साक्षात मूर्ति हैं। अनेकों कर्मकांडी आचरण उनमें संस्कार से ही विद्यमान हैं। माँस-मछली का सेवन तो क्या, अनेक बनस्पतियाँ जिनमे किसी भी प्रकार उनकी समता का बोध होता हो, जैसे कटहल, शलजम व मसूर की दाल इत्यादि का सेवन भी उनके लिए संभव नहीं है। इस प्रकार उनकी गभीरता, पंथ के प्रति कट्टरता, आचरण में निर्भीकता एवं निर्द्वंद्वता इत्यादि असाधारण चारित्रिक गुणों के सन्दर्भ में पर्याप्त समय तक उनके पूर्ण समर्पण के उपरांत भी, मैं अपने अंतर में उनके प्रति संकोच के अंकुरों का पोषण करता रहा। यही कारण था कि वह तो अपनी बात मुझसे खुल कर कह लेतीं किन्तु मैं अभी तक अपने जीवन का एक बहुत बड़ा सत्य उनसे छिपाये रहा। यह पाप था एवं उनके प्रति अन्याय भी।

मेरे हज़रत क़िब्ला मौलवी फ़ज़्ल अहमद खां साहिब रायपुरी मेरे सदगुरुदेव, मेरे पथ-प्रदर्शक एवं सर्वस्व हैं। मुझे एक घड़ी ऐसा भी बोध हुआ कि इन सारे भावों के साथ जिनमें चित्त आत्मानन्द में मग्न हो कर हिलोरें लेता है, न जाने कहाँ से एक असत्य प्रवेश पा गया। मैं उसे दिन-रात खोजता किन्तु उसका अस्तित्व समझ न पाता। मैं उसे खोजते-खोजते थक गया किन्तु उसका ठिकाना न मिला। मैं थक कर यों बैठ रहा मानों अब गया, तब गया। मुझे मेरी साधना व्यर्थ ही प्रतीत लगने लगी जिसका मात्र कारण था, मेरे अंतर में उस असत्य का पोषण। मुझे इस मझधार से निकालने वाली मेरी धर्म-प्रिया के अतिरिक्त और कोई न था। मुझे लगा कि कोई मुझे धिक्कारता, मुझ पर चोट करता एवं मुझे आहत होते देख मुझ पर

अट्टहास करता। मुझे लगा इस जगत में मुझसे अधिक दुर्बल अन्य कोई दूसरा नहीं। इसी ताड़ना के बीच मुझे ऐसा भी आभास हुआ मानो मेरे अंतर का चोर दूसरा और कोई नहीं किन्तु स्वयं मेरी एक हीन भावना थी, जो मुझे नहीं ज्ञात, कब और कहाँ से, एक झूटी साम्प्रदायिक-चेतना [pseudo-sect consciousness] के रूप में उदय हो गयी थी। मेरे मस्तिष्क के अचेतन पटल पर न जानें कहाँ से यह हीन-भावना प्रवेश पा गयी कि मेरे सदगुरुदेव जिन्हें मैं अपना सर्वस्व एवं पथप्रदर्शक मानता हूँ जिनपर अपने दीन व दुनियाँ दोनों का भार डाल चुका हूँ एवं लौकिक रूप से जिनसे दीक्षा [बयत] भी ले चुका हूँ वोह 'मुसलमान' भी हैं। यह विरोधाभास ही नहीं संसार का सबसे बड़ा पाप था।

मैं उस महामानव को जो समस्त साम्प्रदायिक व धार्मिक बंधनों से मुक्त थे, अपनी तुच्छ-बुद्धि के कारण मात्र एक मुसलमान ही समझता रहा - मुसलमान मात्र, एक साम्प्रदायिक ! उस समय तक मैं सही अर्थों में इस्लाम को समझ न पाया था। न मैं हिन्दू-दर्शन से ही परिचित था न इस्लाम से। मेरी पोल जब खुली तो मानों पल झपकते सारा दर्शन दृष्टिगोचर होता सा प्रतीत हुआ। जिन्हें मैं कट्टर साम्प्रदायिक समझता था उनके बारे में मेरे इस सम्पूर्ण असत्य आचरण को उतार फेंक कर मुझे नंगा कर देने वाली वह सती ही थीं जो सौभाग्य से मेरी धर्मपत्नी हैं।

अब तक यह मेरा भ्रम था, मेरे जीवन का सबसे बड़ा असत्य, सबसे बड़ा पाप। मेरे अंतर का चोर यह कहता था कि तू जिस मार्ग का अनुगामी बना है, उसको दर्शाने वाला एक मुसलमान है। तेरी प्राणप्रिया संसार में जिसके अतिरिक्त तेरा कोई नहीं, कट्टर हिन्दू संस्कारों में पली व हिन्दू संस्कृति की अनुगामिनी है। जब उसे ज्ञात होगा कि उसका जीवनसाथी एक मुसलमान की शरण में जा चुका है तो उसके ह्रदय पर क्या बीतेगी। इन्ही हीन विचारों में घिरा मैं एक ऐसे दुराहे पर खड़ा था जहाँ कि मेरा विवेक मुझे कोई मार्ग-दर्शन करने में असमर्थ था।

संसार के सबसे बड़े कायर बने मैनें अपना सम्पूर्ण साहस जुटा कर अंतर में निश्चय कर ही लिया कि परिणाम चाहे जो भी हो, मैं अब इस भेद को भेद न रहने दूंगा। अपनी सारी कायरता को साहस में परिणित कर जब मैं अपनी सहभागिनी के समक्ष उपस्थित हुआ तो मेरी मानसिक स्थिति एक चोर से भिन्न न थी। चोर, एक ऐसा चोर जो मानों आत्मसमर्पण के लिए प्रस्तुत था। मैंने अपनी सारी कहानी उनसे कह डाली एवं उनके प्रति अपने अंतर् में पल रहे पाप का भी वर्णन बाल-भाव से कर डाला।

वह अभी भी वैसी ही शांत व गंभीर थीं। मुझ पर उस क्षण जो बीत रही थी, उस सबसे मानों वोह अनभिज्ञ थीं, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। एक विद्वान् न्यायाधीश की भांति मेरी सारी व्यथा सुन ली तथा तत्पश्चात अपना अत्यंत ही संक्षिप्त सा निर्णय सुना दिया - "यह तो आपने बड़ा ही अच्छा किया।" और एक चिर अनुगामिनी की भांति साग्रह निवेदन भी किया - "मुझे भी उन परम संत की सेवा में ले चलें। मैं आपके चरणों की दासी हूँ। मेरा जीवन भी सफल करें। एक नारी का धर्म तो उसका पति ही होता है, अन्यत्र कुछ नहीं। मुझ दासी के बिना आपका मनोरथ सिद्ध न होगा। शास्त्र की ऐसी मान्यता है।"

मैं अब अपने अंतर मन को भूल उन्हें आनंदित होते देख स्वयं भी आनंदित हो रहा था। उन्होंने मुझे मात्र डूबने से ही नहीं बचाया, प्रतुत मेरा मार्ग-दर्शन भी किया। उनका मूक किन्तु सजीव भाव मेरे चित्त में उतर रहा था - "संतों की कोई जात नहीं होती, उनका कोई वर्ण नहीं होता, वे तो सारे बंधनों से मुक्त होते हैं।"

अनेकानेक जन्मो में करोडो वर्ष की तपस्या के फलस्वरूप भी जो स्थिति दुर्लभ होती है, वह भगवतकृपा से पल झपकते यों ही प्राप्त हो गयी जिसका मैं अधिकारी नहीं था। सद्गुरुप्रताप से मेरा एक बहुत बड़ा संस्कार कट गया।

मैं उनकी हठ पर प्रातः जब उन्हें अपने सद्गुरु प्रासाद में ले गया तो वे बड़े ही प्रसन्न हुए। अनजाने में मुझ दास से कुछ ऐसा बन पड़ा जो उन्हें भा गया। सारे दिन हमारी वहां आव-भगत होती रही। हर घड़ी वोह हमारी गुरु-माता से कहते न थकते - "अरे देखो घर में बहू आयी है। बच्चे आये हैं" और उनके अनेकानेक दिए गए निर्देशों का पालन कर दिए जाने के उपरांत भी वोह कहते - "हमारे आज कैसे पुण्य जगे हैं कि बेटियाँ भी हैं, बच्चे भी हैं। हमारा घर आज मालिक ने खुशियों से भर दिया है। इनके लिए चूड़ियां लाओ, पूड़ियाँ तलो। यह भी क्या याद करेंगी कि हमारी सास का घर है।" वोह मानो प्रेम-विभोर हुए जा रहे थे। मैं भी उस उमड़ते हुए दया व प्रेम के सागर में डुबकियाँ लगाता रहा। ऐसा प्रेम-मग्न उन्हें इससे पहले कभी नहीं देखा था। मानवता - मानवता को गले मिलती। आत्मा अपने मूल तत्व में मिलने को उन्मुक्त हो रही थी।

इसी प्रेममयी वातावरण में उनके पावन चरणों में अब हम दोनों आ गए। अब तक मैं अकेला ही था। यही जीवन यज्ञ का उपहार था। मेरे हज़रत क़िब्ला ने उन्हें भी बैत फ़रमाया। उन्हें भी दीक्षित किया। यह दिन हमारे जीवन में एक महा-पर्व के समान था। अविस्मरणीय - कभी न भूलने वाला।

राधा और कृष्ण का संयोग यही है। जहाँ राधिका की, भगवान कृष्ण आह्लादित [Elate] करने के लिए, मुग्ध करने के लिए ही सारी चेष्टाएँ हैं। इसी प्रकार कृष्ण की भी सारी चेष्टाएँ राधा को मुग्ध करने के लिए हैं। दोनों की यह परस्पर चेष्टाएँ ही इनकी प्रेम-लीला हैं। पारस्परिक आमोद-प्रमोद और इस प्रेम की वृद्धि करने वाली लीलाओं, से प्रेम जागृत होता है। इन प्रेम लीलाओं का वर्णन न तो भक्त ही कर सकते हैं और न भगवान ही। यह वाणी के विषय-क्षेत्र से परे है। परस्पर प्रेम-साम्य होने के कारण यहाँ आदर सत्कार नहीं है। जब तक आदर-सत्कार का संकोच है तब तक प्रेम में कमी होती है। जहाँ दोनों का सम भाव है, एकी-भाव है, वही प्रेम भाव है। यहां उस एकी-भाव में कौन बड़ा है और कौन छोटा। ऐसे ऐकी-भाव में स्थित हो कर भगवान् का भक्त जो कुछ चेष्टा करता है, वस्तुतः वोह भगवान में ही क्रीड़ा करता है।

मैनें भक्तों के अनेक चरित्र पढ़ें हैं। इसी परंपरा की श्रृंखला में एक आप्त जन ऐसे भी हुए कि जिन्होंने अपने प्रियतम, अपने सदगुरुदेव के मुखमण्डल को मात्र एक बार निहारा और निहारते ही रह गए। जब दर्पण देखा तो उसमें अपने प्रतिबिम्ब के स्थान पर उन्हें ही मुस्कराता पाया। मुझे गर्व है, अनेकानेक कृपा कर मेरे सदगुरुदेव ने मुझे भी इसी परम्परा की श्रृंखला में अपनाया।

मेरी अवस्था अभी लगभग बीस या इक्कीस वर्ष की ही थी, मैं निर्द्वन्द्व, निरंतर अपने प्रियतम में लीन, ऐसा अनुभव करता, मानों वह ही चलते-फिरते हैं, वह ही उठते-बैठते हैं, अनेकानेक जीवन की लीलाएं उन्हीं के द्वारा संपन्न हो रहीं हैं और मेरा यह अस्तित्व भी अब उन्हीं का है, मेरा नहीं।

एक बार की घटना है कि मैं प्रेमास्पद प्रियतम में लीन, बनस्पति-विक्रय केंद्र में कुछ बनस्पतियाँ क्रय कर रहा था। बिक्री केंद्र की स्वामिनी एक कुँजड़िन थी जिसके पास, मैं कुछ क्षण बनस्पति [सब्ज़ी] लेते हुए रहा। उसके निकट ही लगभग पंद्रह-सोलह वर्षीय उसकी युवा पुत्री थी जिसे मैंने अभी तक न देखा था, किन्तु वह मुझमें मेरे प्रियतम को अपलक निहार रही थी और निहारती ही गयी। मेरी तन्द्रा तो तब टूटी जब उसने अनुरक्त हो, मेरी ओर संकेत करते हुए अपनी माँ को सम्बोधित किया - "अम्मा मैं शादी इनसे ही करूंगी।" देखने वाले उसके इस निष्कपट भाव पर स्तम्भित से रह गए। मैनें उसकी ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया और घर चला आया। किन्तु उस सुकुमार्या ने एक घड़ी जिस छवि के दर्शन किये थे, उसी में लीन हो गयी। घर जा कर अपनी माँ से उसने वही हट पुनः दोहरायी और यह भी निवेदन किया कि वह अब उनके [इस सेवक] बिना जीवित नहीं रह सकती। घर वालों ने उसे भरसक

समझाने का प्रयास किया, किन्तु उस पर कोई असर न पड़ा। वह निरन्तर विरह की अग्नि में तपती, बिलखती रहने लगी। एक दिन दिन उसके घर वालों ने ऐसा अनुभव किया कि अब यह जीवित न बचेगी। इसकी सूचना मुझे दी गयी। उसकी माँ ने बड़े ही विनीत भाव से मुझसे याचना की कि उसकी एक मात्र पुत्री की जीवन-रक्षा के लिए मैं उससे विवाह कर लूँ। एक घड़ी मुझे ऐसा लगा कि उसकी जीवन-रक्षा मेरा धर्म है और इसके लिए यदि मैं उससे विवाह कर लूँ तो इसमें हानि भी क्या है। अपने अंतर के इस उभय-सङ्कट [dilemma] को मैंने अपनी चिर-सहयोगिनी से भी निवेदन कर दिया। कुछ क्षण शान्त रहने के पश्चात् उन्होंने मुझे पुनः सुपथ की राह दिखाई और कहा - "इसका सही उत्तर तो वह ही दे सकते हैं जिनकी यह लीला है। आप सारा वृत्तान्त हुज़ूर महाराज की सेवा में उपस्थित हो कर निवेदन करें और जो आज्ञा हो उसका अनुपालन किया जाय।" मैनें ऐसा ही किया। मेरे सम्पूर्ण वक्तव्य के निवेदन पर प्रथम तो वह मुस्कराये फिर गंभीर मुद्रा में बोले - "बेटे पुत्तू लाल ! कैसी बातें करते हो। तुमने यह भी सोचा होता कि मेरे बहू व बच्चों का क्या होगा ? तुम्हारी दलील बेबुनियाद है। तुम इस झंझट में न पड़ो। यह तुम्हारे लिए किसी प्रकार भी उचित नहीं है। और यदि वह लड़की मर भी जाती है तो तुम इसकी चिंता क्यों करते हो। तुम जैसे अपने प्रियतम में लीन व अत्यंत पवित्र व्यक्ति की याद में यदि अपना शरीर छोड़ देती है तो उसके हित में इससे उत्तम और क्या हो सकता है।" और ऐसा ही हुआ।

मेरी धर्मप्रिया की दिखाई युक्ति से पुनः कल्याण का मार्ग प्रशस्त हुआ। प्रेमी मूक रहते हुए भी भाषण देता है। मानों उसका अंग-अंग बोलता है। उसके सभी अवयवों से मानों एक शुद्ध संकेत, एक निर्मल ध्वनि निकलती है।

क्षमा का भी गंभीर समुद्र उनके विशाल ह्रदय में विद्यमान है। जगत जननी के रूप में उन्होंने अनेकों बार मुझे क्षमा किया है। माँ के रूप में उनकी मर्यादा अभेद्य रही है। वात्सल्य रस के अपार भण्डार के दर्शन उनके अन्तःस्थल में अनेकों बार मैनें अपने दाम्पत्य जीवन के आमोद-प्रमोद भरे अविस्मरणीय क्षणों के मध्य किये हैं।

मेरे स्वामी ने, मुझ दास को कुछ ऐसा कार्य सौंपा हुआ है कि जिसकी तल्लीनता में, मैं हर क्षण कुछ ऐसा व्यस्त रहता हूँ, ऐसा खोया रहता हूँ कि कुछ भी तो दृष्टिगोचर नहीं होता। अपने सर्वस्व, अपने जीवन-प्राण अपने स्वामी के उक्त कार्य के लिए कुछ विशेष प्रकार के व्यक्तिओं को मैनें चुना है। मै रात-दिन उन्हीं की चिंता में लीन रहता हूँ। मुझे पूर्ण ज्ञान है कि इस निर्माण-कार्य में थोड़ी सी भी त्रुटि के फलस्वरूप मुझे क्षमा न किया जायेगा। मैं अत्यंत

कठोर परिश्रम करता हूँ, निरंतर लीन, किन्तु इसके उपरांत भी संतुष्ट नहीं हूँ। समय बहुत थोड़ा है और कार्य अत्यंत गहन व विशाल है।

एक समय अपनी साधना के मध्य मैंने एक साधक को ऐसा पाया कि मानों वोह मेरा सारा खेल ही चौपट कर देगा। मैं निरंतर उन्हें ताड़ना देता, समझाता किन्तु वह राह पर न आये। मेरा सारा परिश्रम मिथ्या जान पड़ा। मैं थक गया। मुझे ऐसा आभास होने लगा, कहीं इसका कुप्रभाव दूसरों पर भी न पड़े। एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है। इन्हीं सारे विचाओं के मध्य मैंने निर्णय ले लिया कि इन्हें अपने समाज से वहिष्कृत कर दिया जाय। संभवतः यही इनके लिए उचित हो।

मैंने ऐसा ही किया। वह निकल तो गए किन्तु दूसरे द्वार से घर के अंदर प्रवेश पा गए। उन्होंने सारा वृत्तांत मेरी चिर-अनुगामिनी धर्मप्रिया से कह सुनाया। यहाँ वह माँ हैं ! जगत जननी हैं !! विशाल हृदया हैं !!! यहाँ संसार की समस्त धाराएँ आश्रय पाती हैं। उसकी सब सुनी गयी, मेरी एक भी नहीं। मैं वहाँ था ही कहाँ ? उससे कहा गया, "यहीं बैठो और चाहो तो अंदर कोष्ठ में जा कर विश्राम करो।" उसके समान अब कौन भाग्यशाली था।

सत्संग की समाप्ति पर मैं अंदर पहुँचा। अभी मेरा आक्रोश समाप्त न हुआ था। मैंने गृहस्वामिनी से भी कह डाला - "मैंने अमुक व्यक्ति को 'सत्संग' से निकाल दिया है। अब वह पुनः प्रवेश नहीं पा सकते।" मेरी बात को आगे बढ़ाते हुए बिना मेरी मुख-मुद्रा का निरीक्षण किये ही, उन्होंने मानो एक अट्टहास सा किया।

एक सुखद व्यंग था - "आप पिता हैं, आप निकाल सकते हैं, आपको अधिकार है। मैं माँ हूँ, मैं ऐसा नहीं कर सकती।" उनके इस वर्चस्व में जब मैंने उन्हें देखा और, उनकी जो अद्वितीय आभा व चिर सुखद कांति दृष्टिगोचर हुयी, उससे एक बार कुछ लज्जित सा हो गया।

"सिय सुन्दरता वरनि न जाई।" उनका ऐसा अपूर्व सौंदर्य ! ऐसी अपूर्व शांति !! मुझे इसका ज्ञान न था। उन अपार श्रृद्धा की पात्रा का पद निश्चय ही बड़ा है। मेरा विचार ही परिवर्तित हो गया; मैंने कहा - "अच्छा तो उनसे कहलवा दें कि वह कल से आया करें।" उनका शुष्क विनोद अभी भी मुखरित हो रहा था - "वोह गए ही कहाँ हैं।" माँ की ममतामयी गोद से जिस प्रकार एक अबोध बालक निकल कर आता है, उसी प्रकार वह निकले और आ कर वोह मुझसे लिपट कर बिलख-बिलख कर रोनें लगे। और मैं भी। इस अविरल अश्रु-धारा के मध्य उनका सारा

विकार, सारा मल ऐसा धुल गया, मानो था ही नहीं। उनका निर्मल मन अब मुझे अति प्रिय है। वह मेरे इस विशाल परिवार के अंतरंग सदस्य बन गए हैं।

मुझे स्मरण हो आया जो एक दिन ईशु ने कहा था - "एक आदमी के पास एक सौ भेंड़ें थी, उनमें से, एक खो गयी। तब उसने शेष निन्यानवे भेंड़ों को पहाड़ी पर चरने के लिए छोड़ दिया और उस भेंड़ के लिए परेशान हो गया और स्वयं वह उस खोयी हुयी भेंड़ को ढूंढने चला गया। जब उसने उसे पा लिया, तब वह उस भेंड़ के मिल जाने पर इतना प्रसन्न हुआ जितना कि अन्य निन्यानवे भेंड़ो से नहीं हुआ, जिसने उन्हें नहीं खोया था।" तब ईशु ने कहा - "तुम्हारा पिता परमेश्वर जो स्वर्ग में है ऐसा ही है।"

इस रूप में अपने प्रेमी भाइयों के प्रति अपेक्षित व्यवहार की शिक्षा ले कर मैं अनुग्रहीत हुआ। मन ही मन मैंने अपनी सहधर्मिणी के इस इस उदार गुरु-स्वरुप के प्रति अपनी अपार श्रद्धा निवेदन की। मेरे हज़रत क़िब्ला, किस प्रकार घर-बाहर मेरा मार्गदर्शन कराते हैं, यह देख कर गदगद हो जाता हूँ। उनके निर्वाह कर लेने से ही बात बनती है -

"वचन - करम हिय कहौं राम सौंह किये,
तुलसी पै नाथ के निबाहेई, निबहैगो।"
[विनयपत्रिका 259]

==========

15. मेरे आत्मज

क्रम की दृष्टि से गृहस्थ-आश्रम द्वितीय आश्रम है, किन्तु महत्व की दृष्टि से इसका प्रथम स्थान है। गृहस्थ-आश्रम का आदर्श है - धर्म, अर्थ, तथा काम [त्रिवर्ग] के विषयों में पति-पत्नी का पूर्ण सामंजस्य तथा एक-दूसरे के प्रति उत्कट विश्वास।

भगवान वेदव्यास ने गृहस्थ-आश्रम को सब आश्रमों से अधिक महत्वपूर्ण और पावन बताते हुए कहा है कि -

सर्वाश्रमपदेऽप्याहुर्गार्हस्थ्यं दीप्त निर्णयम।
पावनं पुरुष व्याघ्र यद्धर्म पर्युपासते ।।
[शान्ति 66/35]

सब आश्रमों में अधिक दीप्त और सशक्त संकल्प या कर्म का निर्णय जिस आश्रम में है, वह गृहस्थ-आश्रम है, वह अति पावन आश्रम है।

इस आश्रम में पार्वती - परमेश्वररूप पितरों के प्रतीक 'माता-पिता' शाश्वत सत्य-शिव-सुन्दर संकल्प से स्वर्ग की आर्य ज्योति को भूतल पर उतारते हैं। श्रुति का उद्घोष है -

"विदत स्वर्मनवे ज्योतिरार्यम"
[ऋ० 10/43/04]

अर्थात - यह पावन आर्यज्योति ही बालक है। बालक में मानव के सनातनरूप के नितनूतन दर्शन हुआ करते हैं।

ग्रहथ-आश्रम की सफ़लता एवं महत्ता पुत्रप्राप्ति में निहित है। समस्त साँसारिक सुखों के होते हुए भी यदि किसी व्यक्ति के पुत्र [संतान] न हो तो उसका जीवन निःसार ही है। संतान माता-पिता के पारस्परिक स्नेह-सूत्र को योजित कर उसे दृढ़तर बना देती है। बाल-भगवान गृहस्थ का सौभाग्य होते हैं। उनकी मनमोहक बाललीलाएँ किसका मन नहीं मोह लेतीं।

आलक्ष्यदन्तमुकु लाननिमित्तहासै -
ख्यक्तवर्णरमणीयवचः प्रवृत्तीन
अंकाआश्रय प्रणयिन स्तनयान वहन्तो
धन्यास्त डंकरजसा कलुषीभवन्ति।
[अभिज्ञानशाकुंतलम 07 : 17]

अर्थात - सर्वदमन की मनोरंजक बाल-क्रीड़ाओं को देख कर दुष्यन्त ने कहा था - "वह व्यक्ति सौभाग्यशाली हैं जो मुस्कराकर अपने छोटे-छोटे दांतों को दिखाते हुए तोतली बोली से मनोहर बचनों वाले गोद में बैठने के लिए लालायित पुत्रों को उठाते हैं तथा उनके शरीर की धूल से मलिन होते हैं।

"धार्मिक दृष्टि से भी पुत्र परिवार की पूँजी होता है। पूर्वजों को 'पू' नामक नरक से त्राण कराने के कारण उसको पुत्र कहा गया है। इस दृष्टि से ही पुत्र की कामना की जाती है। पुत्र के स्वरुप पर अन्यथा अन्य दृष्टियों से विचार किया गया है यथा, आत्मा से उत्पन्न होने के कारण आत्मज, निजनाम का प्रकाशक होने के कारण निजनाम-सार, ज्ञान तथा विवेकशीलता की दृष्टि से ज्ञानमय एवं विवेकमय सुत। संत कबीर, संत दादू तथा शास्त्रोक्त युक्तियों में सम्बंधित सन्दर्भ यथास्थान प्राप्त होते हैं।

"निजनामसार - कह कबीर निजनाम बिनु, बूढ़ि मुआ संसार।"

"मृतामोहमयी माता जातो ज्ञानमयः सुतः"

अर्थात - 'ज्ञानमय सुत' - जिसके उत्पन्न होने से मोहमयी माता मर जाती है।

दूतर तारै पार उतारै नरक निवारै नाउँ रे। [संत दादू]

अर्थात - सकामाशरीर रूपी नरक से उद्धारक।

संत कबीर ने, "पुत्र पिता का पिता होता है।" इस दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है तथा ज्ञान, वैराग्य, विवेक की दृष्टि से उसके स्वरुप का अवलोकन किया है -

"पहिला जनम पुत्र का भयउ,
बाप जनमिया पाछे।
पुनः अगवानी तो आइया,
ज्ञान, विराग, विवेक पाछे।
गुरु भी आएँगे,
सारे साज समेत। ।"

सुत की इस व्यापक व्याख्या में वस्तुतः आध्यात्मिक सुत काम्य हो जाता है। प्रत्येक माता-पिता चाहता है कि उसको राम जैसा सुत प्राप्त हो या उसका सुत राम बन जाय। राम या राम जैसा सुत हमारे आदर्श और अपेक्षाओं की अधूरी कामना है जो हमारे जीवन की केंद्रबिंदु बनी रही और जिनको पूरा करने के लिए हम चलते गए, आगे बढ़ते गए, फिर भी पूरी न हो सकी और अधूरी छोड़ कर ही हमें अपने महाप्रयाण के लिए विवश होना पड़ा। इसी दृष्टि से आत्मज प्रत्येक माता-पिता की 'आत्मज्जन्य दर्शन', आध्यात्मिक साधना एवं उपलब्धियों की काम्यप्रस्तुति हुआ करते हैं।

ऋषियों का यह सनातन भाव अश्वघोष के उद्घोष में महायान युग के आशावादी दृष्टिकोण का भी प्रतिपादक रहा है -

"राज्ञामृषिणां चरितानि तानि कृतानि पुत्रैरकृतानि पूर्व।"
[बुद्धचरित 01/46]

राजाओं और ऋषिओं के पुत्रों ने अपने पूर्वजों के आकृतानि कर्मों को, जो उन्होंने अधूरे छोड़े अथवा जो उन्होंने नहीं किये, पूरा किया।

कभी ईश्वर कृपा से ऐसी स्थिति बन पड़े कि उस परमपितापरमेश्वर की इच्छा क्या है, वह अपने पुत्रों को कैसा बनाना चाहता है, तो वैसी ही कामना अपने पुत्रों को बनाने के निमित्त करें और अपना जीवन लगा दें कि उसकी इच्छानुसार हमारे अंदर जो कमियाँ रह गयीं उन्हें पूर्ण करने में हमारे पुत्र सहायक हों।

परमसंत महात्मा चरनदास जी की लिखी एक कहानी कहीं पढ़ने को मिली। प्रस्तुत सन्दर्भ में स्मरण हो आयी। एक नगर था। वहाँ की प्रथा के अनुसार एक वर्ष पूरा होते ही उस नगर के राजा को 'गद्दी' से उतार कर उसे नाव में बिठा कर नदी के उस-पार गहन बन में नितांत अकेला छोड़ दिया जाता था और नए राजा को 'गद्दी' पर बिठा दिया जाता था। अनेकों वर्षों से यही क्रम चला आ रहा था।

एक बार नियमानुसार एक मनुष्य को उस नगर की राज-गद्दी मिली। वह बहुत बुद्धिमान था। गद्दी पर बैठते ही उसने मंत्रिओं से प्रश्न किया - "यह कितने दिनों के लिए है?" मंत्रिओं ने उसे बताया - "एक वर्ष के लिए।" उसका दूसरा प्रश्न था - "उसके बाद क्या होगा?" उसको बताया गया कि - "एक वर्ष पूरा होते ही आपका इस राज-सत्ता से अथवा यहाँ की किसी भी प्रकार की सम्पत्ति से कोई सम्बन्ध शेष न रह जाएगा। तत्पश्चात आपको नदी के उस पार एक बीहड़ बन में अकेले जाना होगा। नाव वाले आपको वहाँ उतार कर लौट आएँगे। यही यहाँ की सनातन प्रथा है।" ऐसा सुन कर उस राजा ने सोचा कि - एक वर्ष तो बहुत है। इतने समय में सब कुछ हो सकता है। उसने राज्य का कार्य-भार हाँथ में ले लिया और सावधानी तथा ईमानदारी से न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करने लगा परन्तु एक वर्ष की अवधि को नहीं भूला। उसने व्यक्तिगत सुखों की और कोई ध्यान न दिया। राज्योचित सभी भोग-विलासों का निषेध कर दिया और यह आदेश दिया कि “नदी के पार जंगल काट कर वहाँ बस्ती बसाई जाय। नगर बने ! प्रचुर मात्रा में साधन-सामिग्री तथा काम करने वाले योग्य पुरुषों को वहाँ भेज दिया जाय। वर्ष पूरा होने के पहले - पहले सारी व्यवस्थाएँ पूरी हो जायँ।" एक वर्ष की अवधि में वहाँ जंगल की जगह एक सुन्दर प्रदेश बस गया। सभी सामिग्रियाँ अब सुलभ थीं। राज्यावधि का एक वर्ष पूरा हो जाने के बाद उसको वहाँ के नियमानुनसार 'गद्दी' से उतार दिया गया। इसकी उसे चिंता न थी, वह तो हंस रहा था। जब वह नाव में चढ़ कर हँसता हुआ नदी के पार जाने लगा तो नाविकों ने विस्मित हो उससे प्रश्न किया - "और तो जो लोग जाते थे, सभी रोते थे, आप कैसे हंस रहे हैं?" उसने कहा - "भाई ! वे लोग एक वर्ष तक राज-सुख भोगते रहे, विषयानन्द में निमग्न रहे। भविष्य की उन्होंने चिंता न की। इसी से रोते थे। परन्तु मैं निरंतर सावधान रहा। मै बराबर विचार करता रहा कि एक वर्ष के बाद तो यह राज्य तथा यहाँ का सभी कुछ छोड़ कर जाना होगा। इसलिए मैंने सारे व्यर्थ के कार्य रोक दिए, समस्त व्यक्तिगत आमोद-प्रमोद बंद कर दिए और एक वर्ष बाद की स्थिति संभालने के लिए प्रयत्न करता रहा।

अब मुझे कोई चिन्ता नहीं क्योंकि एक वर्ष की राजसत्ता [monarchy] का मैंने पूरा लाभ उठाया है, अतः मैं हंस रहा हूँ।"

हम भी इसी प्रकार हंस सकें। अपने आत्मजों के दायित्व का निर्वाह तटस्थ-भाव से कर सकें। अपने लक्ष्य पर हमारी दृष्टि बनी रहे, हम उससे विमुख न हों। लेकिन यह कितना कठिन है। एक दिन की बात है, मेरे पास उस समय एक सन्यासीजी बैठे हुए थे। सत्संग चल रहा था। उसी समय मेरी एक पुत्री जो पिछले कई दिनों से बीमार थी एवं उसकी हालत ठीक नहीं थी, चल बसी और मुझे उसी समय उसकी मृत्यु की सूचना दी गयी। मैं यों तो लेशमात्र भी विचलित अथवा दुखी नहीं हुआ तथा शान्त और अंतर्मुखी हो कर बैठा रहा। फ़िर भी कुछ क्षणोपरान्त मेरी आँखों से कुछ अश्रु-बिंदु 'तप-टप' करके नीचे गिर पड़े। इस स्थित पर सन्यासीजी ने जिज्ञासा की जिसका तात्पर्य था कि अपनी अच्छी से अच्छी स्थिति में भी 'संत' को अपनी संतान की मृत्यु पर दुःख होता है और आँसू बहाता हैं ? मैं कुछ देर और शांत बैठा रहा। अनायास पास पड़े किसी पेड़ के पत्तों को टुकड़े-टुकड़े करके तोड़ने [smash] लगा। उन पत्तों से निकलती 'चट-चट' की ध्वनि की ओर संकेत करते हुए मैंने उनकी शंका का समाधान किया कि जब मिले हुए तत्व अनायास ही अलग किये जाते हैं तो उनसे ध्वनि होना स्वाभाविक है, उनकी प्रतिक्रिया होना सहज ही है।

विवाह के पूर्व कन्या का अपने बाबुल के घर से अटूट अनुराग बना रहता है। वह रात-दिन गुड़ियों के खेल रचाया करती है। परन्तु जहाँ उसकी माँग [parting of the hair] में सिन्दूर [vermilion] पड़ा और प्राणनाथ के साथ गाँठ जुड़ी, उसके गुड़ियों के सारे खेल स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं। सच्चे खेल प्रारम्भ होते ही झूठे खेलों से नाता आप से आप ही टूट जाता है। वह जानती है, और प्रतिपल अपने ह्रदय में अनुभव करती है कि उसका घर कहीं और है, जहाँ 'साजन का देश' है। अपरिचित देश की कल्पना से प्रथम तो एक सिहरन होती है किन्तु पुनः उसे ध्यान हो आता है - "अरे वह देश मेरे लिए अपरिचित कैसे, जहाँ मेरे प्राणाधार बसते हैं। मैं तो उनकी ही हूँ। वह मुझे जहाँ रक्खें, अपनी बनाये रक्खें।" बस यही परम सांत्वना उसे जीवन देती है। उसका एक ही लक्ष्य होता है - "उनके चरणों की शरण में जहाँ भी रहूँगी, वहीं मेरा सच्चा सुख है, वही मेरा अपना देश है।"

"ज्यों तिरिया पीहर बसै, सुरति रहै पियु माहीं।
ऐसे जन जग में रहैं, हरि को भूलत नाहिं ।।"

मैं भी एक मुमुक्ष अपने प्रियतम में लीन न जानें कैसी-कैसी क्रीड़ाएं करता रहा। मैनें भी गुड्डे-गुड़ियों के अनेकों खेल रचाये। हम भी तो किसी के बनाये हुए गुड्डे-गुड़िया ही हैं। मैं गुड्डा, वह गुड़िया। यही क्रम हमने भी दोहराया। बड़े समय तक अपने बनाये गुड्डे-गुड़ियों में ऐसा लीन रहा, अपनी छोटी सी दुनियाँ में रमा [dalliance] रहा, कि सुध भी न रही कि उस-पार साजन के घर भी जाना है। पूर्ण युवा हो जानें पर भी मैं उन्हीं खिलौनों में ही मग्न रहा। और जब प्रियतम की सुिध आयी तो ऐसा लगा कि मानों यह सारा श्रृंगार, सारा यौवन, सभी-कुछ व्यर्थ है, यदि स्वामी [Lord] से भेंट न हुयी। सौंदर्य, श्रृंगार की सफ़लता तो तभी है जब साईं की दृष्टि इन पर पड़े, जब प्रभु से मिलन हो - नहीं तो यह सब व्यर्थ ही है -

"चूड़ी पटकौं पलँग से, चोली लागौं आगि।
जा कारन यह तन धरा, ना सूती गल लागि। ।"

यह शरीर धारण करने की सफ़लता तो साईं-मिलन में ही है, और यदि ऐसा न हो सका तो इन चूड़ियों और चोली में आग लगे। वह श्रृंगार ही कैसा जो अपने स्वामी के मिलन-सुख से वंचित रहे।

मुझे जब सुधि हुयी तो हड़बड़ा उठा। अपना सभी कुछ, जो जैसा था, अपने स्वामी की इच्छा के अनुकूल बनाने में लग गया। न जाने उसे क्या भा जाए। हो सकता है, मुझ दास से अनजानें में कुछ ऐसा बन पड़े जिससे वह रीझ जाएँ। मुझे अब एक घड़ी का भी अवकाश न रहता। मेरा एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाता। मुझे हर घड़ी यही चिंता सताये रहती है कि मेरी सन्तानों में से, चाहें वे रक्तसम्बन्धी हों अथवा आत्मसंबन्धी, यदि एक में भी मात्र थोड़ी सी भी त्रुटि पायी गयी तो मुझे क्षमा नहीं किया जाएगा। सारा खेल ही चौपट हो जाएगा। ह्रदय बैठ जाता है, निराशा घिर आती है और प्राण सूखने लगते है, जब अपनी करनी पर कभी दृष्टि जाती है। एक क्षण के लिए चादर का पट हटा कर जब ह्रदय की नग्न छवि देखता हूँ तो अपनी त्रुटियों, पापों, दुराचारों को देखता हूँ और ऐसी आशंका होती है कि कहीं इनकी थोड़ी सी भी परछाईं मेरी संतानों पर न पड़ जाए। दिन-रात इसी चिंता की अग्नि में तपता रहता हूँ।

प्रभु की कृपा से मेरी संतानों में आठ पुत्रियाँ व दो पुत्र हुए। मेरे बड़े पुत्र चिरंजीव हरिश्चन्द्र थोड़े से ही संस्कार ले कर आये थे व अपना काम दो-तीन माह में ही बना ले गए। पुत्रियों के विवाह के लिए मैं परेशान रहता था। अपने हज़रत क़िब्ला [Spiritual Master] को अवगत कराया। उनका जो उत्तर मिला, उसने मेरी समस्या का समाधान मात्र ही प्रस्तुत नहीं किया

प्रत्युत मेरे विश्वास को वह दृढ़ता प्रदान की कि मेरा मन कभी नहीं डगमगाया। उस पत्र का एक-एक शब्द मुझे कण्ठस्थ हो गया है, मेरा मन्त्र बन गया है - "लड़कियों की शादी इन्शाअल्लाह अच्छी होगी। कोई ज़रूर सबब होगा। हमारी शर्म खुदा के हाँथ में है। इत्मीनान रखियेगा।" आगे सचमुच कुछ ऐसा बना कि बड़ी आसानी से मैंने पाँच लड़कियों की शादी कर दी।

सत्यकाम ! मात्र एक कहानी ही नहीं - जीवन का समुचित दर्शन ही है। प्राचीन भारत में गौतम नामक एक महामुनि थे। सत्य की खोज में अनेकों साधक उनके पास आया करते थे। एक दिन आठ वर्ष का एक होनहार बालक उनके समक्ष उपस्थित हो उनकी सेवा में प्रणाम निवेदन कर सम्बोधित हुआ - "मुनिवर ! मेरा नाम सत्यकाम है। आपका शिष्य बनना चाहता हूँ।" प्रत्युत्तर प्रश्न था महामुनि का - "वत्स ! तुम किस कुल के हो ?" सत्यकाम ने निवेदन किया - "यह तो मैं नहीं जानता, न मेरी माता जानती है। मेरे पिता नहीं हैं। मेरी माता जावाल ने मेरा नाम सत्यकाम जावाल रक्खा है। मुझे अपना शिष्य बनाने की कृपा करें।" मुनिप्रवर कुछ कहते कि इसके पहिले ही उनका कोई पुराना शिष्य बोल पड़ा - "गरुदेव, केवल ब्राह्मण ही सात्विक-ज्ञान का अधिकारी होता है। सत्यकाम कदापि ब्राह्मण न हो।" ब्राह्मण की परिभाषा देते हुए महामुनि ने कहा - "जो निर्भय हो कर सत्य बोलता है वही ब्राह्मण है।" और इसके साथ ही अपना निर्णय सुनाया - "सत्यकाम, तुम्हें मैं शिष्य रूप में स्वीकार करता हूँ। बताओ तुम्हारा लक्ष्य क्या है ?" सत्यकाम ने निवेदन किया - "स्वामी, मैं ब्रह्म को जो परमसत्य है, प्राप्त करना चाहता हूँ।" महामुनि ने मन ही मन मंत्रणा की - "बालक सत्यवादी और निष्ठावान है। लक्ष्य की प्राप्ति में, मैं इसकी सहायता करूँगा।" और उसे आदेश दिया - "अच्छा आओ मेरे साथ।" वह उसे अपनी गौशाला में ले गए - "ये चार सौ गाय और बछड़े हैं। इन्हें कहीं दूर जंगल में ले जाओ। जब ये हृष्ट-पुष्ठ एवं सँख्या में हज़ार से अधिक हो जाएँ तब तुम इन्हें ले कर मेरे पास आना।" गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य कर होनहार शिष्य इस प्रकार गाय-बछड़ों को हाँकता चला किन्तु गहरी चिंता में मग्न - मैंने गुरूजी से कहा था कि मैं ब्रह्म को प्राप्त करना चाहता हूँ। न जाने क्यों उन्होंने मुझे जंगल में भेज दिया। वहाँ ब्रह्म की प्राप्ति हो सकेगी क्या ? किन्तु जंगल में पहुँच कर उसने चिंता व अपने अंतर में उठने वाली भ्रामक शंकाओं का परित्याग कर दिया। वह वहाँ की परम शान्ति व चारों ओर बिखरे हुए प्राकृतिक सौंदर्य में अन्तर्मुखी हो गया। वह बड़े ही मनोयोग से सभी पशुओं की सेवा व देख-भाल करने लगा। संध्या समय जब पशु विश्राम करते तब वह पुनः सोचता 'ब्रह्म को कहाँ खोजूं, कहाँ है वह ?' उसकी निरन्तर देखभाल व सेवा से गायें कालान्तर में पुष्ट होने लगीं और उनकी सँख्या भी बढ़ने लगी। उसने

एक मूक दृष्टि उन पर डाली - ये सब अब एक सहस्त्र से अधिक हैं। गुरूजी ने जो कार्य मुझे सौंपा था, वह पूरा हो गया। परन्तु जब वह लौटने को हुआ तो एक बछड़ा कम निकला। उसने उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम सभी दिशाओं में खोजा और उसके लिए अत्यंत ही दुखी हो कर उसे पुकारने लगा - 'ओ नन्हें बछड़े, कहाँ चला गया तू ?' अंत में ढूँढते-ढूँढते उसे वह बछड़ा मिल ही गया। उसे पाकर उसे अभूतपूर्व शान्ति की सुखानुभूति सी हुयी। तभी उसके मन में एक चिंगारी सी छिटकी और विचार आया, क्या ब्रह्म की प्राप्ति भी जायेगी मुझे ? संध्या के समय एक बूढ़े बैल को देख कर उसे अपूर्व शान्ति का अनुभव हुआ। फ़िर उसे ऐसा लगा मानों बैल कहता है - 'ब्रह्म उत्तर में है, दक्षिण में है, पूरब में है, पश्चिम में है।' उसके मस्तिष्क में पुनः दामिनि चमकी - 'यह सत्य है। वोह सभी जगह है। फ़िर उसे खोजूं क्यों ?' उसी दिन वह पशुओं को ले कर गौतम ऋषि के आश्रम में लौट पड़ा। सूरज डूबने के समय उसने एक जगह ठहर कर आग जलायी। उसे लगा कि अग्निदेव बोल रहे हैं - 'ब्रह्म धरती में है, आकाश में है, वायु में है, सागर में है।' यह विचार उसके मस्तिष्क में घूमने लगा - 'ब्रह्म आकाश के सामान अनन्त है।' अगले दिन सूरज उगने पर उसने अपने आप से प्रश्न किया - सूर्य कैसा प्रकाशमान है, आश्चर्य। कौन देता है इसे यह प्रकाश ? उत्तर दिया उसे उड़ रहे एक हँस ने - 'ब्रह्म सूर्य में है, दामिनि में है, अग्नि में है।' उसे लगा कि उसका अन्तर्मन भी स्वीकार कर रहा है - 'निःसंदेह ! ब्रह्म ही सूर्य को प्रकाश देता है।' ज्ञानप्रकाश के इस प्रवाह से सत्यकाम के मन में विचारों का एक ज्वार [flood-tide] उमड़ पड़ा - 'किसके प्रताप से मैं श्वांस लेता हूँ, देखता हूँ, सुनता हूँ, विचार करता हूँ ?' उत्तर किसी उड़ती हुयी चिड़िया ने दिया - 'ब्रह्म, ब्रह्म, ब्रह्म के प्रताप से।

सत्यकाम जब महामुनि गौतम के पास पहुँचा तो वह उसे देख कर आश्चर्यचकित रह गए - "सत्यकाम ! तेरा मुख ब्रह्म-ज्ञान के तेज से दैदीप्यमान है। कैसे प्राप्त किया यह ज्ञान ?" सत्यकाम ने उनके समक्ष अपने अनुभव निवेदन किये और पुनः याचना की - "जब तक गुरु, ज्ञान नहीं देते तब तक लक्ष्य सिद्ध नहीं हो सकता। गुरुदेव, मेरा मार्गदर्शन करें। वह गद-गद [inarticulate from emotion] हुए - "अवश्य वत्स।" समर्थगुरु गौतम ने अपने सुयोग्य शिष्य को परमपावन ज्ञान दिया।

मेरा अस्तित्व एवं सामर्थ्य अति लघु व सीमित है। मेरी इन दस संतानों व अन्य भतीजे भतीजियों इत्यादि के अतिरिक्त प्रभु के दिए हुए लगभग 200 की संख्या में बन्धु-बान्धव व प्रेमीजनों के रूप में कुछ गऊयें व बछड़े हैं जो मुझे अपनी संतानों के समान आत्मीय व प्रिय हैं। इन्हीं सब की देख-रेख व सेवा में मैं निरन्तर लगा रहता हूँ।

महामना ईसा के कुछ निर्देश आज भी मेरा मार्गदर्शन करते हैं। ईशु की वाणी है - "जीवन की खेती मैं हूँ। मेरे पास आने वाला कभी भूखा न होगा। मुझ पर विश्वास करने वाला कभी प्यासा न होगा। परन्तु मैं तुमसे कहता हूँ, यद्यपि तुमने मुझे देखा है, फिर भी विश्वास नहीं करते। फ़िर भी कुछ लोग मेरे पास आएँगे जिन्हें पिता ने मुझे दिया है, और मैं उन्हें कभी बाहर नहीं निकालूँगा। क्योंकि मैं यहाँ स्वर्ग से अपनी नहीं बल्कि पिता की इच्छा पूरी करने आया हूँ, जिसने मुझे भेजा है। और परमेश्वर की यही इच्छा है कि जितनों को उसने मुझे दिया है उनमें से एक को भी न खोऊँ। अन्तिम दिन अनन्त जीवन के लिए मैं उन्हें फ़िर जीवित करूँ। क्योंकि मेरे पिता की यह इच्छा है कि जो उसके पुत्र को देखे और उसपर विश्वास करे वह अनन्त जीवन पाए। अन्तिम दिन मैं उसे फ़िर जीवित करूँगा।"

मेरी समस्त सन्तानें [आध्यात्मिक व रक्तसम्बन्धी] समस्त जगत में अपना सानी नहीं रखतीं और जैसा कि मेरा विश्वास है वे सभी अपने-अपने समय व क्षेत्र में मेरे उत्तराधिकारी होंगे, उनमें से कुछ साधकों को, उनकी योग्यता व क्षमता के आधार पर, मैंने आचार्य व गुरु-पदवी से भी विभूषित किया है। इस विषय पर मेरे निकटतर व्यक्तियों से मेरा कुछ मतभेद भी रहा है। उनका कहना है कि उदारता पूर्वक ऐसी पदवियाँ देने से सत्संग-समाज में बटवारा होने का डर है। मेरा उनसे निवेदन है कि जिस प्रकार दुनियाँदारी में पिता की मृत्यु के बाद बड़े भाई [जिन परिवारों में] अपने नाबालिग़ भाइयों व भतीजों को अपने पुत्रवत रखते हैं वहाँ बटवारे नहीं होते। यही प्रक्रिया मैं अपने सत्संग-समाज में देखना चाहता हूँ कि इस शरीर में न रहने के पश्चात् जो मेरी आध्यात्मिक संतानें आचार्य पदवी ग्रहण किये हुए हैं, उनका प्रथम कर्तव्य हो जाता है कि वे अपने भाइयों में जो अभी पूर्णता प्राप्त नहीं कर सके है और अपने शिष्यों व बेटों में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रक्खेंगें। इसी प्रयोग के अंतर्गत अपने 'वसीहतनामें' [Last Will] में मैंने चि0 बृजमोहन के पालनार्थ एक पार्श्व-टिप्पणी [Side-note] लिख दी है -

वसीयतनामः

"अल्लाह पाक हमारी नियतों को दुरुस्त फ़रमावे और हमारा अन्जाम हमारे पेशवाओं और पीरानेउज़्ज़ाम के तरीक़ पर उनके एतक़ाद के साथ हों। आमीन।। आमीन।।"

"ज़िंदग़ी का कोई भरोसा नहीं है। न मालूम किस वक़्त साँस वापस न आए। इस लिए चन्द

बाँतें बतौर वसीयत के एहतियातन लिख कर इस उम्मीद पर छोड़ता हूँ कि मेरे बाद मेरी सुल्वी व रूहानी औलाद, अगर अल्लाहताआला उनको तौफ़ीक़ और हिम्मत अता फ़रमावे, तो उस पर कारबन्द हो और तौफ़ीक़ सिर्फ़ 'उस' ही के हाथ में है।

[दस्तख़त] फ़क़ीर राम चन्द्र
23 [तेईस] अक्टूबर सं 1930 [ईस्वी]

वास्ते बरखुर्दार जगमोहन नरायन के-

[01] पहले जज़्ब और उसके बाद सुलूक के तरीक़ को तय करके तक्मील [पूर्ति, समाप्ति, किसी काम की पूर्ति में कोई कसर न रखना] के दर्ज़े तक पहुँचना चाहिए और यह काम सिर्फ़ तुम्हारे मुर्शद से ही निकलेगा।

पार्श्व टिपण्णी [Side-note] : काश अगर तुमको मौका न मिले तो जब और जिस वक़्त इमदाद ग़ैबी तुम्हारी तबीयत को उभारे तो फ़िर तुम्हारे भाई, बृजमोहन लाल [अल्लाहतआला उसकी उम्र में बरक़त अता फ़रमावे] से ज़ियादह शफ़क़त करने वाला नहीं मिलेगा। लाज़िम है कि उसकी इताअत में फ़र्क़ न करना और दिल व जान से लग कर इस तरीक़ की तक्मील हाँसिल कर लेना। मुझ को भरोसा है कि वह अज़ीज़ तुम्हारे वास्ते कोई कसर नहीं रक्खेंगे।

---

[02] जहाँ तक मुर्शदी व मौलाई जनाब हज़रत क़िब्ला का इशारा मुझको दिया गया है कि मेरी औलाद में बरखुर्दार जगमोहन का पैदायशी अख़लाक़ [सद्वृत्ति] दुरुस्त है और लातायफ़ में से लतीफ़ा क़ल्ब [हृदय चक्र, 17 वां नक्षत्र] तालीम से ही ज़ाकिर है, लेकिन मेरी दानिस्त [ज्ञान, जानकारी] में जज़्बे [आत्मसात] की जिहत [दिशा, तरफ़] उसकी नातमाम [अपूर्णता] है। उसको हाँसिल करनी चाहिए।

वहबी [ईश्वर प्रदत्त = hereditary spiritual propensity] अख़लाक़ और कस्बी [वह विद्या जो कमाने और परिश्रम करने से प्राप्त होती है = acquired conduct] अख़लाक़ में फ़र्क़ है। वहबी [ईश्वर प्रदत्त] में ज़्यादह तालीम तल्क़ीन [दीक्षा देना, गुरु-मन्त्र देना या सदुपदेश देना] की की ज़रूरत नहीं होती। बरख़िलाफ़ इसके कस्बी [वह विद्या जो कमाने और परिश्रम करने से

प्राप्त होती है] में बहुत तज़ुर्बों और मशक्कतों [कष्ट, दुःख, श्रम, दौड़-धूप, तपस्या इत्यादि] के बाद यह बात नसीब होती है, जिसमें अन्देशः गिरावट का भी रहता है। अल्हम्दिल्लिल्लाह कि वहबी [ईश्वर प्रदत्त] अख़लाक़ के लिए बुशारत [ख़ुशख़बरी, शुभसंवाद] हज़रत क़ब्ला ने फ़रमाई। पीरान-ए-उज़्ज़ाम के तुफ़ैल में अल्लाहपाक इस नियामत के साथ उसका अंज़ाम बख़ैर फ़रमावें।

अज़ीज़ मज़्कूर [कहा हुआ, चर्चा में या जिनका ज़िक्र हो रहा है - afore said] शुक्राना इस नियामत का अदा करते रहें, और अपने आप को हमेशा आजिज़ [निराश्रय, असहाय, बेबस, लाचार] समझें, क्योंकि नियामत का देने वाला मुख़्तार [स्वच्छंद] है कि जब चाहता है, अपनी दी हुयी नियामतों को वापस ले सकता है।

[03] इस आजिज़ फ़क़ीर ने फ़ल्सफः [दर्शनशास्त्र] और मुख़्तलिफ़ मज़हबों के अक़ीदों की, जहाँ तक कि मेरे इल्म ने मुझको इम्दाद की, छानबीन की लेकिन आख़िर को पीरान-ए-उज़्ज़ाम के एतक़ादों और तरीकों को ऐसा पाया है कि जिन पर मज़बूती के साथ क़ाइम रहने से आख़िर दम तक सलामती की उम्मीद है।

मैं कह सकता हूँ कि इस वक़्त तक उन तरीकों और एतिक़ादों [faith] का पूरा पाबन्द जैसा कि चाहिए, नहीं रहा हूँ । लेकिन दिल से इक़रार ज़रूर रहा है। अफ़सोस कि अहबाब और मेरे साथ चलने वालों में से एक ने भी ऐसी हिम्मत नहीं की कि इन एतिक़ादों [faith] को क़बूल भी करता।

इसमें सरासर कसूर मैंने अपना पाया है कि अब तक तहरीरी बयान एतिक़ादों [faith] का उनके रु-ब-रु नहीं रक्खा; हालाँकि ज़ुबानी हमेशा मौके-मौके पर ज़िक्र करता रहा हूँ। मालूम नहीं कि किन-किन अहबाब ने उनको क़बूल और मंज़ूर किया।

ज़ाहिर है औलाद ताक़त और क़द-कामद में अपने बुज़ुर्गों से नस्ल-बाद-नस्ल कमज़ोर ही होती चली आ रही है। इसी तरह रूहानयत और अखलाक़ी बातों में भी रोज़मर्रा गिरावट हो सकती है। मगर यह क़ायदा कुल्लिया नहीं है। अल्लाहताआला की क़ुदरत महदूद [limited] नहीं है। जब चाहे कभी ऐसा जवाँ मर्द, कमज़ोर माँ-बाप से पैदा हो सकता है कि पाँच सौ वर्ष पहले हुआ हो।

मेरे एक मात्र पुत्र चिरंजीव जगमोहन नरायन व मेरी सबसे छोटी सन्तान के रूप में मेरी कन्या **सुशीला के कुछ रमणीय चरित्र मैंने छुप कर देखे हैं। आप भी मेरे साथ उसका आनन्द लें । मेरी अन्तिम व सबसे छोटी संतान के रूप में एक पुष्प मेरी पुत्री सुशीला। सबसे छोटी व सभी को प्रिय। सभी आने वाले भाइयों को वह उनकी बहन के रूप में अति प्रिय है। अभी वह बाल-रूप में है। अतः बाहर 'बैठक' में आती-जाती है। उसका शील व स्वभाव सभी के चित्त को मोह लेता है। देवी का रूप और देवी जैसे लक्षण देख सभी मुग्ध हो जाते हैं। कम बोलना व शिष्टाचार से बैठना, आये हुए भाइयों को जिस वस्तु की आवश्यकता हो उसे बिना कहे ही समझ जाना तथा चुपके से उसे उपलब्ध करा देना परन्तु चेहरे पर अहँकार का भाव न आना इत्यादि उसके दैवीय कृत्य यदाकदा मुझे देखने को मिले। रुपयों-पैसों और खिलौनों के बहुत से प्रलोभन दिए गए किन्तु सभी के प्रति अनिच्छा। उनके बाहर से आये हुए भाई उसके इन अनेकों गुणों पर मुग्ध हो उससे कहते - "बहन, खिलौना लोगी" - "नहीं" - "मिठाई लोगी" - "नहीं" - "पैसा लोगी" - "नहीं" - "धोती, साड़ी कुछ लोगी" - "नहीं"। पुनः "अरी बहन क्यों बोलती नहीं, कुछ तो बताओ, क्यों अप्रसन्न हो हमसे?" इस बार भी वही "नहीं"। वे कहते "हम भी तुम्हारे भाई हैं, कोई आवश्यकता हो तो बताओ, हम बाज़ार जा रहे हैं, ला देंगे। इस बार भी वही एक उत्तर - "भाई साहिब हमें किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है"। प्रायः सत्संगी भाइयों का अपनी बहन से यही वार्तालाप होता।**

अब वह कुछ बड़ी हो चली है। यद्यपि अभी उसकी अवस्था इतनी नहीं कि ऐसे परिपक्क्व व गम्भीर विचार प्रगट कर सके किन्तु फ़िर भी उसकी वाणी में ओज है, दिशा दिखाने की सामर्थ्य है और है अभूतपूर्व निर्भीकता। हमारे घर में उन दिनों प्यास-लहसुन खाया जाता था। जब कभी कोई बाहर वाला प्याज-लहसुन न खाने वाला भाई आ जाता, उस दिन रसोई में उसका [प्याज़-लहसुन इत्यादि] निषेध रहता। एक दिन सुशीला ने मुझे प्रश्नवाचक स्वर में सम्बोधित किया - "क्यों पिताजी, जो प्याज़-लहसुन नहीं खाते उनके ह्रदय पर हमारी इस नीति का क्या प्रभाव पड़ता होगा कि हम लोग इसे असात्विक समझ कर इसका निषेध कर चुके हैं किन्तु वस्तुतः ऐसा है नहीं। यह दुरंगा प्रदर्शन ठीक नहीं। अतः उनके निमित्त हमें हमेशा हमेशा के लिए 'प्याज़-लहसुन' को छोड़ देना चाहिए। हम जैसे हैं वैसे ही दिखाई भी पड़ें जिससे आने-जाने वाले हमारे विषय में उचित धारणा बना सकें।" उसकी यह बात मुझे छू गयी। तब से आज तक हमारे घर में प्याज़-लहसुन का प्रयोग नहीं होता है। इस प्रकार की निर्भीकता व स्पष्टवादिता मेरे सभी बच्चों को अपनी माँ से संस्कार-रूप में प्राप्त हुयी है।

बृजमोहन लाल उर्फ बिर्जू

ज्योतिन्द्र मोहन उर्फ ज्योती

राधामोहन लाल उर्फ मुन्नी

मेरे एकमात्र पुत्र चिरंजीव जगमोहन नरायन के अतिरिक्त मेरे सभी भतीजे भी जिनके नाम क्रमशः बृजमोहन, राधामोहन, ज्योतींद्र मोहन, नरेंद्र मोहन, राजेंद्र मोहन हैं, मुझे प्राणों के समान अति प्रिय हैं एवं उन्हें अपने पुत्र से कम नहीं समझता। मेरे अन्य भतीजो के

अतिरिक्त जो अभी छोटे हैं, चिरंजीव बृजमोहन लाल मुझे इस लिए अति प्रिय हैं क्यों कि वह भी मुझ से अत्यंत ही प्रेम करते हैं और मेरे जीवन की प्रत्येक आकाँक्षा को पूरा करने

और अपने में उतारने की चेष्टा करते हैं और साथ ही अति उत्साही भी हैं। उनकी कल्पनाएं अनेक हैं। परमात्मा उन्हें बनाये रक्खे।

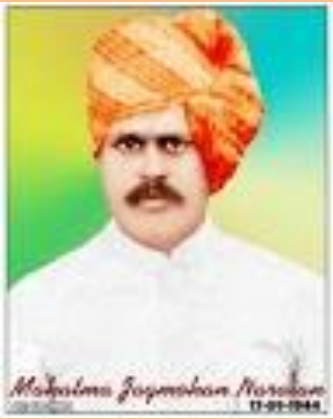

चिरंजीव बृजमोहन लाल बड़ी अवधि तक मेरे पास रहे हैं। उनमें व मेरे पुत्र जगमोहन नरायन में अनेकानेक असंगतियों के होते हुए भी दोनों भाइयों में एक-दूसरे के प्रति जीवन्त प्रेम की आदर्श भावना वास करती है। चिरंजीव जगमोहन नरायन ऊपर से दिखने में राजसी ठाट-बाट में सजे सजाये एक संसारी राजकुमार किन्तु अंतर में एक सम्पूर्ण सन्यासी व त्यागी, ठीक इसके विपरीत चि0 बृजमोहन लाल ऊपर से आकार-प्रकार में एक विरक्त फ़क़ीर किन्तु अंतर में राजयोग का उच्च आदर्श तथा ममतामय संस्कार, सत्य चाहें जो भी हो, दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं व दोनों मुझे मेरी दो आँखों के समान प्रिय व आत्मीय हैं।चिरंजीव जगमोहन नरायन, भाइयों के मध्य 'जग्गू बाबू' के नाम से पुकारे जाते हैं एवं अपने गुणों के आधार पर सभी में अति लोकप्रिय हो गए हैं। वह भारतीय मनीषा के अनन्य आराध्य व उच्चकोटि के कार्यकर्ता हैं। त्याग व सेवा का मार्ग उन्होंने अपनाया है और अब तो उस पर अग्रसर हो वह पर्याप्त आगे निकल गए हैं। बड़े ही निर्भीक व उत्साही हैं। उन जैसे कभी न थकने वाले अडिग व अटल स्वयंसेवक से अनेकों आशाएँ हैं। सभी की निगाहें उन पर लगीं हुयी हैं।

अनेकानेक गुणों की खान वह मेरे संकुल के दीपक हैं। हमारे भावी समाज के स्तम्भ-स्वरुप हैं।

चित्रकारी व अनेकानेक ललितकलाओं पर उनका पूर्ण अधिकार है।

अपना काम वह स्वयं अपने हाँथ से करने की क्षमता रखते हैं। इतने सारे गुणों की एकरस सम्पन्नता की उपलब्धि का वह उदाहरण हैं, यही कारण था कि वह मेरे हज़रत क़िब्ला को भी

भा गए। मेरा रोम-रोम कृतकृत्य हो गया। जो मेरे आराध्यदेव को लुभा सका उसकी सेवा व परवरिश अब मेरी आराधना बन गयी है। जिस जीव का गर्भाधान संस्कार महान उद्द्येश्य से होगा, उसी का जीवन महान होगा और उसी की सब प्रवृत्तियाँ, क्रियाएं एवं कर्म भी महान होंगे।

एक समय की बात है। मैं सपरिवार, अपने हज़रत क़िब्ला के श्रीचरणों में उपस्थित हुआ। हम सभी उनके प्रेम संयोग का लाभ उठा रहे थे। उनकी रूपमाधुरी झर रही थी। हम उसमें स्नान कर रहे थे, अतिमग्न व आत्मगम्भीर हो मानों अपनी सुध-बुध खो कर उन्हीं में लीन, उन्हीं के प्रेम में छके हुए, उन्हीं के आलिंगन में डूबे हुए, उस अभूतपूर्व प्रवाह में गोते लगा रहे थे। उधर मेरा लाल, 'जग्गू' मानों अपनी ही दुनीयाँ में खोया हुआ था। हुज़ूर महाराज के खणाउओँ [Wooden soled sandals] को जिन्हें वे अपने प्रयोग में लाते थे, उसने उन्हें एक रस्सी में बाँध रक्खा था और बड़ी ही तल्लीनता से उनकी देख-रेख में लगा हुआ था। घूमते घूमते हज़रत क़िब्ला उधर से गुज़रे, उस पर एक दृष्टि पड़ते ही, मुस्कराये और प्रश्न किया - "क्यों मियां यह क्या हो रहा है ?" अपनी ही तल्लीनता में मग्न मेरे लाड़ले का उत्तर था - "मेरे घोड़े बँधे हैं, भाग न जाएँ।" इस उत्तर से अनायास ही उस पर ऐसे मुग्ध हुए की चलते समय वह अपने 'खणाऊँ' उसे देना न भूले। वे खणाऊँ आज भी उसकी धरोहर हैं। जिसके लिए मैं अपना सर्वस्व और अपनी समस्त उपलब्धियाँ न्योछावर करने को तत्पर था किन्तु न पा सका और उधर मेरे लाल ने साधना के प्रथम चरण में ही उन्हें पा लिया।

"प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं।"

प्रथम आहुति में ही सम्पूर्ण जीवन-यज्ञ के फल की प्राप्ति हो गयी। मेरा रोम-रोम कृतकृत्य हो रहा था। जीवन प्राण परमानन्द की दिव्य चेतना के मध्य स्नान कर रहे थे।

"न जानें कौन से गुण पर दयानिधि रीझ जाते हैं।" मुझे अपने पुत्र के माध्यम से अपने सर्वस्व, अपने जीवन-प्राण, अपने सदगुरुदेव के जो दर्शन हुए, मैं सर्वथा उसका कोई अधिकारी नहीं था। कोटि-कोटि जन्मों से उन्हें देखता आ रहा हूँ परन्तु भर आँख देख न पाया। ह्रदय के मंदिर में जिनकी मनोहर मंगल मूर्ति विराजती, किन्तु मैं अभागा अपने ही ह्रदय के पट खोल कर वहाँ प्रवेश न कर सका। कभी कभी मुझे ऐसा लगता कि रु-ब-रु मेरे सामने खड़े हों पर मेरी आँख न उठती। कैसी कहूँ मन की विचित्र दशा; देखे बिना रहा भी नहीं जाता और देखते बनता भी

नहीं। मेरी यह कभी न बुझने वाली पिपासा, अनेकानेक जन्मों में मेरी चिरसंगिनी रही है। मेरा रोम-रोम जिसकी रस-माधुरी में आकण्ठ डूबने के लिए हमेशा हमेशा से व्याकुल है, वह मेरे जीवन-प्राण वह ही मेरे अनेकों रूप व गुणों के स्वामी हैं, वही मेरे ह्रदय का मर्म समझते हैं। प्राणों की बेचैनी उकसाने में उन्हें भी एक आनन्द आता है। छेड़खानी ही तो है, उनकी ऐसी अनुकम्पाएँ हैं कि जिनका मैं सर्वथा अधिकारी नहीं। उनकी यह धरोहर मैं सम्भाल पाउँगा क्या ? एक ज्वलन्त प्रश्न है और मेरे भावी जगत की भूमिका भी है। उनकी अनेकानेक अन्य वरदानों के समान ही यह मेरा अंश भी, मेरे पास अब उनकी धरोहर है।

वह प्रेम क्या जो अघाना [contented] जानें। वह भक्ति क्या जो समस्त विश्व को अपने में लय न कर ले। वह साधना क्या जो संसार के इस सघन पटल को हटा कर अपने प्राणेश्वर को प्रतिपल अखण्ड रूप में न देखे। वह भक्त क्या जो सदा सर्वदा केवल अपने उपास्यदेव को न देखे। बीच का पर्दा हटा देने से रह ही क्या जाता है ? संसार कहता है मैं बना रहूँगा, भक्त कहता है मैं तुझे मिटा कर ही छोड़ूँगा और जीत भी भक्त की ही होती है। कितनी सुन्दरता से भक्त इस संसार को मिटाता है, वह संसार से द्वन्द्व नहीं छेड़ता। वह जगत से लड़ने नहीं जाता। वह तो अपने भीतर प्रवेश कर अपने ह्रदय का पट हटा कर अपने प्रियतम की झाँकी पा लेता है। वह झाँकी उसकी आँखों में, उसके रोम-रोम में उतर आती है। अब वह इन आँखों से जो कुछ देखता है सभी में अपने प्रियतम को ही पाता है। यह संसार उसके सम्मुख, संसार नहीं रह जाता। यह तो प्रभु का मंगलमय परममनोहर दिव्य-विग्रह हो जाता है।

शास्त्रोक्त सिद्धांत है कि सूर्य और रात्रि दोनों एक साथ एक स्थान पर नहीं रह सकते, इसी प्रकार राम और काम भगवान और भोग एक साथ एक ह्रदय-देश में नहीं रह सकते।

"जहाँ काम तहँ राम नहिं, जहाँ राम नहिं काम।
तुलसी कबहुँक रहि सकै, रवि रजनी एक ठाम।"

अतः साधकों से अपेक्षित है कि भोगों को दुःख-दोषपूर्ण जान कर उनसे मन को हटावें। सत्यतः भोगों में सुख है ही कहाँ ? एक मात्र सुख तो सत्-चित-आनन्द स्वयं भगवान में ही है। विषय-सुख एक मीठे विष के समान है, जिसका एक बार सेवन करने से मीठा तो अवश्य लगता है किन्तु उसका परिणाम विष जैसा ही होता है। भगवान स्वयं गीता के पांचवें अध्याय में कहते हैं

कि बुद्धिमान साधक इन दुःख-योनि संस्पर्शज भोगों से कभी प्रीति नहीं करते, वे अपना सारा जीवन बड़ी सावधानी से भगवान के भजन में बिताते हैं।

"येहि संस्पर्शजा भोगा दुःख्योनय एव ते।
आद्यंतवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः। "
[गीता 05 : 22]

देवर्षि नारद, ब्रह्मवैवर्त पुराण के आठवें अध्याय में कहते हैं कि - "ऐसा कौन मूढ़ होगा जो अमृत से भी अधिक प्रिय-सुखमय श्रीकृष्ण सेवा [भजन] को छोड़ कर विषय रूप विष का पान करना चाहेगा ?" जैसे कीट-पतंगों की दृष्टि में दीपक की ज्योति बड़ी मनोहर मालूम होती है और बंसी में पिरोया हुआ माँस का टुकड़ा मछली को सुखप्रद जान पड़ता है, वैसे ही विषयासक्त लोगों को स्वप्न के सदृश्य असार, विनाशी, तुच्छ, असत्य और मृत्यु का कारण होने पर भी "विषयों में सुख है" ऐसी भ्रान्ति हो रही है।

मेरे हज़रत क़िब्ला ने अनेकानेक कृपा कर मेरे नन्हें शिशु चिरंजीव जगमोहन नरायन को अपनी पादुकाएँ दे कर मानों उस पतंगे और अनेकानेक धनधान्य व विषय-भोग रूपी सुन्दर और मनोहर प्रतीत होने वाले दीपक की लौ के बीच एक लम्बा पर्दा दाल दिया। उनका यह उपकार उसे आजीवन सांसारिकता के ताप से बचाये रहा। सहज सुहृद उन आनन्दघन सच्चिदानन्द ने दया करके मेरे नन्हें साधक को भोगों के भीषण दावानल से बचाने के लिए भोग-वस्तुओं का अभाव कर उनसे विछोह करा दिया। भगवान ने बलि के साम्राज्य वैभव का हरण कर लेने के बाद यही कहा था

-

"ब्रह्मन यमनुगृह पाणि तद्विशो विधुनोभ्यहम।
यंमदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते।
[श्रीमदभागवत 08/22/24]

अर्थात - “ब्रह्मा जी ! धन के मद से मतवाला हो कर मनुष्य मेरा [भगवान का] और लोगों का तिरस्कार करने लगता है, इससे वह परमार्थ के मार्ग से वंचित हो जाता है अतः उसका कल्याण करने के लिए उसपर अनुग्रह करके मैं उसका धन-वैभव हर लेता हूँ।”

बड़ी घर-गृहस्थी के सभी सदस्यों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए आवश्यक संसासाधनों और मेरे मासिक वेतन की कुल धनराशि के अनुपात में कोई तालमेल नहीं था। किन्तु फिर भी मेरी पूरी कोशिश यही रही है कि मेरी संतानों में से किसी की भी शिक्षा व्यवस्था में कोई कोर खाली न रह जाय। ब्रिटश-शासन में वास्तविक व जीवनोपयोगी शिक्षा का सर्वथा आभाव रहा है। ब्रिटश शासकों को भारतीय नवजवानों की वास्तविक शिक्षा की परवाह नहीं थी, प्रत्युत वे तो उन्हे मात्र एक क्लर्क या 'बाबू' की ज़िन्दगी के दायरे में क़ैद कर देना चाहते थे। किन्तु मैंने उनकी इस व्यवस्था को दरकिनार करते हुए अपने कुलदीपक चिरंजीव जगमोहन नरायन को फतेहगढ़ स्थित स्थानीय गवर्नमेंट हाईस्कूल से मेट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर लेने के पश्चात् उन्हें आगे की उच्च शिक्षा के हेतु आगरा कॉलेज आगरा में भर्ती कराया गया। जैसा कि पहले ही निवेदन कर चुका हूँ, हमारे जैसे औरों की तरह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अभाव का साम्राज्य था। किन्तु उन दिनों तक मेरा सम्पर्क कुछ ऐसे साधन संपन्न लोगों से हो चुका था जिन्होंने सिर्फ़ मेरी मदद ही नहीं की वरन हठपूर्वक मेरी इस कार्ययोजना को मूर्त्तरूप प्रदान करने में अपनी समुचित भूमिका का निर्वाह भी किया। चिरंजीव जगमोहन की माँ के सगे ममेरे भाई रायबहादुर इन्द्रनरायन सक्सेना [उर्फ़ राजा साहिब] की ब्रिटिश शासन में अच्छी पहुँच थी। उन्होंने उन दिनों हमारी बड़ी मदद की। उनके अतिरिक्त हमारे सत्संग समाज के कुछ विशिष्ठ नवरत्न - सर्वश्री डॉ चतुर्भुजसहाय [एटा], गंगा प्रसाद [आगरा], सूरज सहाय मुख़्तियार [एटा] और उमा शंकर मुख़्तियार [एटा] ने मेरे लाल की उच्च शिक्षा में मात्र सहायता ही नहीं की प्रत्युत साये की मानिन्द उस के साथ रह कर निरंतर मेरा प्रतिनिधित्व किया। हमारे चौधरी ख़ानदान के कुलदीपक जगमोहन नरायन ने आगरा कॉलेज से ऍफ़0 ए0 [इण्टरमीडिएट] और प्रथम श्रेणी में ग्रेजुएशन की परीक्षा पास कर लेने के पश्चात् बाबू दिलाराम साहिब के विशेष अनुरोध पर 'आगरा कॉलेज' की लॉ फैकल्टी में कानून की पढ़ाई के निमित्त उनका प्रवेश कराया गया। चि0 जगमोहन की रहनी-सहनी, उनका गेट-अप इत्यादि समय के हिसाब से विचित्र व अटपटा सा दिखता था जिसके हेतु वे मज़ाक के पात्र बनने लगे। उनका जनेऊ संस्कार तो बचपन में ही करा दिया गया था। बाद में 'चाणक्य महान' की ओर उनका अनुग्रह जागा और उन्होंने शीघ्र ही एक मोटी सी चोटी अपने सिर पर धारण कर ली। कॉलेज के लड़कों का

मनोविज्ञान तदनुरूप नहीं था। उनमें से बहुतेरों ने उन्हें चिढ़ाने के लिए अक्सर उनकी 'छोटी' भरी महफ़िल में खींचने लगे। वे असहज से हो जाते। उनके साथ ही फतेहगढ़ के पढ़ने वाले लड़कों की पर्याप्त सँख्या थी और उन लड़कों को सबक सिखाने के लिए वे पर्याप्त सक्षम थे। चि0 जगमोहन के मित्रों ने, प्रमुखतः, मन्नी लाल दुबे, कश्मीर सिंह यादव, हरी मोहन सरन, कैलाश नाथ दास इत्यादि ने फतेहगढ़ आ कर मुझे यह सब सूचना दी। मैंने बग़ैर किसी छानबीन के निर्णय ले लिया कि जगमोहन की पढ़ाई छुड़वा कर उन्हें फतेहगढ़ वापस बुलवा लिया जाय। किन्तु मेरे इस निर्णय के क्रियान्वयन से पूर्व ही आगरा कॉलेज के तत्कालीन प्रिंसिपल के सहयोग से उनकी नियुक्ति वहाँ की इम्पीरिअल बैंक की राजामण्डी ब्राँच में करा दी गयी। उनकी ड्यूटी के प्रति लगन, ईमानदारी, मेहनत, कर्तव्यपरायणता और सत्यनिष्ठा के जन्मजात गुणों के बलबूते पर ठीक एक वर्ष बाद ही आगरा के प्रधान कार्यालय में उनकी प्रोन्नति एक प्रथम श्रेणी ऑफिसर [Class I Officer] के तौर पर कर दी गयी।

चि0 जगमोहन की इतनी बड़ी सफलता पर अभी भी मेरी मानसिक स्थिति सहज नहीं थी। मेरे लाल को जो उपलब्धियाँ हो रहीं थीं मैं उनसे बेख़बर व उदासीन ही था, क्योंकि ये सभी उपलब्धियाँ उसके जीवन का वास्तविक उद्देश्य नहीं था, जिनके लिए उसका जन्म हुआ था। इसी उधेड़-बुन में मैंने अधिक समय नहीं लगाया और अगली एक वर्ष की नौकरी पूरी होते-होते मेरी ही ज़िद पर मेरे एक-मात्र पुत्र जगमोहन नरायन को सफलता के उस सोपान से विरत मेरी ही पहल पर पुनः फतेहगढ़ वापस आना पड़ा और उसी अभावग्रस्त जीवन में अपने आप को दोबारा स्थापित करना पड़ा।

यह वर्ष 1920 [ईस्वी] का ज़माना था। इसी वर्ष जलियाँवाला-बाग़ के ऐतिहासिक काण्ड ने जन-जन के ह्रदय को झकझोर कर रख दिया। गाँधी जी ने इसके प्रतिवाद में असहयोग-आन्दोलन चलाया, जिसके माध्यम से उन्होंने 'स्वराज' का कॉन्सेप्ट जनसाधारण के सामने रक्खा और लोगों के मन-मानस को इस बात के लिए तैयार किया कि अब, आज और अभी से अंग्रेज़ों की ग़ुलामी नहीं करनी है। मेरे द्वारा जगमोहन को जौकरी छोड़ कर आगरा से फतेहगढ़ वापस बुलाने के परोक्ष में गाँधी जी का यही आईडिया कार्यरत था। इसी योजना के तहत जगमोहन ही क्या उनके जैसे मेरे अनेक आध्यात्मिक पुत्र जो जहाँ भी कार्यरत थे अपनी-अपनी नौकरी छोड़ कर सपरिवार फतेहगढ़ आ गए। अब हमारा घर एक व्यवस्थित छात्रावास बन चुका था। उन दिनों हमारे घर का आकार बहुत लहीम-शहीम न था। हमारे मकान में 12x 24 फ़ीट के आयताकार, मात्र दो ही किराए के कमरे थे। उसी में हम-सब मिल-बाँट कर रहने लगे। अब हमारे लिए सब-कुछ अनिश्चित और भगवान-भरोसे था ।

जीविका के तौर पर जगमोहन को परचूनी की एक छोटी सी दुकान रखवा दी गयी। जो दूकान कम, सत्संग की कार्यशालाओं की स्थली अधिक थी।

हमारे पूर्वजों में से एक अपने ज़माने के बहुत बड़े हक़ीम थे। उनके ईज़ाद किये हुए कुछ नुस्ख़े और पुरानी हिकमत की किताबें हमारे घर में पड़ीं थीं वह सब बाबू चतुर्भुजसहाय के हवाले कर के और उनके वास्ते दवाख़ाने की एक मुनासिब जगह तज़बीज़ करके उनके सुपर्द कर दी गयी और इस प्रकार वे, जजेस-कोर्ट एटा के पूर्व 'कुर्क-अमीन' से 'डॉक्टर' बन गए।

इसी प्रकार सभी के लिए कुछ न कुछ प्रबन्ध मालिक की दया से होता चला गया।

मैंने एकांत में कई बार अपने अंतर में झाँक कर देखा है। अपने इन दोनों हाथों को बार- बार उलटपलट कर देखा है। मैं आपसे सत्य ही कहूँगा कि इन हाथों में तो कुछ भी नहीं किन्तु जिन महान हाथों से ये बँधे हुए हैं उनमें ऐसी अपार एवं अपूर्व शक्ति है कि जब चाहूँ सारी दुनियाँ की सम्पूर्ण सुख-संपत्ति अपने एक मात्र पुत्र के लिए उपलब्ध करा दूँ किन्तु अपने सदगुरुदेव की भविष्यवाणी पर मुझे पूर्ण भरोसा है। यही कारण है कि जब-जब उसे भीषण दुःख समूहों की अग्नि में तपता पाता हूँ तो कल्पना करता हूँ कि यह ईश्वर की अनुकम्पाएँ ही हैं जिससे उसके साधन-पथ में प्रकाश व अनेकानेक उपलब्धियों के पुञ्ज जाग उठेंगे। मुझे अपने प्रभु की वाणी पर पूरा भरोसा है।

ईश्वरभक्ता कुन्ती ने भी भगवान् से यही वर माँगा था कि -

विपदः सन्तु नः शाश्वत्तत्र तत्र जगतगुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भव दर्शनम।
[श्रीमद्भागवत 01/08/25]

हे जगतगुरो ! हमारे जीवन में सदा पग-पग पर विपत्तियाँ ही आती रहें, क्योंकि विपत्तियों में

निश्चित रूप से आप के दर्शन हुआ करते हैं और आपके दर्शन हो जाने पर फ़िर अपुनर्भव अर्थात मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। फ़िर जन्म-मृत्य के चक्र में नहीं आना पड़ता।

अतएव साधक जब ईश्वर कृपा से भोगों की अभाव-रूप यथार्थ सुख की स्थिति में पहुँचता है और उसके मन से भोग-शक्ति चली जाती है तब यह समझना चाहिए कि उसके सौभाग्य सूर्य का उदय हुआ है -

"रमा विलास राम अनुरागी। तजत बमन इव नर बड़ भागी"

सारी ममता और सारी आसक्ति अनन्य अनुराग के रूप में भगवान के चरणों में आ कर केंद्रित हो जाएगी। फ़िर वह साधक स्वयं कुछ नहीं करेगा, भगवान उसके ह्रदय-देश में विराजमान हो कर कर्ता होंगे, क्योंकि वही भगवान का अपना घर है -

"जाहिं न चाहिय कबहुँ कछु तुम सन सहज सनेहु।
बसहुँ निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु।
[मानस 02. 131]

<u>तीस जून 1928 [ईस्वी] को रिटायरमेंट के बाद से मेरा सम्पूर्ण समय अब सत्संग में ही व्यतीत होने लगा था।</u> धीरे-धीरे एक ऐसा दौर भी आया कि हमारे घर में ही आने-जाने वालों का मेला सा लगने लगा। इस सब में उन सब की आव-भगत, उनकी सुख-सुविधाओं का ध्यान और उनसे अंतरंगता, उनके सभी प्रकार के शंका-समाधान इत्यादि का सम्पूर्ण दायित्व चि0 जगमोहन नरायन का ही रहता और उनकी सहायिका बनती मेरी लाड़ली बेटी सुशीला उर्फ़ शीला, जो अभी तक अविवाहित थी।

यही सिलसिला अब बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक जा पहुँचा कि आने-जाने वालों के आग्रह पर मुझे उनके घर भी जाना होता। वहाँ कई-कई दिनों की महफिलें होतीं और मुझे पता भी न चला कि कब और कैसे मैं इस मकड़जाल में फँसता ही चला गया। लोक-हितार्थ ही कहिये अथवा सच्चाई जो भी हो मैं चलता रहा, यात्राएँ होती रहीं और व्यस्तता बढ़ती ही चली गयी। इस सब का

नतीज़ा यह हुआ कि हर वर्ग के लोगों का रुझान अब आध्यात्मिकता की ओर बढ़ने लगा जिसमें स्थानीय लोग कम किन्तु सुदूर क्षेत्र के लोगों का जमावड़ा अधिक बढ़ने लगा।

हमारे तलैय्यालेन [वर्त्तमान में महात्मा राम चन्द्र मार्ग, फतेहगढ़] स्थित मकान [लालाजी निलयम] में अगस्त 1929 तक केवल दो आयताकार [12 x 24 वर्गफीट आकार के] कमरों के अतिरिक्त अंदर की तरफ एक बड़ा 'बरामदा' व रसोईघर और शेष पर्याप्त खुला मैदान था, जिसका अलग-अलग अवसरों पर आवश्यकतानुसार प्रयोग कर लिया जाता था। मार्च 1920 [ईस्वी सन] तक मकान का यही हिस्सा हमारे पास दो रुपया प्रति माह की दर से किराए पर था। बाद में रजिस्टर जिल्द संख्या [383] के सफ़ाहात 298 व 299 में नंबर 619 [registration No.] दिनांक 07.04.1920 को की गयी रजिस्ट्री के अनुसार इस दिन के बाद यही मकान हमारा अपना 'निजी-निवास' बन गया। अक्टूबर 1929 [ई0] में सड़क की तरफ़ दो कमरे और एक 'दालान' बन कर तय्यार हो गए। दो माह से अधिक का समय इस निर्माण-कार्य में लगा। इसका सम्पूर्ण दायित्व चि0 जगमोहन नरायन पर रहा। मकानों के डिज़ानिंग [रूपांकन] में उसे महारत [निपुणता] हासिल है, जिसकी पूरी कार्ययोजना से ले कर 'मज़दूरी' [labor] व निर्माण-सामिग्री का पूरा-पूरा लेखाजोखा रखने तक के दायित्व का निर्वाह उसने बड़ी कुशलता से किया।

उसके [**चि० जगमोहन नरायन**] अन्य जन्मजात सद्गुणों के बारे में जैसा कि पहले ही स्पष्ट किन्तु नियन्त्रित भाषा में उल्लेख कर चुका हूँ कि उसमें अद्भुत चुम्बकीय क्षमता है। एक बार कोई मिल ले उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। अपनी बात बहुत ही नपे-तुले और कम शब्दों में सामने रखने की अद्भुत क्षमता तो उसमें है ही इस के अतिरिक्त अनेक गुह्य व रहस्यपूर्ण विषयों की व्याख्या बड़े ही सहजभाव से लोगों के बीच प्रस्तुत करने की योग्यता उसमें है। प्रस्तुतीकरण, युक्तियुक्त [convincing], लोगों के दिल-दिमाग़ को स्पर्श करने वाला और पूर्णरूप से क़ायल कर देने वाला [प्रत्यायनीय] होता है। इस सब को निरखने-परखने का अवसर मुझे अगस्त 1929 के 'कानपुर-प्रवास' में हुआ। चिरंजीव जगमोहन नरायन भी हमारे साथ में थे। इस प्रवास में वहाँ के विभिन्न उच्च-शिक्षा-संस्थानों के कुछ प्राध्यापक [Lecurers] हमसे मिलने को आये। उनमें से कुछेक के साथ सत्संग में बैठने का अवसर मिला। उनसे मेरी मुलाक़ात तो मात्र आतंरिक-सत्संग तक ही सीमित रही किन्तु बाद में उनका बात-चीत का सिलसिला 'जग्गू' [चिरंजीव जगमोहन नरायन] से ही जारी रहता था। उसी बात-चीत का परिणाम यह हुआ कि उनके [याख्याताओं] के ही आग्रह पर उनके कॉलेज में हम-दोनों को [मुझे

व जगमोहन नरायन] जाना पड़ा। उन्हीं के आग्रह पर यहाँ मेरी उपस्थिति व संरक्षण में उसके [चिरंजीवी जगमोहन नरायन] दो 'लेक्चर' [याख्यान] भी करवाए गए जिनका कि अत्यंत ही गहरा प्रभाव वहाँ पर उपस्थित क्षात्र-क्षात्राओं व प्राध्यापकों पर पड़ा और उनका यह प्रयोग बहुत ही प्रभावी व सार्थक रहा।

इन्हीं दिनों सत्संग के इसी क्रम में राजपुताना कई बार जाना हुआ। मालवा-स्टेट में मथन्नी [मेरे सगे चचेरे छोटे भाई चिरंजीव कृष्णस्वरूप] डॉक्टर हैं। उनके पास भी दो बार जाना हुआ। वहाँ पर भी लोगों से जुड़ाव हुआ। बाद में मालवा व गुजरात के क्षेत्रों में समयाभाव व स्वास्थ्य की गिरावट के कारण चिरंजीव जगमोहन नरायन को कई बार अकेले ही जाना पड़ा।

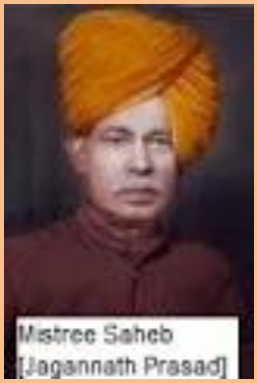

वहीं के एक बड़े राजमिस्त्री साहिब

[श्री जगन्नाथ प्रसाद] के वृत्तान्त के अनुसार बग़ैर किसी परिचय के ही जगमोहन की चाल-ढाल व उसकी महवियत [महबूब = प्रेमपात्र ; होने का भाव] से वहाँ के राजा साहिब ऐसे मन्त्रमुग्ध हुए कि कुछ न पूँछिये। हुआ यूँ कि जग्गू बाबू [चिरंजीव जगमोहन नरायन] जब राजमिस्त्री साहिब के घर पहुँचे तो पता चला कि वोह स्टेट के किसी बड़े क्लब के उद्घटानोत्सव में गए हुए थे अतः इन्होंने [चिरंजीव जगमोहन नरायन] सोचा, चलो वहीं चलते हैं और वह तुरंत ही अपने निर्णयानुसार चल पड़े। वही उनकी मनपसंद पोशाक़ [शेरवानी, चूड़ीदार पाजामा और सिर

पर अपनी मनपसंद रंग की पगड़ी] में मस्त झूमते हुए चले जा रहे थे। साथ में कोई था नहीं, राजमार्ग था अतः अन्य कोई मानसिक तनाव इत्यादि भी नहीं था। ऐसे में उनका यह सम्पूर्ण व्यक्तित्त्व अपने चुम्बकत्व के पूरे उरूज पर था।

मिस्त्री साहिब अपने ही अंदाज़ में सब कुछ सुनाते रहे और मैं एकटक हो कर बाल-भाव से उस समय मानों कहीं खो सा गया था। उन्होंने अपने वृत्तान्त को गति देते हुए बताया "जब राजा साहिब की शाही-सवारी निकल रही थी वहाँ के प्रचलित रिवाज़ के अनुसार सड़क पर दोनों ओर के लोग एक-किनारे हट कर आँखें झुकाये हुए सिर को भी हल्का सा नीचे करके बड़े अदब से खड़े होते जाते थे। शाही-सवारी क्लब में चल रहे समारोह के सम्पन्न हो जाने के पश्चात् जबकि 'राजमहल' वापस जा रही थी तभी सबकी नज़र उसी राजमार्ग पर पिपरीत दिशा से आ रहे भाईसाहिब श्रीमान जगमोहन जी पर पड़ी।

'शाही-सवारी' को रास्ता देने के लिए वे एक ओर हट तो गए किन्तु चूँकि अपनी ही धुन में इतने मस्त और मगन थे कि उन्होंने राजसहिब के सम्मान में न तो मार्ग के एक ओर खड़े हो कर सवारी आगे बढ़ जाने की प्रतीक्षा की और न ही दूसरे व्यक्तियों की तरह अपनी आँखें नीची कीं। राजासाहब ने भी उन्हें बड़े ही विस्मित भाव से निहारा। चूँकि क्लब का भवन-निर्माण कार्य मेरी ही देख-रेख में सम्पन्न हुआ था और वे मेरी कार्य-कुशलता पर सन्तुष्ट व प्रसन्न थे अतः सम्मान देने के लिए उन्होंने उस समय मुझे भी अपनी ही कार में स्थान दिया हुआ था। राजासाहब के अन्तर्भावों से मैं अनछुआ न रह पाया था। कुछ ही आगे बढ़ने के बाद उन्होंने सवारी मय-काफ़िले के वापिस [उसी दिशा में जिस ओर भाईसाहब श्रीमान जगमोहन नरायन जी आगे बढ़ रहे थे] मोड़ने का हुक्म फ़रमाया। 'शाही-सवारी' मय-लावलश्कर के कुछ दूर तक आगे बड़ी। उस समय चूँकि भाईसाहब जगमोहन नरायन जी पर 'जज़्ब' [आत्मसात] की हालत ऐसी

तारी [ढाँपे हुए] थी कि उन्होंने उसका कुछ भी नोटिस [सुध] नहीं लिया। कुछ क़दमों तक सवारी उसी दिशा में आगे बढ़ने के पश्चात पुनः उसको वापस पीछे की दिशा में पूर्ववत महल की ओर चलने का हुक्म हुआ। मैं राजासाहब के अंतर में पल रही उत्कण्ठा को स्पष्ट भाँप रहा था। शाही-सवारी को बार-बार क्लब से 'राजमहल' की ओर और पुनः उसको वापस क्लब की ओर ले जाने के क्रम को तीन बार दोहराया गया। अगली बार 'शाही-सवारी' को भाईसाहब श्रीमान जगमोहनजी के समीप ला कर रोक दिया गया। राजसहिब ने बग़ैर समय गँवाये ही कार का दरवाज़ा स्वयं ही खोला और भाई साहिब के सम्मुख संभ्रममिश्रित [Bewildered] भाव से खड़े होकर अनेक प्रश्नों की झड़ी लगा दी - 'आप कौन हैं, हाव-भाव व वेश-भूषा से तो कहीं के जागीरदार या राजकुमार लगते हैं, किन्तु वोह आप हैं नहीं। क्योंकि यदि ऐसा होता तो कोई अंगरक्षक इत्यादि साथ में होते, लेकिन आप अकेले हैं। मैं जानना चाहता हूँ कि आप कौन हैं? दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी रहा हूँ। विदेश में रह कर पर्याप्त उच्च शिक्षा प्राप्त की है। आप के मुख-मण्डल पर विराजमान एक अलौकिक आभा, मस्तक की रेखाएँ और उनके परोक्ष में एक असामान्य चुम्बकत्त्व इत्यादि सभी कुछ इस बात का इशारा करते हैं कि मैं यहाँ पर एक बहुत उच्चकोटि के योगी के सम्मुख खड़ा हूँ। अपनी भरपूर कोशिश के बावजूद मैं आप को अनदेखा करके आगे बढ़ पाने में अपने आप को असमर्थ पा रहा हूँ। कृपया आप अपनी वास्तविकता का परिचय दें' "। अब मिस्त्री साहिब सचमुच भावुक हो रहे थे। उन की आँखें नम थीं, कण्ठ रुँध रहा था। बड़ी मुश्किल से बता पाए कि किस प्रकार उन्होंने उन दोनों का परस्पर परिचय कराया।

चिरंजीव जगमोहन नरायन, मेरे एकमात्र पुत्र के रूप में मेरे साकार स्व्प्न हैं। सारे सत्संग-समाज को उनसे अनेकानेक आशाएँ हैं। अथाह शक्ति की ज्योति उनके अन्तर में निरन्तर प्रज्वलित होती रहती है। बड़ी ही सूझ-बुझ के साथ मेरे सदगुरुदेव की लगाई बाटिका को हरा-भरा रखने में वह मेरे अभिन्न सहायक भी हैं व भावी आचार्यपद की भूमिका वहन करने के लिए सक्षम हैं, क्योंकि वह एक आदर्श साधक भी हैं। सारे सत्संग समाज के दिशा निर्देशन में वह समर्थ हैं। बाहर से आये हुए जिज्ञासुओं व साधकों की सेवा में वह ऐसे तल्लीन हो जाते हैं कि उन्हें अपनी स्वयं की भूख-प्यास, नींद की या अन्य सुख-सुविधाओं का ध्यान ही नहीं रहता। सत्संग के 'वार्षिकोत्सवों' व 'साधना- शिविरों' के अवसर पर तीन-तीन दिन तक दिन-रात जाग उन्हें सेवा-परायणता में तल्लीन रहते हुए देखा गया है। यदाकदा बाहर से आये हुए भाइयों के निमित्त अपने बिस्तर इत्यादि दे कर स्वयं 'टॉट' [sacking] पर रात बिताते रहे हैं पर कानोंकान किसी को भी इसकी सूचना नहीं । उनके अनेक चरित्र हैं।

संयोग की बात है कि मेरी पुत्रवधु भी निरन्तर उसकी अनुगामिनी व अभिन्न सहायिका है। कठोर कष्ट उठाकर भी भाइयों की सेवा इत्यादि में तन्मय रह कर गौरान्वित होती रहती है।

चिरंजीव जगमोहन नरायन की दो पत्नियाँ क्रमशः उर्मिला देवी [पटियाली के ख़ुसरिया परिवार से] व दूसरी पत्नी एटा के एक समृद्ध परिवार से, जिसका नाम सुश्री जमुना देवी था, पहिले ही परमार्थगामी हो चुकीं हैं तथा यह उसकी तीसरी पत्नी [सुश्री भगवती देवी, सुपुत्री श्री मिही लाल, रईस - जलालपुर ज़िला एटा] उन्ही की ही भाँति शील, लज्जा व सेवा की मूर्ति है। परमात्मा इसे बनाये रक्खे। उसके अभी तक कोई सन्तान जीवित नहीं है। पहली पत्नी सुश्री उर्मिला देवी से एक पुत्री उत्पन्न हुयी थी, जिसका नाम मैंने ही बड़े चाव से 'विभा' रक्खा था किन्तु लगभग तीन माह पश्चात ही वह चल बसी। दूसरी पत्नी से कोई सन्तान उत्पन्न नहीं हुयी क्यों कि विवाह के लगभग एक वर्ष के अन्दर ही उसका भी अचानक किसी अनजान बीमारी से निधन हो गया। तीसरी पत्नी [सुश्री भगवती देवी] से वर्ष 1926 में एक पुत्र हुआ व जिसका नाम चि0 गुरुदत्त रक्खा गया। किन्तु विधाता की गति कोई नहीं जनता। मेरा यह एक मात्र पौत्र भी एक वर्ष का पूरा नहीं हो पाया और वह भी चल बसा। ईश्वर की लीला अपरम्पार है कोई नहीं जानता न जाने कब उसकी असीम कृपा इस दम्पति पर हो एवं अपनी कृपा से मालामाल कर दे।

==========

16. सायुज्ज्यता

सायुज्यता का अर्थ है - ऐसा मिलना कि कोई भेद न रह जाय। सांसारिक रिश्ते तो नित्य बनते हैं, बदलते हैं, बिगड़ते हैं। आध्यात्मिकता अथवा आत्मा से संबंधित सम्बन्ध ही ऐसे हो सकते हैं जिनके लिए समस्त भेद मिट जाने की बात कही जा सकती है, किन्तु उनकी गहरायी भी अंतर की ही होती है और इंद्रियातीत भी है। भेद मिट जानें का तात्पर्य है - जैसे पानी में चीनी; पानी में तेल नहीं। कहने का मतलब है कि यह उन दोनों के गुण - धर्म पर निर्भर करता है कि उनके मिल जानें पर, उनके भेद मिट जायँगे या नहीं। केवल आध्यात्मिक गुरु ही ऐसा हो सकता है कि यदि वह समर्थ है तो शिष्य के अंतर बसता उसका 'मैं-पना' निकाल फेंके और अपने अन्तर की भागवत्सत्ता जो वहाँ विराजती है उसे, उसके स्थान पर रूपान्तरित करा दे। खेल सारा का सारा अन्दर का है, जिसे हम संचरण भी कह सकते हैं।

बहुत पुरानी बात है, ऋषि-प्रवर श्वेताश्वतर से यह प्रश्न पूँछा गया कि परमरहस्य [गुह्य] ज्ञान किसे दिया जाय और किसको न दिया जाय। उपनिषद् में इसका उत्तर यह मिलता है कि जिसका अन्तःकरण विषय-वासना से शून्य हो कर सर्वथा शान्त न हो गया हो ऐसे मनुष्य को इस रहस्य का उपदेश नहीं देना चाहिए; तथा जो अपना पुत्र न हो अथवा शिष्य न हो, उसे भी नहीं देना चाहिये। इसमें एक महत्वपूर्ण छिपी हुयी बात यह भी है कि पुत्र और शिष्य को अधिकारी बनाना पिता और गुरु का ही काम है; अतः वह पहले से ही अधिकारी हो, यह नियम नहीं है। इसी उपनिषद् में इसके आगे एक और बात यह है कि - जिस साधक की परमदेव परमेश्वर में परम भक्ति होती है तथा जिस प्रकार परमेश्वर में होती है, उसी प्रकार अपने गुरु में भी होती है, उस महात्मा मनस्वी पुरुष के ह्रदय में ही यह बताये हुए रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं। अतः जिज्ञासु को पूर्ण श्रद्धालु और भक्त बनना चाहिए।

इस सबको पा लेने अथवा उसकी योग्यता प्राप्त करने की, प्रारम्भ से अंत तक की साधना को सूफ़ी संतों ने 'सफ़र' की संज्ञा दी है, जिसके लिए एक विशेष प्रकार की तैयारी की आवश्यकता होती है। इस सबके लिए सबसे प्रारम्भिक आवश्यकता होती है - अच्छे से अच्छा आचरण, ऊँची से ऊँची सचरित्रता, निर्भयता, पूर्ण परोपकार भाव। योग के यम-नियमों में इनका समावेश है। वेदान्त के साधनचतुष्टय में भी इसका उल्लेख है; भक्ति-शास्त्र में, निष्काम-कर्म योग में, इन सबकी आवश्यकता पड़ती है, पर साधक बहुधा इन सद्गुणों की आवश्यकता और महत्व को न समझ कर, उनको एक-ओर छोड़ कर, प्रायाणायामादि साधनों में लग जाते हैं। इसी कारण उनकी उन्नति नहीं हो पाती। साधनचतुष्टय या यम-नियमों के पूर्ण-रूप से अपने में आ जानें

से अपना विकास स्वतः ही पूर्ण हो कर, हमारी सुषुप्त आध्यात्मिक शक्तियाँ आप से आप जाग उठतीं हैं और बिना योग साधना के भी हम उच्च शिखर पर पहुँच जाते हैं। इन प्रारम्भिक सद्गुणों के बिना, योग सिद्धि प्राप्त हो जाने पर भी अधःपतन की संभावना बनी रहती है।

सच्ची आध्यात्मिकता तो उस दशा की पूर्ण प्राप्ति या पूर्ण अनुभूति है, जिसमें साधक स्वयं को सब प्राणियों में और सब प्राणियों को स्वयं में देखता है। अर्थात अपने और दूसरों में, एक ही आत्मा का दर्शन करता है और उसमें द्वैत-भाव, लेशमात्र भी शेष नहीं रहता।

उपरोक्त दशा में साधक, दूसरे भूखे की भूख का, पतित के पाप का, दुखी के दुःख का स्वयं अनुभव करता है। इस प्रकार की आध्यात्मिकता का मूल स्रोत है, 'प्रेम'।

एक तत्व को जानना, उसकी चेतना का बनें रहना, उसका सदैव अनुभव होता रहना, यह आध्यात्मिकता है। संत कबीर की वाणी है - **'न पल बिछुड़े पिया हमसे, न हम बिछड़े पिया से'।**

मेरे हज़रत क़िब्ला [परमपूज्य गुरुदेव] चूँकि एक लम्बे अरसे तक बच्चों को पढ़ाने का कार्य करते रहे थे अतः उन्होंने अपनी गुरुपरम्परा से सम्बद्ध तरीक़त की सभी बातों को क्रमबार समझाया और उनका आदेश रहा कि उनके द्वारा दी गयी शिक्षाओं को मैं अथवा मेरे गुरुभाई भी लिख लिया करें। यदा-कदा वह इन संगृहीत आलेखों को देखते व बहुत प्रसन्न होते। उन्ही उपदेशों को जो मुझे अपनें जीवन में भी उतारने पड़े हैं। आपके भी समक्ष रखता हूँ, संभवतः कुछ लाभप्रद हो सकें।

आपका कहना था कि प्रारम्भ में स्थूल-शरीर की और मन के भावों की अच्छी प्रकार सफ़ाई हो जानी चाहिये। किसी भी प्रकार का नशा अथवा उत्तेजक पदार्थ हमारे सिलसिले के अभ्यासियों के लिए विष से भी अधिक ख़तरनाक हैं। साधना के प्रारम्भ करने के कम से कम एक वर्ष पूर्व से ही इनका त्याग कर देना आवश्यक है। हाथ, पैर, नाखून, सभी स्वच्छ रहें और समस्त समूची देहराशि, हर प्रकार से पवित्र व स्वच्छ रहे। पहनने, बिछाने-ओढ़ने इत्यादि के वस्त्र अति स्वच्छ होना चाहिए। विचार व मनोभाव साफ-सुथरे व शान्तिमय हों। शरीर की देखभाल और उसका रखर-खाव भी पूरे मनोयोग से करना चाहिये और उसमें लापरवाही नहीं बरतनी चाहिये, जहाँ तक हो सके रोग-मुक्त रहें व शरीर का कोई भी भाग छिन्नभिन्न या विकृत न होने पावे। जूते

का ध्यान रक्खें कि वह तंग न हो। साथ-साथ सोना जागना इत्यादि पूरे दिन-रात की दिनचर्या बहुत ही नियमित व नियंत्रित होनी चाहिए।

अभ्यासियों को अपनी साधारण बुद्धि का उपयोग जारी रखना चाहिये। कोई भौतिक विचार, श्वाँस अथवा किसी भी अंग विशेष पर ध्यान लगाना भी ठीक नहीं है। सभी का रास्ता एक ही है। जीते जी, शरीर और शरीर की चेतना दोनों अलग-अलग महसूस हों। इस शरीर के भीतर ठीक इस शरीर जैसा ही सूक्ष्म शरीर भी है। यह भी ठीक इस शरीर जैसा ही है। किन्तु अत्यंत सूक्ष्म कणों से निर्मित है, सुकुमार और सूक्ष्म। उस शरीर के बाहर भी निकलने का उपाय है और तब जो अनुभव होगा वह अतीन्द्रिय अनुभव अथवा अशीरी अनुभव होगा। अतः अपने अभ्यास के सहारे उसके अंदर वाले शरीर [सूक्ष्म व कारण] जहाँ जुड़ते हैं अथवा संपर्क करते हैं उन्ही संधि-बिंदुओं का नाम ही 'चक्र' या 'लतीफ़ा' है। अतः 'चक्र' या 'लातायफ़' इस शरीर के हिस्से नहीं हैं; सिर्फ स्पर्श-क्षेत्र हैं। सामान्य पुरुषों व स्त्रियों में यह दोनों शरीर कई स्थानों पर एक दूसरे को स्पर्श कर रहे हैं। अथवा जिन पाँच बिंदुओं पर इनका सम्पर्क या स्पर्श होता है यदि वहाँ अथवा कहीं भी यदि इस [स्थूल या अन्नमय वाले] शरीर को काटा जाय तो इन चक्रों का कोई पता नहीं चलता। इन्हें जोड़ने वाली एक चुम्बकीय शक्ति है; वह आपस में जुड़ जानें पर कुण्डलिनी का अनुभव होने लगता है, वह जाग्रत होने लगती है। अर्थात इनके अलग अलग स्थानों पर सम्पर्क से जो शक्ति संचित होती है वह 'कुण्डलिनी' है।

हाँ! तो मैं कह रहा था कि आँतरिक अभ्यास के मध्य बहुत ही सावधान रहने की आवश्यकता है। यदि थोड़ा भी भारी-पन, पीड़ा या चक्कर आना अथवा दवाव अनुभूत हो तो अभ्यास की क्रिया को रोक देना चाहिये क्योंकि यह इस बात की चेतावनी है कि स्थूल व सूक्ष्म शरीर इसे सहन नहीं कर पा रहे हैं - बीमार हो जानें की संभावना है। कभी कभी ऐसा भी देखने में आता है कि अभ्यासी के कुछ दुर्गुण, सुषुप्तावस्था में या किसी अन्य कारण से जो अभी तक दबे पड़े थे, वे अभ्यास के परिणाम स्वरुप उत्तेजित व उत्कृष्ट हो कर प्रगट होने लगते हैं। **अतः यम और नियम योगी [अभ्यासी] को प्रारम्भ में एवं अनिवार्य रूप से अनुपालन करते रहना चाहिए। 'यम' का अर्थ है - जो नहीं करना है और 'नियम' का अर्थ है - जो करना है। अहिंसा [किसी को दुःख न पहुँचाना] सत्य, अस्तेय [दूसरे की वस्तु बिना उसके मालिक के दिए न लेना] ब्रह्मचर्य और अपरिगृह अर्थात - वस्तुओं का संग्रह न करना, ये 'यम' हैं। शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय [जप और सद्ग्रन्थों का अध्यन] और ईश्वर की भक्ति ये सब 'नियम' हैं।**

उपरोक्त सभी बातें वे पहले तो घण्टों तक मौखिक-रूप से समझाते, अगले दिन लिख कर लाने को कहते, फिर पुनः उन लेखों का गहन निरीक्षण करते। त्रुटि या कमी रह जाती तो उसका स्वयं सुधार करते। उसका नोट आप अपने पास भी सुरक्षित रखते और हम सबके आचरण पर चौकसी रखते और देखते कि अभी भी कहीं चूक तो नहीं रह गयी है।

मेरे हज़रत क़िब्ला की हर बात निराली थी। उनके रोम रोम से उपदेश स्पफुटित होते थे। उनका हर कृत्य शिक्षाप्रद होता। जिस प्रकार अपने 'प्रियतम' के घर जाते समय सहेलियाँ अपनी उस 'सजनी के साज-श्रृंगार' में कहीं कोई कोर-कसर नहीं छोड़तीं, उनकी भी यही ललक रहती। बड़े ही गज़ब की रहबरी थी मेरे सरताज की। मेरी तैयारी में उन्होंने कोई रँग बाकी नहीं छोड़ा।

जो अणु-अणु में व्याप्त है, जो हर समय हमें भीतर-बाहर, दोनों ओर देख रहा है, उससे मिलने के किये क्या श्रृंगार किया जाय? फ़िर भी भक्त का मन तो मानता नहीं और इस हेतु "उस" के निमन्त्रण पर "तन, मन, जीवन साजि के, दई चली लेइ भेंट"। समागम की उतकण्ठा व अभिलाषा इतनी तीव्र है कि अपने शरीर, मन और यौवन को सजा कर भेंट में देने के लिए भक्त चलता है। लेकिन तुरन्त ही अपनी कम-अकली पर दृष्टि जाती है और वह सोचता है - श्रृंगार करके "उस" के पास क्या जाऊँ? उसे ही सर्वत्र देख रही हूँ। "पिय" तो प्राणो में बसा हुआ है। वह शरीर और मन से भिन्न हो भी कैसे सकता है? आँखों में वही समाया हुआ है; जहाँ भी दृष्टि जाती है, उस के अतिरिक्त अन्य कुछ दीखता ही नहीं है। उसी के वाणों से समस्त सँसार बिंधा हुआ है। कोई स्थान उससे खाली नहीं है।

जिस प्रकार हिन्दू - शास्त्रों के अनुसार कर्म-काण्ड, उपासना-काण्ड, ज्ञान-काण्ड तथा सिद्धावस्था हैं, उसी प्रकार सूफ़ी-संत मत में भी साधक की चार अवस्थाएँ बतायीं गयीं हैं। शरीयत, तरीक़त, हक़ीक़त और मार्फ़त। हिन्दू भक्त भी ब्रह्म की भावना, अनंत सौंदर्य एवं अनंत गुणों से संपन्न प्रियतम के रूप में करते हैं। सूफ़ियों का 'अनलहक़' हिन्दू दर्शन में वर्णित, 'अहँब्रह्मास्मि' का ही बोधक है। सर्वात्म समर्पण के अनन्तर, भक्त अपने भगवान में लय हो जाता है; वह तद्रूप, तदाकार, एक और अभिन्न हो जाता है। इस प्रलयावस्था का सूफ़ी मत में पर्याप्त विस्तार से वर्णन मिलता है।

'फना' - वह स्थिति है, जिसमें साधक अपनी अलग-अलग सत्ता की प्रतीति से परे हो जाता है। इसके बाद 'फ़क़द' की अवस्था है, जिसमें अहंभाव का सर्वथा "नफ़ी" = 'नेस्ति' [लोप] हो जाता है। 'सुक्र' [प्रेममद] की स्थिति वह है जिसमें साधक अपनी निजी सत्ता की चेतना को खो

कर सर्वत्र और सर्वदा अपने प्रियतम को ही देखता है और उसी अमर दिव्य-प्रेम में मारा मारा फिरता है। यह त्याग-पक्ष की साधन प्रणाली है। प्राप्ति-पक्ष में इसी बात को दूसरे ढंग से व्यक्त किया जाता है। इसमें 'बक़ा' है। यह वह स्थिति है जिसमें साधक, परमात्मा में ही अखण्ड विश्वास और शृद्धा रखते हुए उसी 'एक' में निवास करने लगता है। इसके बाद उसे परमात्मा की प्राप्ति होती है, जिसे सूफ़ी संतों ने 'वज़्द ' [आनन्दाधिक्य से आत्मविस्मृति], कहा और अंत में 'शव्ह' अर्थात 'पूर्ण शान्ति' ।"

प्रेम में यह पक्ष देखने सुनने में जितना ही सरल प्रतीत होता है, वास्तव में है, उतना ही कठिन। यहाँ तो 'सिर' का सौदा है। कहा भी है - 'सीस उतारे भुहिं धरै, तापर रक्खै बाँध'। इसमें 'मैं' और 'हरि' एक साथ नहीं रह सकते। 'हरि' को पाने के लिए, 'मैं' का लोप करना ही होगा।

मैनें अपने प्रभु की एक और लीला देखी। बात उस समय की है जब हुज़ूर महाराज, जनाब मौलवी साहिब गंभीर रूप से बीमार हो गए थे। फर्रुखाबाद में उपचार से जब कोई लाभ देखने में नहीं आया तो उन्हें कानपुर ले जाना पड़ा। वहीं ठहर कर आपका उपचार चल रहा था। प्रत्येक शनिवार को शाम की गाड़ी से मेरा वहाँ जाना होता। श्री चरणों में हाज़री होती और अगले दिन रविवार की सायं पुनः फर्रुखाबाद के लिए वापसी। बस। उन दिनों यही कार्यक्रम चल रहा था। फर्रुखाबाद नगर में रेलवे रोड पर, मोहल्ला पण्डाबाग़ में एक 'शाह साहिब' रहा करते थे। शाह साहिब, मशहूर तो थे एक चमत्कारी संत के रूप में। किन्तु थे बहुत ही संकीर्ण विचारों वाले। हुज़ूर महाराज से इस कारण अप्रसन्न रहा करते थे कि सूफ़ी संतों के सिलसिले में जो आध्यात्मिक विद्या उन्हें प्राप्त हुयी थी, क्यों बिना सँकोच वे हिन्दुओं को लुटाये दे रहे थे और उन जैसे मुसलमान दोस्तों को क्यों नहीं देते थे; बल्कि [उनकी धार्मिक संकीर्णता व पक्षपात के कारण] कई बार अपनी महफ़िल से निकाल कर सोहबत से च्युत कर दिया करते थे। मुझ नाचीज़ पर शाह साहिब की नज़र विशेष रूप से थी। हुज़ूर महाराज की पवित्र बुज़ुर्गाना - ममता व प्रेम तथा उपकार व कल्याण भाव की वारिश, मुझ नाचीज़ के ऊपर होते देख कर संभवतः वह [शाह साहिब] कुढ़ते रहते थे।"

उन्हीं दिनों जब मैं एक शनिवार की सायं, कानपुर की गाड़ी पकड़ने की नियत से फर्रुखाबाद रेलवे स्टेशन की ओर जा रहा था, अचानक ही, एक गली से निकल कर, शाह साहिब अपने कुछ मुरीदों को साथ ले कर सड़क तक आ गए। लौकिक शिष्टाचार के अन्तर्गत मैंने उन्हें प्रणाम इत्यादि किया व जल्दी जल्दी में, आगे बढ़ना ही चाहता था कि शाह साहिब ने बरबस रोक कर मुझे अपनी छाती से चिपटा लिया और बार-बार अपने सीने से मेरा सीना दबाते रहे।

तब अपने शिष्यों से यह कहते हुए मुझे मुक्त किया - "यही हज़रत मौलाना शाह फ़ज़्ल अहमद खां साहिब नक़्शबन्दी मुजद्दिदी मज़हरी के मुरीद व ख़लीफ़ा [Caliph] हैं और इन्हीं का नाम राम चन्द्र है"। मुझे बाद में पता चला; इन शाह साहिब के बारे में यह मशहूर था कि इन्होंने ऐसी शक्ति प्राप्त कर रक्खी थी कि यह दूसरों की आध्यात्मिक शक्ति [रूहानी निस्बत] खींच [सल्व] कर लेते थे और खाली करके छोड़ दिया करते थे। शाह साहिब ने संभवतः अपने सीने से मेरा सीना दबा कर यही क्रिया की थी। इस बात को मैंने, उस समय कोई विशेष महत्व नहीं दिया और आगे बढ़ गया। बाद में पता चला कि उसके कुछ क्षणोपरान्त ही शाह साहिब के सीने में ऐसी तीव्र पीड़ा उठी कि जो अनेकानेक उपचार के बाद भी, ठीक या कम होने के स्थान पर बढ़ती ही गयी। अंततः अगले दिन प्रातः लगभग चार - पाँच बजे, शाह साहब ने अत्यन्त दीन भाव से अपने बहुत ही निकटस्थ शिष्य से फ़रमाया - "मुझे कानपुर, मौलाना साहिब [हुज़ूर महाराज] के पास फ़ौरन ले चलो वरना इसी दर्द में मेरी मौत हो जाएगी। यह दर्द नाक़ाबिले बर्दाश्त है। जिन बुज़ुर्ग़ के मुरीद इस पैमाने के पहुँचे हुए हैं वह बुज़ुर्ग़ साहिब खुद तो कुतुबे वक़्त ही हैं। उन्ही हज़रत का वह मुरीद राम चन्द्र है जिसे सीने से सीना लगा कर मैंने यह हिम्मत की थी कि उसकी सारी की सारी निस्बत सल्ब कर लूँ। हुआ लेकिन उलटा ही, वह हमारी ही निस्बत सल्ब कर के ले गया और चलता बना। यह दर्द इसी वजह से है। यदि मुझे ज़िंदा देखना चाहते हो तो अब देर मत करो और फ़ौरन कानपुर ले चलो।"

प्रातःकाल कानपुर पहुँचने वाली गाड़ी से, शाहसाहिब, हुज़ूर महाराज की सेवा में लाये गये। औपचारिक प्रणाम इत्यादि के उपरांत शाहसाहिब, हुज़ूर महाराज के घुटनों पर सर रख कर रोने लगे। शाहसाहिब की यह हालत व जानलेवा दर्द की परेशानी देख कर तुरन्त एक चारपाई मंगवा कर उन्हें लिटा दिया गया। इसी बीच यह नाचीज़ भी बाज़ार से हुज़ूर महाराज के लिए अनार व अन्य फ़ल इत्यादि ले कर वहाँ पहुँच गया। अपनी पीड़ा से बेहाल हुए शाहसाहिब पर मेरी दृष्टि पड़ी। शाहसाहिब मुझे देख कर पुनः तड़प उठे और हुज़ूर माहराज को सम्बोधित करके कहने लगे - "हज़रत! फनाफिल शेख़ मुरीद तो बहुत देखने में आये लेकिन ऐसे कहीं-कहीं ही और कभी-कभी ही देखने में आते हैं जिनमें उनका पीर, खुद फ़ना हो और फिर माशाअल्लाह क्यों न हो कि जब हज़रत की ऐसी नूरानी आला हस्ती; जो फ़नाफ़िलमुरीदी का खेल, खेल सके, जो अज़ीज़ राम चन्द्र को नसीब हुयी है। उन्हें भी मुबारक।" क्या कहने हमारे हज़रत क़िब्ला का भी और उनकी दरियादिली का। दर्द से बेहाल व कराहते हुए शाह साहिब अभी अपना पूरा हाल निवेदन भी न कर पाए थे कि हमारे सरकार ने फ़रमाया - **"जनाब शाह साहिब ! आप ज़रा भी दिल छोटा न करें। आप निहायत इत्मीनान से रहें। यह रही आप की अमानत। तकिये के नीचे**

हिफाज़त से मैनें अपने पास रक्खी हुयी है।" और, शब्दों के आवेग के साथ ही अपना ताक़िआ उठा कर उसे अपनी गोद में रख कर बड़ी ही मनमोहिनी अदा के साथ, सीधे हो कर बैठ गए। फ़रमानें लगे - "मालिके कुल से मुआफ़ी माँगिये। तौबा कीजिए। यह अहद कीजिये कि अब आयन्दा किसी परमात्मा की राह चलने वाले से कभी ऐसी हरकत नहीं करेंगे।" शाह साहिब ने उठ कर उनके आगे तोबा की, कान पकड़े, मुआफी माँगी। हुज़ूर महाराज पुनः उनकी ओर मुखातिब हुए - "शाह साहिब ! आँखे बंद करके अंदर, बातिन की तरफ़ मुतवज्जोः हो जाइये।" और, इधर मेरे सरकार ने मेरा सम्मान बढ़ाने के लिए मुझे आदेश दिया - "इन्हें तवज्जोः दो। अपनी मुहब्बत से इन्हें मालामाल कर दो। मैं तुम्हारी पुश्त पर हूँ।" लगभग आधा घण्टा - समय हो जानें के बाद हुज़ूर महाराज की कड़कती हुयी आवाज़ ने खामोशी भंग की - "अब बस करो।" सभी ने आँखे खोलीं। मैंने देखा, शाह साहिब अभी भी उनके आगे गिड़गिड़ा रहे थे, फ़ूट फ़ूट कर रो रहे थे। किन्तु इस बार मुझे उनकी आँखों में चमक व चहरे पर प्रेम की झलक और संतोष के पुट भी देखने को मिले। उनकी वाणी जो मेरे कानों में पड़ी - "जनाब ! आपने तो कमाल कर दिया। मुझे मेरी खोयी हुयी दौलत, वापस ही नहीं मिली बल्कि उससे कई गुनी हो कर आयी है .... ।" और उसी प्रेम व कृतज्ञता के मिले जुले भावों के मध्य बड़ी देर तक मेरे सिर पर हाँथ फेरते रहे और न जानें कितनी ही दुआएँ दीं, बलाएँ लीं।

इस घटना के बाद हुज़ूर महाराज बहुत ही गंभीर व चुपचाप रहनें लगे। अब वह अकेले ही रहना पसंद करते थे। जब भी उनकी सेवा में उपस्थित होता, हर बार ही, ढेर - सारी हिदायतें देते, 'तरीक़त' से सम्बंधित, न-जानें-क्या-क्या रहस्यमयी बातें समझाते। मुराक़बः पर विशेष बल दिया जाता। मुझसे, अधिक से अधिक समय देने की अपेक्षा की जाती। वे अब अक्सर ही फ़रमाया करते - "काम बहुत बड़ा है और वक़्त बहुत कम है।" उनकी आँखोँ से समग्र - क्रान्ति और आमूल परिवर्तन की चिंगारियाँ निकलतीं थीं। ऐसा लगता मानों वह सम्पूर्ण - समाज का पुनर्गठन करना चाहते थे। वह किसी को भी, यहाँ तक कि जानवरों को भी दुखी नहीं देखना चाहते थे। वह कहते तो कुछ न थे किन्तु उनके हाव - भाव से ऐसा लगता था कि न-जानें क्या - क्या और किन-किन कल्याणकारी योजनाओं को कार्य-रूप देना चाहते हों।

मुझसे उनका लगाव गुणात्मक अनुपात में बढ़ता जाता था। ऐसा लगता था, जिस समग्र क्रान्ति का स्वप्न उनकी आँखों में सुरक्षित था, उसका अग्रदूत मुझे ही बनाना चाहते थे। मैं दिन-रात अनुभव भी करता था कि मेरी राग-रग व समस्त धमनियों व शिराओं में, वे एक चिर यौवन शक्ति का सँचार निरंतर कर रहे थे।

एक बार जब मैं उनकी सेवा में उपस्थित हुआ तो देखा तो बड़ी ही गंभीर मुद्रा में बैठे हुए कुछ लिख रहे थे और आस-पास कुछ पुरानी पुस्तकें व कापियाँ इत्यादि रक्खी थीं। मैं चुपचाप, इस खामोशी से कि मेरा वहाँ पहुँचना कहीं उनको बिघ्न न महसूस हो, एक कोनें में बैठ कर सतर्कता पूर्वक उनके आदेश की प्रतीक्षा करने लगा। किन्तु तत्क्षण मुझे बोध हुआ कि वे मेरी ही प्रतीक्षा कर रहे थे। बैठते ही इशारे से मुझे बुला कर अपने अति निकट बैठा लिया व अपना कार्य बीच में रोक कर, अर्थात जितना लिख चुके थे, सुनाने लगे - "मेरे मुर्शदना जनाब अहमद अली खां साहिब [रहमत 0] ने जब बन्दे को इजाज़त और ख़िलाफ़त [जां-नशीनी = प्रतिनिधित्व] की इज़्ज़त बख्शी तो अव्वल मक़तूब [पत्र] फ़रमाया - पढ़ लो। चनाँचे ग़ुलाम ने पढ़ा। जब ख़त्म हो चुका तो फ़रमाया की फ़ज़्ल अहमद, यह बातें तो हम से कुछ न हुईं। मैंने अर्ज़ किया कि हज़रत अब इंशाअल्लाह [ईश्वर इच्छा से] हुज़ूर फ़रमाँ [प्रगट] होंगे। हज़रत ने फ़रमाया कि अब हम गोर किनारः हुए [अब हमारा अंत समय निकट आ गया है]। चन्द दिनों के मेहमान हैं। अब क्या होगा। बन्दा यह सुन कर रोने लगा। फ़रमाया - शाबाश, यह वक्त रोने का है। [तत्काल] मेरे क़ल्ब में बशाअत [आनन्द] व सुरूर [हल्का नशा] पैदा हुआ। सुन कर फ़रमाया - ये बातें खाली न जायँगी। इनका ज़हूर [प्रकाश] अब तुमसे होगा। हज़रत का यह इर्शाद [धर्मगुरु का उपदेश] सच हुआ। इस अहक़ [जो बहुत अधिक हक़दार हो] से अक्सर हिन्दुओं, ईसाइयों और शियाओं को फ़ायदा पहुंचा। क़लमा 'अल्हम्दो लिल्लाह अला' ... पढ़ा गया। इसके बाद हज़रत मुर्शदना ख़लीफ़ा जी साहब ने फ़रमाया कि अब तक तो तुम खूब आराम से रहे। अब मैं एक अज़ीम [महान बोझ, उत्तरदायित्व] और अमृ फरवीम [प्रतिष्ठापूर्ण कार्य] तुम्हारे सुपुर्द करता हूँ। अगर बजा लाओगे तो अम्बिया और औलिया के साथ मशहुर होंगे [क़यामत के दिन अवतारों और संतों के साथ ज़िंदा किये जाओगे], वर्ना यही खिकी [वस्त्र] दोज़क [नर्क] को खींच ले जाएगा। कमतरीन बहुत रोया और अर्ज़ किया कि हज़रत! बन्दा को मुआफ़ फरमाइए। खलीफा जी साहिब ने फर्माया - खुदा आसान करेगा। और ग़ुलाम के वास्ते। फिर, हज़रत सैयदना की अतीया [उपहार] तवर्रूकात तलब फ़रमा कर उसमे से हज़रत की तस्बीह [माला] और कुर्ता शरीफ की आस्तीन मुबारक और एक टुकड़ा दस्तार [पगड़ी] शरीफ़ का और एक कुलाह [टोपी] और अपना कुर्ता मरहमत फ़रमाया [प्रदान किया] और यह फ़रमाया कि हर एक बुज़ुर्ग अपने ख़लीफ़ा को अपना तवर्रूक दिया करता है। ज़हे नसीब तुम्हारे [क्या खूब तुम्हारा भाग्य है] कि तुमको हज़रत सैयदना अबुल हसन साहिब [रहमत 0] के तवर्रूकात मिले। शुक्र इस अतीये [उपहार] का करना चाहिए।

हुज़ूर महाराज की हर अदा निराली थी। उपरोक्त वक्तव्य जो स्वयं उन्होंने ने अपने मुखारबिंदु से पढ़ कर सुनाया, उसका कुछ भी अर्थ उस समय समझ में न आया कि क्यों सुनाया गया। अगले दिन मुझे ज्ञात हुआ कि शुक्रवार से रविवार दिनांक दिनांक 09, 10, 11 अक्टूबर 1896 को एक उर्स का आयोजन वह स्वयं कर रहे थे जिसमें सभी धर्म व सम्प्रदायों के संत व महात्मा पधारने वाले थे। कार्यक्रम के प्रथम दिन ही शुक्रवार दिनांक 09 अक्टूबर 1896 की सुबह से ही पूर्वनिर्धारित कार्यक्रमानुसार, उर्स - शरीफ का शुभारम्भ हुआ जिसमें हुज़ूर महाराज ने मुझे अपना दाहिना हाथ बनाया हुआ था और इसी क्रम में उनकी अनेकानेक योजनाओं का कार्यान्वयन का दायित्व भी मुझे ही दिया गया था।

उर्स के अंतिम दिन, रविवार दिनांक 11 अक्टूबर 1896 की सायं एक अति विशिष्ट - व्यक्तिओं की सभा हुयी जिसमें दूर-दूर से आये हुए सभी धर्म व सम्प्रदायों के हिन्दू-मुसलमान, सिख, ईसाई, कबीरपंथी, जैन, बौद्ध इत्यादि तत्कालीन पीर मुर्शदना, प्रमुख संत सद्गुरु, मठाधीश इत्यादि की पदवियों से विभूषित व पदासीन महानुभाव सम्मिलित थे। सब के सामने मुझ अकिंचन को प्रस्तुत करते हुए हुज़ूर महाराज ने घोषणा की - "इस फ़क़ीर को बुज़ुर्गान-ए-सिलसिला आलिया नक़्शबंदिया-मुजद्दादिया-मज़हहरिया की तरफ से यह हुक्म हुआ है कि अज़ीज़ राम चंद्र को इजाज़त-ताम * [समग्र या कुल = इजाज़त ख़िलाफ़त] दे दी जाय। लिहाज़ा बुज़ुर्गान! बराहे मेहरबानी, बाद इम्तिहान इसकी तस्दीक़ [सत्य प्रमाणित] या तरदीद [रद्द करना या खंडन करना] फ़रमाँ देवें।" इसके बाद मेरे सरकार ने मुझे, मेरा घरेलू नाम ले कर अत्यंत ही स्नेहमयी भाव के साथ, सम्बोधन किया "बेटे पुत्तू लाल! इन्हें तवज्जोः [ध्यान कराओ / ईश्वरत्व का संचरण] दो और जो भी सवाल ये तुमसे पूछें उनका ठीक-ठीक [और उपयुक्त] उत्तर देना। मालिक तुम्हे कामयाबी दे।"

*** Khan Sahib Khaja Khan, in his elite book 'Studies In Tasawwuf, writes - "The idea therefore is that a theurgist or 'Mashshayikh' who has selflessly practiced in this art, can bring about a particular desired effect, by the manipulation of the Arabic letters. He is supposed to have permission from his 'Pir' who grants him the same, after he is fully satisfied about the moral character or selflessness of his 'murid' ; the same precaution as is taken in the case of teaching 'Hypnotism' or 'Mesmerism'.**

अपने हज़रत क़िब्ला की आज्ञाकारिता में, मैंने तनिक भी देर नहीं की। मेरी आँखें मानों स्वतः ही मुंद गयीं। तदन्तर धुएँ की मानिंद विचारों की श्रृंखला का एक सोता मेरे अंदर से फ़ूट निकला, सम्भतः गुरुदेव के प्रति, आभार प्रदर्शन का यह स्थूल रूप था। इतना ही बहुत था, तुमने मुझे अपने चरणों में आश्रय दिया। मुझ को अपनाया। मुझ अपात्र पर तुम्हारी प्रीति की वारिश जो प्रतिक्षण मुझे शीतलता देती है। तुम्हारे अपार वात्सल्य व प्यार में मैं डुबकियां लगा रहा हूँ - कहीं कुछ ओर छोर नहीं मिलता। आज तक जो भी मुझसे हुआ है अथवा जब से तुम मेरी बात-बात पर अपार - अहैतुकी कृपा की वृष्टि सी करने लगते हो, इसमें मेरा कुछ भी तो नहीं, नहीं प्रयास भी मेरा नहीं। जो कुछ भी है, तुम्हारी ही तो प्रेरणा की अमर बेलि के पत्र पुष्प हैं - शायद तुमने पहचाना नहीं होगा। तुम्हारे प्यार ने जैसा चाहा, वैसा ही मुझ से हुआ। मेरे सर्वस्व के मालिक! मेरी दृष्टि तो एक मात्र बस तुम्हारी ही ओर है। तुम्हारी ही इच्छा पूर्ण हो।

इसके बाद स्थूलता के बादल स्वतः ही छटने लगे और कुछ क्षणोपरान्त मानो पौ सी फ़टी। गुनगुना प्रकाश दृष्टिगत हुआ और उसी के पार, मैंने पहचान भी लिया, कि यह सद्गुरु कृपा का सूक्ष्म रूप था जो भावों की स्थूलता से वापस आ कर अब इस पार झाँक रहा था। गुरुकृपा के ऐसे मनोहारी और ताण्डव नृत्य से यह मेरी पहली पहचान थी। मुझे क्या पता था कि ये ही प्रलय से साक्षात्कार के क्षण थे; गज़ब हो गया। विचारशून्यता अब बढ़ते-बढ़ते, तम के स्तर पर पहुँच रही थी। मुझे स्वयँ का स्वरुप और शनैः शनैः उसका अहसास भी समाप्त प्राय सा प्रतीत होने लगा व बीच में जब ध्यान, के बिंदु पर वापस आता तो वहाँ भी अपने प्रीतम गुरुदेव के अतिरिक्त कुछ न पाता था। धीरे धीरे इसी [उन्हीं का अस्तित्व] का विस्तार प्रतीत हुआ और, इस सीमा तक कि, मानो सारी सृष्टि ही उसमें समाहित हो जाएगी। एक अपूर्व - अलौकिक आनंद की स्थिति थी। अपनी वंश-परम्परा के सभी गुरुजन, एक पारदर्शी प्रकाशपुँज के उस पार, गुपचुप, लुकाछिपी के मध्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होते रहे। ऐसा लगता था मानो प्रकृति स्वयं पूर्ण गरिमामयी नृत्य अवस्था में हो और आनंद ही आनंद छितरा हुआ था। कुछ समय तक सतनाम की गूँज उसी दृश्य में अवस्थित रह कर बड़ी ही मनोहारी - संगीतमयी आभा के मध्य अपना विश्राम देती रही। बाद में वह भी न रही। जो भी था; न वहाँ प्रकाश था, न अन्धकार। कोई रंग न था, कोई ध्वनि न थी। रंगहीन प्रकाश पिघल पिघल कर समस्त सृष्टि को अपने अस्तित्व में समेत लेना चाहता था। ऐसा जगमग वातावरण जिसमे असंख्य सूर्यों का प्रकाश व कांति कम पड़ रही हो। प्रेम व आनंद से सराबोर इसी सोते में वे सभी भीगते रहे, डूबते रहे, उतराते रहे। लगभग एक घंटे के बाद ऐसा लगा कि हम पुनः अपनी सामान्य चेतना में वापस

लौट रहे थे। उसी बीच मैंने अनुभव किया कि हुज़ूर महाराज भी वहाँ पर लीलारत थे व उनके आदेश ने मेरी चेतना को छुआ - "अब बस करो ।"

धीरे धीरे सभी ने आँखे खोल दीं। सभी के चेहरों पर एक अभूतपूर्व प्रसन्नता और तुष्टि भाव की स्वीकारोक्ति की झलक थी। अब बधाईओं की बौछार हो रही थी, मेरे हज़रत क़िब्ला पर। शब्द कम पड़ रहे थे जिनकी पूर्ति नाम आँखे करतीं - कभी उनकी तो कभी तीसरे या चौथे अथवा अन्य किसी की। पूरे वातावरण में एक होली जैसा माहौल था। सभी का मिला-जुला निर्णय था : "इन्होने [यह अकिंचन दास] कमाल हाँसिल किया है। सतपद तक रसाई ही नहीं, उसमे लय अवस्था प्राप्त की, स्थिरता और वहाँ का अधिकार प्राप्त किया है।" उस सब से निवृत्त हो कर, अब 'प्रश्न और उत्तरों' का क्रम प्रारम्भ किया गया। प्रथम प्रश्नकरता द्वारा पूँछा गया : "बेटे यह बताओ शुक्र किसे कहते हैं?" मेरा उत्तर था : "परमात्मा की देन का उचित प्रयोग धर्मशास्त्र के अनुसार करना ही शुक्र है।" अगला प्रश्न था : "याफ़्त किसे कहते हैं?" सेवक ने पहले तो याफ़्त के शब्दकोशीय अर्थों की चर्चा की : "याफ़्त = पाया हुआ। अधिकतर इस शब्द का प्रयोग किसी दूसरे शब्द के साथ मिला कर किया जाता है, अकेला नहीं बोला जाता। व्याकरण के अनुसार 'याफ़्त' शब्द स्त्रीलिंग है; जिसका अर्थ है - लाभ, प्राप्ति इत्यादि।" प्रश्नकर्ता के पूंछने के ढंग से मैं समझ चुका था कि, अभी अभी जो मुराकबः [ध्यान] का दौर चला था, प्रश्न उसी से सम्बंधित था। अतः मैंने निवेदन किया : "इसका हिंदी [संस्कृत] रूपांतर है - संयुक्त। इसी से निकला शब्द है - संयोजिता। संयोजिता उस आध्यात्मिक दशा या अवस्था को कहते हैं जिसमे प्रेमी और जिससे वोह प्रेम करता है, दोनों का अस्तित्व एक हो जाय और दोनों में कोई अंतर न हो और कोई अलग पहचान शेष न रह जाय। यहाँ [याफ़्त या संयोजिता] की स्थिति पर पहुंच कर पुनः वापसी [गिरावट] का डर समाप्त हो जाता है। सत्य का वास्तविक साक्षात्कार इसी अवस्था में होता है।" प्रश्न-उत्तरों के क्रम में, अब बारी थी : 'तजल्लिए ज़ात' की। तजल्ली के शब्दकोशीय अर्थ हैं - प्रकाश, आभा या प्रताप। किन्तु जिस विषय विशेष पर चर्चा गर्म थी उसके अनुसार इस शब्द का अर्थ होगा 'आध्यात्म ज्योति' या 'नूरे हक़'। यह वोह प्रकाश या ज्योति है, जहाँ मायावी प्रकाश की झलक नहीं जाती। ऐसा लगाव तभी होता है जब आत्मीय प्रेम में लयता प्राप्त हो जाय। 'समाधि' अथवा मराक़बः [सँसार से हट कर ईश्वर में ध्यान लगाना] की यह एक प्रणाली है और आशय यह है कि जौकिया प्रेम का आविर्भाव हो। 'जौक' एक प्रकार की क़ैफ़ियत [स्थिति विशेष] का नाम है जो स्वाद या आनन्द प्राप्त कर लेने के बाद आती है। अर्थात किसी वस्तु के रसास्वादन के पश्चात उसकी ऐसी याद

रहे कि कभी भूले नहीं और उसकी लौ लग जाय। इस प्रकार का ध्यान [मुराकबः] वास्तविक लक्ष्य तक पहुँचाने वाला होता है।

छोटे-छोटे प्रश्नों से बारी जा पहुँची बड़े-बड़े और ऐसे कठिन प्रश्नों की, कि जिनकी मूल-जानकारी या साक्ष्य, की साधारणतयः मुझ जैसे किसी से आशा नहीं की जा सकती थी। प्रश्न जो मेरे सामने रक्खा गया था वह यह था कि - मृत्यु क्या है? उसके बाद की स्थिति क्या है? मेरे हज़रत क़िब्ला ने मेरी पीठ थपथपायी और वहीँ पीछे एक ओर बैठ गए। आँखों ही आँखों में इशारा हुआ और मैं यन्त्रवत शुरू हो गया। **वे मेरे जीवन के सबसे कीमती क्षण थे और मैं महसूस कर रहा था कि मेरी वाणी के परोक्ष में वह चमत्कार, हुज़ूर महाराज के अतिरिक्त अन्य किसी का नहीं हो सकता**। मेरे सर्वस्व, मेरे हज़रत क़ब्ला की वाणी अनायास ही मुझ अकिंचन में उनकी कृपा-धार बन कर इस नाचीज़ की जिह्वा से मुखरित होने लगी और इस प्रकार जारी ब्यान का सार-संक्षेप निम्नलिखित था -

महाभारत में, हिंदुओं के सबसे प्राचीन महाकाव्य में, हमने एक उत्कृट प्रश्न पढ़ा जो प्राचीन काल के विभिन्न महापुरुषों से पूछा गया था। 'दुनियाँ में सबसे अद्भुत चीज क्या है?' विभिन्न उत्तर दिए गए थे, लेकिन वे संतोषजनक नहीं थे। युधिष्ठिर ने जो उत्तर दिया, वह स्वीकार किया गया, और उनका उत्तर यह था: "हर दिन, और दिन-प्रतिदिन, जानवर और मनुष्य जीवन से गुजर रहे हैं, लेकिन हम नहीं सोचते हैं मौत के बारे में, हम सोचते हैं कि हम कभी नहीं मरेंगे। इससे ज्यादा अद्भुत और क्या हो सकता है?" यह उत्तर लगभग पैंतीस शताब्दियों पहले दिया गया था, और आज भी यही सच है। हम मृत्यु के बारे में नहीं सोचते हैं, हालाँकि हम स्पष्ट देखते हैं कि हमारी आँखों के सामने शवों को दफ़नाया जा रहा है।मौत का रहस्य प्राचीन पौराणिक मान्यताओं में उपलब्ध नहीं है, जो हमें पीढ़ियों के माध्यम से सौंप दिया गया है। यहूदियों [Jews], ईसाइयों [Christians], पारसी और मुसलामानों की पटकथा यह नहीं बताती है कि मृत्यु क्या है। लेकिन इनमें से कुछ शास्त्रों में, हम पाते हैं कि परमेश्वर ने पहले मनुष्य [स्त्री-पुरुष] को आज्ञा दी थी कि वह कुछ चीजों को करे और ज्ञान [Knowledge] के वृक्ष का फल न खाए, लेकिन जब उन्होंने ने अच्छे-बुरे के ज्ञान [लिंग चेतना का ज्ञान] = knowledge of gender consciousness] के वृक्ष का फल खाया, प्रभु ने उसे श्राप दिया और वे उसके श्राप से संसार में मृत्यु को प्राप्त हुए। बेशक, उस दिन 'आदम' की मृत्यु नहीं हुई थी जिस समय वह बहकाया गया था और उसने वहाँ फल खाया था; किन्तु उसने अपने किये की सज़ा पायी और नतीज़तन बाद में उनकी मृत्यु हो गई। इस वक्तव्य से पता चलता है कि पहले 'भगवान' का इरादा यह नहीं था कि आदमी को मर जाना चाहिए, लेकिन 'शैतान' के बुरे प्रभाव

से दुनियाँ में 'मौत' का प्रवेश हुआ। यह 'शैतान' ही था, जिसने इस दुनियाँ में मौत को जन्म दिया। वास्तव में, मौत का कारण अभिशाप ही था। लेकिन 'अभिशाप' शैतान के बुरे प्रभाव के बारे में लाया गया था। जो लोग इस बात पर विश्वास करते हैं कि मृत्यु 'शैतान' के कारण हुई या लाई गई, इसके बारे में आगे सोचने की परवाह नहीं करते है। वे इस प्रश्न पर आगे विचार करना बंद कर देते हैं और समस्या को हल करने की कोशिश नहीं करते हैं। वे सोचते हैं कि यदि यह ईश्वर का अभिशाप है, तो यह जीवन का एक अनिवार्य अंत है, और हमें इससे संतुष्ट होना चाहिए।

परम वैज्ञानिक सत्य यह है कि किसी चीज़ का कारण स्वयं चीज़ के बाहर नहीं है, बल्कि चीज़ के अंतर में है। एक पेड़ का कारण पेड़ के बाहर नहीं है, बल्कि पेड़ के अंतर में ही निहित है। इंसान का कारण भी इंसान के बाहर नहीं है, बल्कि इंसान के अंतर में ही निहित है। संपूर्ण वृक्ष बीज में अदृश्य अवस्था में या संभावित रूप में अवस्थित रहता है। वातावरण केवल अनुकूल परिस्थितियों को देता है, जिसके तहत बीज में जो अव्यक्त होता है, वह वास्तविक और प्रकट होता है। वातावरण बीज को कोई भी शक्तियां नहीं देता है जो पहले से नहीं थे। वातावरण बस उचित स्थिति देते हैं। अगर हम इसे स्पष्ट रूप से समझते हैं, तो हम पाते हैं कि वातावरण नहीं बनाते हैं, लेकिन रचनात्मक शक्ति बीज में ही होती है, और यह बीज का कारण नहीं प्रकट करता है, जब तक कि यह पेड़ का रूप नहीं ले लेता। मनुष्य के 'कारण-शरीर' की दशा भविष्य में प्रकट होगी और यह अवस्था अदृश्य है, बस हम एक बीज में नहीं देख सकते जो उसके अंदर पहले से मौजूद है। उदाहरण के लिए, एक बरगद के पेड़ का बीज, सरसों के बीज जितना छोटा होता है, और यह आपको दिया जाता है, आपको नहीं पता होगा कि यह क्या है, लेकिन इसमें एक विशाल बरगद का पेड़ है जो परिधि में एक मील के दायरे को कवर करेगा और होगा एक वृक्ष के पचहत्तर या सौ कुंडों का निर्माण। इसी तरह अदृश्य कीटाणु जिन्हें आप अमीबा या बायोप्लाज्म या प्रोटोप्लाज्म कह सकते हैं और जो बाद में एक इंसान के रूप में दिखाई देंगे, उस इंसान की सभी क्षमताएँ अदृश्य अवस्था में होती हैं। यह सूक्ष्म शरीर वास्तव में मनुष्य ही है। जो कि एक मानव शरीर के रूप में प्रकट होता है और उसके अंदर रहता है। जीवन का मानव-जीवाणु एक मानव शरीर का निर्माण करेगा, और यदि यह किसी विशेष जानवर के रूप में रहना चाहता है, तो यह उस रूप का निर्माण करता है। इसका अपना कोई विशेष रूप नहीं है, लेकिन यह कोई भी रूप ले सकता है। वास्तव में, माता-पिता अपनी इच्छा के अनुसार बच्चे को जन्म नहीं दे सकते। यह एक पूर्ण अक्षमता होगी जब तक कि आत्मा उनके पास नहीं आती है और मानव-जीवाणु का पोषण करती है। आत्मा या बुद्धि या चेतना का निर्माण कभी नहीं हुआ, बल्कि शरीर का निर्माण, विकास की प्रक्रिया के माध्यम से किया

गया था।जैसा कि श्वास [प्राण] का सृजन कभी नहीं किया गया था, इसी प्रकार मन और आत्मा भी कभी भी स्रष्ट नहीं किए गए थे, यही कारण है कि आत्मा, प्रभु या सर्वोच्च-आत्मा की छवि को अपने अंतर में बनाए रखती है। जैसा कि वेदांत समझाता है, जीवन की सांस [प्राण] में सर्वोच्च-आत्मा का प्रतिबिंब है। हम किसी एक जन्म के सिद्धांत से, कुछ भी नहीं समझा सकते हैं क्योंकि अगर भगवान आत्मा को कुछ भी नहीं देता है, तो वह पात्रों की इतनी सारी किस्में क्यों बनाता है? कुछ आनंद लेने और अपनी अद्भुत प्रतिभा दिखाने के लिए पैदा हुए हैं। दूसरों को अज्ञानता और अन्य कमजोरियों के अलावा कुछ भी नहीं रखने के लिए सामने लाया जाता है। यदि हम इस पर ध्यान से अध्ययन करें, तो हम देखते हैं कि पूर्व-अस्तित्व और पुनर्जन्म, साथ-साथ चलते हैं और वे जीवन और मृत्यु की सभी कठिनाइयों और समस्याओं के साथ-साथ अस्तित्व की व्याख्या करते हैं और यह भी कि हम अपने भाग्य के निर्माता हैं। हमारा वर्तमान जीवन हमारे अतीत का परिणाम है और हमारा भविष्य हमारे वर्तमान का परिणाम होगा। चाहे हमें याद हो या न हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। हम इस शाश्वत नियम के अधीन हैं। लेकिन आत्माएं हैं जो याद रख सकती हैं। यदि हम अपनी आध्यात्मिक चेतना की ऊँचाई पर उठते हैं, तो हम अपने अतीत और भविष्य को ऐसे देख सकते हैं जैसे कि यह अनंत काल से मौजूद थे। इसलिए श्रीकृष्ण ने कहा है - "ओह अर्जुन, तुम और मैं दोनों कई जन्मों से गुजरे हैं। तुम उन्हें नहीं जानते हो, लेकिन मुझे सब कुछ याद है।"

सूफ़ी संतों के अनुसार तीन 'दिल' बताये गए हैं - जिस्मानी, ह्यूलानी और रूहानी। जिस्मानी का सम्बन्ध शरीर से है। ह्यूलानी का सम्बन्ध सूक्ष्म-सृष्टि से और रूहानी का सम्बन्ध केवल 'आत्मा' से है।

[01] 'जिस्मानी-दिल' चूँकि स्थूल माद्दा और उसके अंतर्गत अवस्थाओं से सम्बन्ध रखता है इसलिए इसके व्यवहार का क्षेत्र, 'माद्दा' के पाँच मण्डलों से है और उनके ऊपर छटा स्थान है जिससे वह शक्ति लिया करता है। हिन्दुओं के यहाँ "माद्दा" [substance of human body] के पाँच रूप हैं - [01] आकाश, [02] वायु, [03] अग्नि, [04] जल और [05] मिट्टी। सूफियों ने भूल-वश केवल चार ही तत्व माने हैं, इसलिए वे धोखे में पड़ गए और तरीक़त का सम्पूर्ण रूप न समझ सके। 'आकाश' का विशेषण उनकी समझ में नहीं आया। शरीर के भीतर उनके रहने के पाँच स्थान हैं, उनकी व्याख्या निम्नलिखित है - [01] गला, जो खाली है और 'आकाश' का स्थान है, [02] जिस्मानी क़ल्ब, जिसको हिन्दू 'ह्रदय' कहते हैं और दोनों वक्षोजों के मध्य में

स्थित है, वायु के रहने का स्थान है। यहाँ ही 'हरक़ात तनफ़्फ़ुस' [साँस की आमदरफ़्त] का दिल की हरकत से विकास होता है और फेफड़े पंखों का कार्य करते हैं, [03] नाभि [Navel], जो अग्नि का स्थान है यहाँ हरारत अज़ीज़ी [जठराग्नि] रहती है, [04] आला तनासुल [इन्द्री] - यह जल का स्थान है। यहाँ से सृष्टि की उत्पत्ति होती है। [05] मक़ाद [गुदा] जो मिट्टी का स्थान है और यह स्थूल माद्दा की अंतिम सीमा है। यहाँ से दूषित और घृणित मल निकलता है। यह पाँचों स्थान हमारे शरीर में मौजूद हैं। इनके ऊपर छटा स्थान जिस्मानी और अंश-रूप से आत्मा का है जिसके सहारे 'शरीर' का यह खेल होता रहता है और वह इन आँखों के ठीक पीछे दोनों 'भोंहों' [eye-brows] के बीच में स्थित है और जिसको 'नुक़्तए-ज़ुवैदा' [काला तिल] बोलते हैं। यह शारीरिक मण्डल है और इनमें 'नासूत', मलकूत, जब्रूत, लाहूत और हूत भी हैं। जो पाँच माद्दी [भौतिक] से सम्बन्ध रखते हैं।

[02] ह्यूलानी दिल का मस्कन [रहने का स्थान] चूँकि आलमे-आ'ला [सर्वोच्च-जगत] में है इसलिए उसके कार्य के मण्डल के भीतर छः बड़े चक्र हैं। शरीर स्थूल-माद्दा का बना हुआ है और 'आलमे-आ'आला', सूक्ष्म माद्दा का है ; उसके पाँच चक्र - [01] सूक्ष्म-आकाश, [02] सूक्ष्म-वायु, [03] सूक्ष्म-अग्नि, [04] सूक्ष्म-जल और [05] सूक्ष्म-मिट्टी के हैं। जो यहाँ हैं, वही वहाँ भी हैं ; केवल माद्दा की सूक्ष्मता और स्थूलता का अंतर है। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं और इनकी चोटी [peak] पर जो 'नुक़्तए-ज़ुवैदा' के समान है, आत्मिक सृष्टि का स्थान है। जिससे सृष्टि के कारोबार को पुष्टता मिलती है।

[03] रूहानी ; जो जिस्मानी और ह्यूलानी और दोनों से ऊँचा है। वह शुद्ध आत्मा के कारोबार का मण्डल है। आदिकाल में जिस प्रकार आत्मा की धार फूटने से उस मण्डल के भीतर पाँच या छः स्थान बन गए, उन्ही का सूक्ष्म प्रतिबिम्ब रूप सृष्टि [ब्रह्माण्ड] है और सृष्टि से जो स्थूल-धार फूटी तो उसका स्थूल-रूप यह शरीर अर्थात 'पिण्ड' बन गया। असल तो आत्मिक-मण्डल है और ये दोनों उसके प्रतिबिम्ब रूप हैं। प्रतिबिम्ब-पूजकों को असली ज्ञान नहीं होता। इसके नासूत, मलकूत, जब्रूत,लाहूत और हूत की अवस्थाएँ इन पिछले दो मण्डलों की अवस्थाओं से भिन्न हैं।

सूफ़ी विद्वानों के अनुसार 'मृत्यु' प्रेयसी [शिष्य] और प्रियतम [इष्ट या गुरु] के बीच का सेतु है। एक सूफ़ी, प्राकृतिक मृत्यु से पूर्व तीन बार मरता है। प्रथम मृत्यु 'मौत-ए-अस्वद' [ब्लैक

डेथ] - इसे दूसरों के हाथों भुगतना पड़ता है। इसके बाद ; 'मौत-ए-अहमर' [रेड डेथ] ; यह कामनाओं के विपरीत काम करना है। तब मौत-ए-अख्ज़र [हरी मृत्यु] ; जो कि चीर-फाड़ वाले कपड़े पहनना है। चौथा, मौत-ए-अब्यद [श्वेत मृत्यु] है, जिसमें कोई भुखमरी से पीड़ित होता है, जैसा कि कहा जाता है कि यह हृदय में ज्ञान का प्रकाश पैदा करता है। दैहिक मृत्यु शरीर की मृत्यु है, जिसमें अहंकार [नफ़्स-ए-नातिक़ः] खुद को आलम-ए-मिथल में स्थानांतरित करता है।

सभी मन्त्रमुग्ध हो कर सुन रहे थे और बोलते-बोलते लगभग एक घण्टे के पश्चात् जब मेरे पास शब्दों की कमी पड़ने लगी तो उनका स्थान भावावेग ने ले लिया और उसी के मध्य न जाने कैसे और किसके बलबूते पर मैंने घोषणा कर डाली - **"ऐ मेरे अतिसम्माननीय विद्वानों और संतों! मौत के बारे में जानकारी शब्दों के माध्यम से जितनी कुछ भी संभव थी, मैंने आपके समक्ष प्रस्तुत की। अब यह अकिंचन दास, मौत की वास्तविकता का आभास आप सबके अनुभव में उतारने की कोशिश करता है। ----- " और इसी मध्य यन्त्रवत ही सभी की आँखें, धीरे धीरे स्वतः ही मुँद गयीं और गहरे सन्नाटे के मध्य उन सबको मृत्यु की वास्तविकता के दर्शन हुए। आँखे खुली तो मेरे हज़रत क़िब्ला के चमत्कारी आदेश के अनुरूप। अभी भी वहाँ एक अनुपम दृश्य था। सभी की आँखों से प्रेमाश्रु झर रहे थे। यह कैसा पागलपन था, यह कौन सा जुनून [passion] था। इस अन्नमय भौतिक शरीर में जीवात्मा के 'कारण शरीर' का आभास और उससे साक्षात्कार, इसी जीवन में मृत्यु के दर्शन और उसके उस पार के दृश्यों का अवलोकन। सभी कुछ एक महान आश्चर्य ही नहीं, विश्व की आध्यात्मिकता के इतिहास में एक ऐसा अध्याय था जो नवीन तो था ही, विलक्षण और अविश्वसनीय भी। महफ़िल एक बार फिर गरम हो चुकी थी। गहमागहमी और कसरत बधाइयों की थी, जी हाँ, बधाइयाँ इस बार भी मेरे सरताज, मेरे गुरुदेव को ही दी जा रही थीं। मैं अवाक और किंकर्तव्यविमूढ़, उनके एक ओर बैठा इस प्रतीक्षा में था कि कुछ भी ऐसा हो और मैं सशरीर उनके अस्तित्व में विलीन हो जाऊँ। मैं नहीं जनता कितनी देर यही सब चलता रहा ।**

कुछ क्षणोपरांत रंग फिर बदला और उसी गुलाल के उरोजों के मध्य एक सामूहिक प्रश्न विकसित हो कर आया जो [अब] मेरे लिए न हो कर मेरे सरकार के लिए था। पूँछा जा रहा था, कैसा अनुराग है, यह कहाँ का दीवानापन है, ऊर्जा का यह कौन सा सम्वेग है कि एक नक़्शबन्द 'सूफ़ी' जिसे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर रहा है वह वेदान्ती हो? यह कैसे हो सकता है? वेदान्ती भी वहाँ उपस्थित थे। उनकी जिज्ञासा थी वेद और उपनिषदों का ऐसा व्यावहारिक ज्ञान अभी तक सूफ़ियों के यहाँ क़ैद कैसे रह पाया और वह भी इतना शान्त और

चुपचाप कि किसी को भनक भी न लग पाई कि इतनी बड़ी आवश्यकता अभी तक क्रान्ति क्यों नहीं बन पायी।

पूरे तीन दिन के इस अविस्मरणीय अधिवेशन की यह अन्तिम सभा थी और उसका उपसंहार भी। इस बीच जिस उमंग व प्रसन्नता के वे [पूज्य गुरुदेव] पर्याय बने हुए थे, सब कुछ, अब भावशुष्कता में बदल चुकी थी और उसी के मध्य वे अति सहज भाव से रूबरू [आमने सामने] हुए - "दुनियाँ के सभी इंसानों में तर्ज़े रूहानियत [आधात्मिकता के संचरण की पद्यति] एक है लेकिन तर्ज़े माशरत [सामजिक जीवन की पद्यति] अलग-अलग है।" आपने अपने संछिप्त से सम्भाषण में एक रहस्योद्घाटन भी वहां पर, उन सभी के मध्य किया ; "बात पुरानी है कि एक बार जब स्वामी दयानन्द जी महाराज, कायमगंज पधारे थे; उस समय एक अति विशाल जलसा हुआ था। उसमे आर्यसमाजियों के अतिरिक्त, अन्य धर्मों के संत व विद्वान भी सम्मिलित हुए थे और उसी क्रम में वे स्वयं [हुज़ूर महाराज] भी अपने पीरोमुर्शद [आध्यातिक गुरु] हज़रत मौलाना शाह अहमद अली ख़ाँ साहिब [रहमत 0] के साथ उनके भाषण को सुनने गए थे। उस आर्य सम्मलेन की अंतिम सभा के समापन से जब वे दोनों अपने- अपने घरों को वापस हो रहे थे तभी रास्ते में [मेरे दादागुरु] हज़रत खालीफ़ा जी साहिब ने पूज्य गुरुदेव को आदेश दिया था - 'तुम भी इस सिलसिले आलिया के मिशन की तरक़्क़ी के वास्ते ऐसा ही कोई जवाँ मर्द तैयार करना।' दादा गुरु का निर्देश था - 'ठीक स्वामी दयानन्द जी जैसा'। प्रत्युत्तर में गुरुदेव ने, सर झुका कर, इतना ही कहा था - 'खादिम ने तो एक बबूल का पेड़ लगाया है।' पूज्य दादागुरुदेव खालीफ़ा जी साहिब ने आसमान की तरफ हाथ उठा कर दुआ पढ़ी थी और उसके बाद भविष्यवाणी भी की थी - 'इंशाअल्लाह वही इतना फलेफ़ूलेगा कि दुनियाँ भर की तंगिओं दुःखों व तकलीफों को अपने रूहे क़ल्ब में उतार कर तमाम ज़मीन पर हरयाली और सुकून बरपा कर देगा।" इसके बाद हुज़ूर महाराज ने इस घटना के वर्णन के पश्चात् [एक बार पुनः] आमीन पढ़ा और लगभग दो मिनट के लिए मौन हो कर अतीत में खोए रहे। पूज्य गुरुदेव ने अपने दोनों हाथों को उलट पुलट कर देखा और बाद में अपने चेहरे पर खूब अच्छी तरह फिराया। कुछ बुदबुदाए और पुनः मुखातिब होने से पूर्व मुझे, नज़र भर कर निहारा, कुछ देर को पुनः आँखे बंद की और धीरे धीरे निहायत नपी-तुली भाषा में फ़रमाया - "उस दिन के बाद अज़ीज़ राम चन्द्र का रोज़ बिला नागा इंतज़ार ही मेरी इबादत बन गया था । वह दिन मेरे लिए निहायत तसल्लीबक़्श था जिस शाम आंधी-पानी ने घमासान अँधेरा कर रखा था। बादल गरज़ रहे थे और बिजली तड़क रही थी। जाड़े के दिन थे। उस दिन इन्हें [अकिंचन दास] कचहरी से वापस लौटने में देर हो गयी थी, शायद मौसम की खराबी की वजह से; इनकी हालत देखने लायक थी। क़ाबिले रहम थी। जब ये 'मदरसा-मुफ्ती साहिब' से सड़क की तरफ वाले फाटक से अन्दर

आ कर अपनी कोठरी की तरफ बढ़े जा रहे थे, खूब भीगे हुए थे और सारा बदन सर्दी से काँप रहा था। यह फ़क़ीर [हुज़ूर महाराज] उसी तूफ़ान में इनका निहायत बेसब्री से इंतज़ार कर रहा था। मुझे अच्छी तरह से याद है - इनपर मेरी नज़र पड़ना, इनका घबरा कर नज़रें झुका लेना, कुछ रुकना, कुछ शर्माना, पहले निगाहें चुराना फिर बड़ी ही शहिस्तग़ी से सलाम पेश करना, सब कुछ आज भी मेरे ज़हन में ताज़ा है। मेरी जुबान से बरबस निकल पड़ा था, अरे! इस तूफ़ान में और इस समय आना? मुझे सब याद है। मुझे यह भी याद है कि मुझे कितनी तसल्ली और सुकून मिला था जब यह पहली बार मेरी कोठरी में आये थे, मेरे ही कहने पर यह वापिस अपनी कोठरी में कपड़े बदलने को गए थे और मेरा दिल रखने को दूसरे कपड़े पहन कर, हाँ टोपी भी और पूरे सूफ़ी-अदब के साथ ये दूसरी बार मेरे पास आये थे। कितनी दीवानगी थी मुझमें भी। जल्दी-जल्दी में मैंने भी किस प्रकार अपनी बरोसी की आग ताज़ा की थी। कुछ भी तो नहीं उतरा मेरे ज़हन से कि किस जूनून भरे लहज़े में मैंने इन्हें अपनी रजाई उढ़ा दी थी - पता नहीं इनकी ठण्ड की वजह से कँपकपी दूर करने के लिए या अपने पीरोमुरशद की मुस्तदाम [नित्यता] इन्हें तस्लीम [सुपुर्द] करा देने के लिए थी।" इसी प्रकार मेरे और उनके बीच के रिश्ते वे अपने ज़हन में ताज़ा करते रहे। शायद अब वे भावुक भी हो रहे थे। मैंने हिम्मत करके उनकी नम-आँखे अपनी नज़रों में भरने की नाकामयाब कोशिश की थी।

इसी बीच, सभा में श्रोता वर्ग के अंतर में उठ रहे भाव भी मुझ से अनछुए नहीं रहे और 'सफ़ी लख़नवी' का यह शेर - की वह पँक्ति मेरे मन में बार बार आ रही थी जिसमे किसी प्रेमिका की ओर से उसने कहा था -"जनाज़ा रोक कर मेरा वो इस अंदाज़ से बोले ; गली हमने कही थी तुम तो दुनियाँ छोड़े जाते हो।"

मैं समझ सकता हूँ कि हुज़ूर महराज के सम्मुख उस सभा की सामूहिक जिज्ञासा के प्रति-उत्तर में उनके बयान से वातावरण इतना अधिक संवेदनशील हो जाएगा। किसी को भी ऐसी आशा न थी। **मैं स्पष्ट अनुभव कर रहा था कि गुरुजनों की सम्पूर्ण श्रृंखला द्वारा आहूत आशीर्वाद ओस के मोतिओं की भाँति झर रहे थे, जिनसे एक ओर सम्पूर्ण वातावरण को एक स्वर्गीय चाँदनी ने ढक लिया था वहीँ दूसरी ओर सभी के अन्तर में एक अदभुत प्रेम का ज्वार अपनी हिलोरें ले रहा था। सभी उसमेँ कूक रहे थे, थकते न थे।**

कुछ देर बाद सभा का समाँ और मौसम धीरे-धीरे बदलने लगा और अब सभी लोग शान्त और चुप-चाप बैठे थे। पूज्य गुरुदेव ने मुझे अपने अति निकट बुला कर बैठा लिया। उनके एक ओर एक फाइल रक्खी हुई थी जिसमें कुछ अत्यन्त अच्छी व आकर्षक लिखावट में पहले से लिखे

हुए पत्र व दस्तावेज़ सुरक्षित रक्खे हुए थे। **उन पत्र-प्रपत्रों में से उन्होंने दो को, जिनको उन्होंने अति महत्वपूर्ण समझा वे बाहर निकाले और उनमे से एक उन्ही के द्वारा पढ़ा गया। उसमे जो भी अन्तर्वस्तु थी वह इस अकिंचन दास के बारे में ही थी। उसमे यह स्पष्ट किया गया था कि पूज्य गुरुदेव के द्वारा मुझे ब्रह्मविद्या के किन किन विषयों की जानकारी व किन किन आध्यात्मिक केंद्रों तक पहुँच का स्थायित्व प्राप्त कराया गया है। उसमे यह भी अंकित किया गया था कि उनके इस मुरीद [शिष्य] ने दूसरे जिज्ञासु स्त्री, पुरुषों को किस किस केंद्र [चक्र या लातायफ़] तक की यात्रा व पहुँच करा देने की योग्यता व क्षमता प्राप्त कर ली है। दूसरा पत्र सेवक के पक्ष में, लिखा हुआ इज़ाज़तनामा था जो कि पहले सुनाये गए योग्यता प्रमाण-पत्र के आधार पर था। दोनों ही प्रमाणपत्रों पर, वहाँ उपस्थित संत महानुभावों द्वारा, आम राय से सहमति प्रदान की गयी और सेवक को अनेकानेक आशीर्वाद प्रदान किये गए। चूँकि वहां पर उपस्थित संत व गुरुजन अनेक धर्म, सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे अतः इस अकिंचन दास की पूरी पूरी जाँच व परीक्षा करने के बाद सभी ने अपनी -अपनी ओर से भी इजाज़तनामें लिख लिख कर, हुज़ूर महाराज के हाथों से दिलवाए गए। सभी में प्रमाणित किया गया था कि 'राम चन्द्र' नाम के सेवक को 'हिरण्यगर्भ' की स्थिति सुलभ व प्राप्त हुई है। उन सभी प्रमाणपत्रों को मेरे पूज्य फुरुदेव ने, एक एक शब्द पर अपनी उंगली रख- रख कर पढ़ा। उसके बाद उन्होंने वहां पर उपस्थित एक वेदांती संत से 'हिरण्यगर्भ' की स्थिति संक्षेप में बताने के लिए कहा। उन संत ने बताया "हिरण्यगर्भे अस्ति यस्य सह हिरण्यगर्भः। हिरण्य, जिसके गर्भ में है वह हिरण्यगर्भ है। हिरण्य एक तेज, वर्चस्य, प्रभुत्व की शक्ति है जिसे परमात्मा कहें, परम सत्ता कहें। यह शक्ति ही सूर्य में समाहित है, सूर्य के गर्भ में है, इस कारण यह हिरण्यगर्भ है।" इसे सुन कर पूज्य गुरुदेव की मुखाकृति व उनकी आभा, उनकी कान्ति अब देखने लायक थी। फर्मानें लगे - "राम चन्द्र! आज तुम्हारी ज़ात से तुम्हारे वालदैन और तमाम बुज़ुर्गीन सिलसिलएआलिया नक़्शबंदिया-मुजद्ददिया-मज़हरिया का रुतबा बढ़ा है। ग़र मै तुम्हें इस्लाम क़ुबूल करवाता तो महज़ एक आम मुसलमान बन कर रह जाते। लेकिन तुम्हारी निस्बत से आज जो बातें आसमान, आफताब और ज़मीन की, की जा रहीं हैं, खुशी से मेरा सीना फटा जाता है। बेटे! वख्त आएगा। ज़रूर आएगा। तुम आफताब की तरह चमकोगे। तुम्हारी ज़ात से, इँशाअल्लाह आलम मुनव्वर होगा। तुम्हारी पीढ़ी दर पीढ़ी तुम्हारे पोते दर पोते 'वली' और 'पीर' व 'महात्मा' होते रहेंगे। बेटे! यह बहुत बड़ी बात है।" सभी उपस्थित जनों ने 'आमीन' पढ़ा। हुज़ूर महाराज एक आवेग के साथ उठ कर खड़े हो गए। मैं भी और तमाम वो लोग भी जो वहां बैठे थे, सभी उठ कर खड़े हो गए। मेरे हज़रत क़िब्ला ने मुझे सीने से लगाया और अपनी अति मधुर वाणी से, किन्तु गले को थोड़ा खखार कर फ़रमाया - "लो बेटे ! खुश**

रहो। बहुत मुबारक हो तुम्हें।" कहते हुए उन्होंने इज़ाज़तनामा मेरे हाथों में थमा दिया। वे सभी भावुक हो रहे थे - "बेटे ! आज तुम्हें यह फ़क़ीर अपनी तमाम उम्र की कमाई सौंप रहा है। तमाम बरक़तें तुम्हारी तवज्जोः के इंतज़ार में हैं।" उसके बाद वे थोड़ा गंभीर हो कर बोले - "बेटे ! आज के बाद और अभी इसी वक़्त से मुझमे और तुममें कोई फर्क नहीं रह गया है। मैं तुम्हारी ज़ात में और तुम्हारी ज़ात अब उस अज़ीम हस्ती में फ़ना हो चुकी है जहाँ पर मेरे क़िब्लाओकाबा एक लम्बे अर्से से तुम्हारी राह देख रहे थे।" कुछ ठहर कर कहने लगे - "देखो बेटे इन बातोँ का ख्याल रखना -

[01] मख्दूम [स्वामी] बनने से हमेशा बचना और दूर रहना,

[02] खादिम [सेवक] बन कर दूसरों की खिदमत करना,

[03] कभी किसी से ऐसा वादा न करना कि इतने दिनों में फलाँ मुक़ाम तक पहुँचा दूँगा। बल्कि खिदमत बेलौज़ हो कर करना और किसी बात का दावा कभी मत करना।

इसके बाद अपनी मनमोहिनी सूरत पर, चार चाँद लगाने वाली उनकी दाढ़ी, उस पर बड़ी तसल्ली से हाँथ फिराया और फ़रमाया - "बेटे ! जो शख्स, तालिबे दुनियाँ हो, उसको बाहर ही बाहर निबटा कर दरवाज़े से रुखसत कर देना। ज़ियादा मुँह मत लगाना न बैत करना; इंशाअल्लाह सिलसिला कभी रुकेगा नहीं।" चलते समय हुज़ूर महाराज ने वे सभी उपहार [टोपी, पगड़ी, कुर्ते की आस्तीन इत्यादि] जो उन्हें जनाब ख़लीफ़ा जी साहिब से प्राप्त हुए थे अपने इस सेवक को एक कीमती धरोहर के तौर पर दिए। मैं धन्य हुआ।

==========

17. निशा नीड़

जन्म से ही घुट्टी के रूप में मिले संस्कारों में से कुछ के प्रभाव ऐसे हैं जो सोते-जागते मेरा पीछा करते हैं। मैं उनमें खोया, अनेकों कल्पनाएँ करता हूँ, क्रीड़ा मग्न सा। उन्हीं में से भक्तों की अनेक गाथाएँ हैं। महान भक्त काकभुशुण्डि जी के चरित्र की बहुत कुछ छाप मेरे अपने जीवन पर पड़ी है। सम्भवतः यही हो आधार मेरे जीवन के पारस-पक्ष का। कथा के विस्तार में जाने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। मानस की चौपाइयाँ जो मेरे चिंतन में निरन्तर बिराजतीं रहीं हैं, उनका वर्णन यहाँ आपके समक्ष करूँगा।

"गयउ गरुड़ जहँ बसइ भुसुण्डा। मति अकुण्ठ हरि भगति अखण्डा।।
देखि सैल प्रसन्न मन भयऊ। माया मोह सोच सब गयउ।।"

गरुड़ जी वहाँ गए जहाँ निर्बाध बुद्धि और पूर्ण भक्ति वाले काक-भुशुण्डि बसते थे। उस पर्वत को देख कर उनका मन प्रसन्न हो गया और [उसके दर्शन से ही] सब माया, मोह तथा सोच जाता रहा।

वहाँ के आश्रम के बारे में भगवान शंकर, महासती भगवती जी को बताते हैं कि -

"गिरि सुमेर उत्तर दिसि दूरी। नील सैल एक सुन्दर भूरी।।
तासु कनक मय शिखर सुहाए। चारि चारु मोरे मन भाये।।"

सुमेर पर्वत की उत्तर दिशा में, और भी दूर एक बहुत ही सुन्दर नील पर्वत है। उसके सुन्दर सुवर्णमय शिखर हैं। उसमें से चार सुन्दर शिखर मेरे मन को बहुत ही अच्छे लगे।

"तिन्हँ पर एक एक विपट बिसाला। बट, पीपर, पाकरी, रसाला।।
सैलो परि सर सुन्दर सोहा। मनि सोपान देखि मन मोहा।।"

उन शिखरों में एक-एक पर बरगद, पीपल, पाकर और आम का एक-एक विशाल बृक्ष है। पर्वत

के ऊपर एक सुन्दर तालाब शोभित है, जिसकी मणियों की सीढ़ियाँ देख कर मन मोहित हो जाता है।

"सीतल अमल मधुर जल जलज विपुल बहु रँग।
कूजत कलरव हंस गन गुंजत मंजुल भ्रंग।।"

उसका जल शीतल, निर्मल और मीठा है। उसमें रँग-बिरंगे बहुत से कमल खिले हुए हैं। हंस गण मधुर स्वर से बोल रहे हैं और भौंरे सुन्दर गुँजार कर रहे हैं।

"तेहि गिरि रुचिर बसइ खग सोई। तासु नास कल्पांत न होई।।
मायाकृत गन दोष अनेका। मोह मनोज आदि अविवेका।।
रहे व्यापि समस्त जग माहीं। तेहि गिरि निकट कबहुँ नहिं जाहीं।।
तहँ बसि हरिहि भजइ जिमि कागा। सो सुनु उमा सहित अनुरागा।।"

उस सुन्दर पर्वत पर वही पक्षी [काकभुशुण्डि] बसता है उसका नाश कल्प के अंत में भी नहीं होता। माया रचित अनेकों गुण, दोष मोह काम आदि अविवेक, जो सारे जगत में छा रहे हैं, उस पर्वत के पास कभी नहीं फ़टकते। वहाँ रह कर जिस प्रकार वह काक हरि को भजता है, हे उमा! उसे प्रेम सहित सुनो।

"पीपर तरु तर ध्यान सो धरई। जाप जग्य पाकरि तर करई ।।
आंब छांह कर मानस पूजा। तजि हरि भजन काजु नहिं दूजा।।"

वह पीपल के बृक्ष के नीचे ध्यान धरता है। पाकर के नीचे जप-यज्ञ करता है। आम की छाया में मानसिक पूजा करता है। श्री हरि के भजन को छोड़ कर उसे दूसरा कोई काम नहीं है।

"बर तर कह हरि कथा प्रसंगा। आवहिं सुनहिं अनेक बिहंगा।।
राम चरित विचित्र विधि नाना। प्रेम सहित कर सादर गाना।।"

बरगद के नीचे वह श्री हरि की कथाओं के प्रसंग कहता है। वहाँ अनेकों पक्षी आते और कथा सुनते हैं। विचित्र राम चरित्र का अनेकों प्रकार से प्रेम सहित आदर पूर्वक गान करता है।

मेरे चिन्तन का बिंदु था कि जिनके स्मरण मात्र से जन्म-जन्म के बन्धन कट जाते हैं व जीव, माया-मोह व भ्रम इत्यादि के बंधनों से मुक्त हो जाते हैं, उन्हीं भगवान का सम्पर्क प्राप्त कर गरुड़ जी भ्रम का शिकार कैसे हो गए ? उपर्युक्त कहानी के अन्तर्गत ही भगवान शंकर, महासती उमा से कहते हैं कि - "अब वह कथा सुनो जिस कारण से पक्षी कुल के ध्वज गरुड़ जी उस काक के पास गए थे।" वह आगे कहते हैं कि - "जब श्री रघुनाथ जी ने ऐसी रणलीला की जिस लीला का स्मरण करने से मुझे लज्जा होती है - मेघनाथ के हाथों अपने को बंधा लिया, तब नारद मुनि ने गरुड़ को भेजा -

"बन्धन काटि गयो उरगादा। उपजा ह्रदय प्रचण्ड विषादा।।
प्रभु बन्धन समुझत बहुँ भाँती। करत विचार उरग आराती।।"

सर्पों के भक्षक गरुड़ जी जब बन्धन काट कर गए, तब उनके ह्रदय में बड़ा भारी विषाद उत्पन्न हुआ। प्रभु के बन्धन को स्मरण करके सर्पों के शत्रु गरुड़ जी बहुत प्रकार से विचार करने लगे।

गरुड़ जी ने, मानों रघुनाथ जी को तो बन्धन-मुक्त कर दिया किन्तु स्वयं कुतर्कों के जाल में ऐसे बन्ध गए, जहाँ से निकलना उनके लिए अत्यन्त ही दुर्लभ सा प्रतीत होता था। वह निरन्तर विचार करते हैं कि - "मैंने सुना था कि व्यापक विकार रहित, माया-मोह से परे ब्रह्म परमेश्वर हैं, उन्होंने ही जगत में अवतार लिया है पर मैंने उनके प्रभाव को कुछ नहीं देखा।"

गरुड़ जी के मन में भ्रम या अहँकार की भावना उठना स्वाभाविक थी या अस्वाभाविक, यह एक अलग विषय है। मेरे चिंतन में आश्चर्य का जो अंकुर जागा वह था कागभुशुण्ड जी का आश्रम, जहाँ की परिधि में प्रवेश पाते ही सारे ज्ञानचक्षु खुल जाते हैं, सारे माया के बन्धन भ्रम व अज्ञान के आवरण कट जाते हैं। कैसी है प्रभु की लीला ! उनका यह आश्रम मेरे लिए एक बहुत बड़ा आकर्षण बन गया। वह तप एवं साधना, जिसके फ़लस्वरूप भूमा की सम्बद्ध परिधि में

एक अभूतपूर्व दिव्यधारा निरन्तर प्रवाहित होती हो जिसके आवेग के समक्ष समस्त प्रकार के मल या आवरण टिक न सकें, मेरा अभीष्ट बन गए।
जिज्ञासा, जो मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है, मेरे अन्तर में भी प्रवेश पा गयी। जिज्ञासा के जग जाने पर वह विकलता होती है कि रहा नहीं जाता, उसका समाधान खोजे बिना। 'तू चिन्मयी माँ है कि पत्थर की मूरत ? मेरी प्रार्थना से तो अब तक पत्थर भी पसीज जाता पर तेरे कानों पर जूँ भी नहीं रेंगती। तो ले तेरी ही तलवार से मैं उड़ा देता हूँ, अपनी गर्दन। क्यों नहीं दर्शन देती तू मुझे।' रामकृष्ण तलवार चलाने ही जा रहे थे अपनी गर्दन पर, तभी चारों ओर से एक दिव्य-प्रकाश फ़ूट पड़ा ! कहते हैं माँ ने बेटे का हाँथ पकड़ कर उसकी जिज्ञासा का समाधान कर दिया।

मेरे कानों में किसी ने ईसा का महावाक्य दोहराया - **"दरवाज़ा खटखटाओ वह खुल जाएगा।"**

इस कार्य में दयामय भगवान हमें पूर्ण सहायता देने को तैयार हैं। वह हमें आश्वासन देते हैं -

"तेषामेवानुकम्पार्थमहम ज्ञानजं तमः।
नाशयाभ्यात्मभावस्थो ज्ञान दीपेन भास्वता ।।"
[गीता 10/11]

हे अर्जुन ! उनके ऊपर अनुग्रह करने के लिए उनके अन्तःकरण में स्थित हुआ मैं स्वयं ही उनके अज्ञानजनित अँधकार को प्रकाशमय तत्वज्ञान रूप दीपक के द्वारा नष्ट कर देता हूँ।

जीवन के अविस्मरणीय दिन जो भूले से भी नहीं भूलते। एक लहर सी आयी हुयी थी। जिस दिव्यज्योति की छटा का आभास मेरे अन्तर में होता, उसकी एक अभूतपूर्व चेष्टा, एक अन्तःप्रेरणा से निरंतर ओतप्रोत रहता कि इस जीवन-मधु को भू-पटल पर ऐसा बिखेर दूँ कि कोई भी प्राणी उससे अछूता न रह जाय। इसी प्रयास में मैं उद्विग्न सा रहता। जिस मन्दाकिनी में मैं स्नान कर रहा था उसी के प्रेमावेग से मेरी सारे जगत को ओतप्रोत कर देने की इच्छा होती।

मेरे एक बेटे और भी हैं, चि0 डॉ श्याम लाल। आध्यात्मिक पुत्र, किन्तु सम्बन्ध रक्त से भी निकट का। इन दिनों वह शासकीय सेवारत हैं। स्वास्थ्य-अधिकारी के पद पर स्थानान्तरित हो कर अभी कुछ दिन पूर्व ही वह दिलदारनगर [ग़ाज़ीपुर उ0 प्र0] पहँचे थे। उनके आग्रह पर मुझे भी वहाँ जाना पड़ा। वहाँ के प्रवास का यह मेरा प्रथम दिन ही था। मैं वहाँ पर इन्हीं डॉ श्याम लाल के निवास पर ठहरा हुआ था। सायंकाल जब वह अपने कार्य से वापस आये तो सत्संग प्रारम्भ हुआ। सद्गुरु नाम व रूप की चर्चा चल निकली। प्रेम विभोर हो चित्त हिलोरें लेने लगा। ईश्वर की कृपा जो निरन्तर प्रवाहित होती, उस क्षण भी उसी में हम डुबकियाँ लगाने लगे। कुछ समाधि जैसी चेतना जाग्रत होने लगी। प्रभु की जैसी इच्छा। उन्हीं के आह्वान पर मैंने चि0 श्याम लाल से प्रश्न किया - "आज सत्संग में यहाँ तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं दीखता।" उन्होंने उत्तर दिया - "अभी हम यहाँ कुछ सप्ताह पूर्व ही आये हैं। अतः नयी जान-पहचान किसी से नहीं हो पायी है। इसके अतिरिक्त इस बस्ती में जहाँ हम रहते हैं अन्य कोई सत्संगी-बँधु नहीं हैं, न ही ऐसी अभिरुचि वाले किसी से अभी तक मेरा सम्पर्क हो पाया है।" प्रभु के उस अभूतपूर्व कृपा के आवेग में मुझे उनके उत्तर से सन्तुष्टि नहीं हुयी। मैंने तीन बार अपने प्रश्न की पुनरावृत्ति की। उनका उत्तर भी हर बार वही था। प्रभु की जिस लीलासार के उस क्षण हम दर्शन कर रहे थे, मैं चाहता था कि सब उसका अनुभव करें। किन्तु ऐसा न हो सका। वहाँ हम दो ही थे, और अन्य भक्त वहाँ न थे। उनकी यह कमी मुझे खल रही थी। आनन्द ह्रदय में समाता न था, मानों मधु-रस ही बरस रहा हो। इसे बाँटने की इच्छा होती, पर वाणी स्वयं उस अमृत में छकी हुयी थी। समस्त चराचर मानों अपने प्राणेश्वर थे। किसी से कोई क्या कहे, क्या सुने ? वह प्रकाश, वह शोभा, वह मञ्जुल आनन्द। नवीन आवेग ने पुनः हिलोर ली। मेरे जी में आया, उड़ेल दूँ इस अमृत को यहीं भू-पटल पर। बिखर जाय सारी धरा पर यह जीवन-पराग, यह मञ्जुल प्रवाह। कौन जानता था यही कल्याणकुंज बन जायगा किन्तु हुआ ऐसा ही। मैंने वहाँ उसी स्थान पर उस समस्त बस्ती की सम्पूर्ण परिधि पर शक्तिपात किया। एक परम रहस्य की अद्भुत लीला चरित्रार्थ होने लगी। इसी आत्मानन्द के व्यतिरेक में बेसुध हो जीवन और मृत्यु से ऊपर उठ कर आनन्दमयी उस दिव्य-शब्द की ध्वनि वहाँ कण-कण से प्रवाहित होने लगी। अब क्या ? मेरे जन्म-जन्म की लालसा पूरी हुयी। प्रभु ने स्वयं दया कर अपने दर्शन और स्पर्श से मुझे निहाल कर दिया। ह्रदय हिलोरें ले रहा था। प्राण बेसुध से थे। रोम-रोम नहा रहा था उस अमृत-वर्षा में। सभी मानों दिव्यधारा के प्रवाह के सुख से बेहाल हो कर मतवाले से नाच रहे थे।

"चर्चा करी कैसे जाय।
बात जानत कछुक हम, सो कहत जिय थहराय।"

प्रकृति व वातावरण के सत्संग में यह मेरा प्रथम प्रयोग था, जिसके परिणाम बड़े ही संतोषजनक रहे। मैं कुछ दिन के प्रवास के बाद वहाँ से वापस आ गया। डॉ श्याम लाल वहाँ कुछ समय और रहे। उनका कहना है कि जो अमृत-वर्षा उस दिन वहाँ हुयी थी, आज भी उस छटा के दर्शन होते हैं। मेरे एक और प्रेमी - डॉ चतुर्भुज सहाय भी कुछ दिन के लिए वहाँ गए। उन्होंने खुल कर वहाँ की स्थिति का वर्णन किया कि उस स्थान की भी स्थिति काकभुशुण्डि जी के आश्रम जैसी ही जान पड़ती है। वहाँ के स्त्री-पुरुषों की आन्तरिक स्थिति में स्वतः ही परिवर्तन हो रहा है और अनेकों भाई-बहन सत्संग में भी आने लगे हैं।

मैंने अंतर में अनुभव किया - यही प्रकृति-पुरुष का लीला विलास है, यही माया और माया-पति का अलौकिक महामिलन है। जगत का सारा आनन्द, सारा श्रृंगार, सारा माधुर्य, सारी शोभा और सारा लावण्य उस मूल संयोग की एक लहर का लीला-विस्तार ही है। सब कुछ वहीं से आ रहा है। वही मूल स्रोत है, वही सत्य-सनातन है। काकभुशुण्डि जी की साधना का फ़ल भी वही है और मुझ दास पर उस अलौकिक कृपा का आधार भी वही है।

आत्म-सुख की जो दिव्य एवं सुखद अनुभूति साधक को होती है, उसका प्रत्यक्ष प्रतिफल उसके आचार-विचार में होता है। वह राग-द्वेष से ऊपर उठ कर मानव-मात्र का जन्मजात प्रेमी बन जाता है। उसे प्रत्येक मानव में अपने आराध्य के दर्शन होते हैं और वह गदगद हो उठता है - "सियाराम मय सब जग जानी, करहुँ प्रणाम जोरि जग पानी।"

ब्रह्मविद्या युगों युगों तक परम गोपनीय तथा व्यक्तिगत रहस्य की स्थिति में अवस्थित रही है। अधिकारी पात्रों की कमी रही तथा इन-गिने ही लाभान्वित हुए। किन्तु क्षमा करें इस सम्बन्ध में मेरा किंचित भिन्न मत है। मैं ब्रह्मविद्या को मात्र 'विद्या' की कोटि में रखने का पक्षधर नहीं। विद्या कहाँ, वह तो जीवन ही है। उसे जिया जाय। प्रभु चन्दन के वृक्ष हैं और हम [उनके अनुचर] मानों वायु हैं। उनकी सुगन्ध को दिगदिगन्त में फ़ैला देना ही हमारी जीवन चेष्टा है, हमारा जीवन-लक्ष्य है।

रिआसत मुल्क़ मालवा [Princely state of Malwa], में प्राकृतिक छटाओं [splendorous] से भरा-पूरा एक आदिवासी [tribal] क्षेत्र है, 'रावटी' [वर्त्तमान ज़िला रतलाम, मध्य प्रदेश। इसी ग्राम में अपने कुछ प्रेमी-भाइयों के निमित्त, मार्च 1930 में मुझे वहाँ जाने का अवसर प्राप्त हुआ। यहाँ चिकित्साधिकारी के पद पर मेरे एक अनुज [मेरे चाचाजी - चौधरी उल्फत राय अधोलिया के बेटे] डॉ कृष्ण स्वरुप तैनात थे, इनके अतिरक्त और भी दो प्रेमी हैं - सर्वश्री हीरा लाल जोशी व रेवा शंकर जी, जो कि वहीं पर चिकित्सालय के कर्मचारी हैं और मुझे अतिप्रिय हैं । इन्हीं सब के अनेकानेक प्रेमाग्रह पर मुझे रावटी जाना पड़ा। यहाँ की प्राकृतिक छटा, अनुपम सौंदर्य और अत्यन्त ही भोले-भाले ग्रामवासी इत्यादि कुछ ऐसे आकर्षण थे कि यह भूमि मुझे बड़ी भली लगी। लगता था इस स्थान को छोड़ कर अब कहीं न जाऊँ। मेरे जीवन का अब उत्तरार्ध है। व्यक्तिओं में शक्तिपात के माध्यम से भगवतकृपा व प्रभु-प्रेम का सञ्चार करने की प्रक्रिया के स्थान पर इस चेष्टा को प्रकृति की ओर उन्मुख कर दिया है जिसमें बनस्पतियाँ, पेड़-पौधे, भूमि, जल इत्यादि हैं। काक्भुशुण्डि के आश्रम बनाने के स्वप्न साकार करने को तत्पर हो गया हूँ। किसी भावना एवं शक्ति-संचार को खींचने की शक्ति व्यक्तियों की अपेक्षा इनमें अधिक होती है और उस सत-तत्व को अपने में अपेक्षतया अधिक समय तक सुरक्षित रख सकने की सामर्थ्य भी इनमें होती है। फलतः जब भी इनके संसर्ग में व्यक्ति आते हैं, इनके प्रभाव से अछूते नहीं रहते। यही कारण है कि इस स्थान में आज भी 'बृज' के दर्शन होते हैं। शास्त्रीय दृष्टि से देखें तो भी अभीष्ट प्रयोग, साधना की विकसित अपेक्षा सिद्ध होगी।

जड़ और चेतन श्रृष्टि के दो भाग हैं। पुरुष व प्रकृति इन्हीं के रूप हैं। पुरुष चेतन है, प्रकृति जड़ [inert] है। पुरुष भोक्ता है, प्रकृति भोग्या है। ये दोनों ही पदार्थ सर्वत्र प्रत्यक्ष हैं। "ईश्वर अंश, जीव अविनाशी" - जितने भी जीव हैं सभी परमात्मा के अंश हैं। जिस प्रकार अग्नि की चिंगारियाँ, अग्नि से भिन्न नहीं, दोनों वस्तुतः एक अग्नि हैं, उसी प्रकार जीव भी परमात्मा से भिन्न नहीं है।

"कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः पृकृति रुच्यते।" [गीता - 13/20]

कार्य और कारण के उत्पन्न करने में प्रकृति हेतु कही गयी है। आकाश आदि पञ्च भूत [तत्व] तथा शब्द आदि पाँच विषय [गुण] इन दस का नाम, कार्य है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ

तथा मन, बुद्धि व अहँकार इन तेरह का नाम, करण है। प्रकृति इन सभी का कारण है। अतः प्रकृति इनकी जननी होने के कारण सारा दृश्य-जगत प्रकृति का ही स्वरुप है।

प्रकृति, पुरुष का अंश नहीं है, वह उसकी शक्ति है। शक्ति, शक्तिमान से भिन्न नहीं होती, उसी प्रकार प्रकृति व पुरुष निरन्तर एक-दूसरे में लय हैं। जब महाप्रलय होती है, उस समय सारा ही दृश्य-जगत लोप हो जाता है। जब यह क्रिया-रूप में होती है तब यह दृष्टिगोचर हो जाती है और जब अक्रिया रूप में होती है तब वह अव्यक्त रूप में रहती है।

मूल प्रकृति से समष्टि-बुद्धि की उत्पत्ति हुयी। इससे समष्टि अहँकार व समष्टि अहँकार से मन की उत्पत्ति होती है। इसी अहँकार से शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पाँच सूक्ष्म तन्मात्राओं की उत्पत्ति हुयी। समष्टि बुद्धि, समष्टि अहंकार और समष्टि मन ये तीनों, एक ही अंतःकरण की विभिन्न अवस्थाओं के तीन नाम हैं। इन्हीं तन्मात्राओं से पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और आकाशादि पाँच स्थूल भूतों की उत्पत्ति होती है। यही दृश्य जगत है। अब स्पष्ट है कि इस दृश्य जगत की कारण प्रकृति ही है। चूँकि वाणी, मन और बुद्धि प्रकृति के कार्य हैं। अतः इनके माध्यम से उसका वर्णन न तो किया जा सकता है और न ही समझा जा सकता है। अतः वह अनिवर्चनीय, अचिन्त्य और अतर्क्य है।

प्रकृति व पुरुष दोनों ही अपने कार्य के माध्यम से सर्वव्यायक हैं । बर्फ़ में जल की व्यापकता की भाँति प्रकृति की व्यापकता तो समझ में स्पष्ट आ जाती है किन्तु अति सूक्ष्म होने के कारण पुरुष की व्यापकता उतनी शीघ्र व स्पष्ट रूप से समझ में यद्यपि नहीं भी आती फ़िर भी प्रकृति की अपेक्षा पुरुष की विशेष व्यापकता प्रतीत होती ही है। सृष्टि की रचना में प्रकृति यदि कारण है तो पुरुष [ईश्वर] उसका महा कारण। आकाश से वायु की उत्पत्ति, वायु से तेज की उत्पत्ति, जल से पृथ्वी की उत्पत्ति, इत्यादि इत्यादि इन सभी की कारण रूपा प्रकृति इन सब में व्यापक है, यह समझ में आ जाता है। उस शक्तिमान पुरुष की यह प्रकृति, शक्ति-मात्र है। अतः सबका महा कारण वह चेतन पुरुष इस जड़ प्रकृति और उसके कार्य-रूप इस समस्त दृश्य सँसार में व्याप्त हो रहा है। चेतन पुरुष को स्वामी बना कर, उसकी अध्यक्षता में जब प्रकृति सृष्टि की रचना करती है, तब वास्तव में उसका रचयिता ईश्वर ही हुआ। प्रकृति तो निमित्त मात्र है। अतएव वस्तुतः ईश्वर ही इस सृष्टि का निमित्त कारण है।

मेरे इस वक्तव्य को ज्ञानी कृपया इस प्रकार समझें कि जैसे स्वप्न-द्रष्टा पुरुष अपने अंदर

अपनी ही कल्पना से आप ही संसार बन जाता है और आप ही उसे देखता है, वहाँ उस चेतन दृष्टि के अतिरिक्त उस स्वप्न-जगत का दूसरा कोई भी उपादान कारण नहीं हैं, इसी प्रकार अज्ञान के कारण जहाँ गुणों सहित प्रकृति की प्रतीति होती है वहाँ वस्तुतः परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है और जो भक्त हैं उनसे मेरा निवेदन है कि - प्रकृति परमात्मा की शक्ति है और शक्ति कभी शक्तिमान से भिन्न नहीं होती। यह दृश्य जो कुछ भी है, सब कुछ तो परमात्मा की ही शक्तिरूपा प्रकृति का ही विस्तार है। यह परमात्मा का ही स्वरुप है, परमात्मा ही इसका उपादान कारण है।

पुरुष से तात्पर्य है - आत्मा। उसके दो भेद हैं - जीवात्मा व परमात्मा। जीवात्मा अनेक हैं व परमात्मा एक। इन्हीं के मिलन को योग की संज्ञा दी गयी है। विषय को सीधा व सरल बनाने लिए इस प्रकार समझना चाहिए कि परमात्मा के भी दो भेद मान लिए गए हैं - सगुण व निर्गुण। सत, रज व तम - तीनों गुणों को उत्पन्न करने वाली प्रकृति के सहित जो परमात्मा का स्वरुप है वह सगुण है, इसके अतिरिक्त जो गुणरहित है वह निर्गुण है। सगुण व निर्गुण दो मान्यताएँ या मार्ग अवश्य हैं किन्तु वस्तुतः परमात्मा एक ही है।

मैं कोई 'दर्शन' का ज्ञाता नहीं। मैं तो मात्र एक साधक हूँ। उन दिनों विचार में कुछ इसी प्रकार के दर्शन उठते व विचार-मग्न अन्दर ही अन्दर उन पर प्रश्नोत्तर होते। कभी-कभी, इनसे सम्बन्धित जो पुस्तकें हैं, उनका स्वाध्याय व अनुशीलन भी करता। जब-जब में कुछ ढूँढता हूँ और उसे नहीं पाता तो तुरन्त ही मां के पास दौड़ा जाता हूँ। उसकी महान अनुकम्पा है। गँगा से भी विशाल व पवित्र अंतःकरण है उसका। महान दात्री है वह। प्रेमावेश में मग्न मैं उसके अन्तर से सारा ज्ञान, सारी शक्ति, सभी कुछ मानों स्तनों से दुग्ध के रूप में खींच लेने का मन ही मन प्रयास करता हूँ और यह प्रेमिल प्रयास मेरे अधरों पर स्मित का सञ्चार कर देता है। और उल्ल्हास में भर कर माँ के वक्षस्थल का आँचल खींचते हुए अपना मुख उसमें छिपा लेता हूँ। ज्ञान-गंगा का प्रवाह अविरल बहता है, कहाँ समेटूँ, कैसे सँवारुं उसे ?

अहमब्रह्मः की स्थिति में पदार्पण करने की पहली शर्त है - अहँकार का सर्वदा परित्याग। भक्ति के प्रतीक स्वयं 'हनुमान' से तात्पर्य है; 'हनु' अर्थात, मारना और मान अर्थात प्रतिष्ठा का, स्पष्ट है अपने अहंकार को मार कर समाप्त कर चुकना। जो 'अहमब्रह्म' की स्थिति में

प्रवेश करना चाहता है वह सर्वप्रथम 'हनुमान' को समझे और अपने अहँकार का त्याग व नाश करे। भक्ति का परम तत्व यही है।

“औरउ एक गुपुत मत, सबहिं कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।।”
[मानस 07 - 45]
अर्थात ; "और भी एक गुप्त मत है, मैं उसे सब से हाँथ जोड़ कर कहता हूँ कि शंकर जी के भजन बिना मनुष्य मेरी भक्ति नहीं पाता।"

चूँकि स्वयं श्री हनुमानजी भगवान शिव के अवतार हैं , जो कि प्रभु श्री राम के चरणों में सदा-सदैव उपस्थित हैं, अतः यहाँ पर 'गुप्त मत' के अनुसार संकेत हनुमानजी के लिए ही है। जो साधक आगे के मार्ग पर अग्रसर होना चाहते हैं उनको मेरा परामर्श है कि इस स्थिति को प्राप्त करें क्योंकि मात्र यही स्थिति है जहाँ पूर्ण सुरक्षा की आशा की जा सकती है। यहाँ माया या भ्रान्ति का वास नहीं होता। परिधि में वास करने वाले साधक के मन में विकार या अज्ञान की स्थिति उत्पन्न नहीं होती। यही स्थिति काकभुशुण्डि का पावन आश्रम है। यही निशा-नीड़ है।

माँ गीता की वाणी है कि इस 'निशा-नीड़' में प्रवेश कर वास करने के निमित्त - सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी तीन प्रकार की माया का सामना करना पड़ता है। महान भक्त, साधक एवं योगी हनुमान को अपने अभीष्ट के मार्ग में जो मायाएँ मिलीं, वे थीं सतोगुणी - देवलोक से आयी हुयी 'सुरसा', तमोगुणी - अधोवाहिनी 'सिंहिका', जो उड़ते हुए पक्षियों की छाया को पकड़ कर उन्हें खींच लेती थी, तथा रजोगुणी - 'मध्यलोकस्थ लंकानिवासिनी लंकिनी' ।

"ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः।।
[गीता 14/18]"

सतोगुण में स्थित पुरुष स्वर्गादि उच्च लोकों को प्राप्त होते हैं। रजोगुण में स्थित राजस पुरुष मध्य में अर्थात मनुष्य-लोकों में ही रहते हैं और तमोगुण के कार्यरूप निद्रा, प्रमाद और

आलस्यादि में स्थित तामस पुरुष अधोगति को अर्थात कीट, पशु आदि नीच योनिओं को तथा नरकों को प्राप्त होते हैं।

इस देववाणी के साथ ही ध्यान की कुछ अवस्थाएँ अवतीर्ण होतीं हैं जिनके द्योतक साधक के रूप में स्वयं हनुमान जी ही हैं। उन्हीं की कृपा से मुझ मुमुक्ष को भी अहमब्रह्म की परिधि या काकभुशुण्डि जी के आश्रम में प्रवेश पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

"जात पवन सुत देवन्ह देखा। जानै कहु बल बुद्धि बिसेषा।।
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहि बाता।।
आज सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवनकुमारा ।।
राम काजु करि फिरि मैं आवौं। सीता कई सुधि प्रभुहि सुनावौं।।
तब तव बदन पैठिहउँ आयी। सत्य कहौं मोहि जान दे माई।।
कवनेहू जतन देह नहिं जाना। ग्रससि न मोहिं कहेउ हनुमाना।।"
[मानस 05 -01-01-05]

देवताओं ने पवनपुत्र हनुमान जी को जाते हुए देखा। उनके विशेष बल-बुद्धि को जानने के लिए [परीक्षार्थ] उन्होंने सुरसा नामक सर्पों की माता को भेजा। उसने जा कर हनुमान जी से यह बात कही - "आज देवताओं ने मुझे भोजन दिया है, यह वचन सुन कर पवनकुमार हनुमान जी ने कहा श्री राम जी का कार्य करके लौट आऊँ और सीताजी की खबर प्रभु को सुना दूँ, तब मैं तुम्हारे मुहँ में स्वयं प्रवेश कर जाऊँगा, तुम मुझे खा लेना। हे माता ! मैं सत्य कहता हूँ, अभी मुझे जाने दे।" जब किसी भी उपाय से जाने नहीं दिया तब हनुमान जी ने कहा - "तो फ़िर मुझे खा ले ।"

इतना सुनते ही उसने एक योजन मुहँ फैलाया। हनुमान जी 'रा' 'म' राम रुपी दो अक्षरों के बल से दुगने बढ़ गए।

"जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। तासु दून कपि रूप दिखावा।।" तब सुरसा ने नारी प्रकृति के अनुसार उससे आठ गुना अर्थात सोलह योजन में मुख का विस्तार किया। मारुति जी को तो दो अक्षरों का ही भरोसा था - "प्रीति प्रतीत है आखर 'दू' की, तुलसी हुलसी बल आखर 'दू' को " इस लिए वह फिर दुगुने अर्थात बत्तीस योजन बढ़ गए। तब तो सुरसा ने किसी नियम को न मान कर सौ योजन का मुहँ फैलाया। हनुमान जी ने सोंचा कि सौ योजन समुद्र पार करने की बात थी, अवधि आ पहुँची, अतएव इसे भी पार करना ही चाहिए। तब "अति लघु रूप पवनसुत लीन्हां।" छोटा सा रूप बना कर उसके मुहँ में घुस गए और झट से बाहर निकल कर आज्ञा माँगने लगे - "बदन पैठि पुनि बाहर आवा। माँगी विदा ताहि सिर नावा।" [मानस 05-01-11]

यह जीव भक्ति की खोज में परमार्थ-पथ पर चलता है, तब उसके लिए तीन प्रकार की गुणमयी मायाएँ बाधक होती हैं। इन तीनों के साथ हनुमान जी के सदृश्य हो ब्यवहार करना चाहिए। सत्वगुणी का विशेष विरोध न करें, क्योंकि शुभ कर्मों की प्रवृत्ति से विरोध करना उचित नहीं। प्रत्युत उन्हें तो निष्काम भाव से करते रहना चाहिए और निवृत्ति के लिए भजन के हेतु उसके संग निर्वाह भी असंभव है। अतः उसके अनुकूल होते हुए भी अपने को छोटा बना कर उससे छुटकारा पाने का प्रयत्न करें। उसमे प्रवृत्त न हों क्योंकि दोनों ही प्रकार की प्रवृत्तिओं का त्याग करना भगवत प्रेमियों के लिए श्रेयस्कर है। "त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक। भजहिं मोहिं सुर नर मुनि नायक।" किन्तु तमोगुणी माया को सिंघिका की भाँति जान से मार डालें क्योंकि पाप-कर्मों का लेश भी परमार्थ के लिए अत्यंत घातक है। रजोगुणी माया को अधमरा करके छोड़ दें, क्योकि इसका सर्वथा निराकरण कर देने से अवलम्बहीन जान पड़ने लगेगा।

ज्ञातव्य है कि सर्प अहंकार का उपमेय है। यहाँ पर साधक की परीक्षा के लिए सर्पों की माता ["सुरसा नाम अहिन्ह कै माता"] को भेजा गया, यह देखने के लिए कि उसका अपने अहँकार पर किस सीमा तक अधिकार है। किन्तु हनुमान जी तो इस विषय के मानों आचार्य ही हैं। दीनता और विनय तो कोई उनसे सीखे। बार-बार वह अपने को लघु से लघुतम रूप में अवस्थित कर लेते हैं। बड़ा ही अच्छा अभ्यास है उनका।

अपने प्रभु के प्रेम की साधना का अपना अलग ही आनन्द है, जहाँ एक बार लौ लगी सो लगी। उनके प्रेम की एक नन्ही सी चिंगारी सब कुछ आत्मसात करा देने के लिए पर्याप्त है। हृदय के

भीतर मात्र एक बार अपने स्वामी के दर्शन की एक झलक मिलते ही बाहर-भीतर, सर्वत्र, कण-कण में उन्हीं के दर्शन होते हैं।

जहाँ भी दृष्टि जाती है वहीं मुस्कराते हुए दृश्टिगोचर होते हैं। मुझ दास पर कैसी-कैसी अनुकम्पा की गयी है ? क्या यही था मेरी साधना का उद्देश्य, यही था मेरी पूजा का प्रसाद ? जिस घूँघट में से अपने प्रियतम के कभी हाँथ, कभी पैर, कभी आँख, कभी कान कठिनाई से दिखते थे, जी भर कर उस प्यारे का आलिंगन प्राप्त हुआ है।

आत्मसाक्षात्कार की गति ऐसी ही थी और थी उस घड़ी की सुखानुभूति भी कुछ ऐसी ही। अपने ध्यान के मध्य अंतर्मुखी हो कर मेरा प्राण क्रीड़ाएँ करता भीतर-भीतर जा पहुँचा। ऐसा लगा मानों इस शरीर की कोई अन्तिम सीमा न हो वरन समस्त सृष्टि की व्यापकता हो। अन्दर ही अन्दर भीतर की जो दीवारें थीं, वे सारी सृष्टि की ही परिधियाँ जान पड़ीं। प्राण उनमें निर्द्वन्द विचरने लगा। वहाँ अन्यत्र कोई न था। मैं ही मैं था। एक ऐसी स्थिति थी जो वाणी से परे थी। न वहाँ राग था न द्वेष, न प्रेम था न घृणा, न इच्छा थी न अनिच्छा इत्यादि कोई भाव ही न था, कोई द्वन्द्व न था। यही ब्रह्मपद था। यही काकभुशुण्डि जी का आश्रम था। यही था मेरा निशा-नीड़। मैं यहीं वास करता हूँ। मैं यहीं वास करूँगा। अब यह शरीर मेरे लिए बन्धन नहीं है। सारी सृष्टि की परिधियाँ ही मेरा शरीर हैं एवं मात्र मैं ही उसमें वास करता हूँ।

साधारणतयः हमारी अपनी गति कैसी है ? सुनें। एक ओर विषय-समूह की उत्ताल तरंगों से युक्त भोग-सागर और दूसरी ओर स्थिर शान्त सत्पुरुष ज्योतिर्मय ब्रह्म, एक ओर अनेकानेक काम-वासनाओं से ओतप्रोत चञ्चल मन और काम, क्रोधादि उसकी सेना तथा दूसरी ओर आनन्द-घन-शान्त आत्मा। ये दोनों चञ्चल और शान्त भाव बाहर संसार में तथा अंदर अपने मानस-मंदिर में सदा-सदा से वास करते हैं, परमानन्द को प्राप्त आत्मा अर्थात शान्त एवं प्रकाश स्वरूप चेतना तथा आनन्दमयी एवं अविनाशिनी और इसके अतिरिक्त सब जगत जो भी दृष्टिगोचर है, दुखमय और अनश्वर। इधर बाहर संसार की स्थिति है -

"पुरइन सघन ओट जल, बेगि न पाइय मर्म।
मायाछन्न न देखिए जैसे निर्गुन ब्रह्म।।
[मानस 03 /39 क]

और दूसरी ओर अन्तर की स्थिति है -

"भूमि परत भा डाबर पानी। जनु जीवहिं माया लपटानी।।
[मानस 04/13/06]

"ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहस सुख रासी।।
सो माया बस भयउ गोसाईं। बंध्यो कीर मरकट की नाईं।।
जड़ चेतनहिं ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई।।"
[मानस 07/116/02 - 04]

आन्तरिक स्थिति के सम्बन्ध में 'कठ' की वाणी भी अवलोकनीय है -
"पराञ्चि खानि व्यतृणत स्वयंभू स्तस्मात्परांगव्पश्यति नान्तरात्मन।
[कठ 02/01/01]

स्वम्भू [परमात्मा] ने इन्दियों को बहिर्मुख इस लिए किया है कि स्वास्थकर, सुबुद्धिदायक विशुद्ध विषयों को ग्रहण करें किन्तु अविविवेकी विषयासक्त हो जाते हैं जिससे जीव वाह्य विषयों को ही देखता है, अंतरात्मा को नहीं। यही कारण है कि इन्द्रियजन्य भौतिक सुख को ही सुख मान कर उसके ही प्रयत्न में लगा हुआ है और उसके भोग में ही सुख है, ऐसा उसको विश्वास हो गया है। परन्तु वास्तव में वह भ्रम में ही है, क्योंकि सुख या आनन्द आत्मा के अतिरिक्त और कहीं है ही नहीं। यह वैषयिक सुख भी आत्मा के सम्बन्ध से ही प्राप्त होता है -

"अस्थि पुरान क्षुधित स्वान अति ज्यों भरि मुख पकरै।
निज तालू गत रुधिर पान करि मन संतोष धरै।।
[विनय पत्रिका 92/04]

जैसे बड़ा भूखा कुत्ता पुरानी हड्डी को मुख में भर कर पकड़ता है और अपने तालू ,में अड़ जाने से जो रक्त निकलता है उसे पी कर मन में संतोष करता है।

जिस साधक को वास्तविक आनन्द की इच्छा होती है, वह फिर उसके उदगम स्थान को ही ढूँढता है -

कश्चिद्वीरः प्रत्यगात्मानमैक्षडावृत्त चक्षुरमृतत्वमिच्छन्न।
[कठ 02/01/01]

जिसने अमृत्व की इच्छा करते हुए अपनी इन्द्रियों को रोक लिया है - वाह्य विषयों से समेट लिया है, ऐसा कोई धीर पुरुष ही अंर्तात्मा को देख पाता है। भगवान कृष्ण ने गीता में भी यही कहा है -

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणींन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।
[गीता 02/58]

जैसे कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है वैसे ही जब पुरुष सब ओर से इन्द्रियों के विषयों से अपनी इन्द्रियों को समेट लेता है तब उसकी बुद्धि स्थिर होती है। योग की दृष्टि से यह प्रत्याहार है। क्योंकि इन्द्रियों का अपने विषयों से सम्बन्ध न रख कर चित्त के स्वरुप हो जाना ही प्रत्याहार है।

साधना के फलस्वरूप एक और बात सामने आती है कि जब इन्द्रियों को विषयों से हटा कर अन्तर्मुखी किया जाता है तब मन में संकल्प-विकल्प अत्यन्त ही गतिशील हो जाते हैं। सामान्य स्थिति की अपेक्षा मन की उछल-कूद की गति अत्यन्त बढ़ जाती है और इन्द्रियद्वारों से बाहर निकल कर भोग की प्राप्ति के निमित्त [देखने-सुनने को] व्याकुल हो उठता है। ऐसी स्थिति में विशेष सावधानी की आवश्यकता है। इस स्थिति में सद्गुरु नाम व रूप के आधार पर उनके कृपा-सागर स्वरुप का आव्हान करना ही श्रेयस्कर है। इससे वाह्य विषय-समूहों की

व्याकुलता धीरे-धीरे छूट जाने की आशा सकती है।

यह योग का मार्ग है। साधक को अपने इष्ट के स्वरुप में चित्त लगाना, ध्यान करना, विभिन्न चक्रों के स्थान पर जिस शब्द की दिव्य-ध्वनि को, यदि ज्ञात हो, सुनने का अभ्यास करना चाहिए।व्यर्थ चक्करों में नहीं पड़ना है। योगी-भाव तथा भक्त-रूप की भावना करना है। आवश्यकता मात्र ईश्वरीय भावना की है।

यही ज्ञान है। इसकी एकाकार तैलधारावत अविच्छिन्न वृत्ति का प्रवाह ही ध्यान है, ध्येय के अतिरिक्त और कोई ज्ञान या संकल्प बीच में न आने पावे, एकाकार प्रवाह होता रहे, यही ध्यान है। इसके प्रवाह से वृत्ति अंतर्मुखी होगी। तब आत्मानुभव करना चाहिए। उस सूक्ष्मातिसूक्ष्म वृत्ति को भी लय करते-करते जब एकमात्र ज्ञान ही शेष रह जाय और ज्ञान ही नहीं अपितु उस अवस्था का जो दृष्टा या साक्षी है, उसी को अपना स्वरुप समझें। अन्त में साक्षी-साक्ष्य भाव भी नहीं रहेगा।

कठ0 का सन्देश भी यही है -

"एष सर्वेषु भूतेषु गुढोत्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्रयया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ।।
[कठ0 01/03/12]

"यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्।।"
[कठ0 02/03/10]

पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ मन के सहित आत्मा में स्थिर हो जातीं हैं और बुद्धि भी चेष्टा नहीं करती, वह परमगति है। उस अतीन्द्रिय और केवल शुद्ध बुद्धि ग्राह्य आनन्द को [यहाँ पर बुद्धि ग्राह्य भी कहना ठीक नहीं बनता केवल लक्ष्य निर्देश के लिए ही ऐसा कहा जाता है।] अपनी आत्मा में स्वयं ही अनुभव करता है तथा उससे बढ़ कर और कोई सुख न मानता हुआ भारी से

भारी दुःख से भी विचलित न हो कर उस आत्यान्तिक आत्म-सुख को ही सर्वोपरि सुख समझ कर उसमें ही सन्तुष्ट रहता है।
योगमार्ग से आत्मानुभव-रूप उपासना होती है।मूँज के अन्दर से सींक [the jointed stalk of the grasses] के अनुसंधान की भाँति ह्रदय एवं बुद्धि रूप गुहा में ही आत्मदर्शानुभूति होती है। भक्ति मार्ग में सगुण-ध्यान में भी यही बात है, कोई भेद नहीं है। केवल कहने मात्र के लिए साधन भेद है। साध्य-तत्व एक ही है। उसमें भी ह्रदय-कमल में भगवान् के रूप का ध्यान करता हुआ सम्पूर्ण छवि का ध्यान करता है और फ़िर केवल मुख-कमल की भावना करते हुए भगवान के शुद्धस्वरूप में आरूढ़ हो जाता है और कुछ भी चिंतन नहीं करता। इस प्रकार तीव्र ध्यान-योग से वह भक्त भगवान के शुद्ध स्वरुप में तदाकार हो जाता है और अपने में परमात्मा को प्राप्त करता है।

"सो तै तोहि तोहि नहिं भेदा, वारि बीच इव गावहिं वेदा।"

अतः अपने ह्रदय गुहा में अपना ही अनुसन्धान करना, अपने ही अधिष्ठान का अनुभव करना, उसी तत्व की ही उपलब्धि करना है, जो सबमें है।

आने वाले कल की यह पूर्वसन्ध्या है। चलते चलते हम पर्याप्त आगे निकल आये थे। आइये चलें। मैं आपको वहाँ ले चलता हूँ जहाँ मेरे जीवन की सम्पूर्ण आयु बीती है। मेरा बचपन, मेरी युवावस्था और अब यों मेरे जीवन का उत्तरार्ध आ पहुँचा।

एक छोटा सा, सुन्दर व सौम्य नगर, फतेहगढ़ [फर्रुखाबाद-फतेहगढ़ युगमनगर], और गंगा का यह पावन तट अति ही प्रिय है मुझे। हरी-भरी वृक्षावलि से सुसज्जित पावन तटों के सहारे कलकल-वाहिनी यह अमृत सरिता, अनन्त तक फैलीं पुण्य-स्थलियाँ, इन्हीं के झुरमुटों में सजी, सँवरी सी यह पवित्र भू-स्थली सदा-सदा से संतों, ऋषियों, महर्षियों की साधना भूमि रही है। अनेकानेक चोटी के ऋषी, तत्वदर्शी, ज्ञानी, कवि, प्रियजन इस क्षेत्र में जन्म लेते आये हैं। और ऐसे पवित्र वातावरण में चारों ओर प्रकृति सुंदरी अपनी सम्पूर्ण सुषमा पसारे बैठी है - ऊषा-संध्या, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, बसंत की बहारें हैं, आकाश के तारे, धरती के पुष्प चारों ओर अपनी चमक, अपना सौरभ, अपना निराला सौंदर्य प्रदर्शित कर रहे हैं। और इसकी निशा तो मानों

साधना का स्वर्णिम साधन रही है। "या निशा सर्वभूतानां तस्य जाग्रति संयमी" का उदघोष ऐसे ही किसी साधक का रहा होगा।

चक्षु देखते हैं, सारी प्रकृति, सारे दृश्य एवं सौंदर्य किन्तु इस आदिसौंदर्य की रानी विभावरी पर तो ऋषि भी लट्टू ही हो गए। अनेकानेक ऋचाएँ उपनीत कर न्योछावर कर डालीं हैं, उसकी प्रशस्ति में। परमप्रेरिका प्राणदायिनी ऊषा के सौंदर्य की प्रशंसा करते हुए ऋषि कहते हैं -

"आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जति। जरयन्तीव्रजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः।।
[ऋग्वेद 01/48/05]

उषा सुन्दर युवती की भाँति आती है, सबको आनन्दित करती हुयी सारे प्राणि-जगत को वह जगाती है। मनुष्यों को वह काम पर भेजती है और पक्षियों को गगन में बिहार करने की प्रेरणा देती है।

यह है वैदिक दृष्टिकोण की आभा की एक झलक।काव्यचेतना की जागृति के फ़लस्वरूप उन्होंने प्राकृतिक पदार्थों को ऐसे प्रगाढ़ मनोभावों और कल्पनाशक्ति द्वारा देखा कि उन्हें वे आत्मा की भावना से परिपूर्ण प्रतीत होने लगे। उनके लिए प्रकृति [मात्र जड़ न हो कर] एक जीवित सत्ता थी जिसके साथ वे प्रेम जोड़ सकते थे। ऐसी ही ममतामयी प्रकृति मेरे लिए मेरी इस साधना-स्थली फतेहगढ़ की रही है।

यदि यह सम्पूर्ण जगत माया ही है तो ऋषिकृत ऐसे दृष्टिकोण हमें सतोगुणी चेतना में अवस्थित करते हैं, जहाँ हमें यह प्रकृति, यह सँसार अति सुन्दर प्रतीत होता है एवं स्वभावतः हम उसके आकर्षण में खो जाते हैं व उसके रचैता की मनोवैज्ञानिक कल्पना करते हैं, उसके हर कृत्य में हमें वह ही वह दृष्टिगोचर होने लगता है।

"रुशद्वस्ता रुशतीश्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः।
समानबन्धु अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने।।"
[ऋग्वेद 01/113/02]

श्वेतवसना उषा और कृष्णवसना रजनी के बीच में है प्रकाशमान बाल-रवि। उसे मानों दुलारती हुयी दो माताएँ एक दुसरे की ओर उछाल रही हैं। रात्रि उषा की ओर, उषा रात्रि की ओर। कैसी है छटा उत्प्रेक्षा की।

इसके अतिरिक्त साधना के अंतराल में माया का एक तमोगुणी रूप भी सक्रिय रहता है जो अत्यन्त ही घिनौना व क्लेशकर होता है।

प्रसंगवश निवेदन करूँ कि उन दिनों मेरे एक अज़ीज़ चिरंजीव राम चन्द्र [शाहजहाँपुर] ने मुझ से 'शग़ल-ए-राबितः' के बारे में जानकारी ली और मेरी इजाज़त ले कर उस पर अभ्यास करना प्रारम्भ कर दिया था। चूँकि यह एक महत्वपूर्ण विषय है अतः आम- जानकारी के लिए उसका उल्लेख यहाँ आवश्यक हो जाता है।

मुर्शिद और गुरु की मिस्ली शक़्ल, उसकी हरक़ात, सकूनत, अख़लाक़ और आदत की तरफ़ अंदर दिल में नज़र रखना या याद-दाश्त क़ाइम करना, उसका ध्यान बांधना, सूफ़ियों और संत-मत के शाग़िलों और साधकों के यही रायज़ हैं। इसको 'शग़ल-ए-राबितः' कहते हैं और बरज़ख़े-पीर भी इसका इस्तेलाही [परिभाषक] नाम है। चित्त को एकाग्र करने के लिए यह अमल [अनुष्ठान] ऐसा पुरतासीर है कि जादू की तरह अपना करिश्मा दिखलाता है। बल्कि और रास्तों से यह रास्ता क़रीब और काम को सहल कर देता है। लेकिन शर्त यह है कि जिस 'मुर्शिद' का ख्याल बाँधा जावे वह मुक़म्मिल हो और संतमत-गुरु की हैसियत रखता हो। जिसके बातिन का तस्फ़ियः [निर्णय] और तज़्किय: [शुद्ध करना] हो चुका हो और माया की हद के पार पहुँचा हो, वर्ना फ़िर साधक मायाजाल का बंधुआ हो कर और भी जकड़-बन्द हो जाएगा और शैतात-सिफ़त हो जाएगा। इसलिए निहायत एहतियात लाज़िमी है कि हर शख़्स का ध्यान न बाँधा जाय। बुज़ुर्गों ने इसीलिये इसकी क़तई मुमानियत कर दी है।

संतमत में शुरू-शुरू में सत्संग के वक़्त मुर्शिद के चेहरे पर दोनों भोंओं [eye-brows] के दरम्यान नज़र जमाने को इशारा किया जाता है। यह बाहरी शक्ल जमाली की तरफ़ इशारा है लेकिन अंदर की तरफ़ अभ्यास करने के लिए मुक़ाम और जगह और ख़ास हिदायत दी जाती है, जो ज़रूरत के वक़्त और मौका के साथ इसकी तरक़ीब साधक को बतायी जाती है। आमतौर पर खुले हुए तरीक़ से इश्तिहार करने की मुमानियत है और वजह मुमानियत की ज़ाहिर है कि

बेसमझ लोग शौक़ में आ कर बिला मौका और मुनासिबत के इस अमल का बेजा इस्तेमाल न कर डाले। खुद मुसीबत में फ़सें और दूसरों को आफ़त में डालें।

बाज़ तरीक़ के गुरु इस शग़ल-ए-राबित: का उस वक़्त तक हुक़्म नहीं देते जब तक यह नहीं देख लेते हैं कि साधक में प्रेम का चश्म: [स्रोत] उबल पड़ा है या मोहब्बत का जज़्बा भड़क उठा है, उसको ऐसी उमंग आयी हुयी है कि बग़ैर कहे-सुने ख्वामख्वाः वह शक्ल को सामने रखने लगा। अगर ऐसा ग़लबः [प्राचुर्य] मोहब्बत का हो जाय कि शक्ल दूर करने से भी न हटे तो यह क़ुदरत का तक़ाज़ा है और लहर रुख़ बहाव की तरफ़ है वर्ना ज़बरदस्ती क़ाइम करना एक तरह का हठ है जो मूर्ति-पूजन की हद में आ जाता है। इस हठ और ज़बरदस्ती शग़ल करने का वही नतीज़ा होता है जैसा कि अक्सर तरीकों में 'अनहद' शब्द सुनने के लिए कानों में उँगलियाँ लगाना और 'ठड्डा' ठूँसने से जो नतीज़ा होता है कि 'शब्द' तो सुनायी दे जाता है, मगर आरिज़ी [लत] जिसमें बीमारी का भी शुबह रहता है।

इस शग़ल का असली मतलब और फ़लसफ़ः मुख़्तसर [संक्षेप] और इशारे के तौर पर इतना कह देना काफ़ी है 'बरज़ख़' - कहते है दर्मियानी चीज़ को जो एक-दुसरे के साथ जोड़ देने में ज़रिया या वास्ता हो। 'पीर' या 'गुरु' दर्मियानी-मीडियम है, परमात्मा से जोड़ने का। अगर यह समझ में न आये तो इस तरह ख्याल करना चाहिए कि 'आईना' [mirror] वास्ता है अपनी शक्ल देखने का ; किताब ज़रिया है इल्म का ; उस्ताद वास्ता है किसी फ़न [विद्या] के हाँसिल होने का ; धातु या पत्थर की मूर्ति परमात्मा की याद दिलाने का एक ख़ास जरिया है। इसी तरह ज़िंदा गुरु और भी मुक़म्मिल आदर्श है, ब्रह्म से नज़दीक़ी हाँसिल करने का। बिना शुबह गुरु की शक्ल-मिसाली साधक और ब्रह्म के दर्मियान एक जीता-जागता वास्ता है। उसके आदत अख़लाक़, तर्ज़े-अमल, दुनियाबी व्यवहार और रूहानियत का प्रभाव साधक में बिजली की तरह उसके दिल और दिमाग़ में दाख़िल हो कर सरायत [प्रभाव] करता है और हमदम रूह ताज़ा फूँकता रहता है।

यह अमल रस्ते की मुश्किलें दूर करने के लिए या दूसरे अभ्यासों की रूखी-फींकी रुकावटों [rough and tumble interruptions] को आसान बना देने में बड़े काम की चीज़ है। लेकिन जिस साधक को यह ख़्याल अज़ख़ुद पैदा हो जाय और सामने से न हटे और दूर करने पर भी अलहदा न हो और फिर इसके साथ इसकी वजह भी समझ में न आवे तो वाक़ई इस क़दर

जल्द रास्ता आसानी से तय हो जाता है कि अपने को और दूसरे सीखने वालों को तब्दीली हालत पर एक ताज्जुब हो जाता है। एक साधक से यह इत्तिला मिली है कि चलती हुयी शक्ल का तसव्वर निहायत आसानी से हो जाता है। बैठी हुयी शक्ल का ज़रा ग़ौर [चिंतन-मनन के बाद] से होता है और लेटी हुयी शक्ल का बहुत ही मुश्किल से होता है। इसका क्या भेद है ? जवाब इसका बहुत साफ़ है। [01]चलती हुयी शक्ल जीती-जागती हुयी कर्मयोगी के आदर्श और उसके रूप को दिखलाती है। [02] बैठी हुयी हालत यह इशारा करती है कि उस शक्ल में कर्म की शान की झलक तो है और कर्म करने को मुस्तैद [तत्पर] है मगर कर्म करने को खड़ा हो गया है। उम्मीद है कि मुस्तैद और कर्मवीर हो जाय। [03] लेटी हुयी शक्ल सहज ज़िन्दग़ी की मूर्ती है ; इसमें हरक़त नहीं, यह जमूदी [तामसिक-अवस्था] क़ैफ़ियत है। यह सुषुप्ति [ख़्वाब ग़फ़लत] अंधकार, अज्ञान की हालत है।

अब साधक की तरफ़ से इन हालात को लीजिये और उनसे नतीजा बरामद कीजिये कि साधक ने जमूदी [तामसिक] कैफ़ियत से तरक़्क़ी की है और हालात दरम्यानी बैठी हुयी हालत को पार करके आख़िरी मुस्तैद और ज्ञान की क़ैफ़ियत पर आना शुरू किया है। शाग़िल की धारणा न अब तामसिक है न राजसिक। चलती-फ़िरती हुयी चीज़ में ध्यान का लग जाना धारणा की तेज मश्शाक़ी का सबूत है। मिसाल से इस तौर पर समझना चाहिए कि चित्त की धारणा ठहरी हुयी चीज़ पर भी न जम सके, लेकिन मश्शाक़ी के सिलसिले में हलके-हलके घुमते हुए चक्कर पर ठहरने लग जावे और फ़िर आख़िरकार निहायत तेज़ी के साथ घूमते हुए चक्कर या हल्क़ः [परिधि या मण्डल] पर जमने लगे, और ऐसी तवज्जः ठहर जाय कि चलती हुयी शक्ल पर आसानी से ध्यान लग जाने लगे तो फ़िर अब क्या नतीज़ा निकालना चाहिए।

चलती-फ़िरती हुयी शक्ल कर्मयोगी और कर्मवीर ज्ञानी की मूर्ती है और ज़िंदा तस्वीर है, जिस पर आसानी के साथ नज़र का ठहराव हो जाना इस बात की दलील है कि शाग़िल की नज़र इस असर के क़बूल करने को मुस्तैद है और मुनासिबत ने काफ़ी इस्तेदाद [किसी चीज़ से प्रभावित होने की योग्यता] को क़बूल कर लिया है। उपनिषद् यह सन्देश देती है कि 'उठो, जागो, चलो और चले चलो और कभी ठहरने का नाम न लो'।

साधक ज्यों-ज्यों अपने इष्ट के निकट आता जाता है जहाँ कि उसका उद्गम स्थान है वह तमोगुणी माया अत्यंत ही विकराल रूप धारण कर उसका पीछा करती है। मेरे उपरोक्त अज़ीज़, बाबू राम चन्द्र [शाहजहाँपुर] के निम्नलिखित पत्र और उन्हें दिए गए मेरे उत्तर से पूरी बात स्पष्ट रूप से समझ में आ जावेगी।

“शाहजहांपुर
31 अक्टूबर 1929 [AD]

“मेरे दोनों जहाँ के श्रद्धेय मालिक, ईश्वर आपको दीर्घायु करे।”

"अर्ज़ यह है कि मुझे जो हालात हाल में गुज़र चुके हैं और गुज़र रहे हैं, इनकी इत्तिला देना ज़रूरी है। 01 नवम्बर सं 1929 ईस्वी को 08 बजे रात के एक अंदरूनी हालत का उभार पैदा हुआ और इससे अपनी हालत का नक़शा पेश नज़र हो गया। यह हालत हमाँदम [तत्क्षण] और सरापा [नितान्त] थी। ख़याल उस हालत से मिल कर एक हो रहा था। या यूँ कहना चाहिए कि ग़र्क़ [निमग्न] हो गया था और वह हालत अनामूर्शिद अज़ सरतापा [सर से पाँव तक] का ख़याल पैदा कर रही थी मगर जोश के साथ, यानि हर बात उसमें लय हो कर असल हो गयी थी। हिम्मत बेशुमार थी और यह जज़्बात मौजूद थे कि हर काम कर सकता हूँ। और अपने आप को क़ादिर [समर्थ] व मालिक हर शै का समझता था। थोड़ी देर इस ख़्याल में महव [तन्मय] रहा। मगर हद से ज़्यादः बाहिम्मत होने और ऐसे जज़्बात उठने को मैंने अहंकार समझा, इसलिए जिस हालत में कि मैं घुसा हुआ था निकल कर हलके ख़्याल से कुछ देर इस हालत की तरफ़ रुज़ू रहा बाद को खाना खा कर लेटा, क़रीबन 10.00 बजे रात के मीराबाई का भजन गाने लगा - "मोरे मन राम राम दूसरा न कोई।" फ़िर वही समां बंध गया। हालत मज़कूर [उपरोक्त] दिन में अक्सर पैदा होती रहती है। मगर इस क़दर बेखुदी और गुमशुदग़ी नहीं होती, और न हालत खुल कर पेश-नज़र उस दर्ज़ा तक होती है। अलबत्ता जहां तक मेरा

ख्याल नाक़िस पहुँचता है खुद-फ़रामोशी महसूस होती है। हालत ज़्यादःतर बेक़ैफ़ी और ए'तिदाल [संतुलन] की रहती है और फ़नाईयत का एहसास दिलाती है।"

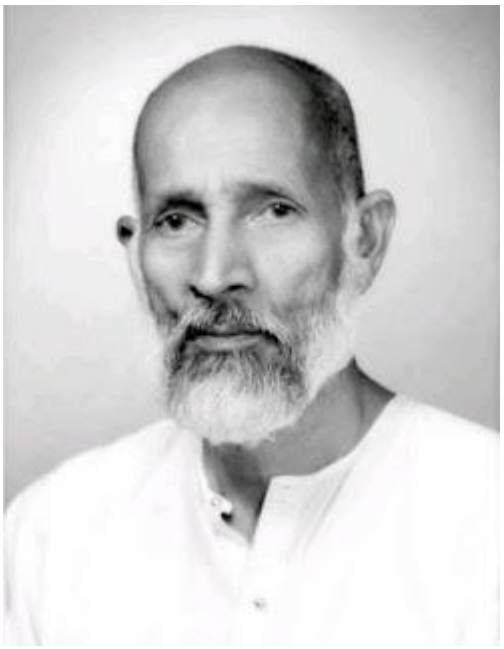

Shri Ram Chandra [Baabuji] Shahjahanpur UP

"दूसरा पक्ष भी अति आवश्यक है जिससे मेरी चारित्रिक स्थिति पर प्रकाश पड़ेगा व इसकी सूचना आदरणीय श्रीमानजी की सेवा में भी हो जायेगी, वह यह है कि घर में इतना दुखी किया जाता हूँ कि कभी-कभी भाग जाने को और कभी सिर फोड़ लेने की इच्छा होती है, यद्यपि इस पर मेरा कोई अधिकार नहीं है। घर पर पहुँचते ही कोई न कोई स्थिति ऐसी उत्पन्न हो जाती है कि अकारण ही क्रोधित हो उठता हूँ अथवा मैं स्वयं ही निर्लज्ज हो जाऊं। यही कारण है अनायास ही क्रोध में आ जाना अब मेरी आदत ही बन गयी है एवं इसके परिणामस्वरूप कई बार बड़ी हानियाँ भी उठानी पडीं हैं। तापर्य यह है कि आवेश में आ कर किसी वस्तु को तोड़ देना, इत्यादि इत्यादि। हाँ एक बात अवश्य है कि मेरा यह क्रोधी स्वभाव अपने परिवार तक ही सीमित है। एकान्त या जब ईश्वर कृपा के मध्य होता हूँ तो चित्त को थोड़ा विश्राम व शान्ति मिल जाती है। अन्यथा कोई न कोई बात ऐसी उत्पन्न कर दी जाती है कि जिसके साथ समझौता करना मेरी प्रकृति के विपरीत होता है एवं जिसको न करना ही श्रेयस्कर होता है। ये

बातें अधिकतर ऐसे समय पर होतीं हैं कि जिस समय मैं कचहरी से वापस आया हुआ होता हूँ या किसी परिश्रम के फलस्वरूप थका हुआ होता हूँ।"

"बहुत शीघ्र ही व थोड़ी सी ही बात पर क्रोध में आ जाता हूँ किन्तु उसका आवेग धीमा होने पर हृदय में उसके चिन्ह शेष नहीं रह जाते और उस व्यक्ति के पैरों पड़ने की इच्छा होती है।स्वभाव ही अब क्रोधी बनता जा रहा है व उसके लिए कोई न कोई कारण ढूँढता रहता है। कुछ माह पूर्व यह स्थिति न थी जो अब है। चित्त में चिड़चिड़ापन पैदा हो गया है।"

मेरे द्वारा जो उत्तर उन्हें दिया गया था, उसका भी अवतरण यहाँ पर दिया जा रहा है। सम्भवतः उसके माध्यम से आपको भी दिशानिर्देश मिल सकें।

फतेहगढ़
27 नवम्बर 1929 [ईस्वी]

"जो हालत उरूज़ [प्रकट होना] और तरक़्क़ी मदारिज़ [पदों] की निःस्बत तहरीर किये हैं, वह अल्लाह मुबारक़ करें। वह 'अहंकार' नहीं है, बल्कि हिम्मत-अफ़ज़ां है। इसका शुक्राना अदा करना चाहिए, तो फ़िर 'अहंकार' नहीं रहेगा। अगर खुदा की तरफ़ मंसूबः [संकल्प] कर लिया जावे तो फिर गुरूर कहाँ, क्योंकि वह तो खुदा की तरफ़ से है। अपना उसमें कुछ भी नहीं।"

"ई स आदत बज़ोर बाजू नेस्त ;
ग़र न बख़्शद खुदाए बख्शंदह।"
[बेक़ैफ़ी की हालत अच्छी है और देर पा होती ।]

"परेशान किया जाना अच्छा है। घर इल्म और बर्दाश्त का स्कूल है। हमारे यहाँ इन्हीं बातों पर सब्र करना तप कहलाता है और जुमला अक्साम के तपों से यह बालातर है। बस बजाय गुस्सा या ग़म के ग़ैरत अख़्तियार करना चाहिए। ग़ैरत कहते है उस जज़्बा को, जिसमें दूसरों के कहने-सुनने और मलामत करने पर यह मालुम होता है, कि वाक़ई मेरा ही कसूर है और फ़िर ज़ब्त कर लेना पड़ता है औरों के वास्ते जंगल और तन्हाई गोशानशीनी तहम्मुल और बरदाश्त और दुनियाँ के चक-चक, बक-बक से रिहाई के अस्बाब हैं। और हमारे वास्ते, घर वालों, दोस्तों, दुनियाँ वालों की झिड़कियाँ, ताने, मलामतें, रियाज़त और चिल्लाकशी है। पस चिड़चिड़ापन दूर करें और सब्र अख़्तियार करें।"

“इन्शाअल्लाह इसके बाद तस्लीम और रज़ा भी आ जावेगी।"

“दुआ गो, राम चन्द्र”

"मात्रास्पर्शॉन्तु कौन्तेयु शीतोष्ण सुख दुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्य भारत।।"
[गीता 02/14]

हे कुन्तीपुत्र ! सर्दी, गर्मी और सुख-दुःख को देने वाले इन्द्रिय और विषयों के संयोग तो उत्पत्ति - विनाशशील और अनित्य हैं। इसलिए हे भारत, उनको तू सहन कर।

विषय और इन्द्रियों के संबंधों को "शीतोष्ण सुख दुःखदा" कह कर भगवान ने यह भाव दिखलाया है कि वे समस्त विषय ही इन्द्रियों के साथ संयोग होने पर शीत - उष्ण, राग - द्वेष, हर्ष - शोक, सुख-दुःख, अनुकूलता, प्रतिकूलता आदि समस्त द्वन्द्वों को उत्पन्न करने वाले हैं। उनमें नित्यत्व - बुद्धि होने से ही नाना प्रकार के विकारों की उत्पत्ति होती है, अतएव उनको अनित्य समझ कर उनके साथ तुम्हें किसी प्रकार भी विकारयुक्त नहीं होना चाहिए।

सुख देने वाले जो इन्द्रियों के विषयों के साथ संयोग है, वे क्षणभंगुर और अनित्य हैं, इसलिए उनमें वास्तविक सुख का लेशमात्र नहीं है। अतः तुम उनको सहन करो अर्थात उनको अनित्य समझ कर उनके आने-जाने में राग-द्वेष और हर्ष-शोक मत करो। बंधु-बांधवों का संयोग भी इसी में आ जाता है। क्योंकि अन्तःकरण और इन्द्रियों के द्वारा ही अन्य विषयों की भाँति उनके साथ संयोग-वियोग होता है। अतः भगवान् का आदेश है कि सभी प्रकार के संयोग-वियोगों के परिणामस्वरुप सुख-दुःखों को सहन करो।

मेरा एक छोटा सा घरौंदा है, छोटी सी दुनियाँ है। मेरे यहाँ नित्य नए-नए व एक से एक उच्चकोटि के भक्त आ कर मुझे दर्शन दे कर निहाल करते हैं। मेरा अलग ही एक छोटा सा संसार है, जिसे बसा कर मानों मुझे इस विराट ब्रहाण्ड में कार्य करती हुयी सम्पूर्ण प्रतिक्रियाओं का एक संक्षिप्त प्रकरण ही मिल गया हो, एक ही परिवार में त्रिगुणात्मक प्रकृति के भिन्न-

भिन्न खिलौने आ कर इकट्ठे हो गए हों। कोई आत्मायें पुत्ररूप में आ कर सत्वगुण की सुषमा बिखेर रहीं हों। कोई आत्मायें रजोगुण में लिपटी हुयी कन्याएँ बन कर आडम्बरप्रियता का प्रकाश बिखेर रहीं हों। कोई कोई आत्मा तमोगुण में समाच्छन्न हुयी आलस्य, प्रमाद, तन्द्रा, अज्ञान, अविवेक, गर्व, दम्भ, दर्प और अनास्था का तिमिरजाल फैलाने में प्रवीण हों। ऐसा लगता है कि मेरे प्रभु का यह प्रासाद मानों एक रंगमंच ही बन गया हो, जिसपर दसों रसों का आकर्षण अभिनय प्रतिक्षण चलता रहता हो।

जीवन में छः प्रकार के असुर या अंधकार हैं - काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और अहंकार। शान्त चित्त को ये अपने आक्रमण से अशान्त बना देते हैं। रस को बिगाड़ कर कुरस में बदल देते हैं। आनन्द को छीन कर दुःख का अनुभव कराते रहते हैं। असुरों का यह आक्रमण हमारे मन पर प्रायः होता ही रहता है। इनके आने का न कोई देश है न काल। ये तो हर समय सब जगह प्रगट हो जाते हैं।

भगवान के छः गुण ऐश्वर्य, वीर्य या कर्म-शक्ति, यश, श्रीलक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य, जो विष्णुपुराण में बताये गए हैं, इन छः असुरों को जीतने में सफ़ल हो सकते हैं।

देखिये, एक नट है। वह कभी राजा का, कभी चपरासी का, कभी ब्राह्मण का, तो कभी चाण्डाल का, यों अनेक वेष धारण करके अभिनय करता है। तथापि किसी भी वेष का अभिनय करते समय उसको अपने नट-स्वरुप का निश्चय थोड़ा भी नहीं छूटता। वह सब प्रकार से अपने स्वरुप में अच्युत ही रहता है।

यह भी देखिये कि एक गृहस्थ कितने सम्न्धों का निर्वाह करता है और कितने अधिक स्वाँग धारण करता है। वह किसी का चाचा है, किसी का मामा है, किसी का पिता है तो किसी का पति है और अपने सम्बन्धों के अनुरूप ही दिनभर व्यवहार करता है।

मैं भी ऐसा ही एक साधारण सा गृहस्थ हूँ। बड़ा ही साधारण सा घर व परिवार है मेरा। मेरे घर में मुझ से छोटे, प्रेम से मुझे 'लालाजी' कहते हैं। कुछ भी तो नहीं है मुझ में जिसे देख कर मुझे संत या सद्गुरु की श्रेणी में गिना जाय। किन्तु न जाने क्यों भ्रमित हो कर लोग मुझे 'महात्मा' समझने लगे हैं। मैं यों किसी भी सत्य या असत्य की गहराई में नहीं जाना चाहता। लगता है भगवत-कृपा की ही कोई चाल है कि मुझे एक संत होने का नाटक करना पड़ रहा है। इसी अभिनय के अन्तर्गत नित्य ही नए-नए महान भक्त आकर दर्शन देते हैं और कृतार्थ करते हैं, न जानें किस धोखे में मुझ अपात्र पर सतत ऐसी प्रीति की वर्षा की जा रही है। अनजाने ही

सही, मेरे प्रभु की ही कृपा, उन्हीं का अपार वात्सल्य व प्यार है जिसमें मैं स्नान कर रहा हूँ। इस उचित या अनुचित किन्तु निरे अप्रत्याशित से दुलार से मैं विमूढ़ सा हो रहा हूँ, जिसका कहीं ओर-छोर नहीं मिलता।

साधना की चरम ऊँचाइयों की ललक व ब्रह्मपद की चाह, इतना ही नहीं एक संत का बाना ले कर सँसार की हाट में उतरने के लिए भी मैं मचला एवं उसके लिए तुमसे हठ की, तो उसके लिए भी 'हाँ' कर दी उन्हीं प्रभु ने। अपने दुलार को दाँव पर लगा दिया कि दुनियाँ के आलोचक क्या कहेंगे, उन्होंने इस सम्बन्ध में भी कुछ सोचा होता ?

क्या ही अच्छा होता हमारी प्रीति को, हम दो ही जानते। हमारे प्यार का यह कोमल पौधा सँसार की तीक्ष्ण दृष्टि कैसे सहेगा ? मेरी ललक देख कर तुमने मुझे खुले बाज़ार में भेज ही दिया। अब सरे बाज़ार तालियाँ मिलेंगी या गालियाँ। खिलाड़ी का खेल तो तभी सराहा जाएगा जब गालियाँ उद्विग्न न करें व तालियाँ लुभा न सकें। प्रेम की चोट बड़ी करारी होती है। वही इसे जानता है जिसका ह्रदय प्रेम के वाणो से बिंधा हो। शब्दों में इसका वर्णन कोई करना भी चाहे तो क्या करे। मिलन की एक और झाँकी देखिये।

बुंदेलखण्ड से आये हुए व्यक्तियों में से एक हैं श्री भवानी शंकर जी, प्रेम की साकार मूर्ति। भक्ति व आराधना की श्रुतियाँ उनकी साधना से प्रवाहित होतीं हैं। बार-बार आना होता है उनका, और एक बार तो ऐसे आये कि मैं मोहित हो गया उनकी उस छटा पर, भावनाओं का स्वयं एक ज्वार बने हुए थे वह उस घड़ी।

उस सायँ फतेहगढ़ में तलैयालेन स्थित अपने निवास पर कुछ प्रेमी-भक्तों के मध्य बैठा मैं भगवत्-चर्चा में तल्लीन था। प्रभु-प्रेम सामीप्य का लाभ उठा रहा था। बड़ी ही विशेष सुखानुभूतियाँ थी उस क्षण की। प्रेम-मद का नशा अत्यन्त चढ़ा हुआ था। सौंदर्य की तेज ज्वाला भड़की हुयी थी। आनन्द का पारावार उमड़ रहा था। उसी दिव्य बेला में मुझे सूचना दी गयी कि श्री भवानीशंकर जी मुझ अकिंचन दास को कृतार्थ करने के लिए अपने कुछ प्रेमी भाइयों सहित झाँसी से उरई - कानपुर होते हुए फतेहगढ़ पद-यात्रा करते हुए आ रहे हैं। मेरे मन-प्राण जो अभी तक अन्तर की गहराइयों में डुबकियाँ लगा रहे थे, प्रेम-विभोर हो उठे, उनमें एक उफ़ान सा आने लगा। मुझे यों लगा मानों भक्तरूप में स्वयं भगवान आ रहे हैं। उनके रूप में जब स्वयं प्रभु आ रहे हैं तो रुका जाएगा मुझसे क्या ? नहीं। कभी नहीं। मैं भी उनके स्वागत के लिए जाऊँगा, जहाँ भी मिल जायँ वह मुझे। कुछ और दीवाने भी मेरे पीछे-पीछे हो लिए। जो जैसे थे वैसे ही उठ चले। पल झपकते हुए चल दिए। पता न चला कि कब फतेहगढ़ की बस्ती

पीछे छूट गयी और मैं दीवानावार 'नवदिया' में आ गया। यहीं दो प्रेमी प्रेम-मग्न हो मिले। एक से अनेक मिले। नहीं अनेक से अनेक मिले। यहीं मिलन-स्थल था। प्रेमाश्रुओं की वृष्टि भी यहीं हुयी। मिलन तो सर्वत्र ही हो रहा है - "सब घट हौं बिहरौं। सब घट मेरा साइयाँ, सूनी सेज न कोय।" आत्मा की कोई भी सेज सूनी नहीं है। वह सब में बिहर रहा है, रमण कर रहा है। सर्वत्र 'रास' छिड़ा हुआ है।

"ऐसे पियै जान न दीजै हो।
चलो री सखी ! मिलि राखिये, नैनन रस पीजै हो।
स्याम सलोनो साँवरो मुख देखत जी जै हो।।
जोई जोई भेष सौ हरि मिलैं सोइ कीजै हो।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर बड़ भागन रीझै हो।।"

यह छटा तो कुछ घड़ी की ही थी। आयी-गयी हुयी। किन्तु न जानें क्यों वह घड़ी, वह दृश्य, वह स्थान, वह स्थिति, कुछ ऐसी भा गयी कि चित्त में बार-बार उसके दर्शन करता हूँ। मेरी हार्दिक कामना है कि दिव्य-मिलन, प्रेमाश्रुओं से सिंचित यह मेरी साधना-स्थली मेरा तीर्थ-स्थल बन जाय, ब्रह्मज्ञान की उर्वरा-भूमि बन कर काकभुशुण्डिजी का आश्रम सिद्ध हो, मेरा मन-मानस यहाँ सदा सदा के लिए रम जाय।

नित्य प्रातः व सायँ इसी मिलन स्थल [नवदिया] तक टहलने आता हूँ, घण्टों एकान्त में बैठा रहता हूँ। यहाँ आम्र व बेर के कुञ्ज व नागफ़नी के झुरमुट बड़े ही रम्य लगते हैं। इन पंक्तियों को गुनगुनाया करता हूँ। बड़ी प्यारी लगती हैं।

"दमे वापसी बर सरे राह है। अज़ीज़ों, अब अल्लाह ही अल्लाह।
वादये वस्ल चू सबद नज़दीक़। आतशे शौक़ तेजतर गरदद।।"

डॉ श्रीकृष्ण व श्याम लाल से, जो मेरे पुत्रवत निकट हैं व जिन पर बड़ा भरोसा है मुझे, मैंने कह रक्खा है कि वे मेरे लिए एक गाय का प्रबन्ध कर दें जिससे मैं अन्न इत्यादि छोड़ कर मात्र दूध को ही अपना आहार बना लूँ, गाय की सेवा करूँ और महामिलन के इस स्थल 'नवदिया' में ही अब वास करूँ। यही मेरा नीड़ बन [nest] जाय।

"रहिये अब ऐसी जगह चल कर जहाँ कोई न हो।
हम सुख़न कोई न हो और हमजवां कोई न हो।।
बे दरो-दीवार का एक घर बनाना चाहिए।
कोई हम साया न हो और पासवाँ कोई न हो।।" *

*** संयोग की बात है कि श्री लालाजी महाराज की महासमाधि महा-मिलन के इस स्थल [के आस-पास लबे-सड़क] नगर महापालिका के प्लाट संख्या 01/114 मोहल्ला 'नवदिया' फतेगढ़ [उ0 प्र0] 209601 में बनी हुयी है।**

पुनः स्मरण हो आती है वह बात कि अपने हज़रत क़िब्ला को मैं अपनी करुण कहानी सुना रहा था। वह काफ़ी देर तक बड़े ध्यान से भाव-विभोर हुए सुनते रहे और विकल हो कर कहने लगे "पुत्तूलाल ! बन्द करो अब नहीं सुनी जाती तुम्हारी यह कहानी" कह नहीं सकता वह मेरी अधूरी

बात ही जो हज़रत क़िब्ला को सुना रहा था, सुनानी शेष रही और यह कहानी बन गयी। यों विचारों की उथल-पुथल में यह बात भी मन में आती है कि मेरी या अपनी कहानी कह कर मैं कोई भ्रान्ति तो उत्पन्न नहीं कर रहा हूँ। फ़िर यह भी ख़याल आता है कि मैं, मैं भी हूँ या नहीं। **अपने हुज़ूर के जलाल में मेरी हस्ती की कोई सूरत बाक़ी है भी या नहीं, यह मेरी कहानी है, या किसी और की। जो कुछ भी हो जिसकी हो, वह जाने। हाँ मेरी एक तमन्ना ज़रूर है कि काश 'वह' इसे सुन लेते -**

"कब वह सुनता है कहानी मेरी। और फ़िर वह भी जवानी मेरी।।
ख़लिश-ए-गम्ज़ा-ए-खूं-रेज़ न पूछ ; देख खूंनाबा-फ़िशानी मेरी।
क्या बयाँ कर के मिरा रोएगा यार ; मगर आशुफ़्ता-बयानी मेरी।
हूँ ज़-खुद रफ़्ता-ए-बैदा-ए-ख़याल ; भूल जाना है निशानी मेरी।
मुतकाबिल है मुक़ाबिल मेरा ; रूक गया देख रवानी मेरी।
क़द्र-ए-संग-ए-सर-ए-रह रखता हूँ ; सख़्त अर्ज़ा है गिरानी मेरी।
गर्द-बाद-ए-रह-ए-बेताबी हूँ ; सरसर-ए-शौक़ है बानी मेरी।
दहन उसका जो न मालूम हुआ ; खुल गयी हेच मदानी मेरी।
कर दिया ज़ोफ़ ने आजिज़ ग़ालिब ; नंग-ए-पीरी है जवानी मेरी।"

==========

'उत्तर दीप्ति'

मेरे परमपूज्य गुरुदेव; जिन्हें मैं "हुज़ूर महाराज" कह कर याद करता हूँ, और मेरे व उनके बीच के संबंधों का तार भी इसी एक छोटे - से शब्द विन्यास में निहित है। आप विश्वास कीजिये, व्याकरण के अंतर्गत, सम्बोधन के लिए एक आदरसूचक सर्वनाम, मात्र नहीं है - यह। उनकी सदा - सर्वदा विद्यमानता ही मेरे लिए "हुज़ूरी" है और वे मेरे हुज़ूर हैं। उन्होंने एक बार बड़े ही मार्मिक शब्दों में मुझसे फ़रमाया था - "बेटे! जैसे और जिस तरह भी हो, बुज़ुर्गाने - सिलसिला के इस मिशन को दुनियाँ के लोगों तक पहुँचा देना, जिससे दीन - दुखी व कमज़ोर लोगों के लिए भी रिफ़अत [उच्चता या उन्नति] और राहेनजात [मुक्तिपथ, मोक्षमार्ग] नसीब होती रहे।" हुज़ूर महाराज ने गुरुदक्षिणा - स्वरुप यह वचन भी लिया था "मालिक के नाम पर, जिस प्रकार उनकी ओर से निष्काम प्रेम और निःस्वार्थ भाव से जो क्रिया, छिपे तौर पर मेरे साथ की गयी थी, उसी चलन को मुझे भी बिना किसी भेद - भाव के दोहराना होगा। मैं अपने दैहिक जीवन काल के अब उत्तरार्ध में हूँ। इस पूरे काल में यह बात मुझे लगातार कचोटती रही है कि इस दिशा में मैं अभी कुछ भी नहीं कर पाया हूँ। इसका बहुत बड़ा कारण मेरी नौकरी व घर - गृहस्थी के कार्यों में व्यस्त रहना भी है। मैं मानता हूँ कि ये क्षमायोग्य नहीं है।

मैं पहले भी निवेदन कर चुका हूँ कि अभी तक मात्र ब्रह्मविद्या की शिक्षा-दीक्षा तक ही मैंने अपने आप को सीमित रखा हुआ था। जैसा कि दूसरे पंथ व सम्प्रदायों में होता है की सामाजिकता भी उससे जुड़ती चली जाती है और पन्थाइयों के आचार - व्यवहार व अनुशासन के निर्माण के कार्यक्रम भी साथ साथ चलते हैं। मैं अभी तक उस ओर अग्रसर नहीं हो पाया हूँ। बहुत देर से मुझे अनुभव हुआ कि जो कुछ भी मै कर पाया, उसके अतिरिक्त, कुछ और भी मुझे करना चाहिए था किन्तु जो मुझसे छूटता चला गया।

मेरे साथ चलने वालों की संख्या, बिना विराम बढ़ती चली गयी। इस बीच जब भी समय मिलता, लोग आते और यहां फतेहगढ़ में मेरे आवास पर इकट्ठा होते रहे। धीरे धीरे इन शिविरों की संख्या और उनका आकार बढ़ने लगा। वर्ष 1923 [ईस्वी] के आते आते लोगों के ये जमावड़े, बढ़ते बढ़ते उत्सवों का रूप ग्रहण करने लगे और इस प्रकार वर्ष 1925 [ईस्वी] के ईस्टर अवकाश में चार दिन का, पहला बड़ा और व्यवस्थित शिविर हुआ। सबसे आश्चर्य की

बात यह रही कि मुझे पता ही नहीं चला कि कब और कैसे इस आयोजन का नाम 'भण्डारा' पड़ गया । एक ऐसा अवसर था कि मुझे अब इस समाज को व्यवस्थित स्वरुप प्रदान करने की चिंता सताने लगी। वर्ष 1927 [ईस्वी] में कुछ नियम बनाये गए जिन्हे उसी वर्ष के भंडारे में 'सत्संगियों के कर्तव्य' शीर्षक से विधिवत प्रकाशित किया गया - परिशिष्ट [ख]। इन नियमों का अनुपालन अथवा कार्यान्वयन किस सीमा तक हो पाया, यह अलग बात रही। किन्तु यह चर्चा का विषय अवश्य बने और लोगों ने इन्हे पर्याप्त सीमा तक अपने जीवन में उतारने की कोशिश भी की। लोगों में इसके परिणामस्वरुप, क्या कुछ परिवर्तन दृष्टिगत हुए और क्या अपेक्षित थे, यह बात पीछे रह गयी; मेरे अंतर में एक बड़ा तूफ़ान उठकर खड़ा हो गया। वह यह था कि मेरे मालिक के भेजे हुए लोग जो मेरे सुपुर्द हैं, इनके आचरण और रहनी - सहनी में यदि थोड़ी सी भी त्रुटि या कमी रह गयी तो मुझे क्षमा नहीं किया जाएगा। मेरी करी-करायी साधना निष्फल हो जाएगी।

इसी क्रम में, वर्ष 1928 ईस्वी में सत्संग की व्यवस्था को पुनर्गठित करने के लिए एक फॉर्म का निर्माण किया गया, जिसको प्रत्येक सत्संगी भाई/बहन को आवश्यक रूप से भरना था। मैं स्वभाव से जहाँ एक ओर संकोची हूँ, वहीँ दूसरी ओर प्रयोग-वादी भी। अपनी स्वभावगत इस कमी के कारण मैं बार - बार असफल भी हुआ हूँ और कई बार अपने ही लोगों द्वारा अस्वीकृत भी किया गया हूँ। अब तो इस सब का आदी भी हो गया हूँ। संकोची होना कोई अवगुण नहीं है, किन्तु बहुधा अपने आप को, मैंने दब्बू और डरपोंक भी पाया है। हो सकता है यह मेरे स्वभाव का अनुवांशिक दोष हो। पूर्वलिखित रूप-रेखा को स्वयं प्रस्तुत करने के बजाय मैंने बाबू बलदेव प्रसाद दलेला 'वैद्य' के छोटे भाई चिरंजीव 'राम प्रसाद' नामक एक सत्संगी लड़के द्वारा उसको पढ़वाया; बग़ैर इस खुलासे के, कि मेरी ओर से था, जनसमुदाय के बीच इस आलेख को पढ़ा गया। उसके बाद, उस पर लोगों की जो प्रक्रिया सामने आयी, उसके लिए मैं सर्वथा तैयार न था। मेरे आशचर्य की सीमा उस समय छोटी पड़ गयी जब मैंने देखा कि मेरे सबसे अधिक, आगे-पीछे चलने वाले, जिनसे मुझे अनेक आशाएं थीं, और जिन्हें मैं 'मुरीद' के स्थान पर "मुराद" कह कर उनका अभिवादन किया करता था, वे ही विरोध - स्वरुप उठ कर खड़े हो गए। कहने लगे - "हम तो शुद्ध आध्यात्मिकता के लिए आते हैं, यह सब क्या तमाशा है। पहले से ही इतने अधिक धर्म और संप्रदाय हैं, एक नया खेल, एक नया धार्मिक संगठन और खड़ा कर देने का क्या अर्थ है?"

हो सकता है कि विचाराधीन आलेख की अंतर्वस्तु के बारे में, उन महानुभावों को कुछ सम्भ्रम

हो अथवा उसके बारे में उनको कोई बुनियादी जानकारी न हो, उसकी पृष्ठभूमि क्या है - उन्हें पता न हो अथवा उसको पढ़ने वाले से उनका कोई द्वेष हो या किसी अन्य पूर्वाग्रह से वे ग्रसित हों। सच्चाई क्या थी, उसकी तह में जाने के बजाय, विधाता की वैसी ही इच्छा समझ कर मैं शान्त हो गया और उन फॉर्म्स को, अपनी क्षमता के अनुसार, लगभग सभी साधको में वितरित करवा दिया गया । उन पर कृत कार्यवाही के अनुशीलन पर ज्ञात हुआ कि पूर्वोक्त बवण्डर में उक्त फॉर्म्स की वास्तविक रूप-रेखा अधिकतर व्यक्तियों की या तो उनकी समझ में नहीं आयी अथवा उसमें उनकी रूचि ही नहीं थी अतः अधिकतर फॉर्म्स या तो अधूरे पाए गए या उनमें दिए गए उत्तर ठीक-ठीक नहीं दिए गए थे। अपने संकोची-स्वभावगत अनेक कमियों के बावजूद भी मैंने अपने इरादे में किंचितमात्र भी बदलाव नहीं किया। उसी वर्ष 1928 ईस्वी के भण्डारे पर मैंने स्वयं एक लेख के माध्यम से इस [पूर्वलिखित] फॉर्म की मद-वार [item-wise] व्याख्या सभी उपस्थित जन-समुदाय के मध्य प्रस्तुत करके अपने कार्यक्रम को मूर्त-रूप देने का एक और प्रयास किया [परिशिष्ट-ग]।

इस सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि किसी भी धर्म का कोई संगठन न आज तक कभी हुआ है और न ही, हो सकना संभव है। किसी भी धर्म के संगठन को बनाने का मतलब है - धर्म को नष्ट करना। 'धर्म' तो नितांत वैयक्तिक बात है। संगठन या भीड़ से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। मेरे इस वक्तव्य का तात्पर्य है कि धर्म के अतिरिक्त सामाजिक, शैक्षणिक, नैतिक, सांस्कृतिक और दूसरे अनेक संगठन हो सकते हैं, किन्तु धर्म के नहीं। यह बात जान लेना आवश्यक है कि यदि किसी संगठन की बात चलती है तो वह धार्मिक नहीं होगा। उस संगठन में सम्मिलित हो जाने से कोई धार्मिक नहीं हो जाएगा।

दूसरे अन्य संगठन भी हो सकते हैं। मैं जिस रूप को सामने रखना चाहता हूँ वह जाग्रति का आह्वान है, किसी धर्म-विशेष का संगठन नहीं है। मैं किसी अन्य समाज या दूसरों की बात नहीं करता। मेरे चारों ओर एक छोटी सी जमात है, उसी समाज को केंद्र मान कर मैं यह बात कह सकता हूँ कि उसमे इतनी बीमारियाँ हैं, इतना उपद्रव है, इतनी कुरूपता है कि जो थोड़ा सा भी धार्मिक है, वह चुप-चाप इस कुरूपता, इस गन्दगी, इस मूर्खता और छिछोड़ेपन को सहन करने को तैयार नहीं हो सकता। जो धार्मिक है वह बर्दाश्त करने को तैयार नहीं होगा कि यह बेसुरापन और कुरूपता जीवित रहे और समाज गतिशील रहे। जिस किसी के जीवन में धर्म की थोड़ी सी भी किरण आयी है वह तो आमूल परिवर्तन चाहेगा।

आमूल परिवर्तन का अर्थ है - क्रान्ति। 'क्रान्ति' तो अकेले नहीं हो सकती। क्रान्ति के लिए तो संगठन चाहिए; क्योंकि जब हम कुछ करने चलते हैं, तो उसे रोकने वाली शक्तियाँ, संगठित हो

कर सामने आती हैं। उनके ख़िलाफ़ एक व्यक्ति या विचारक का क्या अर्थ हो सकता है; जो अशिष्ट है, ग़लत है, दूसरों को नुकसान पहुँचाने वाला है; सब के सब संगठित हैं और अच्छा व्यक्ति यह सोच कर कि 'संगठन' की क्या आवश्यकता है, वह चुपचाप बैठा रहे; मैं तो कहूँगा कि वह भी बुरे आदमियों का साथी है, गन्दगी को बढ़ावा देनें में वह भी सहयोगी है। अच्छे आदमी के पिछड़ जानें अथवा बुराई के दिन दूना, रात चार गुना पनपते जानें का यही मूल कारण है कि अच्छा आदमी, भाँति भाँति के बहाने बना कर, संगठित होने से कतराता रहता है।

किसी भी धार्मिक संगठन का मैं भी विरोध करता हूँ, किन्तु संगठन और उससे सम्बद्ध अनुशासन का मैं पक्षधर हूँ - इस भेद को समझ लेना आवश्यक है।

मैं यह कदापि नहीं कहता कि मैं जो कुछ भी कहता हूँ, उसे वैसा का वैसा करना प्रारम्भ कर दो। मैं अपने इस लेख के माध्यम से केवल इतना स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मेरी बात को सुनो, समझो और उस पर मनन करो, ध्यान दो। मेरी बात समझ लेने के लिए उसको मानना आवश्यक नहीं है। जहां तक बात विकास की है; मेरी बात को मानने से न तो आपका विकास होगा और न ही वह उससे रुकेगा। किन्तु किसी की भी बात को समझ लेने से विकास की संभावनाएं अवश्य बनतीं हैं। क्योंकि जितना आप समझने की कोशिश करते हैं, उतनी ही आपकी समझ विकसित होती है। किन्तु हम उत्सुक हैं - "मानने" अथवा "न मानने" को। क्योंकि समझने में श्रम करना पड़ता है जबकि मानने अथवा न मानने में श्रम की आवश्यकता नहीं पड़ती।

सामान्यतः हमारा हाल यह है कि हम मानसिक रूप से इतने आलसी हो गए हैं कि मन लगा कर या मन से कोई भी श्रम करना ही नहीं चाहते। यही कारण है कि आज "इज़्म" और वाद की भरमार है। भरमार दिखाई पड़ती है - 'गुरुओं' की और नित्य नयी आस्थाओं की। मैं पूरे विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि जिस दिन लोग मानसिक श्रम भी करने को तैयार हो जायेंगे उस दिन तमाम प्रकार के वाद, अनेकों प्रकार के 'गुरू' और उनसे जुडी हुई मोहकता सिकुड़ कर अपने अपने दरबों में क़ैद हो जायँगे। मैं देख रहा हूँ कि आज संसार में आर्थिक शोषण इतना प्रभावी नहीं है जितना कि मानसिक और आध्यात्मिक शोषण।

मेरे मित्रों ! मानसिक या आध्यात्मिक शोषण वह है कि जिसमें मैं सोचूँ और आप मान लें अथवा आप को ज़बरदस्ती मनवा दूँ। पहले मे, आप ने मेरा शोषण किया जब कि दूसरे मामले में मैंने आपका शोषण किया। धन का शोषण इतना भयावह नहीं है जितना कि मानसिक या आत्मिक। धन छीन लेने से किसी का कुछ नहीं बिगड़ता, वोह और अधिक धन कमा लेगा। किन्तु जब किसी व्यक्ति की आत्मा या सोंच छिन जाती है तब उसका सब कुछ छिन जाता है। आज सारा संसार जो आध्यात्मिक व मानसिक रूप से गुलामी की जंज़ीरों में जकड़ा हुआ है, उसका मूल कारण यह ही है कि आज का व्यक्ति मानसिक आलस्य अथवा 'मेन्टल लेथारजी' से बुरी तरह घिरा हुआ है।

एक नए समाज की संभावना की खोज के क्रम में मेरे द्वारा प्रस्तुत, आलेख, जो प्रिय राम प्रसाद से पढ़वाने और उसके प्रवर्तक [author] का नाम गुप्त रखने के परोक्ष में मेरा आशय केवल इतना ही था कि उसकी अंतर्वस्तु पर राजी होने अथवा उस पर सक्रिय व प्रभावी होने से पूर्व, उसको सुनने वाला, उस पर विचार करे और समझे, उसकी आत्मा व छिपे हुए सन्देश को पहचाने। वस्तुतः एक नए संगठन या आंदोलन को जन्म देने का मेरा कोई इरादा नहीं था। मैंने तो एक विचार-क्रांति की बात सामने रक्खी थी।

मैं देख रहा हूँ - समाज व्यवस्था, एक सिरे से दूसरे छोर तक बीमार है। उसमें आमूल - परिवर्तन की आवश्यकता है। यहाँ की व्यवस्था ही अनीति की जन्मदात्री है। मैं "धर्म" की बात नहीं कहता, मूल आवश्यकता तो नैतिकता और नैतिक - जीवन की है और यदि नैतिक -जीवन विकसित करना है तो हमें समाज की समस्त और मूलभूत - धारणा के बारे में नए सिरे से सोचना होगा। समाज में आमूल - क्रान्ति की आवश्यकता इस लिए है, कि अभी तक व्यक्ति को हम जिस ढाँचे में ढालते रहे हैं, वह ढांचा ही त्रुटिपूर्ण है, वह स्वयं ही अनेकों प्रकार की बीमारियाँ पैदा कर रहा है। बीमारियाँ, वह ढाँचा पैदा कर कर रहा है और हम किसी न किसी व्यक्ति को उसका कारण या हेतु बताते हैं। जब कि वह व्यक्ति स्वयं ही, वास्तव में, उस बीमारी का शिकार होता है अतः वह कैसे और क्यों उत्तरदायी हो सकता है। किन्तु विडम्बना इस बात की है कि गत कई हज़ार वर्षों से ऐसा ही होता चला आ रहा है।

सच्चाई यह भी है कि, चोर के पीछे, उसके चोर बनने का कारण उसकी निर्धनता है। पापी के पीछे उसके पापों का कारण उसकी दीन - हीनता है। मैं तो कहूँगा कि जब तक सँसार में दरिद्रता है, दीन-हीनता है, सच्चे अर्थों में किसी को भी नैतिक अथवा नीति संगत बनाये जाने की संभावना ही सरासर निराधार है; उस पर हमेशा अंकुश लगा रहेगा। सारे समाज का धन,

एक छोटे से दायरे में इकट्ठा हो और शेष दायरों से हम यह अपेक्षा करें कि लोग लोभी न हों, मोह से रहित हों, प्रतिस्पर्धा न करें, लालच न करें - कितना हास्यास्पद है यह सब? यह कैसे संभव हो सकता है? यह तो ठीक वैसा ही हुआ कि घर के एक कोने में अच्छे-अच्छे पकवानों व अन्य स्वादिष्ट व्यंजनों की नुमाइश लगी हो और असंख्य भूखे लोग इस घर के चारो ओर उपस्थित हों, उनकी नाक तक उन व्यंजनों की खुशबू पहुँच रही हो, उनकी आँखों तक भोजन की झलक पहुँच रही हो, वे अभी भी उसके लिए उतावले हों, भूख असह्य हो और हम उन्हें उपदेश दें - देखो ! भूल कर भी कभी भोजन की चेष्टा मत करना, उसका विचार भी अपने लोभी मन में न लाना, दूसरे के भोजन की तरफ देखना भी मत। वह पाप है, धर्म-विरुद्ध है।

इतना ही नहीं। मैं तो यह भी देख रहा हूँ कि परिवार सड़-गल रहे हैं। हम उसमें इतने दिनों से रह रहे हैं, हमें पता ही नहीं चला। वह सारा का सारा सड़ गया है। कोई दंपत्ति, कोई भी जोड़ा सुखी नहीं है। कोई पिता सुखी नहीं है, कोई बेटा सुखी नहीं है। कोई माँ, कोई गुरु, कोई शिष्य अथवा संबंधों की कोई भी इकाई, सुखी नहीं है, कोई भी पक्ष अपने प्रतिपक्ष से संतुष्ट व राजी नहीं है। क्यों? क्यों कि हमने कभी इन सम्बन्धो के बारे में अथवा उनकी अहमियत के बारे में सोंचा या विचारा ही नहीं।

ब्रह्मविद्या और अध्यात्म मेरा क्षेत्र है। धर्म पर मेरी दृष्टि है। इसका यह अर्थ नहीं कि जीवन के अन्य पहलुओं पर मैं नहीं सोचता। मैं सर्वप्रथम एक आदमी हूँ, एक गृहस्थ पुरुष हूँ। जिस समाज में मैं रहता हूँ, जिस देश में मैंने जन्म लिया, उसके प्रति क्या मेरा कोई दायित्व नहीं? मेरे परमपूज्य [अध्यात्म] दीक्षागुरु, हज़रत मौलाना शाह फ़ज़्ल अहमद खां साहिब [रहमत उल्ला अलैहि] नक़्शबन्दी मुजद्ददी मज़हरी [निवासी - रायपुर, कायमगंज जिला फर्रुखाबाद उत्तर प्रदेश] द्वारा दिया गया मेरे लिए यह आदेश "मिशन को दुनियाँ के लोगों तक पहुँचा देना" ही अब मेरा धर्म है। इसका अर्थ यह बिलकुल नहीं कि दुनियां के लोगों के नाम पर मैं 'भीड़' जमा कर लूँ और उस भीड़ की व्यवस्था का बहाना ले कर, पहले संस्था और उसके बाद एक नया 'गुट' व सम्प्रदाय, एक नया पंथ, मैं अस्तित्व में ले आऊं। उनके उद्देश्यों को आधार बना कर स्वयं उनकी पैरवी करूँ और शीघ्र ही उस समुदाय का मठाधीश बन बैठूँ और इसी क्रम में अपने बाद, अपने उत्तराधिकारी का चुनाव करके उसके नाम की घोषणा, अपने इसी पार्थिव शरीर के चलते, कर जाऊँ। मेरे आस पास एकत्रित अधिकाँश व्यक्ति इसी सब की अपेक्षा मुझसे रखते हैं। नहीं, हरगिज़ नहीं।

मेरी तो अपनी, अभी तक, यही सोच जीवित रही है कि जिस व्यक्ति के जीवन में धर्म और अध्यात्म के प्रकाश की एक छोटी सी भी किरण आयी है वह उस प्रकाश के सहारे, जीवन के

समस्त और समूचे पहलुओं को देखने में समर्थ हो जाता है। धर्म व ब्रह्मविद्या का दीपक हाँथ में हो तो हम जीवन की समस्त समस्याओं को देखने में समर्थ हो जाते हैं। अतः जीवन के प्रत्येक पहलू पर मेरी दृष्टि है। अब तक का समाज जिस प्रतिमान पर निर्मित हुआ है, वह नितांत अचेतन, ऐतिहासिक प्रक्रिया के सहारे निर्मित हुआ है, सचेष्ट रूप से, विचार करके समाज के किसी भी अंग का निर्माण अभी तक नहीं हो पाया है। अब आवश्यकता इस बात की है की हम सचेष्ट हो कर जीवन के एक एक पहलू पर पुनर्विचार करने की सोचें। सब कुछ बदला जा सकता है।

लाओत्से नामक एक विचारक को पढ़ने का मुझे अवसर मिला। उसने एक स्थान पर लिखा है कि लगभग ढाई हज़ार वर्ष के बारे में उसने अपने पूर्वजों से सुना था कि एक ऐसा समय था कि एक स्थान के दो गाँव के मध्य एक नदी बहती थी। नदी के दोनों और आबादी थी। दोनों ही गाँव के लोगों को परस्पर अस्तित्व में होने की जानकारी मात्र, कुत्ते ही स्रोत थे, जो रात के समय भौंकते थे। अर्थात दोनों ही ओर से कभी, नदी पार करके उस ओर जानें की, किसी ने भी कोशिश नहीं की थी। बड़े ही आश्चर्य की बात थी कि वे किस प्रकार के लोग थे कि पता लगाने नहीं गए। उस ओर के गाँव का। उनका कहना था - इसकी आवश्यकता ही कहाँ थी? वे तो अन्य न जानें कितनी ही बड़ी-बड़ी यात्रायें कर चुके थे। इतनी छोटी-छोटी यात्राओं और इन जगहों को देखने का क्या महत्व था? उनका तर्क था जिनको हीरे - जवाहरात मिल गए हैं, वे कंकड़ - पत्थर बीनते नहीं फिरते। अंत में उन गाँव वालो के लिए लाओत्से की ही प्रतिक्रिया अंकित की थी कि "यदि हीरे - जवाहरात न मिले तो वह जो बीनने की कमी रह जाती है वह कंकड़ - पत्थर भी बिनवा देती है।"

जैसा कि मैं समझ पाया हूँ कि यहाँ पर एक विमित्तीय [dimensional] अंतर आ गया है। एक जो यात्रा होती है, उसे हम ऊर्ध्वाधर [vertical] कह सकते हैं, जो ऊपर की ओर जाती है। दूसरी यात्रा है - समस्तरीय [horizontal] जो मुझसे आप की ओर ले जाती है, आप से मेरी ओर आती है। तल वही है, चाहें कानपुर में रहूँ या मुम्बई में अथवा हिमालय पर चला जाऊं, मैं वही रहूँगा और उसी तल पर रहूँगा। ऊंचाई लाने वाली यात्राएँ - संगीत या साहित्य के अंतर्गत कही जा सकती हैं, क्योँ कि ये बिलकुल ऊर्ध्वाधर यात्रायें हैं। ऐसी यात्राएँ आपको नहीं कहतीं कि आप, यहाँ जाओ, वहाँ जाओ। आप जहाँ हो, वहीं से ऊपर की ओर जाने का रास्ता है। वह रास्ता तो बंद हो गया, क्योंकि आप कहते हैं कि हम वहीं सुन लेंगे। मेरी बात अब संभवतः समझ गए होंगे।

हज़रत बहाउद्दीन नक़्शबन्द [रहमत उल्ला अलैहि] एक ऐसे सूफ़ी संत हुए हैं जिनके नाम पर मेरी गुरु परम्परा का नामकरण हुआ है। आप के पास एक व्यक्ति आया और कहने लगा - "मेरे पास सब कुछ है, धन है, दुनियाँ के एक से एक आराम पहुँचाने वाले साधन हैं, किन्तु उन सबके बावजूद आनन्द नहीं है। कृपया आप मुझे इस संसार का कोई ऐसा व्यक्ति बताइये जो सबसे अधिक आनन्द-सम्पन्न व संतुष्ट हो।" हज़रत ने फ़रमाया - "मैं एक आदमी को जानता हूँ, किन्तु वह बहुत दूर देश में रहता है। लम्बी यात्रा करनी होगी।" उस आदमी ने कहा - "सर्वसाधन मुझे सुलभ हैं, मैं कितनी भी लम्बी यात्रा पर जा सकता हूँ, दूरी की चिंता मुझे नहीं है।" प्रत्युत्तर में हज़रत ने फ़रमाया - "दूरी का प्रश्न नहीं है। ऊँचा जाना पड़ता है, ऊपर। दूर तो तुम जा सकते हो, ऊंचा जाना होगा।" अब वह आदमी कुछ चकराया - "दूर जाने का साधन मेरे पास उपलब्ध है। ऊंचा जाने का साधन, मेरे पास नहीं है। ऊंचा जाने से आपका क्या अभिप्राय है? बैलगाड़ी पर बैठ सकता हूँ, ऊँट पर बैठ सकता हूँ, घोड़े पर बैठ सकता हूँ, मेरे पास सब है, ये लम्बी से लम्बी दूरी तय करा सकते हैं। ऊंचा जाने का अर्थ मेरी समझ से बाहर की बात है।"

इस प्रकार जिज्ञासा करने पर तब हज़रत ने फ़रमाया - "दूरी तय कराने वाले प्रत्येक साधन में तुम सवार हो सकते हो। ऊंचाई पर ले जाने वाले के अंतर्गत तम्हे अपने आप को स्वयं से काटना पड़ेगा, क्यों कि तुम्हारा ही बहुत सा भार [अर्थात 'मैं'] तुम्हे नहीं जाने देता। उसे तुमको काट - काट कर गिरा देना पड़ेगा। जबकि दूर जाने वाली यात्रा पर तुम अखण्ड व अभग्न रह सकते हो, ऊँचा जाने वाली यात्रा में तुम अखण्डित नहीं रह पाओगे, क्योंकि तुम स्वयं बाधा हो।"

देखो ! यदि गहराई से विचार करो तो ऊँचे जानें में कोई अन्य बाधा नहीं है, "मैं" बाधा है और 'मैं" ने ही ईंट - पत्थर अपने चारों ओर बाँध रक्खे हैं, वे बाधा हैं। ये एक-एक करके काटने होते हैं। सच्ची बात यह है कि प्रत्येक व्यक्ति के अंतःकरण में लगातार एक असामन्जस्यता बनी रहती है। असँख्य स्तर हैं, असँख्य विचार हैं, असँख्य तनाव हैं। प्रत्येक व्यक्ति चारों ओर से अराजकता और अनेक प्रकार की अव्यवस्था से घिरा हुआ है। जहाँ तक सामंजस्य या संगति और असामंजस्य का प्रश्न है; बाहर से आपको कुछ न कुछ ऐसा करना होगा कि बाहर की लय व संगति को पा कर भीतर की लयहीनता है वह शान्त हो जाय। बाहर आप ऐसी स्थिति उत्पन्न करें कि वहाँ जो भीतर [आदमी] है, वह स्थिर हो जाय, एक क्षण को ही सही, उसे विश्राम मिले। अर्थात हमारा प्रयत्न यह हो कि, समय की कितनी ही छोटी इकाई के लिए ही भले क्यों न हो, वह बाहर की लयबद्धता, भीतर की लयहीनता को तार-तार कर समाप्त कर

दे। बस काम हो गया। प्रश्न, आपकी लयबद्धता का नहीं है, असली प्रश्न तो, जो सामने वाला है, उसके भीतर की लयहीनता का है। वह न जाने कितने वर्षों से खोज रहा था, हवा के एक ऐसे झोंके को जो भीतर की सारी उमस और समस्त उपद्रवों को शांत करा दे।

लाओत्से की बात से पूर्व बात चल रही थी - समाज की प्रत्येक इकाई के आमूल परिवर्तन की, नवनिर्माण की, सभी कुछ एक नए सिरे से। परिवर्तन लाना होगा, समाज की बीमार धारणाओं में बीमार धारणाएँ, जो समाज को अनेक वर्गों में विभाजित कराती हैं। आज जिस समाज में हमें रहना पड़ रहा है वह अनेकानेक वर्गों में बंटा हुआ है। आज कोई व्यक्ति जिस वर्ग से आता है वह उसके प्राणों में गहरे संस्कार बन कर बैठा हुआ है। उसके अन्तःकरण में बैठे उस वर्ग विशेष को निकालना होगा। वर्ग को निकालने की चेष्टा करनी होगी।

करना हो तो, भोग और सुख की बात करो। दुःख और दरिद्रता की बात किसी को भी नहीं सुहाती। पहला भाव, धनी या धनवान का है और बाद वाला - गरीब या गरीबी का है। गरीबी, जो चारों ओर व्याप्त है, दृष्टिगोचर है अर्थात साधनहीनता, उसे कोई नहीं चाहता। मैं भी नहीं चाहता। वह तो मिटनी ही चाहिए। लेकिन एक गरीबी और भी है, जो उन्हीं को मिलती है जो स्वेक्षा से उसका वरण करते हैं। किन्तु "ग़रीबी" को स्वेक्षा से कोई कब वरण करता है? जब वस्तुएँ अपने अनुभव से व्यर्थ और अनावश्यक समझ में आतीं हैं। धन की सच्चाई को जब कोई जान जाता है, धन व्यर्थ हो जाता है। यश की बावत कि उसका वास्तिविक अस्तित्व क्या है, जान लेने बाद, यश व्यर्थ प्रतीत होने लगता है। अर्थात जो भी जान लिया जाता है, जिस किसी की भी सच्चाई सामने आ जाती है वह ही व्यर्थ हो जाता है। उससे ऊपर उठ जाना चाहता है।

निर्धनता को लाँघ कर सम्पन्नता और पुनः एक और निर्धनता है। किन्तु इस बाद वाली निर्धनता की बात ही कुछ और है। ईशु ने कहा था - "धन्य है वे लोग जो सच में ग़रीब हैं।" इसका मतलब क्या है? जो ग़रीब या साधनहीन आज दिखाई पड़ते हैं, ईशु उन्हें ग़रीब नहीं मानते क्यों कि ये भीतर से अभी भी अमीर होने की कोशिश में हैं। उनकी आकाँक्षा अमीर बनने की है। उनका चित्त व उनकी लालसा रुपया पाने व उसके संचय की है। बड़े मकान के प्रति उनका आकर्षण है। वह भी वही करना चाहते हैं, जो दूसरे कर रहे हैं। नहीं कर पा रहे हैं इसलिए पीड़ित हैं, दुखी हैं सचमुच ग़रीब नहीं हैं। हम आज जिस समाज का निर्माण करना चाहते हैं वह समाज धनी, और अधिक धनी होना चाहिए, इतना धनी कि कोई भी व्यक्ति स्वेक्षा से गरीबी का आनन्द उठा सके। गरीब आदमी यदि अमीरी से न गुज़रे तो गरीबी कभी

इच्छा नहीं बन पाती, और जब तक गरीबी कभी सु-इच्छा न हो, तब तक सुख नहीं है। ऐसे समाज की स्थापना करनी होगी जहाँ व्यक्ति, स्वेच्छा से गरीबी को वरण करना चाहे।

समाज के अंतर्गत एक सबसे बड़ी धार्मिक प्रथा है; विवाह। इसके प्रति भी मैं कुछ कम चिंतित नहीं हूँ क्योंकि विवाह के नाम पर आज जो कुछ भी दिखाई पड़ रहा है, वह भारी कष्टों का पर्याय है। उसकी राह अनेक दुरूह दुःखों के दोराहे से संपन्न है। वह भोग नहीं दुःख है और सतत दुःख। हो सकता है जो व्यक्ति सुखी रहना चाहता है, इसी लिए विवाह नहीं करना चाहता। उसका यह बुद्धिमानी का लक्षण प्रतीत होता है।

मेरी गुरुपरम्परा के एक आधारभूत स्तम्भ संत हज़रत ख्वाज़ा बाक़ी बिल्ला साहिब [रहमत उल्ला अलैहि] जिनके माध्यम से नक्शबंदिया [सूफी] सिलसिले का भारत में प्रवेश हुआ। उनके संसमरणो के मध्य मुझे एक स्थान पर पढ़ने को मिला कि उनके अनुसार विवाह कर लेने के परिणामस्वरूप ब्रह्मविद्या की साधना में तीन प्रकार के अवरोध आते हैं - पहला कुप्रभाव मन पर जिसमे कामेच्छारूपी अनेक संकल्पों का जन्म होने लगता है, दूसरे कुप्रभाव के अंतर्गत ह्रदय व अंतःकरण की निर्मलता आहत होती है, अनेकों प्रकार के भ्रम उदय होते हैं और तीसरी हानि आत्मिक पटल पर होती है - आकर्षणशक्ति क्षीर्ण व हीन हो जाती है। मेरी अपनी निजी मान्यता भी यही है कि विवाह, सुख का पर्याय नहीं है। अभी तक तो विवाह, निश्चित तौर पर दुःख ही है। मैं चाहता हूँ कि एक ऐसे सँसार का निर्माण किया जाय, जहाँ विवाह निश्चित तौर पर सुख का साधन हो। किन्तु तब विवाह के सामाजिक रूप का, विवाह के संस्कार का 'पूरा-का-पूरा' रूपान्तरण कर देना होगा। रीति-रिवाज़, सामजिक भावनाएँ, उनके प्रति अभी तक की सोंच, सभी कुछ जड़ से खोद कर, बदल देना होगा, नयी पौध लगानी होगी।

मैं इस निष्कर्ष पर भी पहुँचा हूँ कि शादी की अनिवार्यता भी बदल देनी चाहिए। ब्रह्मचर्य की बात हो। उसका प्रचार हो, उसको बढ़ावा दिया जाय। इसके लिए यदि संभव हो तो 'ब्रह्मचारी' की परिभाषा ही बदल दी जाय। मेरे मानस में 'तन' से ब्रह्मचारी' नहीं, मन और आचरण से 'ब्रह्मचारी' विराजता है। और यदि ब्रह्मचारी हमारे समाज का अभिन्न और उपयोगी सदस्य बनता है तो उसे आजन्म ब्रह्मचारी रहने की शर्त से मुक्त भी करना होगा। वस्तुतः मैं जिस ब्रह्मचारी का पक्षधर हूँ वह एकान्तवासी हो। अपनी साधना के परिणामस्वरुप वह ऐसा शक्तिसम्पन्न हो जाय कि 'सेक्स' [कामवासना व रत्यात्मकता] की भावना से ऊपर उठ चुका हो। एकांतवासियों से मेरा आशय 'हरमिट्स' से है जो हरमिटेज में ही रहें। अपनी अध्यात्म

साधना के अतिरिक्त "धर्म के अनुसार नियोजन" भी उस संगठन का ही दायित्व हो जिसको मैं संस्थापित करना चाहता हूँ। यदि वे निरंतर साधना में लीन रहते हों तो उनकी दैनिक आवश्यकताओं का दायित्व भी उस संगठन का ही होगा। जिसकी बात चल रही है। ये एकांतवासी अखण्ड ब्रह्मचारी न रह कर जितेंद्रीय होना चाइये। आद्यतः मैंने इस योजना का श्रीगणेश, फतेहगढ़ स्थित उस मकान में ही जहाँ मैं रहता हूँ, प्रयोग के तौर पर व गुप्त रूप से कुछ उत्साही युवक - युवतिओं को साथ ले कर प्रारंभ भी कर दिया है। कुछ क्रांतिकारी स्वतंत्राता संग्राम सेनानी और अन्य हिन्दू, जैन, मुस्लमान सन्यासी व सन्यासिनें छुप-छुप कर मुझसे मिलते रहते हैं और उन्होंने मुझे आश्वस्त भी किया है कि जिस दिन उन्हें आवाज़ दे दूँ अपने-अपने पंथ छोड़ कर आ जायेंगे जो मेरी योजनाओं को अंगीकार कर उन्हें आगे बढ़ाने में सहायक ही नहीं उसके एक महत्वपूर्ण इकाई के रूप में कार्यरत होने को राजी हो गए हैं। सन्यास व ब्रह्मचर्य की अवधि पर भी कोई बाध्यता नहीं होगी। इसी प्रकार बहुत सी ऐसी बातें हैं जिन्हें मैं आमने - सामने प्रस्तुत कर पाने में, अपने आनुवांशिक संकोची स्वभाव के कारण असमर्थ था और, वैसे भी भाषण व व्याख्यान या मौखिक बयान के सीमाबन्धन की समस्या भी थी अतः यही कारण बने की मैंने लिख कर एक आलेख के माध्यम से वर्ष 1928 [ई0] में सत्संग के वार्षिक सम्मलेन में प्रस्तुत किया था। उसका जो परिणाम निकला, वह निवेदन कर ही चुका हूँ। लेकिन मैं आप को यह भी निवेदन कर दूँ कि 'क्रान्ति' का दूसरा नाम 'आग' है, जिसे एक अथवा कुछेक व्यक्तिओं द्वारा रोक पाना न कभी संभव हुआ है और न कभी आगे होगा। किन्तु पुनर्गठन का कार्य, जैसा कि मैं चाहता हूँ, वह मेरे दैहिक-जीवनकाल में संपन्न हो पाना तो दूर की बात है, मुझे उसका श्रीगणेश भी हो पाने में संदेह है। किन्तु निराश लेशमात्र भी नहीं हूँ और मैं पूर्णरूप से आश्वस्त हूँ कि आने वाले दो-तीन पीढ़ियों में ही मेरे पोतों-दर-पोतों में से कोई न कोई ऐसा अवश्य सामने आएगा जो इस अद्भुत क्रांति का अग्रदूत और कर्ता बनेगा। अपने श्री श्री गुरुदेव की क्षमता व उनकी अनुकम्पा पर मुझे भरोसा है वे ही उसे यथायोग्य शक्ति देंगे और उसके सर पर अपना वरद-हस्त रख कर उसे पूर्ण भी करेंगे।

मैं निराश नहीं हूँ। मेरी कोशिश जारी है और जारी रहेगी। मैं थक कर बैठे रहने का भी आदी नहीं हूँ। मैं नए से नया सोचता हूँ पर मेरी नज़र लक्ष्य से कभी नहीं हटती। मैं पुनः घोषणा करता हूँ अभी मैं हार नहीं गया हूँ। मानना यह भी नहीं चाहता कि आप या आप में से कोई दीवार हैं। मानने का अभी भी यह मन होता है कि आप मनुष्य हैं। और आपके भीतर भी एक विचारशील आत्मा है। आपकी सारी कोशिश के बावजूद भी आशा को जगाये रखता हूँ और यह

कोशिश करता हूँ कि शायद किसी दिन बात सुनायी पड़ जाय। लेकिन अभी तो उल्टा ही मालूम पड़ता है।

अब मुझे वह विचारक सच प्रतीत होता है जिसने लिखा है - "जीसस की हत्या उन लोगों ने नहीं की जिन्होंने उन्हें सूली पर लटकाया। जीसस की हत्या उन ईसाईओं ने की जो उनके अनुयायी हैं।" इसी क्रम में दूसरा विचारक कहता है - "सुकरात को उन्होंने नहीं मारा जिन लोगों ने सुकरात को जहर पिलाया था। सुकरात को वे लोग मार सकते हैं जो सुकरात के शिष्य होने का दावा करते हैं।"

सुकरात जब मरने के निकट था तो उसके एक मित्र क्रेटो ने उससे पूँछा - "हम आपको दफ़्नायेंगे कैसे? क्यों कि साँझ में आपको ज़ह्र [विष] दे दिया जाएगा।" उस पर सुकरात ने हँस कर कहा था - "देखो कैसी हास्यास्पद बात है; वे मेरे दुश्मन हैं जो मुझे मारने की कोशिश कर रहे हैं और ये मेरे मित्र हैं जो मुझे दफ़्नाने की कोशिश कर रहे हैं। ये मेरे कैसे मित्र हैं जो मुझसे पूँछते हैं, दफ़्नायेंगे कैसे।" बाद में सुकरात ने क्रेटो से बड़ी मज़ेदार बात कही थी, पता नहीं वह समझ पाया या नहीं। उसने कहा था "पागल क्रेटो, तुम दफ़्नाने की कोशिश करना, लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ, तुम सब दफ़्न हो जाओगे फ़िर भी मैं ज़िंदा रहूँगा। और अगर कोई तुम्हे याद भी रक्खेगा तो केवल इस लिए कि तुमने सुकरात से प्रश्न पूँछा था कि दफ़्नायेंगे कैसे।" और आज क्रेटो की बावत मात्र इतनी जानकारी मिलाती है कि उसने सुकरात से अमुक प्रश्न पूँछा था।

मेरे हज़रत क़िब्ला एक कहानी सुनाया करते थे। एक बार एक व्यक्ति को सत्य से साक्षात्कार हो गया। शैतान के शिष्यों को यह बात पता चल गयी। वे भागे-भागे अपने गुरु शैतान के पास गए और कहने लगे - "तुम यहाँ सो रहे हो, वहाँ एक व्यक्ति को सत्य के दर्शन हो चुके हैं। हमारी मुश्किल बढ़ जाएगी।" शैतान ने कहा - "घबड़ाओ मत, जा कर गाँव में यह समाचार सब को सुना दो कि अमुक व्यक्ति को सत्य से साक्षात्कार हो गया है, किसी को उसका अनुयायी बनना हो तो शीघ्रता करे।" शैतान के उन शिष्यों ने कहा - "इससे क्या लाभ होगा? उसका प्रचार क्यों करें?" शैतान ने कहा - "अरे मूर्खों! मेरा हज़ारों साल का अनुभव है कि यदि किसी को उसकी उपलब्धियों से विरत करना हो, उसे नीचे लाना हो, तो उसके आगे-पीछे अनुयायिओं की भीड़ इखट्टा कर दो। तुम जाओ और आस-पास के गाँव में डुगडुगी पिटवा दो कि जिस किसी को भी यदि गुरु चाहिए हो तो अमुक व्यक्ति सत्य को पा गया है। जितने मूर्ख होंगे वे भाग कर आस-पास इकठ्ठा हो जाएँगे और तुम जानते ही हो, एक बुद्धिमान व्यक्ति हज़ार मूढ़ों के मध्य क्या कर सकता है।" और यही हुआ भी। जितने भी भुद्धिहीन थे, वे सब इकट्ठा हो गए। वह आदमी बचाव के लिए भागने लगा। लेकिन उसे कौन बचाता? उसके उन शिष्यों ने

उसे कस कर पकड़ लिया। दुश्मन से आप बच सकते हैं, शिष्यों से कैसे बचेंगे? अतः आप फ़रमाते थे, अगर किसी को सत्य से साक्षात्कार हो जाय तो अनुयायिओं से सावधान रहना, शिष्यों से बचना। वे हमेशा तैयार रहते हैं, शैतान उन्हें सिखा पढ़ा कर भेजता है।

इस्लाम धर्म की बावत भी हुज़ूर महाराज फ़रमाते थे कि किसी भी व्यक्ति के पीर [गुरु] की हैसियत से शिष्य समुदाय अथवा अनुसरण के लिए क़ुरआन पाक अधिकृत नहीं करती। वस्तुतः इस्लाम की प्रजातान्त्रिक प्रवृत्ति सभी प्रकार पाप स्वीकार-पीठिका [confessional] और गुरु [व्यक्ति] पूजा के विरुद्ध है। किन्तु क़ुरआन पाक के कुछ उद्धरण प्रस्तुत किये जाते हैं जिनमें शिष्यत्त्व सम्बन्धी धर्मानुष्ठानओं के संकेत मिलते हैं। उदाहरणार्थ "ऐ मेरे सन्देशवाहक ! जो कोई भी तुम्हारे हाँथ में अपना हाँथ दे कर बैअत [Oath of allegiance] करे वह बैअत मेरे [परमात्मा के] हाँथ पर [लिए] होगी।"

किन्तु यहाँ जो मैं देख रहा हूँ वह कुछ और ही है। मेरे चारों ओर जो जमात इकट्ठी है, उसके बारे में अब मैं क्या कहूँ। मुझे हँसी आती है कि वहाँ सुकरात का तो एक ही मित्र था - क्रेटो, जो उससे पूँछने गया था कि दफ़्नायेंगे कैसे। यहाँ तो मेरे आगे पीछे, मेरे दर्जनों मित्र हैं जो अपने-अपनें ढँग से स्वयं को प्रस्तुत करते हैं और एकांत पा कर पूँछते हैं - "आप के बाद आपका उत्तराधिकारी कौन होगा?" अरे मेरे मूढ़ मित्रों मेरे पास ऐसा है ही क्या जो तुम्हें उत्तराधिकार में दे जाऊंगा। पितरों की जमीन - जायदाद कुछ मुझे दिखाई नहीं देती। और यदि हो भी तो उस पर पहला और क़ानूनी अधिकार बनाता है मेरे एक मात्र पुत्र - जगमोहन नारायण का। किन्तु उसके लिए भी अपनी कुल सम्पदा के तौर पर केवल 'इल्लत' [बीमारी], 'क़िल्लत' [गरीबी] और ज़िल्लत [बे-इज़्ज़ती], बस इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूँ कि माल-मथा के नाम पर मेरे पास एक झीनी कौड़ी भी नहीं है। हाँ, अचल संपत्ति के नाम पर मेरा एक मकान है। अभी तो मैं स्वयं अपने परिवार, जिसमें मेरी पत्नी, पुत्र-पुत्रियाँ व आने - जाने वाले सत्संगी मित्र व भाई बहनें रहते हैं। बाद में, यदि वह बना रहा, तो इस में मेरी अगली पीढ़ी की संतानें, मेरे पोते-परपोते रहेंगे।

मेरे पूर्वजों की रईसी और उनकी ज़मीन-ज़ायदाद की बड़ी चर्चा है। हाँ यह सच भी है कि मुग़लकालीन युग में मेरे पूर्वजों को ज़मीदारी में सैकड़ों गांव व चौधरी की उपाधि मिली थी। मेरा बचपन राजकुमारों जैसा रईसी ठाठ-बाट में बीता था। इस सब का सच भी किसी से छुपा नहीं है, बचपन बीत गया और युवा होते होते हम कहाँ से कहाँ आ गए, वह भी निवेदन कर चूका हूँ। मेरे पूज्यनीय पिताजी ने स्वर्गवासी होने से कुछ दिन पूर्व मुझे बताया था कि जो

धन-संपत्ति उत्तराधिकार में प्राप्त हुयी थी वह भोग-विलास के साधनों में, लड़ाई झगड़ों में व मुक़दमेबाज़ी में समाप्त हो गयी। अंत में उन्होंने बताया था कि खज़ाना [सोना, चांदी, हीरे, जवाहिरात इत्यादि] अकूत संपत्ति अभी भी शेष थी। किन्तु चूँकि उसका 'तिलिस्म' बनाया जा चुका था अतः वह उसमें अंकित हक़दार को ही मिलेगी। अतः उन्होंने उसके बारे में आवश्यक जानकारी विस्तार से दी थी कि कैसे उसको खोला जा सकेगा। और किस प्रकार उस संपत्ति के वास्तविक उत्तराधिकारी का नाम उद्घोषित हो पायेगा। उन्होंने यह भी बताया था कि हमारे पूर्वज श्री मंतोख राय, जो हमारे खानदान की वंशावली में मेरे पूज्य पिताजी [चौधरी हरबक़्श राय] से सात पीढ़ी ऊपर थे, उनके समय में इस तिलिस्म की रचना की गयी थी। मैं यह निवेदन कर चुका हूँ कि हम दोनों भाइयों का सँयुक्त परिवार है, सदस्यों की संख्या अधिक है और आय के स्रोत अति सीमित व न्यून हैं, अंततः जब गृहस्थी की गाड़ी के सुचारु रूप से चलने में कठिनाई आने लगी तब उस तिलिस्म और उसमें दफीनाः [गढ़ा हुआ खज़ाना] की सुधि आयी। पिताजी द्वारा दी गयी आवश्यक जानकारी और मित्रों के सहयोग से भोगावँ [जिला मैनपुरी उत्तर प्रदेश] में उस स्थान को खोजा गया। इस विद्या का जानकार एक तांत्रिक भी हम साथ ले गए थे। पर्याप्त गहरी खुदाई हो जाने के बाद सात फ़िट का एक वर्गाकार चबूतरा मिला। उसको भी खोद कर खोला गया। पर्याप्त श्रम के बाद खोदते-खोदते एक डेस्क हाँथ आयी। उसमे ताला लगा था। उसको तोड़ा गया। डेस्क को खोलते ही ऊपरी खाने में एक लिफ़ाफ़ा मिला व उसमे एक पत्र दृष्टिगत हुआ। उसके साथ ही नीचे के खानों की चाबियाँ थीं और आगे की विधि जानने हेतु निर्देश पुस्तिका भी मिली। ख़ज़ानें की वास्तविक स्थिति अन्यत्र कहीं थी। उसकी जानकारी के लिए कोई तान्त्रिक पूजा इत्यादि की जानी आवश्यक थी। उस लिफ़ाफ़े से निकाल कर पत्र खोला गया जो फारसी भाषा में लिखा था। लिखावट स्पष्ट थी जिसे पढ़ने में मुझे कोई कठिनाई नहीं हुई। मैं देख कर हैरान रह गया कि वह पत्र मुझे सम्बोधन किया गया था। उस समय के तान्त्रिकों की गणित कितनी अधिक उन्नत व विकसित थी तथा समय का गणन [calculation] की कैसी परिपक्व जानकारी उनको थी और अपने किये पर कितना दृढ़ विश्वास था, यह सब देख कर मैं अचम्भित भी था और प्रभावित भी। उस पत्र में सबसे पहले उस तिलस्म की दौलत का व्योरा था। उसके अनुसार [जिसका वर्णन मन, सेर, छटाँक में था] अधिक तर सोने की गिन्नियां व हीरे - जवाहरात थे। अनेक वेश-कीमती पत्थर भी थे। पत्र में उसका वर्णन विशेष तौर पर अंकित था। जो कि उस ख़ज़ानें का वास्तविक उत्तराधिकारी था, नाम नहीं था, अनेक संकेत थे। उदाहरणार्थ वह मेरे बेटे का बेटा होगा, उसका जन्म बीसवीं शताब्दी के मध्य से छः वर्ष पहले, उस वर्ष के दसवें महीने में होगा और वह अपने पिता की मृत्यु के ठीक दो माह पश्चात् होगा। उसकी देहराशि के बारे में अनेक

जानकारियाँ थी। किन्तु अंत में जो कुछ भी लिखा था उसे देख कर मैं काँप गया और सब अपने सामने जैसा का तैसा बन्द करा कर घर वापस आ गया और फिर दोबारा उस ख़ज़ाने की बावत कभी सोचा भी नहीं। उसी दिन स्वप्न में पूज्य गुरुदेव को देखा था। असामान्य रूप से वे मुझसे प्रसन्न थे : कहते थे "पुत्तूलाल [मैं राम चन्द्र] मुझे तुमसे ऐसी ही उम्मीद थी। अपने पोते को मिलने वाले जिस ख़ज़ानें को दुबारा दफ़्न करके छोड़ आये हो, उसकी कीमत का कई गुना तुम उसे दे जाओगे। तुम्हारी ज़ात से जो दौलत उसको मिलने वाली है, दुनियाँ उस पर रश्क़ करेगी। जो काम हम और तुम नहीं कर पाए वह काम उसकी ज़ात [वंश] से होगा। वह कभी किसी का मोहताज या कर्ज़दार नहीं होगा। ख्याल रहे कभी उसकी परवरिश में कमी न रखना। इन्शाअल्लाह; वह तुम्हारे खानदान का नाम रोशन करेगा। मेरी दुआएँ उसके लिए हमेशा ज़िंदा रहेंगी।"

बात जल्दी ही आयी गयी हुयी। मैं उसमे अटका नहीं। गुरुदेव के आशीर्वाद से मेरा काम कभी नहीं रुका। मैं चलता ही गया। पूज्य गुरुदेव हुज़ूर महाराज ने कभी मेरा साथ नहीं छोड़ा यही वजह थी कि मैं न तो कभी भटका और न ही दिशाहीनता ही कभी मार्ग में आयी। मिश्रित अथवा मिली-जुली सफ़लता पर मैंने कभी संतोष नहीं किया। किन्तु न तो मैं कभी निराश हुआ और न ही कभी पीछे मुड़ कर देखा।

मैं तो वास्तव में अपनी साधना में लीन और लक्ष्य की ओर बढ़ना चाहता था कि इसी बीच मेरे साथ, मेरे चारों ओर भीड़नुमा एक जमात इकट्ठी हो गयी। ये लोग अपने-अपने ढंग से मेरा अभिवादन करते, बहुत से दण्डवत हो कर भी। समझने वाले इन्हें मेरा शिष्य-समुदाय समझने लगे हैं। किन्तु मेरी दृष्टि में, अभी से ये स्वयं ही, गुरु तो कुछ महागुरु दिखाई पड़ते हैं। स्पष्ट है कि अपने-अपने काल व क्षेत्र में वे अपना मत चलाएंगे। बहुत सी संस्थाएं होंगी, अनेक सम्प्रदाय होंगे। सभी का नामकरण, मेरे नाम पर किया जाएगा। मुझे सब पता है। आप व्यर्थ ही चिंतित न हों क्योंकि मेरे निकट के शत-प्रति-शत व्यक्ति ऐसे नहीं हैं, उनमें से अनेक व्यक्ति निष्ठावान भी हैं, किन्तु बहुत कम संख्या में। वे भी इस महान क्रान्ति के अग्निपथ पर स्वयं [बिना सहारे के] चल पाने में असमर्थ हैं, कमज़ोर है।

समग्र क्रांति और समाज की प्रत्येक इकाई के आमूल परिवर्तन कर देने के उतावलेपन की आग मेरे सीने में धधक रही है। उसी का साक्षात स्वरुप मेरे हाथों में मशाल बन कर आया है और उसकी पराकाष्ठा मेरी आँखों से फ़ूट रही है। मुझे प्रतीक्षा है कतिपय उन हांथों की जिन्हे यह धधकती हुयी ज्वाला सौंप कर इस खामोशी से पर्दा कर जाऊँ कि आने वाले युग को इसकी भनक भी न हो कि 'राम चन्द्र' नाम का कोई व्यक्ति दुनियाँ में आया भी था।

परिवर्तन जो कि प्रकृति चाहती है - वह है आद्योपान्त नवीनीकरण। इस निमित्त मैं आपको आश्वस्त कर सकता हूँ। एक विशिष्ट प्रतिभासम्पन्न पुरुष जो कि कभी किसी जन्म में भारद्वाज ऋषि के नाम से लीलारत रहा है और वर्त्तमान समय में वह साधारण सूफ़ी के बाने में कार्यरत है। सच्चा मुसलमान है और उसका नाम 'नूरुलहुदा' है। अति गोपनीय तौर पर उसी कार्य में तल्लीन है जिसके लिए उसको धरती पर भेजा गया है और जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। हमारी सँयुक्ति की जानकारी बहुत थोड़े से कुछ विश्वासपात्र व्यक्तियों के अतरिक्त किसी को भी नहीं है। पिछले जितने भी जन्मों की जानकारी मुझे है प्रत्येक जन्म में ही उनकी दो पत्नियाँ, चार बेटियाँ और एक ही बेटा होता रहा है और वे सभी परिवार के सदस्य उनके अति विश्वासपात्र गोपनीय सहायक के तौर पर उनके साथ रहते हैं। इस जन्म में भी ग़ज़ाला और शबाना नामक दो पत्नियाँ हैं जो अतिसुन्दर व आकर्षक क़द काँठी वाली हैं। ये स्त्रियाँ बड़ी ही शालीन, निपुण और अनेक भाषाओं एवं अभिव्यक्ति में दक्ष हैं। ये दोनों ही इन्हें अकेला नहीं छोड़तीं, कभी भी नहीं। ब्रह्मविद्या व अध्यात्म में भी इनकी समुचित पहुँच व ऊँचाई, कई बार मेरे अनुभव में उजागर हुयी है।

गत दो वर्षों में हज़रत ख्वाजा नूरुलहुदा साहिब से चार बार लम्बी-लम्बी मुलाक़ातें हो चुकीं हैं जिसमें दो बार वे सपरिवार फतेहगढ़ भी आ चुके हैं। हमारा फतेहगढ़ स्थित घर उन्हें बहुत पसन्द आया। वे एक क्रान्तिकारी संत हैं और प्रकृति उनसे जो कार्य कराना चाहती है उसकी उन्हें भली भांति जानकारी है। उनका कहना है कि उनकी आध्यात्मिक उन्नति में, राम चन्द्र नामक यह सेवक बहुत ही कारगर तौर पर उनका सहायक ही नहीं, कई बार उनका पथप्रदर्शक भी सिद्ध हुआ है। वे इसका बहुत उपकार भी मानते हैं। मैं समझता हूँ यह उनका बड़प्पन और विनम्रता का प्रतीक है। यद्यपि वे एक सिद्ध पुरुष हैं, किन्तु स्वभाव से वे बहुत ही विनोदी और विनम्र हैं। अक्सर वे कहा करते हैं कि मरने में समय नष्ट नहीं करना चाहिए। लगातार काम करते रहना ही उनकी अभीप्सा है। लगन और मेहनत वे कभी नहीं छोड़ते।

जिस प्रकार नौकरियों में उत्तरदायी पदों पर कार्य करने वाले तब तक कार्यमुक्त नहीं किये जाते, जब तक कि उनके स्थान पर कार्य सम्पादन की समूचित व्यवस्था सुनिश्चित न हो जाय। ख्वाज़ा नूरुलहुदा साहिब ने पूरे पुरज़ोर लहज़े में मुझे भरोसा दिलाया हुआ है कि मैं [राम चन्द्र] कभी भी [कार्यमुक्त हो कर] वापस अपने प्रियतम की गोद में जा सकता हूँ और वे मेरे शेष बचे कार्य को पूरी तन्मयता और कर्तव्यपरायणता के साथ उसको अंजाम देंगे। उनके बयान पर मुझे लेशमात्र भी संदेह नहीं है।

मेरे परमपूज्य श्री गुरुदेव, मेरे हज़रत क़िब्ला द्वारा मुझे संकेत दिए गए हैं, मेरे इस नश्वर देह त्याग के लगभग तेरह वर्षों के बाद उस महामानव का जन्म होगा, जिसकी समस्त सृष्टि को प्रतीक्षा है। वे, जिनके पास आँखें हैं और अंतर्दृष्टि भी है, उसके कार्यविधान और उसके प्रभावों को देख व समझ सकेंगे। जैसा और जहाँ तक मैं देख पा रहा हूँ गौर वर्ण व आकार में अति सामान्य, बिलकुल मेरी ही क़द-काँठी व शक्लसूरत वाला और उसका कोई भी लक्षण ऐसा नहीं होगा जिससे किसी भी प्रकार का संदेह हो सके कि वह कोई विशिष्ट या असामान्य व्यक्ति हो सकता है। शारीरिक लक्षणों में से कुछ ही ऐसे होंगे जो यद्यपि ढँके रहेंगे और जिनको देख कर भी, अति उच्च कोटि के जानकार तान्त्रिक ही उसके अर्थों से परिचित हो पाएंगे। इन लक्षणों के अंतर्गत, पहला तो यह होगा कि उसके दोनों तलवों के अग्रभाग में अँगूठे के सन्निकट, स्पष्ट चक्र स्थित होंगे। ये चक्र इस बात के द्योतक होंगे कि व्यक्ति के पैरों तले लक्ष्मी का वास है। लक्ष्मी स्वयं उस पर आसक्त रहेंगी किन्तु वह उससे निर्लिप्त और अछूता रहेगा। उसका अपना जीवन-यापन कठिनाई से व निर्धनता में ही व्यतीत होगा किन्तु जिस किसी के भी पाले में वह चला जाएगा, वह उसे मालामाल कर देगा। इसी प्रकार उसके कुछ अन्य चिन्ह भी होंगे जिनकी जानकारी, उसकी सुरक्षा की दृष्टि से, यहाँ देना समीचीन नहीं प्रतीत होता, क्योंकि उनकी जानकारी उसके लिए खतरे की घंटी भी हो सकती है इसलिए उनको गुप्त रखना ही उचित होगा।

मेरे ही समस्त प्रजातिगत लक्षणों से युक्त स्वभाव वाला, मेरा वह प्रतिनिधि अपना समस्त जीवन गुमनामी में व्यतीत करेगा। 'इने-गिने' ['Numbered'] ही उसको समझ व पहचान पाएँगे। प्रकृति की व्यवस्था को समुचित कार्यगति में रखने के लिए ऐसे विशिष्ट पुरुष को शक्ति अपने केंद्र से सीधी प्राप्त होती है। योग में सर्वोच्च कोटि की अन्तरदृष्टि से संपन्न संत, जिनके पास मुक्त आत्माओं से ध्यान लगा कर बात करने की सुविकसित क्षमता है, सीधे उससे अंतःसम्पर्क स्थापित कर सकते हैं। जिस कार्य के हेतु उसका चुनाव किया गया है वह उसके उपयुक्त समस्त गुणों से संपन्न होगा और उसको पूरा करके वह चुपचाप निकल जाएगा। देखने वाले, कालान्तर में इन परिणामों को देखेंगे।

इस शताब्दी के अंत तक [संभवतः वर्ष 1999] कुछेक इसके सहायकों के अतिरिक्त किसी को कानोंकान यह भनक भी नहीं हो पाएगी कि ख्वाजा नूरुलहुदा नाम के सूफी संत का पुनर्जन्म हो चुका है किन्तु कुछ ही वर्षों में अर्थात मेरी गणना के अनुसार आगामी शताब्दी के प्रथम दशक के मध्य तक, संसार के चोटी के तांत्रिकों के मध्य, इस समाचार की पुष्टि हो चुकी होगी

और परिणामतः उनके अधिष्ठाताओं में से कोई एक होगा जो अपनी योग माया के माध्यम से इस ज्ञानातीत महामानव के प्रति समस्त संदेहों का निवारण भी कर लेगा कि इस साधारण सी देहराशि के भीतर की आत्मा, उनके लिए कितनी अमुलीनिधि सिद्ध हो सकती है। प्रकृति द्वारा स्वचालित घटना क्रम के अंतर्गत यह भी घटित हो सकता है कि इस विशिष्ट पुरुष की आत्मा को, वश में करके, वे अपने ढंग से उसका दुरूपयोग भी करना चाहें।

आमूल परिवर्तन हेतु मेरा प्रतिनिधि-वंशज, जिसे मैं एक "विशिष्ट पुरुष" कह कर उसका प्रकाशन करना चाहता हूँ, वह अनेक पारलौकिक शक्तियों से संपन्न होगा अतः उन अविवेकी तांत्रिकों द्वारा, उस पर कितने भी प्रहार क्यों न किये जायँ वे कामयाब नहीं हो पाएंगे। गुरुजनों द्वारा निर्दिष्ट संकेत है कि माया रंजित इंद्रजाल व अन्य तंत्र विद्याओं में दीक्षित योगनियाँ, जो इस विशिष्ट पुरुष को पतित व क्षत कर देने हेतु भेजी जाएंगी, नाकामयाब और निराश हो कर, कालांतर में उसकी शिष्याएँ बन कर चौकीदारी करेंगी और ब्रह्मविद्या का अग्रवर्ती व उन्नत ज्ञान अर्जित करेंगी। क्योंकि यह विशिष्ट पुरुष, सिद्ध जितेन्द्रिय भी होगा। इसके अतिरिक्त इसकी दो पत्नियां व चार पुत्रियों में से एक पत्नी और दो पुत्रियां साधारण देहधारिणी न हो कर दिव्य व इक्षादेहधारी स्त्रियाँ होंगी जो हर हाल में निरंतर उसके साथ रहेंगी व प्रत्येक मुसीबत व परीक्षा की घड़ी में इसकी सहायक व रक्षक सिद्ध होंगी। अतः मुझे विश्वास है कि मेरे देह त्यागने के बाद, मेरे गुरुजनों का शेष कार्य जो मेरे जीवनकाल में मुझसे न हो पाया वह मेरे [उपरोक्त प्रकार से निर्दिष्ट] उत्तरसाधक के माध्यम से पूर्णता को प्राप्त होगा। इस दिशा में पुनः निवेदन है कि कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण स्वभाव का है और परिवर्तन अवश्यम्भावी है, इसके पश्चात् संसार अपने वांछित स्वरुप में निखर कर सामने आएगा। वह समय अब बहुत दूर नहीं है जब उसके आदेशांतर्गत प्रकृति की विविध शक्तियां, उसके भूमि तैयार कर लेने के पश्चात्, उसके पथप्रदर्शन में कार्य करना आरम्भ कर देंगीं। वे सभी प्रतीक्षरत हैं कि कब उन्हें आवाज़ दी जाय।

==========

परिशिष्ट [क]

'कम्बलधारी अवधूत संत'

[एक तत्व-विवेचनात्मक अध्यन]

'कंबलधारी-मज्जूब' ; जिसके बारे में आम अवधारणा है, वह एक मुस्लिम फ़कीर थे। एक अध्ययन के स्रोत के अनुसार, वह शायद "मुस्लिम फ़कीर" होने के बजाय एक रोज़िक्रूशन था। रोज़िक्रूशन समाज के व्यक्ति 'गुह्यविद्या' में प्रवीण होते हैं, जो कि पहले-पहल 17 वीं शताब्दी की शुरुआत में इतिहासकारों की जानकारी में आये।

यह आम तौर पर रोज़ क्रॉस के प्रतीक के साथ जुड़ा हुआ है, जो कि "क्राफ्ट" या "ब्लू लॉज" फ्रीमेसोनरी से परे कुछ अनुष्ठानों में भी पाया जाता है। Rosicrucian ऑर्डर पहले और कई आधुनिक Rosicrucian को आंतरिक दुनिया के आदेश के रूप में देखा जाता है, जिसमें महान 'दक्ष' [Adepts] शामिल हैं। जब मनुष्यों की तुलना की जाती है, तो इन विशेषणों की चेतना डिमॉडोड्स की तरह होती है। इस "कॉलेज ऑफ इनविजिबल" को स्थायी रूप से रोसिक्रीकियन आंदोलन के विकास के पीछे स्रोत के रूप में माना जाता है।

Freemasonry एक विश्वव्यापी भ्रातृ संगठन है। सदस्यों को एक नैतिक और आध्यात्मिक प्रकृति दोनों के साझा आदर्शों के साथ और उसकी अधिकांश शाखाओं में, परमात्मा में विश्वास की संवैधानिक घोषणा द्वारा एक साथ शामिल किया जाता है। फ्रेमासोनरी एक गूढ़ समाज है, जिसमें इसके आंतरिक कार्यों के कुछ पहलुओं को आम तौर पर जनता के सामने प्रकट नहीं किया जाता है, लेकिन यह आम तौर पर समझ में आने वाली प्रणाली नहीं है।

ज्ञानवाद विभिन्न रहस्यमय दार्शनिक धर्मों, संप्रदायों और स्कूलों के लिए एक शब्द है जो भूमध्यसागरीय के आसपास कॉमन एरा की पहली कुछ शताब्दियों में सक्रिय थे और मध्य

एशिया में फैले हुए थे। ये प्रणालियाँ विशेष रूप से जीवन के केंद्रीय लक्ष्य के रूप में विशेष ज्ञान (सूक्ति) की खोज की सलाह देती हैं। वे आमतौर पर प्रकाश और अंधेरे की प्रतिस्पर्धी ताकतों के बीच द्वंद्वात्मक संघर्ष के रूप में सृजन को चित्रित करते हैं, और भौतिक क्षेत्र के बीच एक चिह्नित विभाजन को प्रस्तुत करते हैं, जिसे आमतौर पर दुर्भावनापूर्ण ताकतों के शासन के रूप में दर्शाया जाता है, और उच्च आध्यात्मिक क्षेत्र से विभाजित किया जाता है। परिणामस्वरूप ये लक्षण, द्वैतवाद, एंटीकोस्मिज़्म और शरीर-द्वेष कभी-कभी ज्ञानवाद के भीतर मौजूद होते हैं। हालांकि, इसमें शामिल परंपराओं में विविधता, सूक्ष्मता और जटिलता है।

सिस्टर इरीना ट्वीडी, [Irina Tweedi], महात्मा राधामोहन अधौलिया की एक अनुयायी शिष्यों में से एक, ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'डॉटर ऑफ फायर' [Daughter Of Fire] में उद्धृत किया है, जो ऊपर दिए गए निष्कर्षों के समान है; “नकुशबंदिया परंपरा", इस्लाम के पैगंबर से प्रारम्भ होती है। लेकिन सूफी पैगंबर से पहले भी थे। सूफ़ीवाद हमेशा से था; यह प्राचीन ज्ञान है। पैगंबर से पहले केवल उन्हें "सूफ़ी" नहीं कहा जाता था। उनकी मृत्यु के कुछ शताब्दियों बाद ही उन्हें सूफ़ी कहा जाना प्रारम्भ हुआ था। बहुत पहले, वे "कंबल पोश" (कंबल पहनने वाले) कहे जाने वाले संप्रदाय थे, और वे हर पैगंबर के पास गए। एक परंपरा चली गई कि वे यीशु के पास भी गए। कोई उन्हें संतुष्ट नहीं कर सका। प्रत्येक पैगंबर ने उनसे कहा, यह या वह करने के लिए, और वे संतुष्ट नहीं थे। एक बार हज़रत मोहम्मद ने कहा था : कई कम्बल पॉश आदमी आ रहे हैं, और वे इतने दिनों में यहाँ पहुँचेंगे और अब वही क्षण वे यहाँ हैं “। वे आए जब उन्होंने कहा था, जिस दिन उन्होंने कहा था। और जब वे उसके साथ थे, तो उसने केवल उन्हें देखा, बिना कोई शब्द बोले। वे तब पूरी तरह से संतुष्ट थे ”। पुस्तक में दिए गए वृत्तान्त के अनुसार उन्होंने आगे कहा: “हां, ऐसा था ; यह सही है। हर पैगंबर ने उन्हें बताया, यह या वह। स्वाभाविक रूप से वे संतुष्ट नहीं थे। लेकिन जब प्यार पैदा होता है, तो क्या असंतोष हो सकता है? तो वे चले गए, पूरी तरह से संतुष्ट। पूरी सच्चाई नहीं। ” एक और दिन वह फिर से स्पष्ट कर रहा था: “पहले ध्वनि है, फिर प्रकाश और उसके बाद प्रेम। ध्वनि अकाश (ईथर) है। चर्चा के दौरान कुछ बार कुछ छुपाया जाता है, न कि पूरी सच्चाई बताई जाती है ”।

अब, शायद, "कम्बलधारी-मज़्ज़ूब" द्वारा अभियाचित "मछली" के रहस्य को स्पष्ट करने के लिए सहायक कारण और इसकी अनुपलब्धता की स्थिति में, वह वापस चला जाएगा। इस जिज्ञासा को शांत करने के लिए अपनाया गया साधन, जानने के लिए हमें, बहुत पीछे के इतिहास को साझा करके, इना [Ina] , पश्चिम सेक्सॉन्स [जर्मनी] के राजा से संबंधित - क्वीन एलिजाबेथ के समय में पोप समर्थकों [Papists] को सम्मानित किया जाता था। इसलिए, नीतिवचन वाक्यांश, वह एक ईमानदार आदमी है, और मछली नहीं खाता है; यह स्पष्ट करने के लिए कि वह सरकार का मित्र है और प्रोटेस्टेंट है। एक धार्मिक खाते में खाये वाली मछली, फिर पॉपरी [धर्माध्यक्षता] का ऐसा बिल्ला [badge] लगाया जाता है, कि जब संसद के कार्यों के लिए एक मौसम का आनंद लिया जाता है, तो मछली शहरों के प्रोत्साहन के लिए, कारण घोषित करना आवश्यक समझा गया; इसे सेसिल व्रत [Cecil Vrat] कहा जाता था। ”- वार्बर्टऑन।

वारबटन ने जिस अधिनियम का उल्लेख किया वह एलिजाबेथ के पांचवें वर्ष, 1562, कैप में पारित एक क़ानून था। वी। "नौसेना के रखरखाव के लिए पॉलिटिक को छूना," संप्रदाय। -XIV.- XXIII। इस अधिनियम के पंद्रहवें खंड में यह प्रावधान किया गया है कि कोई भी व्यक्ति सामान्य मछली-दिनों में मांस खाता है,
"हर बार जब वह या वे अपराध करेंगे, तो तीन पाउंड का त्याग करना होगा; या जमानत या मुख्य आश्चर्य के बिना तीन महीने के करीब कारावास भुगतना पड़ता है ”, यह संभावना है कि अधिनियम में सबसे बड़ी आपत्ति संप्रदाय XIV में आदेश था। : - "यह सेंट माइकल द आर्कहेल की दावत से, हमारे भगवान भगवान 1514 के वर्ष में, प्रत्येक बुधवार को पूरे वर्ष में हर हफ्ते, जो देर से कानूनों या इस क्षेत्र के रीति-रिवाजों द्वारा नहीं किया गया है, का उपयोग किया गया और मनाया गया। एक मछली-दिवस, यहाँ मनाया और रखे जाने के बाद होगा, जैसा कि हर सप्ताह में शनिवार होना चाहिए या होना चाहिए ”।

[The Act to which Warburton refers was a statute passed in the fifth year of Elizabeth, 1562, cap. V. “touching Politick constitutions for the maintenance of the Navy,” Sect. -XIV.- XXIII. The fifteenth section of this Act provides, that any person eating flesh on the usual fish-days,
“ shall forfeit three Pound for for every time he or they shall offend; or else suffer three months close imprisonment without bail or mainprise”, It is

probable that the greatest objection to the Act was the order in sect XIV. :- “That from the feast of St. Michael the Archangel, in the year of our Lord god 1514, every Wednesday in every week throughout the whole year, which heretofore hath not by late laws or customs of this realm been used and observed as a Fish-day, shall be here after observed and kept, as the Saturdays in every week be or ought to be”.]

==========

परिशिष्ट [ख]

सत्संगियों के कर्तव्य

नीचे लिखे हुए नियम ख़ालिस-सत्संगियों के वास्ते लिखे जाते हैं। ढुलमुल यक़ीन रखने वालों के लिए नहीं।

[01] इन सत्संगियों का पूरा विश्वास परमात्मा ही पर होना चाहिए। जिस तरह किसी आदमी को किसी चीज़ की तलाश है लेकिन हर जगह माँगने पर भी कोई आदमी उसको वह चीज़ न देवे तो वह निराश हो कर बैठ रहता है, इसी तरह वह हर एक भाई-बंधु, रिश्तेदार, दोस्त, अफ़सर, मातहत और राजा आदि सबसे निराश होकर रहे। यदि कोई उसकी सहायता कर देवे तो वह सहायता परमात्मा की तरफ़ से ख़्याल करे और यह समझे कि परमात्मा ने उसके दिल में, जिसके ज़रिये से मदद मिली है, यह बात दाल दी है कि वह इस तरह मदद कर रहा है। अतः उसको ईश्वर का धन्यवाद् देना चाहिए और उस आदमी का भी दिल से, और जवानी [verbally] कृतज्ञ होना चाहिए, क्योंकि उसने ऐसे हुक्म को जो उसको ईश्वर ने दिया, मन्ज़ूर किया और आज्ञा-पालन की।

[02] हर अपने बड़े की इज़्ज़त व ताज़ीम [respect] करता रहे और अपने से छोटों के लिए प्यार और उसकी ज़रूरतों को यथाशक्ति पूरा करने की कोशिश करें और उसके क़सूर [fault (of omission or commission) error, shortcoming] से चश्मपोशी [नज़रअंदाज़]। अपने बराबर वालों के साथ मोहब्बत, हमदर्दी और जायज़ इमदाद। जो लोग मुख़ालिफ़त [विरोध] पर बिलावजह आमादा रहें उनसे बचाव और बेपरवाही, और इस तरह अपने आप को उनसे अलहदा रखने की कोशिश करनी चाहिए, जिस तरह कि दुनियाँदार अपने क़र्ज़ख़्वाह से घबराता है या कंजूस अपना रुपया ख़र्च होने की जगह से, लकिन अगर वे मदद चाहें तो उनका काम कर देंना चाहिए और फिर अलग भाग जाना चाहिए। नफ़रत और नुक़सान पहुँचाने और बदला लेने की कोशिश हरग़िज़ नहीं करना चाहिए।

[03] हर-एक आदमी के ऐब को हमेशा छुपाना चाहिए और किसी का भेद अगर मालूम है तो बिना उसकी इजाज़त कभी कहीं ज़ाहिर न करना चाहिए।

[04] अपने कसूर को फ़ौरन मान लेना चाहिए, हठ और ज़िद न करना चाहिए। नुक़्ताचीनी की नज़र से बचते रहना चाहिए। अपना ऐब देखना चाहिए। दूसरों के ऐब की तरफ़ अगर नज़र जाती है तो उस ऐब से खुद सबक़ लेना चाहिए।

[05] किसी के ऐब की बुराई ज़ुबान से नहीं करनी चाहिये, मुमकिन है वही ऐब किसी वक़्त तुम में भी आ जावे ; किसी को बिना जाँच-पड़ताल के दोष नहीं देना चाहिए। यदि रिश्तेदार-खास या अपना लड़का तक बद्चलन हो तो उसका बेजा साथ नहीं देना चाहिए। वर्ना उसको दुबारा करने की शह और मदद मिलेगी। अगर समझाने से न माने तो उसको छोड़ कर अलग हो जाना चाहिए।

[06] बेइज़्ज़ती और बुराई, बुरे चाल-चलन और व्यवहार से होती है। झूठा वायदा करने से बेइज़्ज़ती होती है।

[07] क़र्ज़ लेना सबसे बुरा है, मगर निहायत ज़रूरत के वक़्त लिया जा सकता है। ज़रूरत का मौका सोचने और समझने से मालुम हो सकता है। जो क़र्ज़ नुमायश की ग़र्ज़ से लिया जाता है, उसका अदा [due payment ; as of a debt etc] होना कठिन हो जाता है । अगर मुसीबत और खाने-पीने या लड़की की शादी या अकाल वग़ैरह में लिया जाता है और नियत ठीक रखता है तो ईश्वर उसकी मदद करता है और कभी-न-कभी अदा हो ही जाता है। क़र्ज़ख़्वाह [Debtor] का सामना हमेशा करना चाहिए। मुहँ-छिपाना [to hide the face from] मना है।

[08] नौकर से वह काम लेना चाहिए जिसको तुम करने से बिलकुल मजबूर हो। नौकर बतौर इम्दाद [asststance] के है, न कि ऐशपरस्ती [luxury] का साधन।

[09] मज़दूर की मज़दूरी फ़ौरन अदा कर दो। हीला-हवाला [trickery] करना बड़ी बद-अख़लाक़ी है।

[10] अपने बच्चों को धार्मिक तालीम ज़रूर देना चाहिए।

[11] अपनी बीबी [wife] को किसी तरह हम-ख़याल [like-minded] बनाने की कोशिश करनी चाहिए।

[12] जहाँ शराब और नशा के साथ नाच-रंग की महफ़िल हो, वहाँ यथा-शक्ति शामिल होने से परहेज़ करना चाहिए और अगर मजबूरन शरीक़ होना पड़े तो इस तरह शरीक़ हों जिस तरह 'सण्डास' [latrine] में वक़्त-ज़रूरत जाना पड़ता है।

[13] गाने के सुनने का अवसर अगर सामने आ जावे तो ऐसा परहेज़ न करें कि लोग ताड़ [perceptive] जावें, कि भागते हैं और रगवत भी न करें और दिल उसमें न लगावें और उसमें आनन्द न लें।

[14] अग़र रिश्तेदार और सम्बन्धी ऐसे कामों को करने पर मजबूर करें जिनके करने से धर्म नष्ट हुआ जाता है तो रिश्ते को, अगर ज़रूरत हो, तोड़ दें। क्योंकि कोई रिश्तेदार, दोस्त और अज़ीज़ वक़्त मुसीबत में मदद तो करता नहीं है और मालदार भी होता है तो भी एक -कौड़ी क़र्ज़ नहीं देता, बल्कि नुक़्ता-चीनी [to carp] और ताना-जनी [ridicule] को हर वक़्त तैयार रहते हैं। नहीं मालूम की फ़िर क्यों उनसे बेज़ा उम्मीदें बाँध कर अपने आप को सत्यानाश लगाते हैं।

सारांश यह है कि 'संतमत' का तरीक़ 'सलामत-रवी' [salvation of integrity] हमददर्दी [sympathy], तस्लीम [acceptance] व रज़ा [contentment] का तरीक़ है। इसमें ईश्वर के ऊपर भरोसा और उसके क़ानून-क़ुदरत के मुताबिक़ अमल करना ही लाज़िमी है।

अनिवार्य कर्तव्य ;

[01] सूर्योदय से पहिले उठना।

[02] शौचादि से निवृत्त हो कर स्नान करना। अगर बीमारी या कमज़ोरी या किसी और ख़ास वजह से स्नान न कर सकें तो भली-प्रकार हाँथ-पैर धो कर 'धोती' [वस्त्र] बदल लें।

[03] जो अभ्यास प्रतिदिन करने को बताया गया है उसको करना। अगर किसी को मालुम न हो तो अपने गुरु से दरियाफ़्त [seek out] कर लें।

[04] यदि कहीं सत्संग होता हो तो वहाँ जाना। अगर सत्संग नहीं होता है तो बतायी हुयी पुस्तकों का पाठ करना।

[05] साँयकाल सूर्यास्त के पश्चात् हाँथ-मुँह धो कर 'संध्या' और 'प्रार्थना' करना।

[06] रात को सोने से पहिले प्रार्थना करना। यदि हो सके तो 12.00 बजे दोपहर और 04.00 बजे शाम को भी प्रर्थना करना।

[07] रात को तमाम बाल-बच्चों आदि के साथ प्रार्थना व भजन करना और किसी बतायी हुयी पुस्तक या रामायण का पाठ करना।

[08] जो अभ्यास बताया गया है उसे हर समय, जब फुर्सत हो, दिन और रात में बराबर करते रहना।

अन्य कर्तव्य

[01] अधर्म की कमाई का खाना अथवा संदिग्ध भोजन करना बहुत बुरा है।

[02] जहाँ तक हो सके सत्संगी के हाँथ का भोजन करना।

[03] भोजन करने से पूर्व उसे ईश्वरार्पण करना। इसकी विधि गुरु से पूँछ लेनी चाहिए।

[04] स्वच्छ स्थान पर भोजन करना।

[05] भोजन सादा और पवित्रता के साथ खाना, परन्तु भूँख से कुछ कम खाना।

[06] भोजन करते समय कम बोलना।

[07] मादक वस्तुओं का सर्वथा परित्याग।

[08] तामसी भोजन [मांसादि] का त्याग।

[09] दावतों में कम जाना और केवल उनके यहाँ भोजन करना जिनका विश्वास हो कि निषिद्ध धान्य [prohibited cereal] नहीं है। यदि विवश हो कर खाना ही पड़े तो उसके बाद व्रत [fast] रखना और पश्चाताप करना।

[10] सप्ताह में एक दिन व्रत [fast] रखना और दिन में किसी धार्मिक पुस्तक का पाठ करना।

[11] किसी का दिल न दुखाना।

[12] किसी की बुराई न करना और ऐसी बात जो उसके सामने न कह सकें, उसके पीछे भी न कहना।

[13] औरों के दुर्गुणों को छिपाना।

[14] यदि किसी मनुष्य को कष्ट में देखो तो उसकी सहायता करना।

[15] किसी आदमी से, चाहें वह कितना भी बुरा क्यों न हो, घृणा न करना। यदि उसके कर्मों से घृणा है तो उसके लिए प्रार्थना करना।

[16] किसी भिखारी को द्वार से न ललकारना [shout], शक्ति के अनुसार जो हो सके वह दें अथवा सहज में मना कर दें।

[17] यदि किसी से कड़ी बात भी कहनी हो तो मुलायम शब्दों में कहना।

[18] स्त्रियों और बच्चों की संगति से बचना।

[19] अपनी धर्मपत्नी के सिवाय किसी अन्य स्त्री के साथ बात-चीत करते समय, किसी अन्य को साथ रखना।

[20] किसी अन्य के माल पर अथवा किसी ग़ैर की स्त्री [पत्नी] की ओर दृष्टि न डालना।

[21] काम क़ीमत, मज़बूत और साफ़ कपड़े पहनना।

[22] पुरुषों को ज़ेबर न पहनना चाहिए। अधिक से अधिक अँगूठी का प्रयोग कर सकते हैं।

[23] अपनी आमदनी का कुछ भाग, सोलहवाँ या इससे भी कम, दान के लिए निकालना। यदि कोई निकट सम्बन्धी हो तो उसको दे देना। यदि कोई ऐसा न हो तो 'सत्संग' में जमा कर देना, जिससे आवश्यकता पड़ने पर किसी सत्संगी-भाई-बहन की सहायता की जा सके। जो रुपया वर्ष के अंत में बच रहे, उसे 'वार्षिक-भण्डारे' में भेंट कर देना, ताकि उससे किसी शुभ-कार्य में सहायता हो सके।

[24] बड़ो का सम्मान, छोटों से प्यार, 'सत्संगियों' से प्रेम व मेल-जोल रखना चाहिए। जिससे तबीयत न मिले उससे सम्बन्ध तोड़ देना चाहिए।

[25] प्रत्येक धर्म-प्रवर्तक का सम्मान अपने [धर्म-प्रवर्तक] के ही समान करना चाहिए। उनकी वाणी को श्रद्धा और विश्वास के साथ सुनना चाहिए। यदि कोई बात समझ में न आवे तो किसी सत्संगी से अथवा अपने गुरु से पूंछ लें, परन्तु उसे झूँठ न समझें।

[26] यदि किसी धर्म-प्रवर्तक अथवा अपने गुरु की किसी जगह निंदा हो रही हो तो उस स्थान को छोड़ देना चाहिए और ऐसों के कल्याण के लिए प्रार्थना करना।

[27] जहाँ तक हो सके, तमाम सोसाइटियों [societies] से अलग रहना ; किसी सोसाइटी का मेम्बर न होना।

[28] बच्चों को हिंदी ज़रुर पढ़ाना, जिससे धार्मिक किताबें देखने में आसानी हो।

[29] ब्याज न लेना ; और बदर्जा मजबूरी, चार आना [01/16 रुपया] प्रति सैकड़ा माहवार लेना।

[30] जुआ किसी प्रकार का न खेलना।

[31] ताश, चौसर/चौपड़ [a game played by two players with sixteen counters each using three dice, on a cloth or cross-shaped layout] आदि से बचना उचित है।

[32] मुर्दे के साथ जाने की कोशिश करना, धीरे-धीरे चलना और उसके लिए प्रार्थना करते हुए जाना।

[33] किसी सम्बन्धी की मृत्यु पर जोर-जोर से न रोना, वरन उसके लिए प्रार्थना करना।

[34] 'दसवाँ' [prayers or offerings on the tenth day after a death] आदि की रस्में ठीक ढँग से नहीं होतीं और जानने वाले भी कोई बिरले हैं। अतएव, इनसे कुछ लाभ नहीं। जो पुरुष क्रिया-कर्म करे, उसे उचित है कि तेरह दिन तक 'पवित्र' रह कर आत्मा की शांति के लिए 'प्रार्थना' करता रहे। 'दसवाँ', 'तेरहवीं' आदि पर यथाशक्ति दीन-दुखियों को दान करें।

खर्च संबंधी नियम

[01] हर सत्संगी को लाज़िम [आवश्यक=incumbent] है कि हर वक़्त मामूली से मामूली ख़र्च करने से पहिले इन बातों को अपने दिल में ख़याल कर लिया करें - [क] यह ख़र्च किसी ख़ास ज़रूरत की बुनियाद पर है या महज़ रिवाज़ या आदत के दबाव पर ; [ख] या इसमें बेजा नुमायश का अंश तो शामिल नहीं है, या इस काम में किसी भाई/बहन का भी कोई फ़ायदा होता है या बिलकुल शेख़ी और शान [आत्मश्लाधा=boasting] ही है ; [ग] इस ख़र्च का आयन्दा नतीज़ा इस हालत को तो पैदा नहीं करेगा, कि हमारी शांति में ख़लल डाले, या रूहानी-रास्ते में रुकावट पैदा करे। [घ] किसी ख़र्च के करने में धर्म के ख़िलाफ़ या अपने समाज के उसूलों के विरुद्ध तो कोई बात तो पैदा नहीं हुयी जाती है।

[02] अगर किसी सत्संगी की आमदनी और ख़र्च के बाद दस रुपये की बचत है लेकिन क़र्ज़ पहिले से मौजूद है तो उसको ज़रूरत के अलावः किसी ज़ायदाद चीज़ ख़रीदने के वक़्त कम से कम यह ख़्याल होना चाहिए कि सत्संग के उसूलों के ख़िलाफ़ है या नहीं।

ज़रूरत की मिसाल यह है कि बिना उस चीज़ के काम न चले । अगर उसी तरह की चीज़ पहिले से घर में मौजूद है और यह नयी चीज़ कुछ दिनों तक, कतिपय इस्तेमाल में नहीं आएगी तो यह ज़रूरत की चीज़ में दाखिल नहीं है।

[03] मासिक आमदनी का कोई हिस्सा [अंश] ज़रूर अलग निकाल कर रखते रहना चाहिए ताकि वक़्त-ज़रूरत के बिना दिक़्क़त काम आ सके।

यह रक़म भाइयों के ज़रूरी कामों की इम्दाद में सर्फ़ [खर्च=expand] होना चाहिए।
"अव्वल शेख़ बादहू दरवेश।"

सत्संगियों की दिनचर्या

[01] सुबह सूरज निकलने से पहिले प्रत्येक मनुष्य उठे।

[02] नौकर की सहायता से प्रत्येक व्यक्ति घर की सफ़ाई करने में लग जाय, कोई झाड़ू लगाए, कोई खाट उठा कर बिछौने को क्रम से तह करके एक ओर रक्खे, कोई अंगौछा ले कर चीज़ों को झाड़े इत्यादि इत्यादि।

[03] सब लोग शौचादि से निवृत्त हो कर हाँथ-मुँह धोएं। अगर स्नान करने की ज़रूरत हो तो स्नान कर लें और सन्ध्योपासना [प्रातःकालीन प्रार्थना] यथाशक्ति सूर्योदय से पूर्व समाप्त करें।

[04] घर में एक विशेष स्थान या एक विशेष कमरा, पूजा के लिए नियत कर लेना चाहिए। इसमें सुगन्धित-धूप सुलगानी चाहिए। कमरे में साफ़ चटाइयाँ बिछा दीं जायँ। प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने स्वच्छ वस्त्र धारण कर लें।

[05] पूजा, प्रार्थना से प्रारम्भ की जावे। एक व्यक्ति पढ़े और सब शेष सभी उसको दोहरावें। चाहें भजन से प्रार्थना की जावे। एक व्यक्ति भजन गावे और शेष सब सुनें। दस मिनट तक तल्लीन रहें। अंत में फ़िर प्रार्थना की जाय। यह सब कार्य सुबह सात बजे तक समाप्त हो जाना चाहिए।

[06] इसके उपरांत पंद्रह मिनट तक व्यायाम करें।
[07] तत्पश्चात जो कुछ साधारण भोजन हो, उससे थोड़ा जलपान करें।

[08] तत्पश्चात स्त्रियाँ भोजन बनाने के कार्य में लग जावें और सब आपस में मिल कर कार्य

समाप्त करें। एक कार्य को दूसरे पर न टालें [टालमटोल = prevarication]। बारी नियत करने के आवश्यकता नहीं है।

[09] पुरुष और लड़के केवल भक्ति-प्रधान धार्मिक-ग्रंथों का स्वाध्याय किया करें।

[10] भोजन बनाने और खाने से जब स्त्रियाँ निवृत हो जायँ तो एक घण्टा तक विश्राम कर लें। एक बजे तक यह कार्य समाप्त होजाय।

[11] फ़िर, स्त्रियाँ घर-गृहस्थी का काम सीना-पिरोना इत्यादि तीसरे-प्रहर, तीन बजे तक करें।

[12] तीसरे-प्रहर, तीन बजे से साढ़े-तीन बजे तक स्त्रियाँ और बच्चे किसी धार्मिक ग्रन्थ का पाठ करें।

[13] तीसरे पहर, साढ़े तीन बजे से भोजन बनाने का काम सब मिल कर आरम्भ करें। इस समय बुहारी [झाड़ू-लगाना] लगाने का काम भी शामिल है।

[14] सूर्यास्त होने के समय स्त्रियाँ और लड़के-लड़कियाँ एक नियत-स्थान पर बैठ कर संध्या-उपासना करें जो आधा-घण्टा से अधिक न हो।

[15] फ़िर, भोजन करके सभी व्यक्ति कुछ टहल कर, बाहर बैठ कर सत्संग करें। पुस्तक सम्बन्धी अथवा मौखिक-वार्तालाप के पश्चात् ध्यानादि में सत्संग करें।

[16] व्यर्थ वार्ता, पर-निंदा या चुग़ली [tale-bearing] कभी न करनी चाहिए।

[17] अधिक से अधिक साढ़े-दस बजे [रात्रि] तक अवश्य सो जाना चाहिए और पुनः, प्रातःकाल साढ़े चार बजे जाग कर उठ जाना चाहिए।

परिशिष्ट [ग]

वर्ष 1928 में फ़तेहगढ़ [उ0 प्र0] में गुडफ्राइडे के 'जलसा-सालाना' [वार्षिक भण्डारे] में दिनांक 06 अप्रैल [शुक्रवार] को परमपूज्य लालाजी साहिब द्वारा दिए गये भाषण का मूल-पाठ।

[786]

ईश्वर का धन्यवाद

बुज़ुर्गाने तरीक़त व ब्रादरान व हमदर्दाने मिल्लत उस ज़ात वाजिबुल वुजूद का लाख-लाख़ अहसान है कि उसने अपने फज़ल अज़ीम से इतनी मुतफ़र्रिक़ हस्तियों को एक वक़्त में और एक जगह जमा कर दिया है।

अगर हम सब फ़रदन इस इकट्ठे होने की ग़रज़ दरियाफ़्त करने लग जायँ तो ग़ालिबन सब के ख़याल इज़हार का तर्ज़ जुदा होगा। मगर जब इस उसूल की जानिब निगाह डालेंगे तो एक ही उसूल उन सब मुख़्तलिफ़ ख्यालों के अंदर छुपा हुआ नज़र आएगा। यह दुनियाँ लम्हे-लम्हें तब्दील पज़ीर है और इसमें तबादिला का क़ानून लगातार सिलसिले के साथ क़ाइम है कि हर मुतनफ़्फ़िस बिल इरादः या बिला इरादः, दानिस्ता या ग़ैर-दानिस्ता इसके शिकंजों में जकड़ा हुआ है। इसमें खिचाव है - सिमटाव है, देना है - लेना है, बढ़ाव है - घटाव है, जाना है - आना है।

लेकिन इसके अलावः हमें एक तीसरी क़ैफ़ियत भी इन सब के अंदर पोशीदः नज़र आती है - हर खिचाव और सिमटाव के साथ 'ठहराव' भी है, बढ़ाव और घटाव के साथ 'सुकून' भी है, आने और जाने के अलावः 'क़याम' भी है। अगर कोई चीज़ पैदा होती है और फ़ना होती है तो थोड़े वक़्त के लीये उसमें 'क़याम' भी लगा हुआ है। मांझी और मुस्तक़बिल निस्बती अल्फ़ाज़ हैं और हाल की क़ैफ़ियत इन दोनों के शामिल और दर्मियानी क़ैफ़ियत है। यह सिफ़ात सिलासा का क़ानून [त्रिगुणात्मक] अपने मौसूफ़ के आधार पर है और उसके सहारे ही रहते हैं। हाँसिल कलाम यह है कि सिफ़ात में तब्दीली है और यह सिफ़ात जिसके आधार और सहारे पर रहती है वह ज़ात है, जिसमें तबदीली का क़ानून अलग रहता है। आप ज़रा ग़ौर करें तो कभी आप खुश और कभी दुःखी, कभी शांत और कभी अशान्त, कभी कमज़ोर कभी ताक़तवर, कभी मुफ़लिस

और कभी मालदार, कभी तन्दरुस्त कभी बीमार वग़ैरह वग़ैरह नज़र आते हैं लेकिन जब हम इन दोनों मुख़्तलिफ़ क़ैफ़ियतों को अलहदः अलहदः देखने लग जाते हैं तो हर एक क़ैफ़ियत की तह में दूसरी मुतज़ात क़ैफ़ियत साथ लगी हुयी मालूम होती है। जहाँ खुशी है वहाँ दुःख का ख़ौफ़ मौजूद है। शांति में अशांति वग़ैरह का ख़याल छिपा हुआ मौजूद है और यह मसला बहुत उलझन में डाल देता है लेकिन दरअसल हमारी नज़र का क़सूर है और तलाश और तहक़ीक़ात का तरीक़ा ग़लत है, जिसकी वजह से कभी यह गुत्थी सुलझनें पर नहीं आती है। दरअसल दुःख खुशी का, अशांति शांति का, बीमारी तंदरुस्ती का कमज़ोर और नाक़िस पहलू है। अगर हद से ज़्यादः खुशी होगी तो आंसू निकल आयंगे और ज़्यादः दुःख होगा तब भी रोना आएगा।

नुक़्स और कमज़ोरी साया है अपनी असल का, जुज़वियत नाक़िस है और मुकम्मिल उससे बरी है। कुल्लियत में एतदाल है और जुज़वियत में कमी और बेशी। दरअसल एतदाल की क़ैफ़ियत सुकून की है। और घटाव-बढ़ाव सिमटाव की क़ैफ़ियतें नाक़िस हैं। अगर कोई शै अपनी ज़ाती क़ैफ़ियत से हट गयी तो उससे एतदाल क़ाइम नहीं रहता है। अगर कोई चीज़ बढ़ जाय तो भी नाक़िस और घट जाय तो भी नाक़िस। और जब दोनों क़ैफ़ियतों से हट कर एतदाली क़ैफ़ियत पैदा हो जाय तो अब यहाँ सवाल कमी और वेशी, जज़्बीयत और कुल्लियत दोनों का जाता रहता है और असली सुकून क़ल्ब पैदा हो जाता है। आप आज़मां लें। अगर खुशी हद से ज़्यादः बढ़ जावे तो यही इज़्तिराब [व्याकुलता] नहीं जाता है और आगे बढ़ने का हौंसला रहता है और कमी में भी क़ैफ़ियत इज़्तिराब [व्याकुलता] की है।

आप को मालुम है कि पैदाइश के वक़्त बच्चा फ़ितरत सलीम [शान्त] पर पैदा होता है। इसके बाद उसकी वालिदैन और इर्द-गिर्द की सोसाइटी उसको जो कुछ चाहे, बना देते हैं।

पस हज़रत इंसान की इब्तदाई फ़ितरत सलीम को सोसाइटी, आवोहवा व तालीम और अफ़्ऑल [कार्यसमूह या करतूत] ने इस तरह बना दिया है कि वह अपनी असल से हज़ारों कोस दूर जा पड़ा है। तो उसी इब्तदाई फ़ितरत सलीम को फ़िर दोबारा हाँसिल करने के लिए जद्दोजहद करनी पड़ती है। तदबीरें अमल में लानी होतीं हैं। स्कूल, तालीमगाहों में जाना पड़ता है। एतदाली क़ैफ़ियत को, जिसको दुसरे लफ़्ज़ों में अख़लाक़ कहते है, अज़सरे नौ पैदा करने के लिए पहले किताबों से, फ़िर अमल से और फ़िर सोहबत फ़ुकरा [संतों का साथ] और सत्संग से मदद लेने की ज़रूरत पड़ती है।

आज हमारे अहबाब की शिरक़त की ग़र्ज़-ताबादिला ख़यालात हुसूल [प्राप्ति] फैज़ व बरक़त, इज़ाफ़ा, वाक़फ़ियत व आगाही तमन्नाय हुसूले सरूर व आनन्द की हो तो बिला मुबालगा वह ही एक उसूल जिसका ज़िक्र मैंने पिछली सतरों [पंक्तिओं] में किया है इस वक़्त चस्पा और आयद हो जाता है।

इस सोहबत में उसूलन कामिल और नाकिस दोनों ही शामिल हैं। बल्कि यूँ कहना चाहिए कि हर फ़र्द बशर अगर एक ख़ासियत में नाकिस है तो दूसरी ख़ास सिफ़त [प्रशंसा] में कामिल। खालिस एतदाली क़ैफ़ियत तो ख़ास-ख़ास बन्दों में जिन पर उसका फज़ल व करम हो शामिल और आयद हो सकती है। इस का इल्म तो सिवाय उस ज़ात-पाक के और किसी को हो ही नहीं सकता है और न इसके इल्म की ज़रूरत ही है। यहाँ तो सब नाकिस और कामिल बन्दों की एक जगह जमा हो कर यह ग़र्ज़ है कि उसके फज़ल के उम्मीदवार बनें। दुआएँ करें और अपने तरीक़े से बुज़ुर्गान के वसीले से मदद चाहें ताकि फ़िर अपने खोए हुए अख़लाक़ को दोबारा हाँसिल कर सकें।

साल भर में एक मर्तबा ऐसी कोशिश करना कि जहाँ तक मुमकिन हो सके इस फ़ायदे को हाँसिल करने की ख़्वाहिश रखने वाले अहबाब ज़्यादः से ज़्यादः तादाद में एक जगह पर कोशिश करके जमा हो जायँ, ताकि जो वक़्त ज़द्दोज़हद और तदाबीर में गुज़र गया इसके अलावः ज़्यादः मुफ़ीद और सहलुलवसूल [जो सहज में वुसूल हो जाँय] तदबीरें और ऐसा एहतमाम आयन्दा साल के लिए नियत करें और प्रोग्राम की शक्ल में लायें कि बनिस्बत साल गुजिश्ता के तरक़्क़ी की शक्ल पैदा कर लें। गुजिश्ता कमी और नाकिस तर्ज़ अमल पर अफ़सोस करें। इज़्ज़ियाद [आधिक्य] मोहब्बत के वसीले अख़्तियार किये जायँ।

दुनियावी कारोबार और व्यवहार के सिलसिलों को पारलौकिक तरीक़े के साथ बावस्ता और हम-आहंग होने के तदाबीर सोचें ताकि हमारी पारलौकिक धर्म और तरीक़त की मुरादें मुमिद [सहायक] व मुआविन [मददग़ार] हों और रुकावट न पैदा करें।

आख़िर में बुज़ुर्गान तरीक़त के लिए, जिन की मदद और वसीले से हम को यह इल्म, ज्ञान और यह अवसर प्राप्त हुआ है, दुआ में शरीक हों और उनकी पाक अरबाहों को एक जमात के साथ सबाब पहुंचाने की हिम्मत बांधें।

यह सबब और अगराज हमें जिन की वजह से हम सब लोग इस वक़्त निहायत ख़ुलूस अक़ीदत

और मोहब्बत के साथ दूर-दूर से अपना क़ीमती वक़्त, अपना रुपया ख़र्च करके जमा हुए हैं, आने का शुक्रिया अदा किया जाता है। आने का शुक्रिया इस बात के लिए भी अदा किया जाता है कि ज़्यादःतर साहिबान ने मेरे गढ़े हुए फॉर्मों को जैसा जिन साहिबान की समझ में आया जवाब लिख कर मरे पास भेज दिया है ताकि मुझको स्कीम के मुरत्तिब करने में काफ़ी इमदाद व वाक़फ़ियत मिल गयी है।

मुझको उन असहाब के शुक्रिया अदा करने में ग़ुरेज़ नहीं करना चाहिए कि जिन्होंने अब तक फॉर्मों को नहीं वापिस किया क्यों कि उनके उस अमल से यही मुझको काफ़ी मदद इस बात के मालूम करने में मिल गयी है कि उनका शौक़ और मोहब्बत का जज़्बा किस दर्जे की हरारत रखता है। उस फॉर्म को उन्होंने बॉक्स के अन्दर किस क़दर हिफाज़त से रख छोड़ा है या अख़बारात की टोकरी की तह में डाल दिया है या कोट की जेब में रख कर अब तक उसको निकालने का मौका नहीं मिला है या जिन्होंने अब तक उसको पढ़ा ही नहीं है और बाज़ साहिबान ने दवा-फ़रोशों के इश्तहारात समझ कर उसको अलहदा फेंक दिया है या पढ़ कर ऐसा बेहूदा और लगो [मूल शब्द = लग़ोदंग अर्थात ऐसा जंगल जिसमें कोसों न छाया हो न पानी] कार्यवाही समझा है कि मामूली मज़ाक और नोबिल [उपन्यास] और इश्तहारात और अख़बारों की सनसनीख़ेज़ ख़बरों के जहरीले असरात से भी उनको ज़्यादः ज़हरीला समझा है।

ख़ैर जो हो मैंने तो यह तरीक़ा इस लिए अख़्तियार किया है कि इसमें अहबाब की बहबूदी मद्देनज़र समझी और हर काम में नियत देखी जाती है। पस जो नियत है उसका इल्म उस अल्लामुल अयूब ही को है।

अब मैं उम्मीद करता हूँ कि अहबाब उस फॉर्म की हर 'मद' [item] के मुताल्लिक़ जो राय मैं ज़ाहिर करूँगा ग़ौर से सुनेंगे और फ़िर अपनी राय आख़िर में ज़ाहिर करेंगे। यह ख़याल है कि फॉर्म के मद्धांत के मदलूल [जिसके लिए दलील दी गयी हो] क़ाइम करने में मेरा भी ज़्यादःतर ख्याल सतही बहुत कम रहा है बल्कि ज़्यादःतर जो ऊपर से बिला सोचे और समझे इस दुनियावी अक्ल के अलावः और अलैदः बराहेरास्त आया लिखा गया है।

खानापूरी फॉर्म

इस फॉर्म की तरतीब और अल्फ़ाज़ निहायत सादा और मामूली शक्ल के नज़र आते हैं। पर मुझको यकीन है कि वह ऐसे नहीं हैं। हर मद [आइटम] में एक ख़ास रम्ज़ [रहस्य] और भेद मख्फी [मूल शब्द है, मक़्फ़ूफ़ = उर्दू छन्द में सप्त-अक्षरीयगण] है और मुझे उम्मीद है कि वह बहुत मुफ़ीद साबित होंगे क्यों कि दरअसल मेरी और मुझ से नहीं बल्कि किसी ख़ास रूहानियत और ख़ास फैज़ की रोशनी की किरणें हैं। यह दूसरी आला तबक़ा की शख़्सियत की रूहानी इम्दाद है वर्ना मैं क्या और मेरा इल्म क्या "जमाले हमनशीं दर मन असर कर्द बग़र्ना मन कुजा हाकिम कि हस्तम"।

अब मैं फॉर्म की मद - 09 [Item No. 09] को ले कर बहस शुरू करूँगा और उसके लिए मैं फ़िर अपने पिछले मज़मून पर वापिस आता हूँ। आप साहिबान अपनी याद-दाश्त को फ़िर उस तरफ़ बराहे-मेहरबानी वापिस ले जायँ। *

*** इब्तदाई फॉर्म दाख़िला - 'संतमतमत सत्संग फ़तेहगढ़' ।**
[01] नाम। [02] बाप का नाम। [03] क़ौम जैसे - वैश्य, ब्राह्मण इत्यादि। [04] उपजाति जैसे - कान्यकुब्ज, सनाढ्य, अग्रवाल, श्रीवास्तव इत्यादि। [05] असली रहने की जगह मय कुल पते के। [06] जहाँ इस वक़्त रहते हैं, मय कुल पते के। [07] पेशा मिसलन नौकरी, तिजारत, दस्तकारी, काश्तकारी इत्यादि मय हर एक की तफ़्सील के। [08] उम्र वक़्त फॉर्म भरने के। [09] मजहब जैसे सनातनी, आर्यसमाजी इत्यादि। [10] मत जैसे संतमत, कबीर-पन्थी, वैष्णवी, शैव्य, रामानन्दी, रामानुजी, शक्ति वग़ैरः।
नोट : अगर आप संतमत के सत्संग में इस वक़्त सिर्फ़ जाँच-परड़ताल और फ़ैसला करने की ग़रज़ से शामिल हुए हैं और फ़ैसला करके संतमत को क़बूल बिलकुल नहीं कर लिया है और अपने पुराने मत पर क़ाइम हैं तो खाना नंबर 10 तक का ही भर कर भेज दीजिये, बाक़ी ज़रूरत नहीं।
[11] उन किताबों का नाम जिनको पढ़ने का शौक़ है। 12] संतमत और सत्संग में शामिल होने की ग़रज़ से सिर्फ़ अंदर का अभ्यास ही है या उसके बाहरी उसूलों की पाबन्दी, यह उसूल [नियम] अलहदा मिलेंगे। [13] क्या आप संतमत के क़ायदों के मुताबिक़ अपनी रहनी-सहनी अख़्तियार करने को तैयार हो सकते हैं या सामाजिक व्यवहारों को भी साथ लेकर चलते रहेंगे। [यह बातें अलग किताब में मिलेंगी]।[14] जहाँ आपका इस वक़्त रहना हो रहा है वहाँ कोई

दूसरे संप्रदाय या पंथ के साधू- महात्मा मौजूद हैं और संतमत के सत्संग में दाख़िल हो कर भी उनकी सोहबत में भी पाबंदी के साथ जा कर शामिल होते हैं। तुम्हारा अक़ीदा वहाँ भी है या नहीं और सत्संग के बताये हुए अभ्यास के अलावः और किसी का बताया हुआ अभ्यास करते हो। [15] आपके माता-पिता मौजूद हैं और वे आपके ख़यालों को ठीक और मुनासिब समझते हैं। [16] आपकी शादी हो गयी है और बीबी मौजूद है ?[17] अगर बीबी मौजूद नहीं है तो आपका दूसरी शादी करने का क्या ख़याल है ? [18] क्या आपकी बीबी हमख़याल है ? अगर हमख़याल है तो वह क्या अभ्यास करती है ? अगर अभ्यास करती है तो वह पुरानी रीति-रिवाज़ों को जो फ़िज़ूल हैं, छोड़ सकती है, जैसे जखैय्या की जात, मियाँ की कंदुरी वग़ैरह। [19] क्या आप दीग़र मजहब वालों के विरोधी हैं जैसे पारसी, यहूदी, बौद्ध, सिख, मुस्लमान, ईसाई इत्यादि। [20] क्या आपको पोलिटिकल मामलात से कुछ वास्ता है ?[21] ग़ैर-शादीशुदा लड़के व लड़कियों की तादाद और उनकी हर एक की उम्र जो इस वक़्त है व जिस भाई, बहन, भतीजी की देख-भाल व अख़्तियार खुद अपने ख़र्चे से करते हो लिखना चाहिए। [22] हर-एक [आश्रित] की क़ाबलियत, ख्वांदगी [पुकारने का नाम] वग़ैरः। [23] आपके राय में शादी वग़ैरः के मुताल्लिक़ रिवाज़ में तमरीम की ज़रूरत है या नहीं ?[24] आपको अपने लड़के-लड़कियों की शादी में अपना खुद ही अख़्तियार है या वाल्दैन या दीग़र रिश्तेदारों का ?[25] क्या आप सत्संग में संत-मत के उसूलों के मुताबिक़ शादी के क़ाइदे जो लिखे जावेंगे, उनको देख कर आप शादी उन्हीं क़ाइदों की पाबन्दी से करना पसंद करेंगे या पुराने ही रस्म-रिवाज़ के मुताबिक़ ?[26] अगर आपके पास माली-गुंजाइश ख़ैरात और दान करने की है तो क्या आप सत्संग के बनाये हुए क़ाइदों के मुताबिक़ तक़सीम अख़्तियार करने को राज़ी हैं या अपने पुराने मनमाने ढकोसलों के साथ ही ? [27] अगर इस वक़्त नहीं तो आइंदा किसी वक़्त आप से यह उम्मीद की जा सकती है कि आप अपनी इस वक़्त के रस्म-रिवाज़ों की बिरादरी को अलग और सत्संग की बिरादरी को अलग और तरजीह की नज़र से देखने लग जायेंगे। [28] क्या आप की राय में यह मुनासिब है कि इस सोसाइटी की माली-सहायता [इम्दाद] उसके रिवाज़ों की ज़रूरतों को पूरा करने और उसकी ज़ाहिरी हस्ती को क़ाइम रखने के वास्ते फण्ड की ज़रूरत है ?[29] अगर ज़रूरत है तो दो सूरतें इस वक़्त अख़्तियार की जा सकतीं हैं इस इब्तिदाई हैसियत की बुनियाद डालने से और दूसरी हर-दम [लगातार] जारी रखने के सूरत। पहली सूरत में फार्म दाख़िला भरते वक़्त मुबलिग़ एक रूपया और दूसरी सूरत में पाबंदी के साथ इसी चंदे की शक्ल में। [30] हिंदी शास्त्र के मुताबिक़ 01/10 यानी आमदनी का दसवां अंश होना चाहिए।[31] ज़माने की हवा के मुताबिक़ कम से कम छः पाई प्रति रूपया। [32] या हर महीना हस्ब-हैसियत [स्थिति के अनुसार] पाबंदी के साथ। [33] नम्बरान 30, 31,32 मे से जो पसंद आयें उसको क़बूल

करके उस पर इक़रार लिख दीजिये। अगर आपकी किसी भी नंबर की मर्ज़ी नहीं है, बिना ख़याल के इंकार लिख दीजिये। [34] इब्तिदाई चन्दा एक रूपया दाख़िला फॉर्म सिवाय तालिबे-इल्म [विद्यार्थियों] व साधुओं वग़ैरह लोगों से जो कोई कुछ आमदनी नहीं रखते हैं, मुआफ़ होगा। [35] जहाँ बहुत से सत्संगी-भाई हों वहाँ सब मिलकर एक मेंबर को इंतिखाब [चुनाव] कर लें और आप चंदा इब्तिदाई फ़ीस को दे कर रसीद हाँसिल कर के फॉर्म के साथ दे दें और जो भाई अकेले हैं, बज़रिये मनीऑर्डर भेज देवें।

ज़रा अपनी पिछली और मौजूदा हस्ती की ग़ौर करने की तकलीफ़ ग़वारा फ़रमायें। इस मौजूदा दुनियाँ के फ़र्श-ज़मीन पर क़दम रखने से पहिले आप को मालूम है कि आप कहाँ थे? अगर हम इल्म फ़लसफ़ा तबीयात और तबक़ात आलम के उलूम पर बहस करने लग जायँ, शास्त्रों की सिफ़ात, सिलासा और सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और लय के मसायल और बड़ी-बड़ी बातों को समझनें में अपना दिमाग़ और वक़्त लगा दें तो हम में से कोई ग़ालिबन ऐसा दिमाग़, ऐसा इल्म, इतना वक़्त और जहन रसां नहीं रखता कि समुन्दर को नाप लेने की और ब्रह्माण्डों की मार्फ़त दरयाफ़्त करने की मेहनत कर सकें। इस लिए ज़रूरी है कि अपनी मोटी-मोटी बातों को जो मामूली अक्ल और समझ और नज़र में हैं, ग़ौर करें।

एक वक़्त यह था कि बच्चा अपने शिकमे-मादर की दुनियां में अारामयाफ़्ता था, उसकी नशिस्त और आराम पाने की यह बज़आ और क़तआ थी कि उल्टा लटका रहता था। चारों तरफ़ से रगों और बन्दिशी रस्सियों की जंज़ीरों से जकड़ा हुआ झिल्ली के गिलाफ़ में लिपटा हुआ पड़ा रहता था। उसकी ग़िज़ा सिर्फ़ माँ के खून का तब्दीलशुदा हिस्सा थी। उसके लिए हवा पहुंचाने का ज़रिया महज़ चन्द नालियाँ और मनाक़िद थे। रोशनी के बजाय तारीक़ी [darkness] उसके हिस्से में थी, ग़र्ज़ेकि इस हालत का मुकाबिला जीवन की दुनियां के साथ करने के बाद हम फ़ौरन कह सकते हैं कि उसका ठिकाना महज़ एक तंग व बारीक़ और हब्स और क़ैद की जगह थी, और कुछ नहीं।

लेकिन एक वक़्त यह आया कि उसी ने शिकमे-मादर की दुनियाँ से अपना मुहँ फेर लिया और उसके लिए यह मौत का नमूना से कम नहीं। लेकिन क्या यह मौत-दायनी मौत थी, यानी ज़िन्दगी में दाख़िल होने के लिए एक पल्टा। अब इस दुनियाँ की ज़मीन में यह अपना क़दम रखता है और सिवाय इसके कि वह तंग व तारीक़ दुनियाँ में जकड़ा हुआ अपने आप को पाता है। अब एक रोशन और खुली हुयी और वसीय ताज़ी हवा के तबका में सांस लेते हुए पाता है।

यहाँ उसको हाँथ-पैर हिलाने और आवाज़ निकालने की आज़ादी है। ग़िज़ा की शक्ल में भी तबदीली है। इससे पहिले उसकी तबई हालतें सिकुड़ी हुयी और दबी हुयी पड़ीं थीं। जिस तरह कि तुख्म [फ़ा0 = बीज] के अन्दर उसकी शाख़, टहनियाँ, फल, फूल मौजूद होने का गुमान रहता है। लेकिन बात इस तबई क़ैफिअतों को जुम्बिश होती है। इसमें अँखुए, कोपल, पत्तियाँ, टहनियाँ, फूल और फल अपने-अपने वक़्त पर बरामद होना शुरू होते जाते हैं। बच्चे की इस पहली क़ैफ़ियत का नाम 'नफ़्स अम्मारा' [Sura xii : 53] है। जिसको अब जुम्बिश हुयी है। इस पहली हरकत को तमोगुणी कहते हैं। यह तमोगुण इसके जन्म की पहली ज़िन्दग़ी में दबा हुआ पड़ा था। और हरकत करने के कोई असबाब नहीं थे। अब इसको ज़िन्दगी में फैलने-फूटने का मौका मिलता है। यह हालत तबई है। जिसकी पहली हरक़त में यह ख़ासियत है कि वह इन्सान को बदी की तरफ़ जो उसके कमाल के मुख़ालिफ़ और उसके अख़लाक़ी हालतों के बरअक्स है, झुकाता है। ग़र्ज़ेकि बेएतदालियों और बदियों की तरफ़ जाना इंसान की एक हालत है जो अख़्लाक़ी हालत से पहले उस पर तप अन ग़ालिब होती है। और यह हालत उस वक़्त तक तबई हालत कहलाती है जब तक कि इंसान अक्ल और मार्फ़त [intellect/spirituality] के जेरेसाया नहीं चलता। बल्कि चौपायों की तरह खाने-पीने, सोने-जागने या गुस्सा और जोश दिखलाने वग़ैरह उमूर में तबई जज़्बात का पैरों रहता है। जैसाकि हम सब बच्चों में देखते हैं कि उनके जज़्बात जिस तरफ़ उभर कर ढल जाते हैं और रोके नहीं रुकते ; जिस को 'बालहठ' कहते हैं।

यह हालत एक वक़्त मुअय्यन [निश्चित] तक रह कर पलटा खाती है। यह तबई हालत की मौत है और फिर नयी ज़िन्दग़ी की तरफ़ रुख़ करती है। यहाँ से इंसानी अक़्ल और मारिफ़त [spirituality] की मशवरः से तबई हालातों में तसर्रुफ़ करता और एतदाल मतलूब की रयासत रखता है फ़िर इसका नाम तबई हालत नहीं रहता बल्कि इसको इख़लाक़ी हालत कहते हैं। जो बदी की हालत पर और बेएतदाली पर अपने आप को मालामाल करता है। यह नफ़्स लव्वामा [sura lxxv : 02] है जिसकी वजह से उसको पशेमानी, शर्मिन्दग़ी, अफ़सोस और आगे तरक़्क़ी करने की ख़्वाहिश होती है।

यह रजोगुणी है, जिसका ख़ास्सा है, आगे बढ़ना और पीछे हटना यह आगे और पीछे को अपनी हरक़त जारी रखता है। सुकून और आराम नहीं पकड़ता। इस वक़्त हैवानात की मुशाहिबत से नजात पाता है और राजी नहीं होता कि तबई लवाज़िम में शुतर बेमुहार की तरह चले और चौपायों की ज़िन्दग़ी बसर करे। बल्कि यह चाहता है कि इससे अच्छी हालत और अच्छे इख़लाक़ सादिर हों और इंसानी ज़िन्दग़ी के तमाम लवाज़िम में कोई बेइतदाली ज़हूर में न आवे

और तबई जज़्बात और तबई ख़्वाहिश अक्ल के मशवरे से ज़हूर पजीर हों।

नफ़्स लव्वामा अगर तबई जज़्बात को पसंद नहीं करता और अपने आप को मालामाल करता रहता है लेकिन शुक्र के बजा लाने में पूरे तौर पर क़ादिर भी नहीं हो सकता और कभी न कभी तबई जज़्बात उस पर ग़लबा कर जाते हैं, तब गिर जाता है और ठोकर खाता है। गोया कि वह एक कमज़ोर बच्चे की तरह होता है, जो गिरना नहीं चाहता मगर कमज़ोरी की वजह से गिर जाता है, फिर अपनी कमज़ोरी पर नादिम होता है। ग़र्ज़े कि यह नफ़्स की वह इख़लाक़ी हालत है जब नफ़्स इख़लाक़ फ़ाज़ला को अपने अंदर जमा करता है और सरकशी से बेज़ार होता है। मगर पूरे तौर पर ग़ालिब नहीं आ सकता। तो फिर एक तीसरा सरचश्मा उस पर खुलता है जिसको रूहानी हालातों का मब्दा कहना चाहिए। इसको 'नफ़्स मुतमइय्यना' [*Sura Fajar : 27 - The Nafs that has found rest in God. It has been addressed thus "O Nafs which hath found rest in God, turn back to thy Lord. He is pleased with thee ; and thou are pleased with him. Mingle with my servants and enter in to my paradise."]* कहते हैं और इसको सतोगुणी-प्रधान अवस्था कहते हैं। इस वक़्त इंसान का नफ़्स आरामयाफ़्ता है, जो खुदा से आराम पा गया। अपने खुदा की तरफ़ वापिस चलता है। वह उससे राज़ी और वह उससे राज़ी।

यह वह मर्तबा है जिससे नफ़्स अपनी तमाम कमज़ोरियों से नजात पा कर रूहानी क़ुव्वतों से भर जाता है और खुदाताला से ऐसा पैबंद कर लेता है कि बग़ैर उसके जी ही नहीं सकता और जिस तरह से ऊपर से नीचे की तरफ़ बहता है और बसबब अपनी कसरत और नीज रोकों से दूर होने से बड़े जोर से चलता है इसी तरह वह अब उलट-धार हो कर खुदा की तरफ़ बहता चला जाता है। पस् इसी ज़िन्दगी में न कि मौत के बाद एक अजीमुलशान तबदीली पैदा करता है। और है, इसी दुनियाँ में, न कि दूसरी जगह एक बहिश्त उसको मिलता है। वह अपने रब यानि परवरिश करने वाले की तरफ़ वापिस आता है और खुदा की मोहब्बत इसकी ग़िज़ा होती है और इसी ज़िन्दगी-बख्श चश्मे से पानी पीता है और इसलिए मौत से नज़ात पाने के दरवाज़े में दाख़िल हो जाता है।

यहाँ तक इंसान की तबई, इख़लाक़ी, रूहानी पैदाइश के दर्जे और मौत के सिलसिले की कहानी पहुँचती है लेकिन पैदाइश और मौत का सिलसिला ख़त्म नहीं होता। यह सब दर्जे पैदाइश और मौत के इब्ततरारी [प्रारंभिक] है, इख़्तियारी [जो अनिवार्य न हो] और हक़ीक़ी नहीं। इख़्तियारी और हक़ीक़ी पैदाइशों और मौतों की अवतार और दर्जों की इब्तिदा अब शुरू होने वाली है। अगर

तबई और इख़लाक़ी हालतों के मुहँज़ोर जज़्बातों से नज़ात पा कर इंसान रूहानी और सतोगुणाय हालत को प्राप्त हो गया तो यह रजोगुण यानी 'नफ़्स लव्वामा' के चंगुल से छुटकारा मिला है। लेकिन हक़ीक़ी सकून क़ल्ब और ठहराव जब तक फ़ना की सिफ़त और हरक़त धक्का दे कर अपने असली भण्डार और जाये-क़याम पर ले जार न बैठा दे उस वक़्त तक खदशा [शुद्ध शब्द - खद्शः = संदेह] है। पस् वह फ़ना की सिफ़्त [महेश-शक्ति] जिसको मालिक 'यौमुद्दीन' कहेंगे [यौमुलक़ियामत = क़ियामत का दिन, जब मुर्दे क़ब्रों से निकल कर उठ-खड़े होंगे, वह सब एक बड़े मैदान में एकत्र होंगे और उनके कर्मों का हिसाब-किताब होगा और दंड अथवा पुरस्कार दिया जायेगा। अर्थात, 'यौमुद्दीन' का मतलब है क़ियामत के दिन का मालिक।], जब तक [महेश-शक्ति] अपनी गोद में न ले लेवें उस वक़्त तक असली बक़ा [अस्तित्व या जीवन] और स्थिति कहाँ नसीब है।

इस दर्जे तक पहुँचने पर इंसान की सिर्फ तीन जाहिरी हालतें तब्दील हुईं। पहिले दर्जे में इंसान बशक्ल जमादात [बेजान और जड़] और नबातात [वनस्पतियाँ] था, दुसरे दर्जे में वह इंसान बशक्ल हैवानात [जंगली जानवर] , जमादात और नबातात और किसी क़दर इंसान था। तीसरे दर्जे में वह इंसान बशक्ल इंसान है। अभी तक इंसान-कामिल नहीं बना।

हर तीन हालतों के तबादिले में उसको मौत का ज़ायक़ा चखना पड़ा है और नयी ज़िन्दग़ी के खुशग़वार मरहलों से गुज़रना पड़ा है। अभी इसी ज़िन्दग़ी में "इंसान कामिल" बनने के लिए न मालूम कितनी सीढ़ियाँ मौत और ज़िन्दग़ी की तय करना बाक़ी हैं। उस वक़्त तक यह 'इस्तरारी' [दैहिक] जिसको मामूली मौत कहते हैं न आ जावे। इंसान कामिल बनने के लिए हमको किसी चोले [देह] में मरना है और वह मौत से पहिले मरना है।

ज़रूरी है कि हमको मौत-मामूली [दैहिक मृत्यु] के बाद 'लतीफ़तर' [subtlest] और रोशनतर [most lightened] क़ुर्रए-तबक़ात [योनियों की उपास्थि] में दाख़िल करना बाक़ी है और न मालुम कितने ऐसे तबक़ात के परत-दर-परत हमको अलहदा करना है। क़ल्ब इसके कि हम इंसान कामिल बनने और उन मदारिज़ [of stages] का ज़िक्र करें और मुफ़स्सिल [स्पष्टीकरण करने वाला] बयान करें, यह बात तय कर लेना चाहिए कि यह उतार-चढ़ाव, ठहराव, आना-जाना है क्या भेद ? क्योंकि अगर हम एक वक़्त में एक ही साथ गहराई से ऊंचाई में चले जाने की हिम्मत करें तो ख़ौफ़ है कि मबादा [ऐसा न हो कि] हमारा दम इस इत्तफ़ाक़िया तबदीली से फूल जावे या घुट जावे इसलिए ठीक यह है कि हम ज़रा दम ले लेवें और सस्ता [rest] लें ताकि आगे कमर हिम्मत बाँधने का हौंसला हो जावे।

इस चलने और रुकने या आगे बढ़ने और ठहर जाने से उम्र वक़्त तक तो हम सिर्फ इस नतीज़े पर पहँच सकते हैं कि हम किसी मंज़िल पर पहँचने के लिए रास्ते में हैं। दर्मियानी मंज़िलें हमारे ठहराव और सस्ताने और आगे बढ़ने के लिए मुक़ाम और मंज़िलें हैं इसके सिवाय कुछ नहीं और फिर आगे रास्ता है और चळचळाव है।

रास्ते में अपने आप को दरिंदों और चोरों और ठगों से महफ़ूज़ रहने, सर्दी-गर्मी और दूसरी तकलीफों से बचने के लिए ऐसी तदबीरें इख़्तियार करना होतीं हैं ताकि रास्ता खोटी [सदोष = vicious] न हो जाय और मंज़िल-मक़सूद तक कभी न कभी दाख़िला हो जावे। पस् रास्ता, दर्मियानी मंज़िलें और दुनियाँ भर की तमाम ऐसी तदबीरें और कोशिश जिसके ज़रिये से महफ़ूज़ रह कर आख़िर मंज़िल नसीब हो जावे, मजहब और पंथ कहलाते हैं। यह है आपके ' मज़हब' के लफ्ज़ का जवाब और मद [item] नम्बर नौ [09] की तशरीह, हालाँकि कि काफ़ी नहीं नहीं है।

मद [item] नम्बर नौ [09] का सवाल मजहब का है ; जवाब में ज़्यादा तर लफ्ज़ 'सनातनी' और 'आर्यसमाजी' आमतौर पर लिख कर आये आये हैं। मालुम होना चाहिए कि परमात्मा मुजस्सिम ज्ञान-स्वरुप, सरापा-सुरूर [आनन्द की साकार मूर्ति], सरापा-रहमत [दया और कृपा की साकार मूर्ति] वग़ैरह है ; सिर्फ़ कमाल और पूर्णता उसी में है। बाक़ी सब नाकिस और कमज़ोर।

हज़रत इंसान में ज़हूर उस मुक़म्मल हस्ती, ऐन-इल्म [ज्ञान का स्रोत] और लाजबाल [अनश्वर, जिसका नाश न हो] आनन्द का मौजूद है, मगर कामिल नहीं। उसकी जुमला सिफ़त का अंश या हिस्सा या परतौ का ज़हूर भी शामिल है मगर अक्सी [प्रतिबिम्ब]। इसी को कहा गया है कि खुदा ने इंसान को अपनी शक्ल पर पैदा किया है - "पिण्डे सो ब्रह्माण्डे" यानि जो कुछ आलम-कबीर में है उसका अक्स आलम-सगीर में हस्ब-इस्तेदाद और मुनासिबत मौजूद है।

पस् उसकी रहम की सिफ़त में हमको अकेला नहीं छोड़ा है कि महज़ अपनी क़ुव्वत और कोशिश पुरुषार्थ से तरक़्क़ी करे और मुकम्मिल बने। हमारे पहिले पैदा होने से उसका यह रहम और अदल [तर्क-युक्त] है कि जुमला सिफ़ात हमारे में निहायत एतदाल के साथ पैबस्त कर दी। और साथ लगा दी। और चूँकि वह कामिल नहीं थी इसलिए क़ुव्वत तमीज़ें भी अता कर दीं कि नाक़िस से क़ामिल को तमीज़ कर सकें और बदी और नेकी का फ़र्क़ दरियाफ़्त कर लें।

और फिर दरियाफ़्त करने के बाद यह अपने इरादा-अजली [अनादि काल से सम्बद्ध] से वह हिम्मत और इरादा भी मर्हमत [दया] फ़रमाँ दिया कि फ़िर नीचे से ऊपर को चढ़ सके या ऊपर से नीचे की तरफ़ गिरने से अपने आप को बचाये रक्खे। इस रहमत की सिफ़त ने यह भी फ़र्क़ नहीं रक्खा कि काफ़िर और मूमिन के दरम्यान कोई तमीज़ का ख़त खींच दे। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, हवास-जिस्म, आज़ा- तंदरुस्ती, जुमले-अस्वाब, परवरिश, ग़िज़ा, पानी, हवा वग़ैरः पहिले से मुहईय्या कर दी। और फिर पैदाइश के वक़्त बच्चे को फ़ित्रत- सलीम [सहनशीलता की प्रकृति] अता फ़रमाई, यह उसकी रहमानियत है, जिसको दयालुता कहते हैं ; जो हमारे पैदा होने से पहिले हमारी परवरिश के लिए मौजूद की गयी और चाहें किस क़दर भी हम गुमराह हो जायँ मगर यह हक़ूक़ जो आम हैं वापस नहीं लिए जाते हैं।इसके बाद जब हम अपनी दुनियाँ अपने आप बना लेते हैं, अपना दिल, अपनी अक़्ल, अपनी आदत में खुद तबदीली पैदा कर लेते हैं, फ़ित्रत-सलीम से जुदा हो कर फ़ित्रत-सानिहः [मुसीबत या दुर्घटना] पैदा कर लेते हैं, तो हम खुद अपने 'पैरों पर कुल्हाड़ी' लगा लेते हैं। और हमेशा मुसीबत के शिकार रह कर गुमराह हो जाते हैं, हमेशा के लिए मौत की गहरी ख़ंदक़ में जा गिरते हैं। लेकिन उसकी सिफ़त-रहमत, जिसको हम कृपा कहते हैं, हमेशा साथ-साथ रहती है। अगर हम 'तमीज़ी-क़ुव्वत' से आगाह हो कर फ़िर अपने खोये हुए रास्ते को तलाश करते हैं, अफ़सोस करके माफ़ी चाहते हैं और तोबा करते हैं, मगर सच्ची, तो फ़िर उसकी कृपा से एक 'लहर' और 'मौज' उमड़ती है और सहीः रास्ते पर ला कर खड़ा कर देती है।

अगर हम सच्चे दिल से तौबा और प्रार्थना करते हैं तो उसकी सिफ़त-कृपा हमको शाहे रह क़ामयाबी पर दुबारा ला कर खड़ा कर देती है।

चूँकि यह सब सिफ़ात और सिफ़त-रहमानी-रहीमी, क़ुव्वत-तमीज़ी, क़ुव्वत-इरादी वग़ैरह हमारी पैदायिश से 'क़ब्ज़ः' [अधिकार या गिरिफ़्त] और उसके बाद, और मौत के बाद भी हमारे साथ लगी रहती है, और हमको क़ाबू और इख़्तियार नहीं कि इनसे हम अलग भाग कर जा सकें। इसलिए यह हमेशा से हैं और हमेशा रहेंगी, और इसी वास्ते उनको "सनातन" कहते हैं और चूँकि हम उसको इख़्तियार करने के लिए निहायत दर्ज़ा मज़बूर हैं और अलग नहीं भाग सकते, इस लिए उनको धर्म कहते हैं।

यह लफ्ज़ "धारणा" से निकला है, जिसके मानी हैं इख़्तियार करने के। ऐसी शै जिसको हमेशा से इख़्तियार करने पर मजबूर हैं और हमेशा तक इख़्तियार किये रहना पड़ेगा ; "सनातन धर्म" कहलाता है। इसमें दुनियाँ के जुमला [कुल] मजाहिब, पंथ और धर्म आ सकते हैं। कोई

सम्प्रदाय, मजहब, पंथ, मिल्लत, तरीक़ा इससे अलहिदः हो ही नहीं सकता।

अलबत्ता एक बात क़ाबिल ग़ौर रह गयी है वह यह है कि आप को मालूम है कि दुनियाँ आलमे-अस्वाब है। इसका जाहिर भी है, बातिन भी, मग्ज़ [बीज] भी है, पोस्त [खाल, त्वचा] भी है, जात [अस्तित्व] भी है, सिफ़ात [गुण] भी है, असल भी है और साया भी, अंदर भी, बाहर भी, रोशनी, तारीक़ी, नेकी, बदी, जलाल, जमाल, तश्बीह-नज़ीर, आलमे कबीर, आलमे सग़ीर, परा और अपरा, वशिष्टि और समिष्टि, रहिमान और शैतान।

जो आदर्श, आइडियल, मक़सद, तमन्ना, ज़िक्र व फ़िक्र दर्स [पढ़ना] व तद्रीस [पढ़ाना], इल्म व शग़ल, जद्दोजहद, ज़ात [अस्तित्व] की तरफ़ माइल कर दे और मंज़िले मक़सूद तक पहुँचा दे और रास्ते में रुकावट न डाले, वह ही 'सनातन धर्म' है। क्यों कि ज़ात से उसका ताल्लुक़ है, और ज़ात लाजवाब और अब्दी [भक्ति-भावना से पूर्ण] और अज़ली [सृष्टिकाल के समय का] है।

और जो आदर्श वग़ैरह [मुतज़क्करः बाला] तदाबीर रस्ते में रुकावटें डाले और गुमराही के ख़ंदक़ में गिरा दे और आख़िरकार महाप्रलय या क़यामते-कुबरा में जीव की वापसी का सुझाव की असल ज़ात में स्वाभाविक दाख़िला कर दे वह सिफ़ाती [वह दोष या गुण जो किसी के स्वभाव में अस्थायी रूप से हो] है और सिफ़ात [सिफ़्त = किसी चीज़ का गुण] से उनका ताल्लुक़ हो। यह भी सनातन-धर्म के मातहत है, क्योंकि नूर और तारीक़ी [अन्धकार] दोनों हमेशा साथ-साथ हैं। सिफ़ात की दो कैफ़ियतें रजोगुण और तमोगुण यानि नफ़्स-अम्मारा और लव्वामा देर में राह-रास्ते पर लाने वाली तहरीक़ है लेकिन सिफ़ात की एक क़ैफ़ियत सतोगुण नफ़्स मुतमइय्यना से है जो जल्दतर अपने मत्लूब [जिसकी इच्छा की जाय] तक ले जाती है। यह नफ़्स मुतमइय्यना तरीक़ा 'सनातन-धर्म' ज़ाती और सिफ़ाती के दर्मियान बर्ज़ख [परस्पर विरोध रखने वाली दो चीज़ों के बीच की तीसरी चीज़ जो दोनों से संपर्क रक्खे, बन्दर जो मनुष्य और पशु के बीच 'बर्ज़ख' है।] है। पस् ज़ाती [व्यक्तिगत] सिर्फ़ 'सनातन-धर्म' को माना गया है। और सिफ़ाती [वह दोष या गुण जो किसी के स्वभाव में अस्थायी रूप से हो] को मना किया गया है। हालाँकि दूसरे तरीक़े वाले भी किसी न किसी तरह और कभी न कभी उसके दीदार से मुश्रिफ़ [ज्ञाता] होंगे। लेकिन "हर कि दाना कुनद कुनद नादाँ - लेक वाद अज हज़ार रुस्वाई।"

लफ्ज़ 'आर्यसमाजी', 'सनातन-धर्म' की मद में ख़्वामख़्वाह आ जाता है। रहा यह कि मतभेद, वह दूसरी शै है। इसकी तफ़्सील आयन्दा करेंगे। 'आर्यसमाजी' से मतलब महज़ मुल्क़ 'आर्यावर्त' के ताल्लुक़ की वजह से नाम दिया गया है।

आज-कल जिसको 'सनातन - धर्म' कहते हैं, न वह 'सनातन-धर्म' है और न आज-कल का 'आर्य-समाज' का मतलब 'आर्य-समाज' ही है।

इस्लाम के मानी हैं - ऐसा रास्ता जिस पर सलामत रब्बी [ईशरीय या खुदा की तरफ़ से] हो, एतदाल हो, और ईमान यानी विश्वास व ऐतक़ाद मुसल्लम [सर्वमान्य, समग्र] हो और मुक़म्मिल हो। अब ईमान यानी ऐतक़ादात और विश्वासों की तफ़्सील यह है कि चँद उमूर [अम्र = कार्य या विषय का बहुवचन अर्थात - कार्य-समूह, समस्याएँ] ईमाने मुज्मल [संक्षिप्त, सार-रूप] और चन्द उमूर ईमाने मुफ़स्सल [विस्तारपूर्ण, स्पष्ट] के तहत में आ गए हैं, जिसके अमल में लाने से दर्मियान के रास्ते में और एतदाल पर रह कर लोक और परलोक की मंज़िलें तय हो कर जल्दतर उस मंज़िल-मक़सूद को हाँसिल लेना है। इसकी तफ़्सील पर इस वक़्त बहस नहीं की जा सकती है आइन्दा अगर ज़रूरत होगी तो इस पर रोशनी डाली जावेगी।

इस वक़्त तो खाना [item] नंबर नौ [09] की सराहत [निर्दिष्ट] दरकार थी। मैं उम्मीद करता हूँ कि किसी हद तक हो गयी होगी।

अब खाना [item] नंबर दस [10] में मत-भेद [मत-मतान्तरों का रहस्य] और अक़ायद [विश्वास] के इख़्तिलाफ़ात [मतभेद = discord] का ज़िक्र है।

यह तो मुज्मलन [in brief] कहा जा चुका है कि पमात्मा ने आदि सृष्टि में या अव्वल इंसान में अपने सिफ़ात [virtues / qualities] कामिला [abilities] से अक्सी [pertaining to reflection] तौर पर सिफ़्त के हिस्से मरहमत [अनुग्रह पूर्वक = favoured] फ़रमाये, लेकिन वह बहुत एतदाली [abstinence] क़ैफ़ियत पर थे और तजर्रुद [act of living in solitude or celibacy] और तबरीद [a kind of cooling and refreshing drink] की हालत में थे। इसके बाद ही दूसरी नस्ल [dynasty] से पुरुष और प्रकृति के संयोग और मुरक़्क़ब [compound] रचना के ताल्लुक़ से इफ़रात [abundance] और तफ़रीक़ [वर्गीकरण = classification] की नौबत पहुँची। [तशरीह = exposition तलब = demand] और फिर इसका तसल्सुल = sequence / order] नामुतनाही [insufficient] के साथ ऐसी तरक़ीब किवाम [a kind of jelly mixed with tobacco] की बिगड़ गयी कि असलियत का उलट-फ़ेर हो गया और असल को नक़ल से तमीज़ करना मुश्क़िल हो गया। या यों ख्याल कीजिये कि हज़रत इंसान जमादात [solid inorganic substances], नबातात [vegetation], हैवानात [beasts] की क़ैफ़ीयत [विवरण = details] से गुज़रते हुए आये हैं। इसलिए उनमें

सबसे ज़र्रात [particles] और क़ैफीयात [state of affairs] ख़िलअत-मिळत [nature] हो कर निज़ाम [structure] जिस्म व जान के तरक़ीबी किवाम के अजज़ा [components] का दरियाफ़्त करना उस वक़्त तक मसला लायनहल हो चुका है कि जब तक यह सब सिफ़ात और कैफ़ियात, इख़लाक़ी हालत और एतदाल की शक्ल पर न आ जायँ और उस वक़्त तक इत्मीनान की हालत और सहीः शीशे का दरियाफ़्त कर लेना मुश्क़िल है।

बच्चे के पैदा होते ही उसकी आदत और जज़्बात ज्वार-भाटे के मिस्ल हैं। चूँकि उनमें नक़ल करने की सलाहियत का माद्दा मौजूद होता है इसलिए उसका पहिला स्कूल उसके माँ-बाप का घर [परिवार] है और माँ उसकी पहली इस्लाह [improvement] करने वाली और उस्ताद, बाप, रिश्तेदार, सोसाइटी के जो अमल होंगे उसी को बच्चे नकल करते हैं और वैसा ही उनका आइन्दा दिल और दिमाग़ बनता है। दूसरा मदरसा, स्कूल और तामिलगाहें हैं, जहाँ उलूम [Arts & sciences] ऐतक़ादात - आदात और अख़लाक़ की मुख़्तलिफ़ तौर पर तालीम होती है। यहाँ नक़ल, किताब, तजुर्बा बाहिरी मुशाबहत [similarity] पर तालीम का इनहसार [इन्हिसार [encirclement] है। यहाँ उसकी क़ल्ब और अक़्ल और नफ़स [incoming and outgoing breath] की तालीम ज़ाहिरी किताबों और लेक्चरों से होती रहती है। इन मुख़्तलिफ़ ताल्लुक़ात आ असल सबब सिर्फ़ इस उसूल से ख़ाली नहीं हैं कि बच्चा क़मज़ोर है, नाक़िस [faulty] है, नामुक़म्मिल है।

उसकी कमज़ोरी उसका नुख़्स दूर करना है और कमाल हाँसिल कराना है। नुख़्स और कमज़ोरी उसमें किसी दूसरी हस्ती के मुक़ाबिले में है। और उसकी तफ़्सील यह है कि इंसानी पिण्ड [आलम सग़ीर = small world] है, जो नक़ल है अपने ब्रह्माण्ड यानि 'आलम-कबीर' की और 'आलम कबीर' नक़ल है अपनी असल ज़ात की। [तश्रीह तलब = necessity of explanation] गोया कि इन्सान आलमे कबीर के मुक़ाबिल कमज़ोर और नाक़िस है। कमज़ोरी और नुक़्स दूर करने के लिए जद्दो-जहद है। तालीम और तदरीस [तद्रीस = act of education] का सिलसिला है। ज़िक्र, [Remembrance of God] फिक्र, [Meditation] मुराक़बः [act of uniting with the God, divine contemplation] व राब्ता [रबितः = Meditation on the figure or presence of the Spiritual Master] के समान है।

अगर यह कमज़ोरी दूर गयी तो नुक़्स [बुराई = fault, defect] जाता रहा। कमज़ोरी और नुक़्स यह है कि एतदाल [abstinence] की क़ैफ़ियत कम हो जाय। इफ़रात [abundance] और तफ़रीक़ [division] पैदा हो जाय। तश्रीह [exposition] तलब - नुक़्स और कमज़ोरी या तो

[01] आनन्द में है, [02] इल्म [ज्ञान] में, [03] दवाम [नित्यता = perpetuity] बक़ा [शाश्वत या अमर होने का भाव = immortality] की ख़्वाहिश। सरूर, इल्म, बक़ाए दवाम की ख़्वाहिश हर इन्सान में है और ख़्वाहिश का सबब यह है कि कमज़ोरी है। इसको दूर करने के लिए तमाम दुनियाँ भर की तरकीबें हैं।

इंसान की बचपन की तालीम से ले कर तमाम कॉलेज की तालीम और तमाम फ़लसफ़ा और साइंस के मरहले तय करने-कराने के बाद भी कोई दावा में यह इक़रार नहीं कर सकता है कि उसकी सेरी [तसल्ली = patience] हो गयी, आनन्द व ख़ुशी की अब ज़रूरत नहीं, और इल्म [ज्ञान] के हुसूल [फ़ायदा = profit] से वाज़ाही [clarity] हो गयी, ज़ियादा ज़िंदगी की अब ख़्वाहिश नहीं। मैं कह सकता हूँ कि यह ख़्वाहिश कभी कम होने पर नहीं आती, बल्कि मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की। तो इंसान आख़िरी मरहलों [मंज़िलें = storeies] को तय करके और बेबस हो कर ऐसा बेबस और मुज़्तरिब [बेचैन = nervous] हो जाता है कि क़दम टिकाने की जगह तलाश करता है और जगह नहीं मिलती, ख़्वाब में भी चैन नहीं, परेशान करने वाले ख़्वाब पीछा नहीं छोड़ते और ख़्वाब सेहत यानि ग़फ़लत का ख़्वाब तारी करना चाहते हैं। यह नशाबाज़ों की इब्तिदा और ईजाद इस हबिस में हुयी है। अब आदत बन कर दूसरा शग़ल हो गया [pastime] हो गया। मसनूई [बनावटी = artificial or fake] सरूर की क़ैफ़ियत तारी करने को और ज़रा देर के लिए बेचैनी दूर करने को शराब, भांग, धतूरा, चरस और अफ़यून [opium] का इस्तेमाल रायज [जिसका रिवाज़ हो = prevalent] हो गया मगर क्या इससे असल मक़सद निकला ? जो नतीज़ा हुआ और होता है वह ज़ाहिर है।

पस् यह ख़्वाहिश हुयी कि असली क़ैफ़ियत नींद और नयी खुशी की पैदा करना चाहिए और उसकी खोज में चल पड़ें।

इस बेचैनी को दूर करने को और क़ल्ब की इस्लाह [improvement] करने को कर्म-काण्ड का मस्ला पहिले-पहिल ऋषियों ने अख़्तियार किया। और सबसे पहिले वेदों की तालीम में सिर्फ़ कर्म करने को ही बतलाया गया और मुक़द्दम [leading] समझा। कर्मकाण्ड में भी नुक़्स साबित हुआ।

इसके बाद ऋषियों ने उपनिषदों में कर्मकाण्ड की मुखालिफ़त शुरू की और कर्म को अज्ञान और अंधकार ठहराया क्यों कि कर्म में यहाँ तक ख़राबी पैदा हो गयी कि क़ुर्बानी वग़ैरह की मज़मूम [अश्लील = obscene] रस्में बिला समझे-बुझे रायज़ [prevalent] हो गयीं।

उपनिषदों में क़ुर्बानी के मसले को बहुत अच्छी तरह समझाया गया है, जो ज्ञान से ताल्लुक़ रखता है और यहाँ से ज्ञान-काण्ड की इब्तिदा हुयी। अलहिदा पर्चा - 'A' देखो।

'A'

[01] सबसे पहिले वेदों की तालीम, जिसमें सिर्फ़ कर्म करने को ही बताया गया है।

[02] इसके बाद ऋषियों ने उपनिषदों में कर्मकाण्ड की मुख़ालिफत शुरू की और 'कर्म' को अज्ञान और अंधकार ठहराया, क्यों कि कर्म में यहाँ तक ख़राबी पैदा हुयी कि सिर्फ़ 'क़ुर्बानी' वग़ैरह की रस्म आ गए। यहाँ से हिन्दुओं का 'ज्ञान-काण्ड' शुरू हुआ है । चूँकि उपनिषदों में मुख़्तलिफ़ क़िस्म की बहस की गयी थी इसलिए आपस में इत्तिफ़ाक़ नहीं हुआ, क्योंकि ख़यालात में इत्तिफ़ाक़ नहीं हुआ। इन तफ़ावुत [फ़ासला = difference] के दूर करने के लिए बादरायन ऋषि ने अपने 'वेदान्त सूत्र' में सब उपनिषदों के ख़्यालात की एकता दिखलाई। 'वेदान्त सूत्र' का दूसरा नाम 'ब्रह्म सूत्र' है, जिसके ख़ास रचनाकार श्री वेदव्यास जी हैं। इसके बाद श्री शंकराचार्य जी महाराज हुए, जिन्होंने इसको और भी फ़रोग़ [प्रकाश = light] दिया। बाद में एक शताब्दी के बाद गोपालाचार्य के सिलसिले में एक और शंकराचार्य पैदा हुए। यह वेदांत के सबसे बड़े हामी [स्वीकारोक्ति = to give assent] हुए हैं।

उपनिषदों का ज्ञान ज़्यादातर तर वैराग्य यानि तर्क के मुताल्लिक़ है। इन में वैदिक तरीक़ यानि शग़ल व अमल का ज़िक्र ही नहीं किया गया। इसके बाद बौद्ध धर्म हुआ। महाराजा ऋषभ देव जी ने क़ुर्बानी की रस्म बंद की।

बौद्ध धर्म के जवाल [उतार = fall] के बाद मुख़्तलिफ़ सम्प्रदाय चले। ब्राह्मणों ने 'कर्मकाण्ड' को मुक़द्दम [प्रधान या मुख्य = leading] क़रार दिया और मआश [जीविका = means of livelihood] का ज़रिया क़ाइम किया। इस फलसफ़ा का नाम "पूर्व मीमामांसा" यानि 'कर्म सूत्र' रक्खा है। इसकी इब्तिदा जैमिनी ऋषि से हुयी। क्षत्रियों ने ज्ञानकाण्ड को अच्छा समझ कर अपना ज़रिया मआद [परलोक = heaven] का क़ाइम किया। ज्ञान, तलाश को कहते हैं। इसका नाम यानि ज्ञान की तलाश और ज्ञान के फ़लसफ़े का नाम "उत्तर मीमांसा" रक्खा। इब्तिदा [प्रारम्भ = origin] व्यास ऋषि ने की। इसका नाम 'ब्रह्म सूत्र' रक्खा।

वेदांत, ज्ञान की तलाश का पहिला मरहला [पड़ाव = halting place] है। पहिले मरहले को

"उत्तर मीमांसा" कहते हैं और पिछले मरहले को "वेदांत"। शंकराचार्य जी ने यह कहा है कि हर एक धार्मिक संप्रदाय के दो कुदरती हिस्से होते हैं। पहिला 'तत्व-ज्ञान' [इल्म हक़ीक़त] दूसरा 'आचरण' यानि अमल [आचरण = conduct] । पहिले में 'पिण्ड' [निज़ामे जिस्म] के ख़याल से परमेश्वर के स्वरुप का फ़ैसला करके 'मोक्ष' [release from rebirth in the world] का फ़ैसला किया जाता है ; दूसरे में इस अम्र [विषय = subject] पर ग़ौर किया जाता है कि मोक्ष के लिए और उसके हुसूल [फ़ायदा = profit] के लिए क्या ज़रिये और तरीके हैं। यानि इस दुनियाँ में इंसान को किस तरह बर्ताव करना चाहिए।

इनमें से पहिली बात यानि इल्म हक़ीक़त [तत्व ज्ञान की नज़र] से श्री शंकराचार्य जी का यह अक़ीदा है [मन में होने वाला दृढ़ विश्वास = firm belief] कि अव्वल [मैं और तू] यानि इंसान की आँख से नज़र आने वाला सारा जगत, या यूँ कहो कि दुनियाँ की तमाम चीज़ों की कसरत सहीह नहीं है। इन सब में एक ही शुद्ध और नित् पारब्रह्म भरपूर है, और इसी माया से इंसान की इन्द्रियों को यह कसरत मालुम हुआ करती है।

दोयम, मनुष्य की आत्मा ही दर-हक़ीक़त पारब्रह्म स्वरुप है। सोयम, आत्मा और पारब्रह्म की एकता [वहदत = oneness, unity] का पूरा इल्म यानि इल्म हक़ीक़ी होने के बग़ैर कोई भी मोक्ष नहीं पा सकता। इसी को 'अद्वैतवाद' कहते हैं। इस मसले का यह मक़सद है कि एक शुद्ध, बुद्ध, नित्य, मुक्त पारब्रह्म के सिवाय दूसरा कोई भी आज़ाद और हक़ीक़ी आज़ाद चीज़ नहीं। इसके अलावः और भी ऐमाल के नुक़्तए ख़याल से एक और ऐतक़ाद भी है। वह यह है कि अग़रचे चित्त की शुद्धि के ज़रिये ब्रह्म और अपनी आँख का ज्ञान हाँसिल करने के लिए स्मृति ग्रंथों में बयान करदा [किया हुआ = done] गृहस्थ आश्रम के फ़रायज़ की अदायगी निहायत ज़रूरी है। लेकिन इन फ़रायज़ की अदायगी हमेशा ही न करते रहना चाहिए क्योंकि इन सब को तर्क करके आख़िर में सन्यास लिए हुए बग़ैर मोक्ष नहीं मिलता। इसकी वजह यह बताते हैं कि कर्म और ज्ञान अँधरे और उजियाले के मानिन्द एक दूसरे से मुतज़ाद [परस्पर विरोधी = conflict] हैं। इसलिए जुमले क़िस्म के ख़ाहिशात और ऐमाल के तर्क के बग़ैर ब्रह्मज्ञान की तकमील [पूर्णता = completeness] नहीं हो सकती। इस मसले को निवृत्ति-मार्ग या राहे-तर्क भी कहते हैं। सब कर्मों को तर्क करके ज्ञान ही में महब करने को सन्यास-निष्ठा या ज्ञान-निष्ठा कहते हैं। इस मसले का "महावाक्य-तत्वंमसि" कहते हैं।

तजर्बे से यह साबित हुआ है कि कर्म और ज्ञान के दर्मियान के मराहिल हैं और जब तक

अधिकारी इनमें से न गुज़रेंगे तब तक ज्ञान का अनुभव सख़्त कठिन होगा, इसी लिए और [अन्य] कई दर्शनों की इब्तिदा हुयी। मुख़्तलिफ़ दर्शनों के मानने वाले अपने-अपने दर्शन को मुक़म्मिल और उत्तम समझने लगे और आगे बढ़ने की ज़रुरूरत महसूस नहीं की। उपनिषदों ने इशारा किया। बौद्ध ने उसको अमली जामा पहिनाया। शंकराचार्य ने विचार की अहमियत जिहननशीं [made intelligible] कराई। आख़िर को ज्ञानियों की ज़ियादातर तादाद ज़बानी जमाखर्च ही में पड़ी रहती है।

मायावाद, मर्मवाद, प्रमाणवाद, मिथ्यावाद, विरतवाद [autism] वग़ैरह इसकी बेशुमार शाखाएँ हैं। और आख़िर में मज़बूर हो कर इन सब को "उत्तरोचनी ख्याति" यानि लाक़ाबिल बयान उसूल मौजूदा के पनाह लेनी पड़ी। और जिस क़दर बहस-मुवाहिशा का ज़ोर और दलील और हुज्जत का ज़ोर होता है, यहाँ आ कर ख़त्म हो जाता है।

वेदान्ती कहते हैं कि यह जगत मिथ्या है। 'मिथ्या' कहना ही खुद 'मिथ्या' है क्यों 'मिथ्या', नफ़ी [न होने का भाव = nothingness] का कल्मा है। 'नफ़ी' को 'अस्वात' [ध्वनियाँ, स्वर-समूह] में लाना सख़्त ग़लती है।दूसरे यह कि जब सिद्धान्त और उसूल यह ठहरा कि एक के सिवाय दूसरे की हस्ती नहीं है तो फ़िर कोई दूसरा कौन है जो उसको सहीह करके दिखाता है, और इसका इम्कान [हो सकने की अवस्था या भाव, सम्भावना [possibility] कैसे है। तौहीद [एकेश्वरवाद] की दलील खुद रद्दे-तौहीद है । तौहीद का साबित करना 'दो-पने' के गहरे ख़ंदक़ में गिराता है। जहाँ दो होते हैं वहाँ एक-दूसरे की सुनता, एक दूसरे को कहता और जहाँ दो नहीं वहाँ उनका कहना-सुनना, समझना-जानना कैसे मुमकिन है।

यह जगत साफ़ नज़र आ रहा है, हम इसको बरत [usage] रहे हैं इसका बुतलान [निदान =extinguishment] बातों से तो होता नहीं, और जब लोग यह सवाल करते हैं कि क्यों भासता [आभास = inkling] है तो जवाब यह दिया जाता है कि माया के मर्म की वजह से। बहुत अच्छा ! फ़िर 'माया' क्या है ? इसका जवाब है कि यह बाँझ [barren, a woman or a cow] के लड़के, आकाश के फूल और सुरख़ाब [चकवा ; सुरख़ाब का पर लगना = अनोखा पैन होना, कोई विलक्षणता होना] से मुशाबा [समान = alike] है।

यह सब सहीह लेकिन फ़िर यह सब मिथ्या ही मिथ्या है। फ़िर मिथ्या के साबित करने में मिथ्या शै [वस्तु, पदार्थ] की मुशाबहत [मिलता-जुलता होने का भाव] क्यों दी जाती है, फ़िर यह कहा जाता है कि यह जगत भासता किसको है। इसका जवाब वेदान्ती नहीं देते। अगर वह कहें

कि ब्रह्म को भासता है तो ब्रह्म के अलहदा और कोई हस्ती उन्हीं की दलील से साबित हो जाती है। जब जवाब नहीं बन पड़ता "उत्तरोचनी" यानि लाक़ाबिल बयान कह देते हैं। असल वेदान्त को समझने के लिए 'अनुभव-ज्ञान' की ज़रूरत होती है जो इंसान में मौजूद है, जिसको 'अक़्ल-कुल्ली' कहते हैं। अक़्ल-जुज़वी [बहुत अल्प या सामान्य बुद्धि] से यह समझ में नहीं आता, वहम [मिथ्या धारणा = misconception, delusion] का पर्दा पड़ा हुआ है, और इस तरह अक़्ल-जुज़वी [बहुत अल्प या सामान्य बुद्धि] के उधेड़-बुन से दूर नहीं होता। जिस तरह हम को हर शै का इल्म साधन से हाँसिल होता है, वैसे ही साधन करने से जब वहम मिट जाता है, हक़ीक़त की समझ खुद ब खुद आ जाती है। इब्तिदायी मरहले [प्रारम्भिक पड़ाव] में साधन की तालीम ज़रूरी क़रार दी जावे और ब-तदरीज [क्रमशः, धीरे-धीरे] उसको अमल [आचरण] और शग़ल [कार्य] के सिलसिले में अनुभव हो जावे यानि कश्फ़ [प्रकट होना] हो जावे तो फ़िर वेदांत का मसला सहीह है। वगैरः वगैरः।

बौद्धों के फिलसफ़े में एक लफ्ज़ 'शून्य' आया है जिसको संत लोग 'शून्य' या 'महाशून्य' कहते हैं। इस शून्य का तर्जुमा ग़लती से खुलू [ख़ाली] किया गया है।

जब बौद्धों ने यह कहा कि यह जगत शून्य से पैदा हुआ है। तो शंकर स्वामी ने हक़ीक़त में उनको तंग कर दिया कि जब कोई शै खाली है तो फिर उसके ख़ाली होने का इल्म किसे और किसको हुआ, बौद्ध सोचने लगे। तब तक मज़ाक़ मज़ाक़ में उनको ला-जवाब कर दिया और अपनी फ़तह का एलान कर दिया।

इसी 'शून्य' का तर्जुमा सूफ़ियों ने 'अदम नेस्ती' किया है। लेकिन अदम नेस्ती नहीं है। अदम [हीन, बिना या अभाव] की भी हस्ती है। इसलिए उसका सहीह तर्जुमा नहीं हो सकता।

इसके बाद 'मायावाद' और 'अद्वैत' और 'सन्यास' की तल्क़ीन [दीक्षा देना, गुरु मन्त्र देना, पीर का मुरीद को अमल आदि पढ़ाना] करने वालों के बाद श्री रामानुज आचार्य पैदा हुए। श्री शंकराचार्य और श्री रामानुज आचार्य के उसूल में बरायनाम और मामूली फ़र्क़ है। सिर्फ़ बाहमी ज़िद और हठ की वजह से ख़राबी पड़ गयी है। वर्ना दोनों ही तौहीद के क़ायल हैं। शंकर स्वामी कहते कि जो है चेतन है और वह अद्वैत है। और वह्दत [एकत्व, एकता, अद्वैत-भाव] के सिवाय कुछ नहीं।

रामानुज स्वामी ने यह बतलाया कि अद्वैत और अहिदियत तो है लेकिन यह अद्वैत-पना जड़ और चेतन दोनों का पहलू लिए हुए है। अगर वह इससे खाली होता तो फ़िर जगत में जड़ [माद्दा] और चेतन का ज़हूर न होता।

पैदाइश और सृष्टि एक सी नहीं होती, और यह दोनों मिले-जुले हुए मटर के दोनों दानों और टुकड़ों की तरह एक हैं। जब वह्दत की जानिब नज़र है तब 'दो' नज़र आते हैं और जब एक की तरफ निगाह है तो फिर 'एक' के सिवाय कुछ भी नहीं। यह फ़र्क़ कुछ फ़र्क़ नहीं कहलाता। असलियत पहले मटर के टुकड़ों की तरह मिली-जुली थी और जब उनमें अलहदगी हो गयी तब एक 'पुरुष' दुसरी 'प्रकृति'। श्री रामानुज जी यह यक़ीदा कहते हैं कि - "मसला हमा ऑस्त" [अद्वैत झूठ है] और माया [माद्दा] मिथ्या है ; यह ठीक नहीं है।

जीव, जगत और ईश्वर यह तीनों अन्सुर [मूल तत्व = element] अग़रचे मुख़्तलिफ़ हैं तो भी जीव चित [जी इल्म] और जगत अचित [बेइल्म] दोनों एक ही ईश्वर के शरीर हैं। इस लिए यह भी इल्म और बेइल्म लतायफ़ ही से और फिर जी-इल्म [जानकारी रखने वाला] और बेइल्म क़साफ़त [भद्दापन = awkwardness] से दुनियां की पैदाइश हुयी है। इसलिए वह यह फ़ैसला करते हैं कि तत्व-ज्ञान यानि हक़ीक़त की नज़र से अद्वैत और अमली नुक़्ते-निग़ाह से भी हमा अज ओस्त दुरुस्त हैं। यानि भक्ति या उपासना की राह ठीक है। शग़ल और अमल कोई आज़ाद फ़ेल नहीं हैं । यह सिर्फ ज्ञान के हाँसिल करने का एक ज़रिया है। उन्होंने अद्वैत-ज्ञान के बदले विशिष्टा-द्वैत और सन्यास यानि तर्क के बदले भक्ति को क़ाइम किया है। आचार्य ने यह फ़र्क़ क़ाइम कर दिया तो अमली नुक़्ते-निगाह से उन्होंने महज़ भक्ति को ही आख़िरी फ़र्ज़ क़रार दिया और दूसरे अमल सब को तर्क बतला दिया। दोनों आचार्यों के ख़्याल का नतीजा एक ही है, वह सिर्फ़ कर्म को तर्क करके महज़ ज्ञान से ही ताल्लुक़ रखते हैं और यह महज़ भक्ति को रखते हैं। बाक़ी सब आख़िर में तर्क कर देते हैं। इस लिए दोनों ही ने तर्क-अमल किया है। एक ने महज़ ज्ञान को ले लिया और दूसरे ने महज़ भक्ति को और कर्म को आख़िर में तर्क कर दिया है।

इसकी इस्लाह [संशोधन = improvement] के लिए माधवाचार्य तशरीफ़ लाये और उन्होंने द्वैत - अद्वैत समदाय चलाये। इसकी करीब-करीब वह ही हैसियत है जो मौजूदा 'आर्य-समाज' की। इनका ख़्याल है कि 'पारब्रह्म' और जीव को कुछ हिस्सों में एक और कुछ हिस्सों में मुख़्तलिफ़ मानना एक-दूसरे के ख़िलाफ़ और वे बे-ताल्लुक़ बात है। इसके दोनों हिस्सों को हमेशा मुख़्तलिफ़ ही मानना चाहिए क्योंकि इन दोनों में मुक़म्मिल या ग़ैरमुक़म्मिल तरीक़ से

भी एक-सानियत नहीं हो सकती, इस तीसरे सम्प्रदाय को 'द्वैत-सम्प्रदाय' कहते हैं। यक़ीदा इसका यह है कि भक्ति की सिद्धि हो जाने पर कर्म करना या न करना एक सा ही है। 'ध्यानात-कर्म-फल-त्याग' - वह यह कहते है कि परमेश्वर के ध्यान यानि 'भक्ति' की निस्बत कर्म-फल का त्याग या निष्काम कर्म करना आला [श्रेष्ठ] है। इसका मतलब यह है कि महज़ भक्ति में भगवंत और भक्त 'दो' क़ाइम रहते हैं। यानि कर्म करते रहना चाहिए। लेकिन उसके नतीज़े की तरफ़ बिलकुल ध्यान नहीं देना चाहिए। निष्काम कर्म करना चाहिए।

फ़िर, इनके कई सौ वर्ष के बाद बल्लभाचार्य जी ने शुद्ध 'द्वैत' शाख की बुनियाद डाली। यह चतुर्थ संप्रदाय है, फिर 'वैष्णव' पंथ है। लेकिन जीव-जगत के मुताल्लिक़ इसका ख़्याल विशिष्ठ-अद्वैतवाद से मुख़्तलिफ़ है। यक़ीदा यह है कि 'माया' से ख़ाली-शुदा जीव और 'पारब्रह्म' एक ही चीज़ हैं। दोनों में इस लिए इनको 'शुद्ध-अद्वैत-पंथ' कहते हैं। मगर यह श्री शंकराचार्य के मानिंद यह नहीं मानते हैं कि जीव और ब्रह्म एक ही हैं। माया, परमेश्वर की इच्छा इरादा-अज़्ली [अज़्ल = पदच्युति]से तक़सीम हुयी है। यह एक ताक़त है। माया में फ़ंसे हुए जीव को ईश्वर की कृपा के बग़ैर, मोक्ष-ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए 'मोक्ष' का सबसे बड़ा ज़रिया भक्ति ही है। इस तरह यह शंकराचार्य के यक़ीदे से अलग है। इस संप्रदाय वाले ईश्वर की कृपा को "पुष्टि" [ताक़त] और पोश [परवरिश] भी कहते हैं। इस लिए यह पंथ 'पुष्टि-मार्ग' भी कहलाता है। इसका ख़्याल है कि पहले ज्ञान और फिर कर्म, और फिर भक्ति करने से काम बन सकता है। इस लिए एक तो "भगवन्त की भक्ति" और फिर खास कर तर्क फ़ेल से नियत रखने वाली 'पुष्टि-मार्ग' की भक्ति करना चाहिए। यानि 'सब धर्मों को छोड़ कर सिर्फ़ मेरी शरण में आ जा'। यानि, "राज़ी व रज़ा" और तस्लीम का तरीक़ अख़्त्यार कर। अगर कर्म करे, तो जो कर्म किया जावे, वह 'उसकी' रज़ा के वास्ते।

इसके बाद अम्बारिकाचार्य का वजूद हुआ, इसमें राधा-कृष्ण की भक्ति की अज़मत [महत्ता = dignity] रक्खी गयी है। जीव-जगत और ईश्वर के मुतअल्लिक़ अम्बारिकाचार्य का यह मत है कि अग़रचे ये तीनों मुख़्तलिफ़ हैं। फ़िर भी जीव और जगत का ब्यवहार और उनकी हस्ती ईश्वर की रक्षा पर मुनहसर [आश्रित = dependent] है और आज़ाद नहीं, और परमेश्वर ही में जीव और जगत के लतीफ़ अनासिर [तत्व = elements] रहते हैं। रामानुजाचार्य की बनिस्बत अद्वैत पंथ से इस सम्प्रदाय को तमीज़ करने के लिये इसे द्वैत-अद्वैत सम्प्रदाय कह सकते हैं।

रामानुज सम्प्रदाय के और कई पुश्त बाद स्वामी रामानन्द जी का ज़हूर हुआ, जो निस्बतन

आज़ाद-तबा थे। अब यहाँ से कबीर साहिब की सम्प्रदा शुरू हुयी है। यहाँ से संत सम्प्रदा कहलाने लगी है, जिसके मुख़तलिफ़ नाम हो गए हैं। इनके यहाँ राम-नाम की महिमा गाई गयी है। इसकी महिमा की असल हक़ीक़त 'गुरु' की मदद से हाँसिल होती है। महज़ किताबी ज्ञान से असलियत समझ में नहीं आती। यहाँ तसलीसी [त्रयी = triplit] पहलू की मद्देनज़र रखने की ज़रूरत है। [01] सतनाम, [02] सत्संग और [03] सतगुरु सतनाम है। सच्चे मालिक का जो आदर्श, मैराज या इष्टपद है, यह नाम एक तरह का कानून-क़ुदरत है जो इंसान के घट यानि बातिन में गूंज रहा है। इससे 'सुरत' यानि रूह के मेल-मिलाप से रूहानियत आने लगती है और जहाँ ज़रा भी अंदरूनी लज़्ज़त मिलने लगी, खुद-ब-खुद रूहानी बन जाता है। इसी का 'संतमत' में अभ्यास कराया जाता है। रामानंद जी का "राम-नाम" का अभ्यास जो सब जगह फैला हुआ और रमा हुआ है।

उसका नाम यानि 'शब्द' का अभ्यास ज़ुबान से। आभास का इष्ट मुख़्तलिफ़ है। वह कहते हैं - जगत में चारो राम हैं। तीन राम ब्यवहार, चौरा राम निजसार है। ताका करौं विचार -

एक राम दशरथ घर डोले। एक राम घट घट में बोले।।
एक राम का सकल पसारा। एक राम त्रिगुण से न्यारा।।
साकार राम दशरथ घर डोले। निराकार घट घट में बोले।।
बुन्द राम का सकल पसरा। निरालम्ब सब ही से न्यारा।।

तशरीह करना चाहिए - रामानुज सम्प्रदाय वाले तीन राम की उलझन में पड़े हैं, उनको चौथे राम की खबर तक नहीं है।

तीन लोक को सब कोई धावै। चौथे देव का मर्म न पावै।।
चौथा छोड़ पञ्चम चित लावै। कहै कबीर हमरे ढिंग आवै।।
तीन गुनन की भक्ति में भूल रहा संसार।
कहैं कबीर सतनाम बिन कैसे उतरै पार।।

यह राम हक़ीक़त में 'सतनाम' है। वह ही पाँचवाँ पद है। इन पाँचों के अंतर्गत [शमूल] में पञ्च अग्नि विद्या का रम्ज़ [रहस्य = mystery] छिपा हुआ है। तशरीह तलन : पाँच अग्नि, पाँच नाम की तशरीह होती है। अग्नि से मुराद - प्रकाश, नूर है। नाम से मुराद - ध्वन्यात्मिक शब्द और जात हकीकत है। अमली और इल्मी दोनों तरह की ज़िन्दग़ी की ज़रूरत है। एक से काम नहीं चलता है।

पस् इन अक़ायद में तफ़सीली मद्दात [मद = विभाग का बहुबचन] में ग़ौर किया जावे तो महज़ एक लतीफ़ फ़र्क नज़र आता है। असल मुराद तो तौहीद पर आने की है क्योंकि बिला तौहीद के असली शान्ति और सुकून क़ल्ब प्राप्त नहीं होता। तौहीद के मत-भेद बहुत हैं। अहिदीयत [इकाई, एकत्व = oneness, unity], वाहदियत [वाहिद = एक या अकेला], वहदत [वाहिद या एक होने का भाव = oneness, unity], वहदत वजूद, वहदत शहुद, जाती, सिफ़ाती ग़र्ज़ेकि हज़ारों शाखें हैं। रगड़ करने और छान-बीन से पैदा हो गयीं हैं। जैसी जिसकी पहुँच है, वैसी ही उसकी समझ है। लड़ाई और झगड़ने की ज़रूरत नहीं है। अब पन्थ और सम्प्रदायों के मुख़्तलिफ़ अक़ायद और ख़यालात को आपने खूब समझ लिया होगा कि बाज़ ने अक़ायद के लिहाज़ से तौहीद की मुख़्तलिफ़ शाखें क़ाइम कर लीं हैं। किसी ने कोई, और किसी ने कोई। और अक़ाइद के साथ जद्दोजहद और अमल व शग़ल के फ़रायज़ के अंजामदेही के वास्ते किसी ने महज़ कर्म, किसी ने महज़ ज्ञान, किसी ने महज़ उपासना और किसी ने इन तीनों को एक साथ एतिदाल के साथ पाबंदी करने का एहतमाम [कोशिश = endeavour] किया है।

श्री शंकराचार्य जी से ले कर श्री रामानंद जी तक जो अक़ायद में इख़्तलाफ़ [ख़िलाफ होने की अवस्था या भाव = opposition] रहा, उसकी तफ़सील आप सुन चुके हैं। आख़िर में श्री कबीर साहिब ने तमाम सम्प्रदायों के नुख़्स और क़वायद [क़ायदा का बहुबचन यानि ब्यवस्थाएँ = rules] और उसूलों को लिहाज़ कर के छान-बीन कर के एक फैसला यह किया कि तौहीद और तस्लीम के झगड़े इब्तिदाई हालत के मरहिले हैं। इनसे गुज़रना ज़रूरी है। मगर मक़सद तमन्ना और आख़िरी इष्ट-पद वह होना चाहिए जो त्रिगुण [सिफ़ात सलासा] से मुनज़्ज़म [संगठित = organized] और मुबर्रा [पाक-साफ़ = pure, holy, sacred] हो, वह एक है, और दो भी, और तीन भी। न वह एक है, न दो, न तीन। और वह सब है। और कुछ भी नहीं। उन्होंने तौहीद वजूदी को दर्मियानी मंज़िल क़रार दिया है और बाक़ी सब ने उसको आख़िरी मंज़िल। लेकिन कबीर साहिब ने इसको तौहीद शहूदी के दर्ज़े को बालातर क़रार दिया। तफ़सील करना चाहिए :- मख़मूर [नशे में चूर = dead-drunk] और ज्ञान के साथ खुमार की तरह।

सिफ़ात का ख़याल और उसमें लय होना, सिफ़ात ही में मंज़िले-मक़सूद हो जाता है। इसके आगे चलना चाहिए। जहाँ और लोग ख़तम करते है, वहाँ से यह शुरू करते हैं। इसी तौहीद को हज़रात मुजद्दिद अलिफ़सानी रहमत0 ने निहायत खूबी और शरहवसीत के साथ हल किया है और वह जौहर अमल और शग़ल वग़ैरह के ईज़ाद किये कि तरीक़ा पेटेन्ट हो गया।

मतभेद यानि अक़ायद में इख़्तिलाफ़ नज़र आता है, लेकिन एक ही उसूल को सिद्ध और साबित करने को यह मुख़्तलिफ़ तरीक़े अमल में आ गए हैं। असली ग़र्ज़ तो बेचैनी अजतरब [खुशी की] क़ल्ब का दूर करना और सुकून की हालत पर पहुँचना है, और यह सिर्फ़ दिल अक़्ल का हेर-फेर है और कुछ नहीं। अगर मन और क़ल्ब का नश्वानुमा [उद्भव, विकास] हो जाय और तरबियत पजीर हो कर तरतीब और क़ायदे में आ जाय तो सब काम बने बनाये हैं। दरअसल आत्मा शुद्ध और अशुद्ध दोनों में से कुछ भी नहीं, और जब आत्मा की यह हालत है तो परमात्मा की निस्बत क्या सवाल किया जाय।

ज़रूरत मालूम हो जाने पर यह बात क़ाइम करना कि मतभेद और इख़्तिलाक अक़ाइद में और अक़ाइद के साथ अमल और शग़ल के सिलसिले में तमाम मजाहिब का फ़ैसला और इज़तमाअ [इज्तिमाअ = इकठ्ठा होना, जमा होना = an act of gathering] क्योंकर हो सकता है। इसी के लिए मुख़्तलिफ़ अक़ायद के पैरोकारों के उसूल और तवारीख आप सुन चुके हैं। अब अपनी-अपनी पहुँच और अक़ल के मुवाफ़िक़ आप तस्फियः कर सकते हैं। तस्फियः [निर्णय = decision] पर पहुँचने के लिए मैं फिर इस अम्र [विषय = work] की कोशिश करता हूँ कि हर एक मत के उसूलों को फिर दोहरा दूँ ताकि मुक़ाबिला किया जा सके, और यही गर्ज़ है कि जहाँ तक मुमकिन हो सके, आप साहिबान कम से कम तस्फियः न कर सकें तो तस्फियः का ख़्याल ले कर तो यहाँ से उठें।

एक साहिब यह कहते हैं कि महज़ कर्म करना चाहिए जिसमें कि इल्म को न पहिले और न पीछे कुछ ग़र्ज़ हो। मिसलन एक बढ़ई लकड़ी पर बसूला या आरी चलाना शुरू कर दे, बिला इस ख़्याल के कि इसका क्या बनेगा ? और न दर्मियान में ख्याल आये और न बाद को। एक साहिब यह कहते हैं कि किसी चीज़ को बनाये जाने का ख़याल पहिले ही सी से ख्याल कर लेना चाहिये और हालत-मशग़ूली में कुछ ख़याल न करना चाहिए। एक यह कहते हैं कि कर्म इस तरह करना चाहिए कि पहिले से यह ख़याल कर लेना चाहिए कि बनेगा और बसूला या आरी चलाते वक़्त हर लम्हे यह ख़याल करते रहना चाहिए कि क्या बनाया ज रहा है और इसका यह नतीज़ा होगा। एक साहिब का ख़याल है कि कर्म करते वक़्त उम्मेद और नतीज़े का

ध्यान न बाँधना चाहिए, बल्कि नतीज़े को ईश्वर पर छोड़ना चाहिए। यह तरक़ीब तनहा कारआमद साबित न हुयी, बल्कि इल्म और एकसुई यानि भक्ति और महवियत की मुहताज़ रही।

अब महज़ इल्म और ज्ञानकाण्ड की जानिब आइये। एक गिरोह इसके क़ायल है कि कर्म करने की क़तई ज़रूरत नहीं, सिर्फ़ फ़िक्र और सोंचते-विचारते रहना चाहिए, उपासना की बिलकुल ज़रूरत नहीं। दूसरा गिरोह यह कहता है कि मुक़द्दम फिक्र करना और सोचना चाहिए, लेकिन कर्म को भी थोड़ा-थोड़ा शामिल कर लेना चाहिए, लेकिन उपासना की क़तई ज़रूरत नहीं। तीसरा गिरोह यह कहता है कि मुक़द्दम फ़िक्र और सोंच-विचार है, लेकिन सोंच और विचार के सिलसिले में एकसुई क़ल्ब की ज़रूरत लाहक़ होती है, इसलिए उपासना का एक हिस्सा भी शामिल कर लेना चाहिए। लेकिन कर्म करने की हरग़िज़ ज़रूरत नहीं, बल्कि गुमराही है।

यह हिस्सा तो रहा अमल और शग़ल का, अब अक़ीदा की हक़ीक़त की निस्बत ग़ौर कीजिये। एक साहिब यह कहते हैं कि जंगल नज़र आता है, लेकिन मुख़्तलिफ़ किस्म के दरख्तों की बेशुमार तादाद भी नज़र आती है, उन सब से मिल कर जंगल की एक शकल बन जाती है। अगर जंगल को एक करार दे दिया जाय तो जंगल है, वर्ना सब दरख़्त अलहिदा-अलहिदा हैं।

एक साहिब यह मानते हैं कि दीवार ईंटों की हज़ारों की तादाद से मिल कर और चूने से बनायी गयी है, वह एक है और एक नज़र आती है, लेकिन ईंटों की तरफ़ अलग-अलग निगाह ज़माने और चूना और पानी के ख़याल को साथ-साथ लाने से दूसरी हालत पैदा हो जाती है। एक साहिब का ख्याल है कि सोना से उसके मुख़्तलिफ़ क़िस्म के ज़ेबरात बनाये गए और अलहिदा-अलहिदा सूरतें उसकी हो गयीं। लेकिन दरअसल जात उसकी और हक़ीक़त सोना ही है।

फिर एक साहिब यह सिद्ध करते हैं कि समुद्र एक रूप और 'एक' नज़र आता है जो बूंदों की मज़मूआ [संग्रह = collection] है, लेकिन बूंदें आतीं ; सिर्फ़ समुद्र एक सा नज़र आता है और बूंदों का ख़याल करना पड़ता है। लेकिन बूंदों का ख़याल बूंदों की हस्ती की वजह से है। अगर उसकी हस्ती न होती तो ख़याल भी न आया होता।

अब हालत महवियत को मुलाहिज़ा फ़रमाइये। एक ने नशा किया और ऐसी मस्ती आयी कि अपनी हस्ती का ख़याल मौजूद है और नशा वाली चीज़ का यानि शराब का और अपनी

बदमस्ती का भी और होश का भी। दूसरे साहिब को ऐसी मस्ती तारी है कि अपनी हस्ती का तो ख़याल है, लेकिन शराब का और मदहोशी का नहीं। तीसरे साहिब को मस्ती के बाद अपना ख्याल है, न शराब का, न मस्ती का और न होश का। यह ज्ञान काण्ड वालों की हालत और सराहत हुयी। अब अमल और उपासना की बावत सुनिए।

उपासना, भक्ति, तरीक़त इश्क़ के मुताल्लिक़ सुनिए। हालत बेदारी [जागने की अवस्था, जाग्रति = awkening] में, ज़माना हाल-माज़ी [बीता हुआ समय = past] और मुस्तक़बिल [आने वाला समय = time to come] तीनों का इल्म है। हालत नीम [आधा = half] ख़्वाब में अंदर का इल्म और ख़्वाब की ग़फ़लत में किसी का इल्म भी नहीं। उपासना की एक हालत में भक्ति, भक्त और भगवन्त तीनों क़ाइम हैं। दुसरी हालत में भक्ति का ख़्याल नहीं, लेकिन 'भक्त' और 'भगवन्त' मौजूद हैं। तीसरी हालत में या तो भक्त नहीं या भगवन्त का ख़्याल नहीं। चौथी हालत में भक्ति, भक्त और भगवन्त सब ग़ायब। पाँचवी हालत में भक्ति, भक्त और भगवन्त सब ग़ायब तो हैं मगर इसके साथ ही साथ एक ही वक़्त सब मौजूद भी हैं। न उसको ग़ायब होने से कुछ सरोकार और न मौजूद होने से कुछ खुशी। मौजूद भी और ग़ैर मौजूद भी, और न यह और न वह और सब कुछ।

खुलासा यह है

एक साहिब ने महज़ अमल और शग़ल से सरोकार रक्खा है। दूसरे ने महज़ ज़िक्र से, तीसरे ने महज़ फिक्र से और चौथे साहिब ने ज़िक्र, फ़िक्र और राबता = राबितः [सम्बन्ध = familiarity] से। पांचवें साहिब ने इन सबसे सरोकार रखते हुए भी कुछ सरोकार न रक्खा। एक तरीक़े ने अमल व शग़ल में सिर्फ़ यज्ञ और 'बलि' वग़ैरह, पंचदेश-कम और ज़ाहिरी पूजा-पाठ, आसन, प्राणायाम, स्वाध्याय, तीर्थ वर्त, नमाज़ वग़ैरह से काम रक्खा और ज़िक्र यानि 'जाप' में सिफ़ाती [सिफ़त या गुण सम्बन्धी = pertaining to the virtue] नाम और ज़िक्र-लस्सानी [उच्चारण सहित जाप] तक रक्खा और शग़ल राबता में मंदिर की मूर्ति तक के दर्शन करने कराने से वास्ता रक्खा।

दूसरे तरीक़ वालों ने अमल और शग़ल के सिलसिले को ज़रा वासीअ [विस्तृत = extensive] किया यानि धारणा और ध्यान के मरहिलों को शामिल किया और तरीक़े-ज़िक्र में 'अजपा-जाप' में 'ज़िक्र-क़ल्बी' वग़ैरह को दाख़िल कर लिया, लेकिन सिफ़ाती नामों के साथ, मिसलन कहार [क़हर, विपत्ति, आफ़त = calamity, disaster], जब्बार [जब्र या जबरदस्ती करने वाला, बलवान, ईश्वर का एक नाम = using coercion, coercive, mighty, the epithet of the

God]वग़ैरह और शग़ल-राबता में बाहरी मूर्तिमान शक्लों की बजाय मानसिक शकलें अंदर की तरफ़ क़ाइम कर लीं जिनका कि रूप अंदर घट में ख़याल किया और सिफ़ाती लिहाज़ से देवताओं की शकलें क़ाइम कीं।

तीसरे तरीक़े वालों ने अमल और शग़लों सिलसिले को ज़रा और वसीअ किया यानि बजाय धारणा और ध्यान के 'समाधि' के दर्जे पर आये, बाज़ों ने 'तुख़्म' [अण्डा, बीज, औलादवीर्य = seed, an offspring, semen] वाली समाधि तक रसाई की और बाज़ों ने ग़ैर तुख़्म वाली समाधि की। बाज़ों ने सिफ़ात की तरफ़ रुज़ूअ की और बाज़ों ने जात की जानिब और ज़िक्र में क़ल्बी के साथ, सिफ़ाती नामों को जोड़ दिया और जाती नामों मद्देनज़र रक्खा। और शग़ल राबता में सिर्फ़ मुर्शिद कामिल के सत्संग को अहमियत दी, वग़ैरह वग़ैरह। अब आप ग़ौर करना शुरू करें कि मतभेद का सबब, रास्ते की बातें हैं। मंज़िल मक़सूद तक पहुँचने के सिर्फ़ असबाब और ज़रिये हैं, बज़ात खुद 'मंज़िल मक़सूद' नहीं है। जिस जिस क़दर जिसने तहक़ीक़ात कर ली, उसको आख़िरी क़रार दिया, और यह क़ुदरती बात है। और फ़िर दूसरे ने ज़ियादह तहक़ीक़ात की और ज़ियादह गहरा गया। इस तरह यह सिलसिला चला आया और चला आता है और न मालुम कब ख़त्म होगा। बहरहाल अब जो मौजूदः क़तई तरमीम शुदा तरीक़ और क़ुदरतन रायज़ है, उसकी खोज करना ज़रूरी है। हर 'मत' वाला यह दावा करने को तय्यार है कि मेरा तरीक़ आला और सह्लुलवसूल और सरीउल असर है। लेकिन यह तो अमल और शग़ल और जाँच-पड़ताल के बाद ही मालुम हो सकता है, बशर्ते कि सहीह वज़नदार [वज़नी = भारी = heavy] और बिला पक्षपात और तलब सादिक़ की मद्दों को लिहाज़ करके तहक़ीक़ात और तलाश की जाय।

क्या यह सब मानने के लिए तय्यार हैं कि इंसान माजून = मअजून [औषधि के रूप में काम आने वाला कोई मीठा अवलेह = sweetened tonic] मुरक़्क़ब [मिश्रित, मिला हुआ = combined, mixed] है और हर क़िस्म के माबाद [इसके बाद = after this] से इसका किवाम [शहद के समान गाढ़ा किया हुआ अवलेह जिसमें तम्बाकू मिला रहता है = a kind of jelly mixed with tobacao-powder] बनाया गया है। यह ज़रूरी है कि किसी न किसी बात को इस्तेदाद = इस्तिअदाद [सामर्थ्य, शक्ति, विद्या-सम्बन्धी योग्यता = cpacity, strength, ability, knowledge] ज़्यादः है और किसी में किसी की कमी, लेकिन हर हालत में सब चीज़ें मौजूद हैं। महज़ एक ही को ले लेने से बाक़ी तमाम चीज़ों से हमेशा के लिए मुहँ मोड़ लेने से काम नहीं बनता है।

इसलिए ज़रूरी है कि आप वह तरीक़ा अपना लें जो उचित है और सब बातों का विचार कर अत्यंत सद्व्यवहार और वक़्त-वक़्त की आवश्यकता को ध्यान में रख कर चुना गया हो। लेकिन क्या योग्यता और वक़्त की अनुकूलता का ख़्याल अक्खा गया है ?

जिन तरीकों में कि एक वक़्त में कहीं कर्मकाण्ड यानि शरीयत को ही क़ाइम रक्खा है और बक़िया और तरीक़ों से बिलकुल लापरवाही कर दी गयी है और कहीं सिर्फ़ ग़ौर व फिक्र को ही अकेला मद्देनज़र रक्खा है और कहीं महज़ तरीक़त इश्क़ को ही क़ाइम रक्खा। चूँकि ऐसा हो नहीं सकता इस लिए संतमत ने कर्मकाण्ड, शरीयत और उपासना-काण्ड यानि तरीक़ते-इश्क़ और ज्ञान-काण्ड यानि मारिफ़त और हक़ीक़त सब को निहायत हम-आहंगी [आहंग = विचार, इरादा, उद्देश्य] से तरतीब दे कर लाज़िम क़रार दिया है। शरीयत के वक़्त काम करने में समझ-बूझ और दिल के लगाव का एहतमाम [इहतमाम् = प्रबंध, व्यवस्था = management] कर दिया है और तरीक़त यानि भक्ति में समझ-बूझ और ज़ाहिरी अरकान [अर्कान = स्तम्भ, खम्भे, तत्व या चरण = poles, elements, feet, pioneers] की तादीब [तअदीब = दोष आदि दूर करके सुधारना, भाषा और साहित्य की शिक्षा = act of improving or correcting] का लिहाज़ रक्खा है और मारिफ़त में भी तरीक़त यानि महवियत के मदारिज़ क़ाइम किये और शरीयत का लिहाज़ नहीं छोड़ा है।

श्रवण मनन, निध्यासन की मुताबिक़त [मुताबिक़ होने की क्रिया या भाव = suitabillity] दिखलाई। कर्म, उपासना और ज्ञान की ज़रूरत एक तरतीब के साथ अमल में लाने को बतलाई। ज़िक्र, फिक्र और शग़ल-ए-राब्ता को शुद्ध करके लतीफ़ हालत में पेश कर दिया।

ज़िक्र-लस्सानी के बजाय ज़िक्र क़ल्बी क़ाइम किया। फिक्र के दर्जात को सिफ़ात के ताल्लुक़ात से उबूर कराके जाती तजल्लियात की तरफ़ माइल किया। शग़ल-ए-राब्ता में बाहिरी चीज़ों से हटा कर अंदरूनी सिफ़ाती बुतों के दर्शन कराने के बाद असली और जाती हक़ीक़त और सच्चे मालिक को मेराज़-ए-तमन्ना क़ाइम कराया। ग़र्ज़े कि सिफ़ात के दायरे से निकलवाने और जाती दायरों में दाख़िला करने का इहतमाम किया। इस पिण्ड और शरीर में मुक़ामात नासूती [नासूत = मर्त्य लोक = this mortal world] को छोड़ दिया गया और लतीफ़ और सूक्ष्म मुक़ाम से चलने की हिम्मत बंधाई। क्योंकि उमरें कम हो गयीं। हिम्मतें पस्त और क़ासिर [असमर्थ = having a shortcoming or unable] हो गयीं हैं। ताक़तें ज़ायल हो गयीं हैं। दुनियाबी मसरुफियतों का हुजूम हो गया है। इन उमूर [अम्र का बहुबचन = आवश्यक विषय = an essential subject] का लिहाज़ कर संतों को दया आयी और ऐसा नुस्खा-ज़ात ईज़ाद किये

कि वक़्त कम लगे और काम बहुत हो। पिछले लोग मुक़ाम - नासूत से चल कर मुक़ाम - जबरूत तक जा कर मंज़िल ख़त्म कर देते थे। लेकिन अब यह रिफार्म किया गया कि मुक़ाम - जबरूत से शुरुवात की और आख़िर वहाँ किया जो असल मक़सद-ए-तमन्ना है। "अव्वले माँ आख़िरे हर मुन्तिही अस्त ; आख़िरे मां जेबें तमना ति ही अस्त।" लेकिन बिरादरान-तरीक़त ज़रा ग़ौर कीजिये कि जिस मंज़िल से चाहें शुरू करा दें और जो मंज़िलें चाहें छुड़वा दें, यह काम सहल है। इसकी हक़ीक़त फिर किसी वक़्त के लिए रखिये। अब आप फॉर्म के खाना [आइटम] दस [10] के मतलब को ग़ालिबन कुछ ज़रूर समझ गए होंगे और अब आप अपना मत दुरुस्त कर के जो मिजाज़ में हो लिखें। अगर आप उसूल इस तरह के मानें जो अब बतलाये गए है और नाम वह ही क़ाइम रखना चाहते हैं तो यह आपकी आज़ाद तबई [प्राकृतिक, असली = of nature, phylosophy] की दलील है।

खाना [मद] नम्बर 11 [ग्यारह]

इसमें सवाल यह किया गया है कि आप को किन-किन किताबों के पढ़ने का शौक़ है। इस मामले में बिला समझे-बूझे काम करते रहना अलग चीज़ है। सवाल तो उनसे है जो समझ-बूझ रखते हैं या समझ-बूझ के दायरे में क़दम रख चुके हैं यह क़दम रखने को तैय्यार हैं। एक शेर यह है -

"दिल का हुजरा साफ़ कर जानाँ आने के लिए। ध्यान ग़ैरों का मिटा 'उस' के बिठाने के लिए।"

पाहिले आप मालुम कर छूके हैं कि सारी तरकीबें दिल के अज़तराब दूर करने के लिए है और वह एकसूई क़ल्ब है। अगर किताब देखना दिल की एकसूई [एकाग्रता] को मदद देता है तो शौक से पढ़िए और अगर बजाय तसफ़िये के उलझन पैदा करता है तो फिर उसको अपने फ़ेल का खुद इख़्तियार है।सारी दुनियाँ अख़बार, रिसाले, मजामीन, और किताबें और अनाप-शनाप ख़बरों के मालूम करने में इस दर्जे झुक पड़े हैं जिसको नज़ारा आप को अख़बारों, लाइब्रेरी बग़ैरह के हालात से मिल सकता है। जानना और मालुम करना क़ुदरत का तक़ाज़ा ज़रूर है, मगर ज़रूरी और ग़ैर-ज़रूरी, वक़्त और बे-वक़्त इसका लिहाज़ मुक़द्दम है। दिमाग़ एक लतीफ़ शै है और क़ुव्वत हाफ़िज़ा के भण्डार में वह अशिया जमा करना चाहिए जो कि आपको सहीह मतलूब कर ले जाने में मदद दे सके न कि कोठरी में अनाप-शनाप, अल्लम-ग़ल्लम, कूड़ा-करकट जो सामने आ जावे भर लेना सिद्ध है। क्या यह सब चीज़ें 'कोठरी' सारी हवा को मसमूअ और ज़हरीली न कर देंगीं।

फ़िर आप तो अमल व शग़ल इसका करने लगे हैं कि जहाँ तक ख्याल कम आवे, बेहतर है। अब ऐसी तरक़ीब उसके ख़िलाफ़ इस्तेमाल करते हैं कि चौगुने ख्यालों का ढेर इखट्ठा हो जाय और चाहें वह आप के मतलब के हों या न हों।

अह्ले-तरीक़त की एक फ़िर्क़े के यह राय है कि मुब्तदी [नौसिखिया = an apprerntice] को इब्तिदा में किताब न देखना चाहिए और एक की क़तई यह राय है कि पहले सिद्धान्त को देख लेना चाहिए, फ़िर अमल के मैदान में क़दम मारना चाहिए। अक्सर यह देखा गया है कि आलिम और पण्डित लोग इल्म के अभिमानी हो कर अमल के तरीक़ को क़ुबूल नहीं करते और अमल के करने से पहले इस क़दर मीन-मेख़ करते हैं कि तौबा ही भली। बरख़िलाफ़त इसके कोरे लट्ठ को जो अमल बताया जावे फ़ौरन करना शुरूअ कर देते हैं और जल्द कामयाब होते हैं, लेकिन अगर सोहबत मुर्शिद की ज़्यादः न मिली तो मामूली सी बात में बहक जाते हैं या ग़लत को सहीः और सहीःको ग़लत अपनी नादानी से फ़र्ज़ कर लिया करते हैं, जिससे अंदेशा है कि कभी वह ख़ंदक़ में गिर जायँ और कहीं के न रहें। लेकिन अगर खूब पढ़े-लिखे हुए हैं, समझने के बाद मैदान-अमल में उतर आयँ और तौफ़ीक़ ईज़दी उनके शामिल-हाल हो तो उनको आयन्दा बहक जाने का और गिरने का अंदेशा नहीं होता और कामिल होते हैं। बरख़िलाफ़ इसके जाहिल अगर कामिल भी हो तो भी खदशा से खाली नहीं।

हमारे मुर्शिद "अलैह-उल-रहमत" का यह दस्तूर था कि पहिले शग़ल में इस क़दर सई [परिश्रम = endeavour] फ़रमाते कि शाग़िल [अभ्यासी] को हक़ीक़त तक पहुँचा देते और साक्षातकार करा देते। उसके बाद इस्तिलाहत [किसी शब्द का साधारण अर्थ से भिन्न और विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होना = connotation] तरीक़ा की तालीम ज़ुबानी फ़रमा देते या कोई किताब अपने सामने निकलवा देते और अमल से पहिले किताब का देखना यों मना फ़र्माते कि अगर तालिब का कोई कश्फ़ [सामने या ऊपर से पर्दा हटाना = unveiling] या मुशाहिदा [दर्शन करना, देखना, अवलोकन = act of seeing, beholding, perusal] हो और वह बयान करे तो बिला किताब देखा हुआ वाक़्या और वारदात को बयान करेगा, उसमें गुँजायश शक की न होगी और किताब देखनेके बाद वाक़्या और वारदात में शक की गुँजायश है। मुमकिन है कि क़ुव्वत हाफ़िज़ा से वक़्त एकसूई वाहिमा [वह शक्ति जिसमें सूक्ष्म बातों का ज्ञान होता है, कल्पना-शक्ति = the ability to form fine ideas, imagination] के तौर पर बरामद हो गयी हो और उसने बयान कर दिया हो। इसलिए जब तक अमल में मजबूत न हो जावे, उस वक़्त तक किताब का देखना ज़्यादः मुफ़ीद नहीं। वह मालूमात में कुछ इज़ाफ़ा नहीं कर देते बल्कि बाज़

औक़ात क़ुव्वत वाहिम को तेज़ और बर्बाद कर देते हैं जिससे कि रास्ते में रुकावटें हो जातीं हैं।

मेरा तज़र्बा है। मसल मशहूर है कि - "सूरदास की काली कामरि पर चढ़ै दूजो रंग।" हाँ, जब देखें की मेरे ऐतक़ाद की बुनियाद निहायत मज़बूत हो गयी है और अब कुछ डर नहीं रहा तो इस्तिलाहत के मालूम करने, अपने कश्फ़ और वारदात को बुज़ुर्गान सल्फ़ [सलफ़ = गुज़रा हुआ या बीता हुआ = past, by-gone] के हालात से मुताबिक़त करने और शक को दूर करने के लिए किताब देखना चाहिए। लेकिन वोह ही किताबें जो टक्साली [genuine] हैं। ऐसी किताबों को न देखना चाहिए कि आख़िर को जण्डका और इल्हाद के क़रीब पहुँच जाने का ख़ौफ़ हो और इन्तहा भी ख़राब हो।

मेरे एक दोस्त ने क़ुतुब-हदीस के देखने की इस क़दर कसरत की कि तक़लीद के दायरे से क़दम बाहर निकाल दिया और जो रिक्कत [कोमलता, रोना-धोना = tenderness, wailing] और दिल-गुदाज़ी [ह्रदय द्रावक = sympathy moving] और तरावत [आद्रता, नमी = moisture, dampness, freshness] थी, वह खुश्की में तब्दील हो गयी। अफ़सोस सद-अफ़सोस। ग़र्ज़े कि ऐसी किताबें देखना मुज़िर नहीं है कि जिनसे उसके रास्ते में रुकावट न हो जावे बल्कि इम्दाद करे।

मुफ़ीद किताबों का ज़ख़ीरा हर जगह हर जवान [language] में इस क़दर मौजूद है कि अब और ज़दीद लिखने की ज़रूरत नहीं और न आजकल के दिमाग़ ऐसी सहीह और क़ाबिल दिमाग़ वाले मौजूद हैं, जो उनसे ज़्यादा लिख सकें। सिर्फ़ उनकी नक़ल कर सकते हैं या काट-छाँट कर के अपनी ज़ुवान [language] में लिख सकते हैं। तालीफ़ [ग्रन्थ की रचना या संकलन = compilation of a book] हर शख़्स कर सकता है, लेकिन तस्नीफ़ [ग्रन्थ आदि की रचना, लिखित या रचित ग्रन्थ = act of writing a book] लाखों लिखने वालों में से एक [ही] शख्स कर सकता है और वह भी दो-चार सफह [pages], क्योंकि तस्नीफ़ वह है कि जो नयी बात हो और नयी बात इल्हाम [मन ईश्वर की ओर से कोई बात प्रकट होना, देववाणी = Godly revelation, voice from Heaven] हो सकती है और इल्हाम हर वक़्त और हर शख़्स की नसीब नहीं।

अलबत्ता पिछला तरीक़ा, बर्ताव, इस्तिलाहें [किसी शब्द का साधारण से भिन्न और विशिष्ठ अर्थ में प्रयुक्त होना = connotation], इस्तआरे [उपमेय में उपमान के साधर्म का उपयोग करके उपमान के रूप उसका वर्णन करना = metaphor], इशारे और ज़ुबान उन किताबों की ऐसी है

जिनको आज-कल के पढ़े-लिखे समझने से क़ासिर [जिसमें कोई कमी या त्रुटि हो = having a shortcoming] हैं। जिन ज़ुबानों और इल्म में वोह लिखीं हुईं हैं और जो तरतीब उनकी क़ाइम की गयी है और जो इस्तिलाहात और इशारात इस्तेमाल किये गए हैं उनके जानने वाले, शरह करने वाले अब नहीं रह गए, इस लिए वो किताबें बेकार हैं। अक्सर तर्जुमें ज़रूर किये गए हैं, लेकिन तर्जुमों की ऐसी मट्टी पलीत की गयी, कि असल चाहें समझ में भी आ जाय लेकिन तर्जुमें को हश्र [क़यामत] तक न समझ सके। जो इस्तिलाह थी उन की दूसरी ज़ुबान में तर्जुमा करने को वह मुतरादिफ़ [पर्यायवाची = synonymous] मुफ़रद [अकेला हो या किसी के साथ न हो = single, alone] लफ्ज़ न मिला, ज्यों का त्यों रख दिया, इशारे तो समझ ही क्या सकते, वह अंदर का मामला था और अंदर में दाख़िला नहीं था पस् माज़ूर [असमर्थ, विवश = uncpabale, helpless] रहें। इसलिए ज़रूरत भी है कि उन दक़ीक़ [मुश्किल, कठिन = difficult, hard] किताबों की मौजूदा ज़ुबान में शरह की जावे। मिसलन अगर एक फ़ारसीदां शख़्स है तो फ़ारसी की तसव्वुफ़ [तसौवफ़ = अध्यात्म = spiritualism] की किताब को तर्जुमा कर दें और इस्तिलाहों और इशारों को अगर मुफरद लफ्ज़ मुतरादिफ़ न बतला सकें, तो हिंदी जानने वाले को उसका भाव असली समझा देवें, ख़्वाह किसी क़दर जुमले मुरक़्क़िब-दर-मुरक़्क़िब हो जायँ और हिंदी वाला उस भाव को समझ कर हिंदी की इस्तेलाह इस्तेमाल करे मगर शर्त यह है कि हिंदी और फारसी जानने वाले दोनों शख़्स इल्म-तसव्वफ़ के ज़ाहिरी और बातिनी मामलात से बखूबी वाक़िफ़ हों, और फिर अँगरेज़ी भी जानते हों, क्योंकि आजकल अंग्रेज़ी क़ुतुब की तरतीब को ज़ेर नज़र रख कर किताब को लिखें वर्ना पुरानी तरतीब को आज-कल के लोग नज़र में नहीं लाते हैं।

ऐसा एहतमाम अगर आप लोग चाहें तो मुमकिन हो सकता है कि कोशिश करके किया जावे मगर वक़्त, इमदाद और रुपया की ज़रूरत है। इससे यह और भी फायदा होगा कि सूफ़ी लोग बाज़ तो तंग-दिली की वजह से अहल-हिन्द के असल तसव्वुफ़ को कभी हाँथ नहीं लगाते और सुनी-सुनायी बेतुकी बातों पर अहल-हिन्द के तसव्वुफ़ पर तौहीद नाक़िस का इल्ज़ाम लगा देते हैं और बाज़ उसमें से जो फ़राग़-दिली से अपना वक़्त हिन्द के तसव्वुफ़ में देना चाहते हैं तो उनको लिटरेचर नहीं मिलता और ज़्यादःतर लिट्रेचर वह मिलता है जो 'योग' से मुताल्लिक़ है, और यह लोग इल्म तौहीद में निहायत नामुकम्मिल हैं।

संतों की तहक़ीक़ात अलबत्ता सहीह नतीजे पर पहुँची है और उनका कलाम तश्वीह और इष्तआरात और इशारात में वेशतर पाया जाता है जिनको कि दीग़र मजाहिब के लोगों को खबर तक नहीं है। फ़िर हमादानी [हमादाँ = सब बातें जानने वाला = knowing every thing] की

डींग मारना मेरी राय-नाक़िस में ठीक नहीं है। यही हाल हिन्दू-सूफ़ियों और साधुओं का है, जो मुसलामानों का। हाल में शिववृतलाल जी ने चन्द नुस्ख़ेज़ात तसव्वुफ़ इस्लामी के लिखे हैं और उनके यह दावे हैं कि इस्लाम की बावत जो तसव्वुफ़ हैं उनको खूब वाक़फ़ियत है। मगर मैंने ग़ौर किया तो मालुम हुआ कि मौलाना रूम साहिब और मौलवी जामी साहिब व शम्सतवरेज़ साहिब और मुहम्मद इब्न अरबी साहिब के लिट्रेचर को देख कर वाक़फ़ियत को ख़तम कर दिया गया है। हालाँकि इन सब लिट्रेचर में सिर्फ वहदत-वजूदी का राग अलापा गया है। चूँकि संतमत में जदीद तहक़ीक़ात में जो राधास्वामी साहिब और राय साहिब [सालिगराम] जी के सिलसिले में हुयी है वहदत-वजूदी के अलावा ऊँचे मुक़ामात की गयी है। इसलिए मुसलमानी तसव्वुफ़ का मुक़ाबिला करके उसको नीचे दरजे का क़रार दिया जाता है। वजह यह है कि हज़रत शेख़ अहमद साहिब मुजद्दिद अलिफ़सानी रहमत 0 ने वहदत-वजूद को दरम्यानी मुक़ाम साबित कर दिखा दिया और बड़ी-बड़ी बहसों के बाद आप के मुक़ाम को आला क़रार दिया गया। इस लिट्रेचर को हाँथ तक नहीं लगाया गया है और जो मुक़ामात वहदत-वजूदी और अहम ब्रहम के बाद मुशाहिदे में लाये गए उनकी पहुँच अब तक बड़े-बड़ों को नहीं हुयी।

काश अगर उनकी सब तस्नीफ़ [लिखित या रचित ग्रन्थ = a written or a composed book] को छोड़ कर सिर्फ़ मक़तूबात [लेख, पत्र, चिट्ठी = an article, letter] ही को देख लें और समझने की कोशिश करें तो आँखें खुल जायँ मगर देखे कौन। खुद मुसलमान सूफ़ी साहबान को इनकी हवा नहीं लगती है। ज़्यादः ऊँचे मुक़ामात होने की वजह से फ़हम [बुद्धि, समझ, ज्ञान, अक़्ल = intellect, wisdom] और इदराक़ [समझ, अक़्ल, बुद्धि = understanding, intellect] का घोड़ा रस्सी तुड़ा भाग निकालता है और समझ नहीं सकते।

अलावा इस्तिलाहत और भी निहायत बारीक़ और दक़ीक़ [नाज़ुक, कोमल, मुश्किल = tender, difficult, hard] मुक़ामात के हुनर किस तरह समझ में आवें। पस् हमारे तरीक़ा के बुजुर्ग़ बारान को चाहिए कि अहले इल्म इस धब्बे को अगर मिटाने की कोशिश न करें तो यही करें कि इस राज़ को तर्जुमा करके समझने-समझाने के लिए छोड़ दें फिर तहक़ीक़ात करने वाला ज़माना खुद ही तसफ़िया कर लेगा और रोज़-रोज़ की तू-तू में-में और झगड़ा दफ़ा हो जाएगा। यह किस क़दर रफ़ाह-ए-आम [सामान्य लोगों के परोपकार = benevolence of general-public] की बात है।

खाना [मद] नम्बर 12

इस खानें में यह सवाल है कि संतमत और सत्संग में शामिल होने की ग़र्ज़ सिर्फ़ अंदर का अभ्यास ही है या उसकी बाहरी उसूलों की पाबन्दी।

मेरा ख़याल है और तज़ुर्बा भी है कि संतमत के अंदर के अभ्यास को अब तक लोग नहीं समझे हैं और न बाहिरी उसूलों को समझे हैं। जो अपने को वाक़िफ़कार ख़याल करते हैं उनको टटोला गया तो मालुम हुआ कि अभ्यास ख़ालिस संतमत का उसूल उनको मालूम नहीं बल्कि 'खिचड़ी' या खिल्त-मिल्त उसूल जो मुख़्तलिफ़ सम्प्रदायों के हैं वह उनको सुने-सुनाये दिमाग़ में लिए हैं। पुराना संयोग और कुछ दर्मियानी ज़माने का तान्त्रिक ख़्याल ऐसा जकड़ गया है कि पीछा नहीं छोड़ता और ज़बानी वेदांत ने भी अपना रॉब गाँठ रक्खा है। इसके अलहिदा तहक़ीक़ात से यह भी वाजः हुआ कि शंकर-मत के सन्यासी जो वाक़ई 'शंकर-मत' के सन्यासी नहीं हैं अपने आप को ऐसा साबित कर दिखाते हैं कि वह 'योग' से बख़ूबी वाक़िफ़ हैं। हालाँकि वह 'बाम-मार्ग' में जो सिद्धियाँ नीचे दर्जे के योग के मुताल्लिक़ मालूम हैं उनकी निस्बत तारीफ़ के पुल बाँधते हैं। इसी तरह मुस्लमान-सूफ़ी कश्फ़ [ईश्वरीय प्रेरणा = God's inspiration] व करामात के गढ़े हुए पुराने ज़माने के किस्से ज़ात, बेपढ़े और जईफ दिलों की मण्डलियों में सुनाते रहते हैं जो महज़ शेखी-ही-शेख़ी है। फ़कीरी का घर दूर है।

लफ्ज़ 'संत' और उसके 'मत' की तशरीह के लिए हमको इस दर्जे के नीचे के मदारिज़ तय करके आना चाहिए जो ग़ालिबन मुमकिन हैं कि असल लफ्ज़ के मानी की ख़बर पढ़ सके। 'संत' लफ्ज़ की तारीफ़ गोस्वामी तुलसीदास साहिब ने निहायत साफ़ ज़ुबान में कई जगह बतायी है, उनको पढ़ने वालों ने पढ़ा होगा।

करीब-करीब हर मज़हब का यह अक़ीदा है कि दुनियाँ में जब-जब ऐसा अंधकार छा जाता है कि 'धर्म' की 'अधर्म' के मुक़ाबिले रोशनी मंद और फींकी पड़ जाती है और राजा से ले कर रंक तक ऐसी हड़बोम में पड़ जाता है कि असलियत का पता उसको नहीं मिलता और मुल्क़ की आव-हवा ऐसी ज़हरीली हो जाती है कि अच्छे लोगों की नसीहत किताबों की दफ़अत [अचानक, सहसा = suddenly], धर्मशास्त्र की पाबंदी का कोई लिहाज़ बाक़ी नहीं रहता। जो सच्ची बातें हैं वह उल्टी हो जातीं हैं और बदी को नेकी और नेकी को बदी मान लिया जाता है। सहीह रास्ता बताने वालों की राजा खाल खिंचवाते हैं और ग़रीब और रियाया उनकी हँसी उड़ाते है। तो असल

भण्डार की दया की सिफ़त जोश में आती है और वक़्त के लिहाज़ से एक खास मुक़ाम से एक पाक शख़्सियत का ज़हूर होता है। उसमे वह क़ुव्वत रूहानी होती है जो उस मुल्क की सब बाशिंदगान की क़ुव्वत पर ग़ालिब आ सके। उसके एक हाँथ में किताब होती है और दूसरे हाँथ में तलवार। 'किताब' से मुराद नसीहत और समझाना-बझाना और क़ानून।

पिछला क़ानून क़तअन मन्सूख़ कर दिया जाता है और जुमला पिछली तर्मीमात और तब्दीलियात रद्द कर दी जातीं हैं या पिछला क़ानून किसी क़दर तरमीम व तनसीख़ [निरसन, रद्दगी = cancellation] के बाद अजसरेनी नाफ़िज़ [प्रचलित = prevalent] कर दिया जाता है। अगर क़ानून समझाने-बुझाने का कोई असर मुल्क पर नहीं होता है तो फिर से खबर ली जाती है। कौन ऐसा अवतार या नबी ऐसा नहीं हुआ कि जिसने हंगामा जल्लाद व क़त्ताल बरपा न किया हो। अगर लोग इसी उसूल की तरदीद करेगे तो ग़ालिबन हज़रत ईसा को और महात्मा गौतम बुद्ध को ऐसी फ़हरिस्त से निकाल देंगे। मगर गौतम बुद्ध के और हज़रत ईसा की बराहेरास्त लड़ाई में शिरक़त तो तवारीक़ में नहीं मिलती लेकिन इनके बाद की बड़े ज़ोर की घमासान मार-काट हुयी है जो उनके हवारियों [हवारी = हज़रत ईसा मसीह के मित्र और साथी = friends of the Christ] और भिक्षुओं ने की है। अलावा इसके वाजः रहे कि अवतारों की पैदाइश की फिलोसोफी में यह भेद है कि बाज़ अवतार या नबी किसी ख़ास मुक़ाम से किसी खास सिफ़त के ज़्यादः हिस्से को ले कर पैदा हुए और बाज़ किसी दुसरी किसी खास सिफ़त और खास मुक़ाम को ले कर। मिसलन परसुराम जी का अवतार खास ब्रह्मचर्य आश्रम का अवतार है और उनमें तबई हैवानी जज़बात और हठ का ग़लबा है। श्री राम चन्द्र जी का गृहस्थ्य आश्रम का। इनमें क़ुव्वत सलूकी का ग़लबा था और इश्क़ व जज़्ब का दवा हुआ और ज्ञान का खुला हुआ था। यहाँ क़ुव्वत-जमाल का दर्शन है, क्योंकि वह 'मर्यादापुरुषोत्तम' माने गए हैं। श्री कृष्णा जी महाराज वानप्रस्थ के अवतार है। इनमें क़ुव्वत जज़बाती और इश्क़ का खुला हुआ और ज्ञान का दबा हुआ बल्कि यों कहना चाहिए कि जज़्ब व सलूक और इश्क़ साथ-साथ। निहायत सलीम हलात और कैफियत के साथ यहाँ जमाल और जलाल दोनों का रंग अपने-अपने मौके पर है और मिला-जुला हुआ है। गौतम बुद्ध का वैराग्य तक और ज्ञान का साथ है। हज़रत यूसुफ़ अलैह इस्लाम में जमाल ज़ाहिरी, हज़रत मूसा अलहस्लाम में जलाली, हज़रात ईसा में सिफ़त रहम और दरगुज़र।

हज़रत मोहम्मद सल्ले अलह अालहि व् सल्लम में जुमले सिफ़ात जो ऊपर मज़कूर हुयी सब का जलवा एक साथ और अपने-अपने वक़्त और मौके पर अलहिदा रंग में हैं। यहाँ जुमले

सिफ़ात जो ग़ैर मुअतदिल [मातदिल = जो न बहुत उग्र हो, न कोमल = moderate] हो गयी थी और अहल अरब का इख़्लाक़ हर सिफ़त की बावत ख़राब हो गया था उसकी वजह से जुमले सिफ़ात को मुअतदिल और समान अवस्था पैदा करने के लिए आप उस मुक़ाम से पैदा किये गए कि जुमले सिफ़ात पर परतौ [प्रकाश जैसे मेह का परतौ = सूर्य का प्रकाश, रश्मि, किरण, प्रतिच्छाया या अक्स = light, a ray, reflection] पड़े और वह मुल्क राहे-रास्त पर आ जावे। इसलिए श्री राम चन्द्र जी महाराज का मुक़ाम पैदायश असल ब्रह्मचारी मन के मुक़ाम से है। और भरत जी का ब्रह्माण्डी अक़्ल से और शत्रुघ्न जी का चित्त के मुक़ाम से और लक्ष्मण जी का अनानीयत यानि अहँकार के मुक़ाम से और हज़रत श्री कृष्ण जी महाराज का शुद्ध अहँकार, शुद्ध मन, शुद्ध बुद्धि और शुद्ध चित्त और अपरा प्रकृति और परा-प्रकृति सम्मिलित शुद्ध आत्मा के मुक़ाम से। हज़रत ईसा और महात्मा गौतम बुद्ध का 'कृपा' के मुक़ाम से और हज़रत रसूल अरबी का दयालुता के मुक़ाम से जो सतपद का मुक़ाम है। मुक़ाम, दया, कृपा, पारब्रह्म, काल, महाकाल और शून्य, महाशून्य की तारीफ़ किसी [और] मौके पर की जावेगी।

अब इसके आगे चलिए। जब कि ग़र्ज़ पूरी हो जाती है और जिस क़िस्म की बद-इख़लाक़ी या ख़राबी को दूर करने के लिए अवतार हुआ था और जब वह काम खत्म हो जाता है, तब अवतार और नबी वक़्त को पूरा करके फ़ौरन ही अपने जाए क़याम पर, जहाँ से कि उनका अवतार हुआ था, वापस चले जाते हैं और अपने पीछे क़ानून अमल दरामद आयन्दा के लिए छोड़ जाते हैं। पिछला क़ानून या तो बिलकुल मन्सूख़ करके या दूसरा जदीद तय्यार करके छोड़ जाते हैं या पिछले क़ानून में मुनासिब वक़्त व खराबी के लिहाज़ से, जैसी कि हालत हो, तरमीम तंसीख कर जाते है और उनके पीछे हमेशा और हर वक़्त फिर तबदीली का कानून, आव-हवा, रस्म-रिवाज़, तबियत और मिजाजों में हलकी-हल्की तबदीली पैदा करना शुरू कर देता है और जब इस क़दर खराबी फिर पैदा हो जाती है कि तरमीम और कांट-छांट की ज़रूरत पड़ती है, तो उस वक़्त सौ वर्ष या पाँच सौ वर्ष बाद या एक हज़ार वर्ष बाद एक ऐसा सिद्ध, वली, संत, महात्मा पैदा होता है जो पिछले गुज़रे हुए नबी और अवतार के मुरत्तिब करदा और छोड़े हुए क़ानून की तशरीह करके लोगों को जी और मोहब्बत से समझाता है और कोशिश करता है कि गुमराह लोग नेक और सहीह रास्ते पर आ जावें, लेकिन पूरा नए कानून में अपनी राय से कोई तरमीम नहीं करता, सिर्फ़ अमल और शग़ल और अंदरूनी अभ्यास में तरमीम बदल हस्ब ज़रूर कर देता है।

लेकिन जब धर्मशास्त्र के बुनियादी उसूलों पर जिन पर निज़ाम-आलम का दार-मदार है, कोई तबदीली ब-इख़्तियार खुद ख़िलाफ़ उसूल मौजूदा क़ानून के नहीं करता और तालीम और

तल्क़ीन का सिलसिला सिर्फ़ मोहब्बत और तालीफ़ [ग्रन्थ की रचना या संकलन = compilation of a book] क़ल्ब ही से करता है। अवतारों की तरह उसको यह मजाज़ [जिसे नियम या क़ानून आदि के अनुसार कोई काम करने का अधिकार मिला हो = illegible] नहीं कि अगर कोई न माने तो डण्डे से उसकी ख़बर ले।अब इनमें से वली और संत दो तरह के होते हैं। एक तो वह जो क़ानून इश्क़ को सिर्फ़ बरतें और भक्ति-मार्ग से लोगों को उपदेश करे और एक वह जो उसके अलावः धर्म-शास्त्र को भी साथ-साथ ले कर चले। पहिले वाले बाक़ायदा तालीम का अहतमाम नहीं करते और दूसरे बाक़ायदा। पहिले वाले सिफ़त आशिक़ी रहते हैं और दूसरे पर सिफ़त-माशूक़ी का ग़लबा रहता है। पहिले क़िस्म के वली ज़ेर-क़दम जात महज़ होते हैं और दूसरे क़िस्म के महात्मा ज़ात और सिफ़ात दोनों पहलुओं के मुक़म्मिल होते हैं।

मिसाल यह है कि एम् ए सब पास करते हैं। मगर सब में पढ़ाने और तालीम करने की वह खास क़ाबिलियत नहीं होती जो होना चाहिए। यह मुमकिन है कि पढ़ाने-लिखाने के लिए उन एम् ए में से मुक़र्रर कर दिए जावें जिनमे क़ाबिलियत तालीम और तदरीस की हरगिज़ नहीं होती। यह वक़्त को टालते और मुफ़्त की तनख़्वाह वसूल करते हैं। हज़ारों पढ़े-लिखों में से कोई एक-दो ऐसी क़ाबिलियत रखते हैं।

अब ख़याल कीजिये कि एक एम् ए क्लास-टीचर है, बाक़ी बहुत से दीग़र डिपार्टमेण्ट के मुलाज़िम। मुल्ला और पंडित लोग तालीम ही दे सकते हैं। अगर इन्तज़ामी मामलात उनके सुपुर्द कर दिए जावें तो बौखला जाते हैं। इसी तरह कोई डिप्टी कलेक्टर अगर पढ़ाने-लिखाने के लिए मुक़र्रर किया जावे तो बग़लें झाँकने लगेगा और घर पर तैयारी करके आना पड़ेगा और "सिखाये पूत" का मसला हो जावेगा।

हाँ, अगर किसी संत या वली में दोनों क़ाबलियतें एक ही साथ मौजूद हैं तो नूर-आला-नूर और यह क़ामिल मुक़म्मल बल्कि अकमल है। ऐसे महात्मा और वली ग़ालिबन वह लोग होते हैं जो उस अवतार और नबी के ज़ेर क़दम होते हैं जो शरियत और तरीक़त और मारिफ़त और हक़ीक़त को साथ-साथ ले कर निहायत हम-आहंगी के साथ बर्ताव करते हैं। साफ़ लफ़्ज़ों में यह है कि ऐसे वली जो इन्तहाई मुक़ाम जज़्ब को तय करने के बाद इन्तहाई मंज़िलें सलूक में आ गए, यह रुब [शरबत = syrup] ख़ुल्क़ [आदत = a habit] हो जाते हैं और वह रुब खुदा।

दरअसल रुब खुदा हो कर रुब ख़ुल्क़ जो होते हैं, वह नबियों के सच्चे वारिस और क़ाइम मुक़ाम होते हैं और इन्हीं की तालीम मुक़म्मिल है। यह धर्मशास्त्र यानि फ़क़्क़ह को मुक़द्दम समझते

हैं। इसी को मैंने बाहरी उसूलों का लफ्ज़ क़रार दिया है।

अब इनमें से बाज़ क़स्बी होते हैं और बाज़ वहबी। क़स्बी वह होते हैं जो अधिकारी और सत्संगी, साधु, हंस, परमहंस, संत, परमसंत की अवस्था तक अपने-अपने अभ्यास और अमल शग़ल के सहारे पहुँचें और बाज़ इनमें से किसी बाहरी सिफ़ाती मुक़ाम में चढ़ाई करके अटक रहें और बाज़ किसी लतीफ़ या सूक्ष्म सिफती मुक़ाम तक पहुँचें और बाज़ अलीत यानि 'कारण' की अवस्था मुक़ाम सिफ़ाती तक उबूर कर सकें और कोई-कोई हर सिहगाना मुक़ाम सिफ़ाती मुक़ामात से उबूर पा कर ज़ात की बारगाह तक क़दम जन हुए और वह ही वह हैं जो तय्यार थे और अभ्यास और सत्संग मामूली किया, ऊपर से फज़्ल व करम हुआ और एक दम किसी ने हाँथ पकड़ कर या रफ्ता-रफ्ता ऊपर को खींच लिया। ऐसे लोग जब शुरू करते हैं तो उनको 'मुराद' कहते हैं, बक़िया को 'मुरीद'। 'मुराद' वह हैं जो तैयार आये हैं और जिनको अमल व शग़ल वग़ैरह की ज़्यादा ज़रूरत नहीं पड़ती है। सिर्फ़ सत्संग से उनका काम बन जाता है। 'मुरीद' वह हैं जिनके संस्कार यानि स्तेदाद क़बूल और जज़्ब और क़ाइम रखने की निहायत ज़ईफ़ होती है, जो वर्षों रगड़ते हैं, डूबते हैं, उछलते, गुमराह होते, राहेरास्त पर आते और आख़िरकार किसी सिफाती मुक़ाम पर या उससे निकल कर ज़ात तक रसाई के हक़दार हो जाते हैं। इनकी भी चन्द किस्में और दर्जे हैं जो मालुम करने के क़ाबिल हैं।

पहिले दर्जा 'सत्संगी' का है। 'सत्संगी' सिर्फ अधिकारी से मुराद है, जो 'सत' का संग करे। 'सत' कहते हैं - सच्चाई, हकीकत,असलियत को। और 'संग' नाम है - सोहबत, मिलाप और साथ रहने को। जो हक़ीक़त शनास हो, हक़ीक़त पसंद हो, हक़ीक़त-जू और हक़ीकत-बी हो, वह 'सत्संगी' कहलाने का मुस्तहक़ है। उसका दूसरा नाम 'अधिकारी' है या जिसको इस्तेदाद है, जो पात्र है, ज़र्फ़ रखता है, दरअसल जो खास सोहबत में रह कर फैज़ उठाते हैं, अधिकारी कहे जाते हैं। सत्संगी और अधिकारी में सिर्फ़ इस क़दर फर्क है कि बिला अधिकार, ज़र्फ़, पात्र, इस्तेदाद की मौजूदग़ी के सत का संग नहीं करेगा और जो करने लग जावे, उसको 'सत्संगी' कहते हैं।

यह ज़ाहिरी क़लाम को "सुतीती" जिससे मुराद सगुण उपासना है। फिर उस पर ग़ौर करते हैं और मानी पर आ जाते हैं, उसको निर्गुण उपासना कहते हैं, क्यों कि सतत लफ़्ज़ी लिवास का बुत है और उसके मानी बातिनी क़ैफ़ियत है जो निर्गुण है। यह सत्संग में बैठ कर निर्गुण और सगुण उपासना दोनों एक साथ करता है। अभी तक इस शख़्स ने "गुरु धारण" नहीं किया।

अधि मारना = बहुत और कृ मारना करना। मतलब कर्म मैलान तबई-दिली ख्वाहिश और अंदरूनी जज़्बात के ग़ल्बे को कहते हैं, वस्फ़ उसका सिर्फ़ श्रवण और मनन है। जब ग़ौर करके हक़ीक़त और सच्चाई को ज़हन नशीं कर ले, तब साधन सीखें जिससे उसके अंदर 'सत' के भाव पैदा होने का इम्कान हो, उसको 'साधू' कहते हैं।

तहसील, तक़्सीब, मश्क़ और अभ्यास से ताल्लुक़ रक्खे जो साधना न करे, उसको 'साधू' नहीं कह सकते। जैसे कि उसको 'सत' की धुन है, वह ही उसको सत ग्रहण करने की सरगर्मी रहती है। जो शै उसके साधन में रूकावट है, उसको छोड़ने में कभी परहेज़ नहीं रखता, सच्चे मानी में गुरु का ज़हूर उसके लिए है। यह 'गुरुमत' हो कर गुरु के बताये हुए क़ाइदे की पाबंदी मुक़द्दम रखता हुआ अपनी कामयाबी की फ़िक्र में लगा रहता है। 'साधू' का दर्जा "निध्यासन" है। 'नि' मानी अंदर, 'ध' माने इख़्तियार करना और 'आसान' बैठने को कहते हैं। जो किसी ख्याल को अपने अंदर इख़्तियार करके उसी पर जम कर बैठे, उसी को 'निध्यासन' कहते है। यह अमल व शग़ल है और उसके लिए तरह-तरह के तदबीरों और तरक़ीबों की तालीम का सिलसिला जारी किया गया है जिसका नाम ज़िक्र, फ़िक्र और राब्ता है। यानि 'भजन', 'सुमिरन' और 'ध्यान'।

सत्संगी का धर्म - सत्संगी का धर्म 'यम' 'नियम' है। असत्य भाव, असत्य ख्याल को तर्क करना 'यम' कहलाता है। 'यम' ख़ारिज़ करने को कहते हैं। सत भाव और सत के ख़्याल करने को या इख़्तियार करने को नियम कहते हैं। 'यम' से मुराद इख़्तियार, क़ुबूल और जज़्ब से है। 'यम' नफ़ी है। 'नियम' असबात है। दिल के बर्तन से नफ़ी का ख़ारिज़ करना 'यम' और दिल के बर्तन में असबात को भरना 'नियम'।

साधू का धर्म - आसान, प्राणायाम, प्रत्याहार, धरना। यह 'चौसाधन' हैं।

[01] आसन - अव्वल ऐसा खास बज़अ में बैठना कि चित्त की वृत्ति के चंचल होने का ख़ौफ़ न रहे। तरह यह सहूलियत हाँसिल हो जावे, वह ही 'आसन' है।
[02] प्राणायाम - प्राण की वृत्ति को अपने अंदर ऐसी शक्ल में क़ाइम कर लेना है कि वह चित्त को निश्चल रख सके। साँस को रोकने से यहाँ कोई मुराद नहीं है। न हब्सदम न पास-अनफ़ास से मक़सद है।

[03] प्रत्याहार - चित्त उस वक़्त तक कभी न रुकेगा, जब तक उसको ख़ास मर्क़ज़ पर क़ाइम करके किसी और शै पर टिकने का सहारा न दिया जाय। जब चित्त की वृत्ति रुकने से इन्कार करे, ख़्वाह भागने लगे तो उसको बार-बार मर्क़ज़ पर जमाया जावे और तवज्जोः या ख़्याल से मदद ले कर उस पर क़ाइम किया जावे तो उसका नाम 'प्रत्याहार' है। वृत्ति के बार-बार रोकने के अमल को 'प्रत्याहार' कहते है।

[04] धारणा - इख़्तियार करने, पकड़ रखने और जमा देने को धारणा कहते हैं। यह लफ्ज़ 'धृते' मानी पकड़ने से निकला है। यह सब मिल-मिला कर 'निध्यासन' कहलाते हैं। जो 'चौसाधन' हैं।

ध्यान - अच्छी तरह धारण करके तसव्वुर और ग़ौर करने का नाम 'ध्यान' है।

समाधि - ध्यान की गहरी हालत का नाम है। 'सम' मानी मिला-जुला हुआ, 'धा' मानी धारण करना। मतलब यह है कि 'सत' से खूब मिल-जुल कर उसको पकड़ रखने को 'मुराकब:' या 'समाधि' कहते हैं।

अब एक दर्जा 'हंस' का है, जिसके मानी हैं "सत का ग्रहण करने वाला" सत्संगी सत का संग करने वाला, 'साधू', सत का साधन करने वाला। 'हंस' लफ्ज़, 'हन' मानी मारने से निकला है। जिसने बुरी ख़्वाहिश को मार गिराया है और जिसमें सत रूह बन कर रहता है, वह हंस है। उसका वस्फ़ साक्षात्कार करना है।

इस नज़र से हंस की दो कैफ़ियतें हैं, पहली 'असत' का त्याग और 'सत' का भली भांति गृहण करना, दूसरा उसका रूप बन जाना। यह इस वजह से माना गया है कि हंस पानी-पानी को छोड़ देता है और दूध-दूध को पी लेता है।

जब तक कि 'सत' के इख़्तियार और असत के ख़ारिज करने से ताल्लुक़ है तब तक 'हंस' की हालत को "सुकमिल" कहते हैं। 'स' मानी साथ, कला मानी तमीज़ करना। तमीज़ करने को सुकल्प कहते हैं।

यह दूध और पानी की मिली-जुली अवस्था में से पानी का तर्क करना और दूध का पीना मुराद है। जब 'हंस' इस वस्फ़ और ख़सूसियत का हो जाता है तब उसका नाम "परमहंस" कहा जाता है। यह ज़िन्दग़ी की निहायत खुशग़वार हालत है। उसको कोई कोई 'अवधूत' और 'कलन्दर' बोलते हैं। यह सत या हक़ीक़त की मस्ती की क़ैफ़ियत है। 'सत्संगी', 'साधू' और 'हंस' यह तीनों अब तक माया, सिफ़ात और काल के चक्कर में हैं। इन सब के परे एक चौथी हालत है, जिसको 'संत' कहते हैं। 'संत' सत के रूप को कहते हैं। संत जात में और हक़ीक़त में निज स्वरुप है। असल में इनके सिवाय सब नक़ल है। इब्तिदा इसकी सत से होती है लेकिन हालतों में फर्क होता है। फ़र्क के दायरे में तमीज़ी मद्दात रहते हैं। तमीज़ी मद्दात को भी सिफ़ाती और कृत्रिम कहते हैं।

जाती और जातियत और चीज़ है। सिफ़ाती और नक़ल दूसरी चीज़ है। सत जातियत है और कृत्रिम सिफ़ातियत है। जो असल में है और हमेशा रहता है वह तो सत है। जो असल में नहीं है, असल की नक़ल बन कर दिखा रहा है वह कृत्रिम है। जो क़ाइम बिल-जात है वह संत और सत है। जो क़ाइम-बिल ग़ैर हो वह असत और असत है। इसलिए सत्संगी सत या संत के सोहवती को कहते हैं।

'साधू' सत या 'संत' की क़ैफ़ियत के साधन करने वाले को कहते हैं। हंस सत की या संत की क़ैफ़ियत में महब रहने वाले का नाम है। संत सत का रूप है और ज़ात हक़ीक़त है। और 'परमसंत' सन्तपने की घनेपन की इम्तिआज़ी सूरत जहननशीं कराने की ग़र्ज़ से यह लफ़्ज़ इस्तेमाल किया गया है।

सत्संगी में संत के निश्चय के साथ कथनी और कुछ करनी रहती है, यानि काल और कुछ हिस्सा हाल का। 'साधू' में संत के निश्चय के साथ करनी रहती है, कथनी नहीं रहती यानि हाल रहता है, काल नहीं रहता।

हंस में करनी और रहनी यानि हाल और उसमें हाल की महवियत, रहनी का हिस्सा ज़्यादा होता है। संत में कथनी [काल] करनी [हाल] रहनी [हाल की महवियत] निहायत मौजूनियत, हम-आहंगी और बाहमी मुताबिक़त के साथ एक लड़ी में गुंथी रहती है। वह रहनी का रूप बना रहता है यानि 'बाक़ाउलबक़ा' हो जाता है। इन सब दर्जों में कस्बी और वहबी दोनों तरह के होते हैं। अब आपने सत और असत के मतों की क़ैफ़ियत जान ली। "दरअसल जो साधू और संत सिफ़ात के चक्करों से आगे जाने का एहतमाम करे और कराये वह संत और संत-मत है। यह सब मतों की हक़ीक़त से आगाह हो कर दया की नज़र से सब को अपनाता है और किसी से

विरोध इस वजह से नहीं करता कि सब मत उसके अंदर हैं और और वह सब मतों से ऊपर है। सब को बुला कर और बिला कराहियत और एतेराज़ के है एक की निग़ाह ऊँची करना और कराना चाहता है।"

अब इस नम्बर दस [10] के मद में सवाल यह था कि इसमें शिरक़त की वजह सिर्फ़ अंदर का अभ्यास है या बाहरी उसूलों की पाबंदी भी। अंदर के अभ्यास की तालीम और तशरीह ज़्यादातर अमल से ख़सूसियत रखती है जो करीब-करीब सबको मालूम है, और बाहरी उसूल भी बिलकुल उसके मुताबिक हैं। अंदर और बाहर उसूल एक ही काम करता है। क्या आप अंदर सत की तलाश करेंगे बाहर असत की ? क्या आप 'दोहरापना' अख़्तियार करेंगे। जो महापाप है। अंदर और, बाहर और ; 'मन में राम बग़ल में ईंटें'। जो मदारीज़ की तशरीह की गयी है उसमें, निहायत तफ़सील के साथ सिर्फ़ सत और असत के भाव दिखलाये गए हैं। अगर उनको गुरुमत हो कर कार्यवाही की जावे तो कामयाबी मुमकिन है वर्ना हरगिज़ नहीं। 'मनमत' होना इस मत के ख़िलाफ़ है। 'गुरुमत' होना उसको कहते हैं कि जो गुरु कहे उसको मन, वचन और कर्म से बजा लावे। मैं तो यह देख रहा हूँ कि 'मनमत' इस क़दर ज़ोर है कि वह मनमत के ज़ोर से यह चाहते हैं और कोशिश करते रहते हैं कि जो कुछ हम चाहें उसी के मुताबिक़ गुरु हुक्म बजा लावे और उसकी करतूतों पर हरगिज़ और किसी किस्म की चूं व चरा न करे और सर औंधाए जहाँ तक हो सके सब बेएतदालियाँ बर्दाश्त करें। इस मानी में तो अब उलट-धार मामला हो गया है। गुरु चेला है और चेला गुरु। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार बाहरी व अंदरूनी अभ्यास और बाहरी ब्यवहार में लगाए रखने को 'गुरुमत' कहते हैं।

पस् असल में सवाल मनमत और गुरुमत होने का है। यहाँ ज़्यादातर तादाद इस वक़्त सत्संगियों की है जिन्होंने अब तक गुरु धारण नहीं किया है, और साधू भी हैं जो अमल तो करते हैं मगर मनमत के साथ। जैसा उनके दिल में आता है वह करते हैं, और जो उनका दिल गवाही नहीं देता है उसको हरगिज़ नहीं करते। इसी तरह पर उन्होंने गुरु को उसूलन धारण कर लिया है मगर रिवाज़ी मनमत नहीं छोड़ा।

अगर महज़ सत्संग और अंदरूनी अभ्यास से काम है और बाहिरी उसूलों की तरफ़ तवज्जः नहीं भी है यानि मनमत बने रहते हैं तो उस वक़्त तक उनको बैअतसानी के लायक नहीं समझा जाता है, इस दूसरे दर्जे के सम्बन्ध को 'गुरुमुखी' होना कहते हैं इसमें चंद वायदे लिए जाते हैं। हालाँकि बहुत कम ऐसे हैं कि वायदे पूरा किया करते बल्कि अधूरा भी नहीं करते। लेकिन यह उनका फ़ेल है। शैतान सब के साथ है। उसमें चूँकि रूहानियत से ताल्लुक़ जोड़ा जाता है इसलिए

इसमें यह ज़िम्मेदारी होती है कि इस ताल्लुक़ का छूटना निहायत मुश्किल हो जाता है। ख़्वाह कितने ही अर्से तक साधू गुमराह रहे और अभ्यास न करे लेकिन रूहानियत घेर-घार करके कभी-न-कभी उसको फिर राहे रास्त में वापिस ले आती है। बहुत कम ऐसा देखा और सुना गया है कि यह ताल्लुक़ तमाम उम्र के वास्ते क़तई छँट जावे।

अगर इस ताल्लुक़ को साधू खुद ही दिल से तोड़ दे तो फ़ौरन टूट जाता है, लेकिन अगर वह दिल से न चाहे तो गुरु के नाराज़ रहने और निकाल देने पर भी कुछ-न-कुछ डोरा लगा रहता है और तअल्लुक क़तई नहीं छूटता। इस वजह से वक़्त आ जाने और संस्कार उभर जाने पर वह बदस्तूर संभल जाता है।

इसके बाद जब फिर देखते हैं कि साधू 'हंस' के दर्जे में आ गया, लेकिन मुस्तक़िल नहीं हुआ है और उसमे तासीर दूसरे में तसर्रुफ़ [व्यय, उपयोग, प्रयोग, महात्माओं आदि की अलौकिक शक्ति = expenses, use, mystical power of saints] करने की आ गयी है तो उसकी चढ़ाई जज़्ब की क़ुव्वत से जज़्ब के नुक़्ते या मर्क़ज़ तक अक्सी तौर पर करा के उसको दूसरे में तसर्रुफ़ करने की इजाज़त दे देते हैं। यह "तीसरी बैअत" कहलाती है। इसमें सत्संग करने और तसर्रुफ़ करने की 'इजाज़त' होती है। अगर उसको 'इजाज़त' न ही दी जावे तो ख़्वामख़्वाह उसमें यह क़ुदरतन माद्दा 'तसर्रुफ़' करने का पैदा हो जाता है और इरादा या बिला इरादा उसमें तासीरात और तसर्रुफ़ात ज़ाहिर होने लगते हैं, इसलिए मजबूरन अक्सी तौर पर मुक़म्मिल करा के 'इजाज़त' दे देते हैं। ताकि उसकी क़ुव्वत और तासीर झुट्ठल और ख़राब न हो जावे, लेकिन उनको चाहिए कि कोशिश करके अक्सीपने और नकली से असल कर लें, मगर नादानिस्तग़ी [अनजानपन = ignorance] और ग़लती से यह लोग अपने आप को मुक़म्मिल समझ कर अहंकारी बन जाते हैं और ऐसा समझने लगते हैं कि जो कुछ होना था वह हो गया।

यह जुहल और नादानी है अभी न मालुम क्या-क्या मंज़िलें तय करना बाक़ी हैं। इन लोगों को ताल्लुक़ कराने की इजाज़त नहीं होती। जब 'तीसरी बैअत' वाले मुक़म्मिल कर लेते हैं तो उनकी 'चौथी बैअत' होती है फ़िर तासीर और तसर्रुफ़ करने वालों की या तो बिजली को हरकत करते हैं या कि आगे वग़ैरह- वग़ैरह।

[तफ़सील तलब]

अलावः इसके साहिबे तासीर और तसर्रुफ़ की चन्द क़िस्में हैं। एक तो वह है कि सिर्फ़ अपने से नीचे वालों को एक दर्जा ऊपर उचका दें या मुतहर्रिक़ कर दें और एक वह है कि जिस मुक़ाम से जिसको चाहें ऊपर सरका कर के ले जावें और इनमें से एक इस क़िस्म के हैं कि जब चाहें न ले जा सकें, लेकिन जब उन पर एक ख़ास हालत पैदा हो उस वक़्त हिम्मत को काम में ला सकें।

एक वह है कि जब और जिस वक़्त चाहें, ख़्वाह हालत हो या न हो, हिम्मत को सर्फ़ कर दें। एक वह है कि जब इरादा करें, तब तासीर हो और जो इरादा न करें तो तासीर न हो। एक ऐसे है कि इरादा करें या न करें, तासीर जारी रहे और रोक करना चाहें तो रोक लें। एक वोह है की उनको रोकने या न रोकने से कुछ मतलब नहीं। एक वह हैं कि उनकी तासीर से सिर्फ़ बातिनी जज़्बात को हरक़त हो जावे, लेकिन आदात और अख़लाक़ पर कुछ असर न पड़े। एक वह है कि जिसकी तासीर से बातिनी जज़्बात पर भी असर पड़े और अख़लाक़ साथ-साथ संभल जावें। एक वह है कि जिनकी तासीर और हिम्मत से बातिनी जज़्बात में कुछ हरक़त महसूस न हो, लेकिन ज़ाहिरी और बातिनी अख़लाक़ की दुरुस्ती हो जावे।

मैं ख़्याल करता हूँ कि यह मामला बहुत दर्जे का है। हाँसिल इस कलाम का यह है कि बाहिरी उसूलों की पाबंदियाँ मुक़द्दम हैं और आला हैं। जो लोग ऐसा करना नहीं चाहते तो मुज़ायक़ा नहीं कि क़ुव्वत और हिम्मत आने के वक़्त तक फज़ल के मुम्मेदवार रहें। लेकिन क़तई इंकार करने वालों के लिए यह मसला उन पर सादिक़ आवेगा।

"ई ख़याल अस्तो, मुहाल अस्तो जुनूँ।
हम खुदा ख़्वाही व् हम दुनियाँए दूँ।।"

खाना [मद] नंबर 13 [तेरह] में यह सवाल किया गया था "आप महज़ संतमत के क़ाइद के मुताबिक़ रहनी-सहनी अख़्तियार करने को तैय्यार हो सकते हैं। सामाजिक ब्यवहारों को भी साथ-साथ ले कर चलते रहेंगे।" इस सवाल के साथ ही और बहुत से सवालात उठ खड़े होते हैं -

[01] अव्वल तो यह है कि 'संतमत' के मुताबिक़ रहनी-सहनी क्या है ?

[02] दूसरे यह है कि क्या 'संतमत' के मुताबिक़ रहनी-सहनी अख़्तियार किये बग़ैर काम नहीं बन सकता।

[03] तीसरे यह कि 'संतमत' की रहनी-सहनी के अख़्तियार किये जाने पर सामाजिक ब्यवहार का किया जाना नुक्सान पैदा करेगा और किस हद तक सामाजिक ब्यवहार किया जाना चाहिए, जिन्होंने कि पूरा बयान जो इस वक़्त से पहले बयान किया जा चुका है पूरा सुन लिया है, अगर समझ में आ गया है तो और अगर इस वक़्त पूरी तौर पर समझ में नहीं आया है तो फिर कभी ग़ौर करने पर समझ में आ जावेगा तो मालुम हो जायेगा कि संतमत के मुताबिक़ रहनी-सहनी क्या है।

इसकी बावत मुफ़स्सिल तफ़्सील तो जिस क़दर हो उसी क़दर कम है और कभी ख़त्म नहीं हो सकती। लेकिन ऐसे मुन्तख़िब उसूल और सिद्धान्त के इस वक़्त जौहर बयान किये जाते हैं जो ग़ालिबन हर बात और हर अमल के साथ-साथ रहते हैं, और तफ़्सीलवार अगर आप साहिबान चाहेंगे तो बाद को किताब की शक्ल में शाया कर दिया जाएगा। इस वक़्त का तफ़्सील के साथ बयान करना मुश्किल भी है और नामुमकिन भी है। और न इस क़दर वक़्त है।

अव्वल उनमें से ऐतक़ाद है और वह ज़रूरी है और ऐतक़ाद यह है कि ऊँचा ख़याल क़ाइम करना चाहिए। जैसा ख़याल होता है उसका वैसा ही मआल [अंत, निष्कर्ष = end, conclusion] होता है। इस लिए हमको मंज़िले मक़सूद का ख्याल ऊँचाई निग़ाह रख कर करना चाहिए ; मसलन सिवाय 'संतमत' वालों के बक़िया सम्प्रदायों और पंथों का यह मेराज तमन्ना है कि इस नीचे मुक़ाम से सरक कर पारब्रह्म में लय हो जाना चाहिए या ब्रह्म में लय हो जाना चाहिए।

[यहां 'ब्रह्म' और 'पारब्रह्म' की तफ़्सील करना चाहिए] और इन्हीं में लय हो जाने की उम्र भर कोशिश किया करते हैं। और 'संतमत' के मानने वाले यह मानते हैं कि नीचे मुक़ामात से चल कर पारब्रह्म के क़रीब या उसमें फ़ना हो जाने से काम नहीं बनेगा और मोक्ष नहीं होगी इसलिए पारब्रह्म के मुक़ाम से शुरू करके 'सतपद' मुक़ाम तक रसाई हाँसिल करने का ख़याल क़ाइम करते हैं और इस ही के मुताबिक़ कोशिश भी करते रहते हैं।

इनका मक़सद यह है कि दर्मियानी मरहिलों और रास्तों से गुज़रना ज़रूरी होगा। इसलिए देवता - फरिश्ता और शक्तियों के मुक़ाम में भी फ़नाईयत और क़ुरबत [सामीप्य = proximity] भी होगी। लेकिन इनसे पार जाने का ख़याल रखना और जतन [यत्न] करते रहना चाहिए।

ज़ाहिरी ऐमाल [कार्यवाईयाँ = actions] में सत के हिस्से को लेते हैं और 'असत' हिस्सों से काम ले कर उनमें तबियत नहीं लगाते और जब ज़रूरत पड़ती है उसी से काम निकाल कर अलहिदा हो जाते हैं। जैसे कि 'पाखाना' और' पेशाबखाना' में जाना ज़रूरी पड़ता है।

ऐसी 'रहनी-सहनी' और आदत अपनी नहीं बनाते कि जिनकी वजह से इस दुनियाँ को छोड़ते वक़्त उनको तक़लीफ़ और दुःख हो और प्राण अटके रहें। इस क़िस्म के ज़ाहिरी और बातिनी ऐमाल हमेशा करते रहने के आदी अपने आप को करते हैं कि उनसे अपने आप को जिस्मानी, अख़लाक़ी और रूहानी तक़्लीफ़ न हो। नीज़ दूसरों को भी अपने मन, वचन और कर्म से जिस्मानी, अख़लाक़ी और रूहानी तक़लीफ़ न पहुँचे और पहुँचने का इम्कान हो।

इनमें सामाजिक ब्यवहार भी ऐसे शुद्ध हुए रहते हैं जिनसे किसी तरह की सोसाइटी को इल्मी - अमली जवानी तहरीरी एतराज़ नहीं हो सकता। चूँकि ऊँचे आदर्श होने की वजह से नीचे के कुल मुक़ामात पर इनका उबूर होता है और सब की वाक़फ़ियत और हक़ीक़त को जान जाने के ग़र्ज़ से इनमें द्वेष भाव, तअस्सुब और कट्टरपना नहीं रहता। इसलिए किसी को अपने से जुदा नहीं मानते और उनको कमज़ोर और नाक़िस देख कर घृणा नहीं करते बल्कि सच्ची नियत और इरादों से जनकी बेहतरी चाहते और तालीफ़ कलूब और दया के ख्याल से हर एक की निगाह को ऊँची कर देने का एहतमाम करते रहते हैं।

इनके तरीके में कश्फ़ व करामत ज़रूरी नहीं और क़यामत में बक्शवाने की ज़िम्मेदारी नहीं। न दुनियां के कामों की कारबरारी [काम का पूरा होना = completion of work] का वादा रहता है कि 'ताबीज़' और गंडों से काम बनाया जाय या मुकदमात दुआ से फ़तह हो जाया करें या रोज़गार में तरक़्क़ी हो या 'झाड़-फूँक' से बीमारी जाती रहे या होने वाली बातें बतला दी जाया करें। न तसर्रुफ़ात का होना लाज़िमी है कि पीर की तवज्जः से मुरीद की अज़-खुद ऐसी इस्लाह हो जाय कि उनको गुनाह का ख़्याल तक न आवे और खुद ब खुद इबादत के काम होते रहें और मुरीद को ज़्यादा इरादा भी न करना पड़े। न ऐसे बातिनी कैफ़ियात के पैदा हो जाने की कोई मियाद है कि हर वक़्त या इबादत के वक़्त लज़्ज़त से शरशार रहें। इबादत में ख़तरात भी

न आवें। खूब रोना आये। ऐसी महावियत हो जाय कि अपने पराये की ख़बर न रहे। फ़िक्र और शग़ल में रोशनियाँ वग़ैरह नज़र आयें और न खास करके आवाज़ का सुनायी देना ऐसा ज़रूरी है, न उम्दा उम्दा ख़्वाबों का नज़र आना या इलहामात का सहीह होना लाज़िमी है।

नोट - इससे यह मुराद नहीं है कि यह सब दावे किये जायँ बल्कि यह ईश्वर की मर्ज़ी पर मुनहसिर है कि जो 'उसको' मंज़ूर है वह हो जाएगा। असल मक़सूद तो परमात्मा का राज़ी रखना है और उसकी रज़ामंदी इसमें है कि जहाँ तक मुमकिन है 'धर्मशास्त्र' के हुक्मों की ताबेदारी करना और उन पर चलना है।

इन हुक्मों में से बाज़ ज़ाहिर के मुताल्लिक हैं। जैसे कि संध्या, उपासना, व्रत, तीर्थ प्रजटन, माल से कुछ हिस्सा ख़ैरात के लिए निकालना, शादी, ब्याह, औरत, भाई, बहन, रिश्तेदार, दोस्त, माँ-बाप, पड़ोसी के हक़ूक़ का अदा करना।

लेन-देन और ब्यवहार के मसले, मुकदमात की पैरवी, गवाही देना, वसीहत अपने बाद की जायदाद की तक़्सीम वारिसों के लिए, सलाम, बोल-चाल, सोना, खाना, सफ़र, मेहमानी, मेज़बानी वग़ैरह वग़ैरह।

और बाज़ बातें बातिन के मुताल्लिक़ हैं - मिसलन ईश्वर से मोहब्बत रखना, उससे ख़ौफ़, उसकी याद, दुनियाँ से मोहब्बत का कम करना, उसकी रज़ा पर राज़ी रहना, हिर्स न करना या उपासना में दिल का हाज़िर रखना। और दीन के कामों को निहायत ख़लूस से करना, किसी को हक़ीर न समझना, खुद-पसंदी न होना, ग़ुस्से को ज़प्त करना वग़ैरह - इन सब को सलूक कहते हैं। बातिनी ख़राबियों से अक्सर ज़ाहिरी एमाल में भी ख़राबी वाक़े हो जाती है। जैसेकि क़िल्लते-मोहब्बते-हक़ से उपासना में सुस्ती होगी या जल्दी-जल्दी बिला तब्दील अर्कान पढ़ ली या कंजूसी की वजह से ज़कात और तीर्थ वग़ैरह जाने की हिम्मत न हुयी या ग़रूर व ग़लबा ग़ुस्से से किसी पर जुल्म हो गया ताकि हक़दारों का हक़ तलफ़ हो गया।

अगर ज़ाहिरी ऐमाल में एहतियात भी कर ली जावे तो भी जब तक नफ़्स की इस्लाह नहीं हुयी तो वह एहतियात चन्द रोज़ से ज़ायद नहीं चलती पस् नफ़्स की इस्लाह इन दो सबब से ज़रूरी ठहरी। लेकिन यह बातिनी खराबियाँ ज़रा कम समझ में आतीं हैं और जो समझ में आतीं हैं तो उनकी दुरुस्ती का तरीक़ा कम मालूम होता है और जो मालूल भी हो तो नफ़्स की खींचा-खांची से उस पर अमल मुश्किल होता है। इन ज़रूरतों से पीर-कामिल तज़बीज़ किया जाता है कि वह

इन बातों को समझ कर आगाह करता है और उनका इलाज और तद्बीर बताता है और नफ़्स की अन्दर दुरुस्ती की इस्तेदाद और इन मामलात में सहूलियत और तदबीरों में क़ुव्वत पैदा होने के लिए कुछ ज़िक्र और शग़ल की भी तामील करता है। पस् सालिक को दो काम करने पड़ते हैं।

[01] यह कि गुरु के पास आ कर उससे सलाह और मशवरा ले कर अमल सीखने के पहिले सहीह विश्वास और मुस्तकिल इरादा क़ाइम करना। और फ़िर -

[02] गुरु करने के बाद उसकी बतायी हुयी बातों को निहायत मज़बूती और इस्तक़लाल से करना और साबित क़दम रहना और जो उन ऐमाल के नतीज़े हों उनसे आगाह करते रहना।

अब यह सवाल आता है कि क्या 'संतमत' के मुताबिक़ रहनी-सहनी इख़्तियार किये बग़ैर काम नहीं चल सकता है तो उसका जवाब यह है कि मिसाल से सुनिए -

ज़ाहिरी जिस्म की बीमारी तो वैद्य हक़ीम व डॉक्टर से इलाज और परहेज़ से जाती है और इख़लाक़ी और रूहानी मर्ज़ का डॉक्टर संत, साधू वग़ैरह है।

अगर अपने पास से दवा ऐसी दे कि जो पाँच रुपये की एक खुराक हो और हिदायत यह करे कि इस शीशी की डॉट मज़बूत लगाए रखना कि असल जौहर उड़ न जाय और शीशी को क़ब्ल इस्तेमाल करने के डूब हिला लिया करना और दवा को ठण्डी जगह पर रखना, गर्मी उसको न पहुँचे और दिन में तीन खुराकें क़ब्ल खाना-खाने के इस्तेमाल करना। और ख़ुराक़ में साबूदाना और खिचड़ी और दाल-मूंग, दूध इस्तेमाल करना।

अब मरीज़ साहिब दवा पी कर शीशी की डॉट को खुला छोड़ दें और बजाय साया में रखने के सहन में, धूप में, चूल्हे का पास रख दें और दवा पीने के क़ल्ब उसको हिलाएँ नहीं और एक मर्तवा में दो दफः की दवा एक-साथ पी जावें और तीसरी ख़ुराक़ पीना बिलकुल भूल जावें या जैसा कि आम-तौर पर औरतों का क़ायदा है कि दवा को क़सदन फेंक दिया करतीं हैं और जिस क़दर ज़्यादः ताक़ीद कर दो उसी क़दर उसका उलटा करतीं हैं - करें और ख़ुराक़ में जो उन्होंने बतलाया है कि यह खाना, वह खाना, उसके बजाय गोश्त और घुइँया और सोहन हळवा इस्तेमाल करें तो अब इस दवा के नतीज़े को आप ख़याल करें कि क्या होगा।

आप निहायत लतीफ़ दर्जे का कोई पौधा बो दें और उसमें खाद उसके ख़िलाफ़ डालें और पानी कभी न दें और न उसकी बकरियों से हिफाज़त करें तो उस पौधे का क्या हाल होगा। आप आला क़िस्म का अर्क गुलाब सबसे ज़्यादा कीमती मँगवा लें और शीशी को खुला हुआ अलमारी के नीचे के तख़्ते में रख दें और ऊपर के तख़्ते में मिट्टी के तेल का बर्तन जो टूटा हुआ है रिसता है उसका तेल बह-बह कर शीशे-अर्क में गिरे तो फिर उस गुलाब के अर्क का क्या हाल होगा। बजिन्सहू आप ख़्वाह कैसा ही अमल और शग़ल वग़ैरह करेंगे और ज़ाहिरी जिस्म के मुतअल्लिक़ जिस क़दर अहकाम हैं बजिन्सहू क़ाइदे के मुताबिक़ अमल में न लाएंगे तो फ़ायदा न होगा।

अब आप ग़ालिबन यह चाहते होंगे कि 'अभ्यास' करें संतमत का और 'रहनी-सहनी' रक्खे मौजूदा सामाजिक ऐमाल के जो बिगड़ी हुयी शकल में है उसका सवाल आप खुद हल कर सकते हैं। अलबत्ता ऐसे ब्यवहार का कर लेना रिश्तेदारी व ब्यवहार और रस्म व रिवाज़ के मुताबिक कर सकते हैं कि जिनमें वाक़ई उसूल की बुनियाद में कोई अज़ीम धक्का न लगे और धर्म का बिलकुल सत्यानाश न हो जावे, मिसलन आज-कल मामूली मोटी-मोटी बातें जो रस्म-रिवाज़ में दाख़िल हो सकतीं हैं और मायूब [जिसमे ऐब या दोष हो = faulty] नहीं समझी जातीं हैं बल्कि अच्छी समझी जातीं हैं लेकिन उनसे वाक़ई 'धर्म' की बुनियाद हिल जाती है उनको तो कम-से-कम ख़याल करें, मिसलन नशे वाली चीज़ों का खुल्लम्खुल्ला और चोरी-छुपे इस्तेमाल करना, जुआ खेलना, आम-बाज़ारी औरतों से बज़ाप्ता सम्बन्ध का रखना वग़ैरह वग़ैरह। ये बातें तो ऐसी नहीं कि जो बहुत बारीक़ हों, समझ में न आतें हों। पहले हमारे भाई इन मोटी-मोटी बातों से परहेज़ रखना सीखें फ़िर और बारीक़ बातें भी मालुम हो सकतीं हैं।

बाक़िया क़ाइदे 'B' पर देखो

[B]

[ज़मीमा सवाल नंबर 13 - रहनी-सहनी]

ज़ैल [आगे आने वाला भाग = following, under mentioned] के चंद क़ाइदे ख़ास सत्संगियों के वास्ते लिखे जाते हैं। ढुलमुल यक़ीन रखने वालों के लिए नहीं हैं।

इसके मेम्बरों का पूरा विश्वास परमात्मा ही पर होना चाहिए जिस तरह कि कोई आदमी को किसी चीज़ की तलाश है लेकिन हर जगह माँगने पर कोई भी आदमी उसको वह चीज़ न देवे तो वह बिलकुल निराश हो कर बैठ रहता है। इसी तरह वह हर एक भाई-बंधु, रिश्तेदार, दोस्त, अहबाब, ऑफ़िसर, मातहत और राजा वग़ैरः सब से निराश और नाउम्मीद हो कर रहे।

अगर कोई उसकी मदद देवे तो वह 'मदद' परमात्मा की तरफ़ से ख़्याल करे और यह ख़्याल करे कि परमात्मा ने उसके दिल में जिसके ज़रिये से मदद मिली है यह बात डाल दी है कि वह इस तरह मदद कर रहा है। पर उसको ईश्वर का धन्यवाद् देना चाहिए और फिर उस शख़्स का तहेदिल से जवानी और दिली मश्कूर होना चाहिए क्योंकि उसने ऐसे हुक्म को जो उसको ईश्वर ने दिया, मंज़ूर किया और फ़रमावरदारी की। हर अपनी बड़े की इज़्ज़त और तमीज़ करता रहे और अपने छोटे के लिए प्यार, और उसकी ज़रूरतों को हत्तुल्मकदूर पूरा करने की कोशिश और कसूरों की चश्मपोशी। अपने बराबर वालों के साथ मोहब्बत, हमदर्दी और जायज़ इम्दाद। जो लोग कि मुख़ालिफ़त पर बिला वजह आमादा रहें, उनसे बचाव और बेपरवाह और इसी तरह अपने-आप को उनसे अलाहिदा रखने की कोशिश करना चाहिए जिस तरह कि दुनियाँदार - क़र्ज़दार अपने क़र्ज़ख़्वाह से घबराता है या कंजूस अपना रूपया ख़र्च होने की जगह से, लेकिन अगर वह मदद के ख्वाः हो तो उनका काम कर देना चाहिए और फिर अलग भाग जाना चाहिए। नफ़रत और नुकसान पहुँचाने और बदला लेने की कोशिश हरग़िज़ नहीं करना चाहिए। हरेक शख्स की ऐबपोशी हमेशा करते रहना चाहिए और किसी का भेद अगर मालुम है तो बिला-इजाज़त उसकी कभी कहीं ज़ाहिर न करना चाहिए।

अपने क़सूर को फ़ौरन मान लेना चाहिए और हठ और ज़िद न करना चाहिए। नुक़्ताचीनी की नज़र से बचते रहना चाहिए। अपना ऐब देखना चाहिए।

दूसरों के ऐब की तरफ़ नज़र जाती है तो उस ऐब से खुद सबक़ लेना चाहिए।

किसी के ऐब की बुराई [अपनी] ज़ुबान से नहीं करना चाहिए। मुमकिन है कि वह ऐब तुमसे भी हो जावे।

किसी को बिला तहक़ीक़ इलज़ाम नहीं लगाना। अगर रिश्तेदार-ख़ास या अपना लड़का [बेटा] तक बद्चलन हो तो उसका बेजा साथ नहीं देना चाहिए। वर्ना उसको दुबारा करने की शह और इम्दाद मिलेगी। अगर समझने से न माने तो उसको छोड़ कर अलग हो जाना चाहिए।

बे-इज़्ज़ती और बुराई, बुरे चाल-चलन और ब्यवहार से होती है, झूँठा वायदा करने से बे-इज़्ज़ती होती है।

क़र्ज़ लेना सबसे ज़्यादा बुरा है, मगर निहायत ज़रूरत के वक़्त, ज़रूरत का मौका सोंचने और समझने से पैदा हो सकता है। जो कर्ज़ा कि 'नुमायश' की ग़र्ज़ से लिया जाता है उसका अदा होना दुश्वार हो जाता है। अगर मुसीबत और खुर्दनोश या लड़की की शादी या कहत वग़ैरह में लिया जाता है, वह अगर नियत उम्दा रखता है तो ईश्वर उसकी मदद करता है और कभी अदा हो ही जाता है।

क़र्ज़ख़्वाह का सामना हमेशा करना चाहिए, मुहँ-छिपाना मना है। नौकर से वह काम लेना चाहिए जिसको तुम करने से बिल्कुल मजबूर हो। वह नौकर बतौर इमदाद के है, न कि ऐश-परस्ती का साधन। मज़दूर की मज़दूरी फ़ौरन अदा कर दो, हीला-हवाला करते रहना बड़ी बदइख़लाक़ी है।

अपने बच्चों को धार्मिक-तालीम ज़रूर देना चाहिए। अपनी बीबी को किसी-न-किसी तरह 'हमख़याल' बना लें, जहाँ शराब और नशा या उसके साथ 'रक्सो-सरोद' की महफ़िल हो, वहाँ हत्तुलमक़दूर शिरकत से परहेज़ करें और अगर मजबूरन शरीक़ होना पड़े तो इस तरह पर शरीक़ हों, जिस तरह कि 'संडास' में वक़्त-ज़रूरत जाना पड़ता है।

गाने के सुनने के अवसर अगर सामने आ जायँ तो ऐसा परहेज़ न करें कि लोग ताड़ जायँ कि भागते हैं ; रग़वत भी न करें और दिल उसमें न लगावें और उसमें आनन्द न लें। अग़र

रिश्तेदार और सम्बन्धी ऐसे कामों के करने पर मजबूर करें, जिनके करेने से धर्म नष्ट हो जाता है तो रिश्ते को, अग़र ज़रूरत हो, तोड़ दें क्योंकि कोई रिश्तेदार और दोस्त और अज़ीज़ वक़्त मुसीबत में मदद तो करता नहीं है और अग़र मालदार भी होता है तो भी एक कौड़ी क़र्ज़ नहीं देता, बल्कि नुक़्ते-चीनी और ताना-ज़नी को हर वक़्त तैयार रहते हैं। नहीं मालुम कि फ़िर क्यों उनसे बेजा उम्मीदें बाँध कर अपने आप को सत्यानाश लगाते हैं।

खुलासा यह है कि 'संतमत' की तरीक़ सलामतरबी, हमदर्दी, तस्लीम व रज़ा का तरीक़ा है। इसमें ईश्वर के ऊपर भरोसा और उसके क़ानून क़ुदरत के मुताबिक़ अमल करना ही लाज़िमी है। हर एक मुक़दमें के लिए मुफ़स्सिल क़ाइदे अगर आप साहिबान कहेंगे, तो लिख कर शाया कर दिए जायँगे।

नंबर 14 [चौदह] में यह सवाल है कि जहाँ आपका रहना होता है वग़ैरह वग़ैरह।

यह सवाल निहायत ही ज़रूरत की वजह से बहुत तज़ुर्बे के बाद किया गया है। बहुत से लोग इस क़िस्म में आते है कि वह यह चाहते हैं कि जो कुछ हमारी समझ में आया है, वह ही करते रहें। मिसलन ध्यान करने में उनको कोई लतीफ़ शै अंदर की जानिब ख्याल करने को बतलाई गयी है, लेकिन वह यह अमल करते हैं कि ज़रा देर के वास्ते बतलाये हुए क़ाइदे के मुताबिक़ अमल करते हैं, उसके बाद बहुत सा हिस्सा वक़्त का अपनी पुरानी बातों के अमल में सर्फ़ कर देते हैं।मिसलन जो तस्बीरें कि उन्होंने अपने कमरे में लटका रक्खीं हैं, इस अमल के बाद उनका ध्यान करते हैं और बहुत सी मूर्तियों को सामने रख कर उनका ध्यान बाँधते हैं।

[01] अब फ़रमाइये कि बतलाया यह गया कि बिला मूर्ति के शून्य ध्यान किया जावे या अंदर की तरफ 'प्रकाश' पर ख़याल किया जावे और वह उलटा और बिलकुल उल्टा अमल करते हैं।

[02] एक साहिब को यह बतलाया जाता है कि वह अपने 'घट' के अंदर जो कुदरती शब्द और ज़िक्र होता है, उसको सुनें और ध्यान लगावें। बावजूद इसके कि उनको शब्द सुनायी देता है, लेकिन वह मन्त्र का जाप जो पहिले से किसी ने बतला दिया था, अब तक बराबर किये जा रहे हैं।

[03] उसूल यह बताया गया है कि ज़ात हकीकत मूर्तिमान चीज़ों और नाम और रूप के झमेलों

से परे-दर-परे है, लेकिन वह सिफ़ाती मूरतों के ध्यान पर क़ाइम हैं।

बतलाया यह जाता है कि तन्हाँ ज्ञानकाण्ड बिला अमल और शग़ल के सिर्फ़ वाचक-ज्ञान है और यह महज़ बेकार और धोखा है। इसलिए कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों को निहायत ही माक़ूलियत के साथ रोज़ाना करना चाहिए, लेकिन वह सिर्फ़ ज्ञान और वाचकज्ञान को दख़ल देते हैं।

यह खूब मालूम है कि "एक के साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।" मगर उनकी यह आदत है कि कोई साधू मिल गया, उसके पास पहुँच गए और जो तरीक़ा उसने बताया वह करने लगे और जो उसूल और सिद्धांत उसने अपने सम्प्रदाय के मुताबिक़ समझाए, सब को ग्रहण कर लिया और अपने अमल और शग़ल को 'खिचड़ी' और 'गजरभत्ता' [गजर-बजर = poor quality food] बना लिया है।

एक [कोई] साधू के सत्संग में जाते हैं और फ़िर जो कोई मिल जावे, उसके पास भी तरीक़ा मालुम करने के लिए जाते हैं। एक [कोई अन्य] दिल और मोहब्बत किस-किस से जोड़ने की कोशिश करते हैं और आख़िरकार कहीं के नहीं रहते।

बाज़ साहिब यह सवाल किया करते हैं कि "क्यों साहिब, क्या हर्ज़ है कि फलाँ साहिब ने और फलाँ साहिब ने हमको यह-यह बतलाया था, वह हम सब करते हैं और यह आपका बताया हुआ भी करते रहें और वह भी करते रहें।" अब इसका जवाब किस तरह और क्या दिया जावे ? आप खुद समझ सकते हैं।

बाज़ सत्संगी साहिबान ऐसी मजलिस में जा कर भी शरीक़ होते हैं कि जहाँ सिद्धान्त और उसूल के बिलकुल बरख़िलाफ़ तालीम दी जाती है और तालीम ही नहीं दी जाती है बल्कि इस तालीम के मुअलमान [मुअल्लिम = अध्यापक = the work or a profession of a teacher] को कोस-कोस कर तबर्रा [घृणा = hate] भी कहा जाता है। मगर आप हैं और आप की ग़ैरत कि अपने उस्ताद के ख़िलाफ़ गालियाँ सुनने में मज़ा आता है।

ज़्यादातर तादाद ऐसे साहिबान की शरीक़ है कि जो उनका पुराना तरीक़ा है, वह ख़्वाह कितना ही कमज़ोर नामुकम्मल और नाक़िस हैं, अपनी हठ और आदत बन जाने की वजह से उसको

मुख्य समझते हैं और इसको 'गौण' [secondary, inferior] यानि असल उसको क़ाइम रखते हैं और इसको इज़ाफ़ी [ऊपर से बढ़ाया हुआ = extended] । पहिले वह उसको ठीक समझते हैं और इसको अगर वक़्त बचा तो ख़ैर, वर्ना नदारद।

बाज़ ऐसे साहिबान हैं कि तबीयत में कुछ और उसूल क़ाइम हैं और दिल रखने के लिए इनकी भी "हाँ में हाँ" मिलाते रहते हैं। बाज़ ऐसे हैं कि उनके दोस्त इत्तफ़ाक़ से आ गए हैं तो हम भी चले चलें। तरीक़े से दर-असल कुछ मतलब उनको नहीं हैं। उनको तो दर-असल अपने क़दीम साथी के रियायत मंज़ूर है और एक क़िस्म का अहसान अपने साथी पर रखते हैं।

बहुत साहिबान ऐसे है कि जहाँ ज़रा कड़ा पकड़ा, फिर तो ऐसे ग़ायब कि जैसे "गधे के सर से सींघ।" उनके लिए तो यह ज़रूरत है कि वह कुछ ही करें, उनकी मर्ज़ी में मुताबिक़ करने दें। बाज़ सिर्फ़ इसलिए आते हैं कि आँखें बंद कीं और तवज्जः में 'पीनक' आ गयी और आनन्द ले कर 'हाँथ झाड़ कर' उठ खड़े हुए और असली सत्संग में जा कर दुसरी नक़ली आनन्द के मज़े भोगने लगे।

बाज़ शिकायत करते हैं कि हमेशा तो वैसा आनन्द आता ही नहीं और हमेशा तो एक सी तबीयत लगती ही नहीं है। लेकिन उनसे ज़रा यह सवाल तो करना चाहिए कि आप ने भी हमेशा तो सत्संग नहीं किया। शाम को अगर यहाँ सिद्ध संत का सत्संग है तो रात भर का कहीं और।

"वाइज़ाँ चूँ जलबह बर मेहराब ब मिम्बर मीकुनद।
चूं बख़िलवत मीर बंद आँ कार दीग़र मीकुनद।"

असल यह है कि जब तक पुख्तगी न आ जावे, उस वक़्त तक जो सत्संग कि ठान लिया है - करें और 'हरजाई' न बनना चाहिए, वर्ना सब काम बेकार हो जावेगा।

[15] पन्द्रहवाँ सवाल यह है कि आप के माता और पिता मौजूद हैं और वह आपके ख़यालों को ठीक समझते हैं कि नहीं।

यह सवाल भी किसी ख़ास मस्लहत से किया गया है। मुझे इस उम्र में बहुत तजुर्बा हुआ है कि सत्य और सत्य के रास्ते में बहुत रुकावटें हुआ करतीं हैं। हालांकि माँ-बाप का मौजूद होना एक बड़ी बरक़त है। मगर इस ख़ास मसले यानि सत्य के ग्रहण करने और कराने में इनकी मौजूदगी निहायत दर्जे बाधक है। जिन माँ बापों को खुद तो इस तरफ़ तवज्जः तमाम उम्र हुयी नहीं, न उनको कभी इस क़िस्म का 'सत्संग' नसीब हुआ है। उनको तो उनके लड़कों के लिए जिनको कि ख़ुशक़िस्मती या इत्तफ़ाक़ वक़्त से अभी 'सत्संग' मिल गया या मिल जाता है, एक ख़ास रुकावट उनके भी माँ-बाप हैं। वह जहाँ दुनियाबी मामलात में अपने आप को बड़ा वाक़िफ़कार और तजुर्बेकार ख़याल करते हैं, उसके साथ ही बदक़िस्मती से इस मामले में भी बड़ी वाक़िफ़दारी दिखाते हैं और उनकी वाक़िफ़दारी की तफ़सील ज़रा मालुम कीजिये कि किस क़दर वसीअ पैमाना पर है। आप कहते हैं कि बच्चों और बचपन में इस सत्संग की क़तई ज़रूरत नहीं है, जब बुढ़ापा आवेगा, सिर हिलने लगेगा, हाँथ-पैर थक जावेंगे, मन-बुद्धि-चित्त कुछ काम न करेंगे, कोई बात याद न रहेगी और बाहर से घर के अंदर जाने में हाँफ जाया करेंगे, उस वक़्त इस काम का वक़्त मुनासिब आएगा। यह वक़्त तो खेल-कूद, पढ़ने-पढ़ाने, रुपया पैदा करने, बदइख़लाक़ी सीखने, जुआ खेलने, शराब पीने, दूसरों का माल हज़म करने, ताश गंजीफा खेलने, रंडियों में गश्त लगाने, ग़र्ज़े कि सिवाय इस सत्संग के सब जुमला बातों के रहने का है। हमारे सत्संग में जिस क़दर नौजवानों के लिए इस तालीम के लिए मुज़िर अब तक माँ-बाप हुए है, उस क़दर और कोई असबाब नहीं मालुम हुए।

बाज़ जी शऊर और मुंसिफ-िमजाज़ हाल के तालीमयाफ़्ता इस बात को तस्लीम करने लगे हैं कि हाँ, इस क़िस्म की तालीम की भी ज़रूरत है और 'लड़कों' को भी इसमें शरीक़ होना चाहिए और वह खुद भी बाज़-बाज़ शरीक़ हैं। लेकिन बावजूद इस वाक़फ़ियत के भी इस क़दर दिल के कमज़ोर हैं कि अपने लड़कों की आधा घण्टे की शिरक़त उनको ग़वारा नहीं है। इस आधा-घण्टे में उनका ख़याल है कि उनकी तालीम में इस क़दर हर्ज हो जाता है कि जितना दूसरे पन्द्रह-सोलह घण्टों नहीं होता।

वह खुद भी इन मरहिलों से गुज़र चुके हैं और जानते हैं कि तालिब-इल्म स्कूल के वक़्त में किस तरह वक़्त को सर्फ़ करते हैं और फिर गेंद-खेलने, हंसी-मज़ाक़ और बेहूदा बद-इख़लाक़ी के छिपे-चोरी सोसाइटिऑं में अपना वक़्त अज़ीज़ जाया करते हैं। वह वक़्त इनकी समझ में बेकार नहीं जाता और यही आधा-घण्टा सत्संग का इस क़दर गराँ [बोझिल = burdensome] गुज़रता है कि तोबा ही भली। इसलिए मैंने यह सवाल किया है कि वह उनके ख्यालों को ठीक समझते हैं या नहीं।

नंबर 16 [सोलह] - सवाल यह है कि आप की शादी हो गयी और आपकी बीबी मौजूद है ?

यह सवाल भी ऐसी ग़र्ज़ से किया गया है और इसके मुताल्लिक़ भी काफ़ी वाक़फ़ियत है कि यही रुकावटें वह भी पैदा करती है। मिसालें अगर मौका हो तो बयान करना चाहिए। दुसरी वजह यह है कि मुझे यह मालुम करना है कि अगर बिला शादी-शुदा मेंबर जिनकी उम्र इस क़ाबिल है कि वह शादी कर सकते हैं, अगर करना चाहें तो इस फेहरिस्त से मदद लें और मुमकिन है कि शादी हो जाने में कुछ सहूलियत हो जावे।

नंबर 18 [अठारह] - सवाल यह है कि बीबी आपकी 'हम-ख़्याल' है ?

अगर हम-ख़्याल है तो क्या अभ्यास करती है ? अगर अभ्यास करती है तो फ़िज़ूल रस्म व रिवाज़ को वह छोड़ सकती है या नहीं ?

यह ज़ाहिर है और साबित करने की कोई ज़रूरत नहीं है कि अगर बीबी 'हमख़्याल' है तो हर मामले में ख़्वाह वह दुनियाँ का हो या दीन का, निहायत ही सहूलियत रहती है। हाल में फ्रांस में बाल और मूंछों का वाक़्या हुआ है। वह इबरतनाक [इबरत = बुरे काम से मिलने वाली शिक्षा = a thing learned] है। क्या ही खुशी होती अगर वह आपके हमख़्याल है।

अगर अभ्यास भी करती है तो खुद घर में एक सत्संगी मौजूद है और औलाद पर किस क़दर असर पड़ेगा। बच्चे पर माँ का किस क़दर असर पड़ता है जितना कि उस्ताद और बाप का नहीं। अलावह इसके हम-ख़याल होने की वॉयस दूसरे जहान में भी एक-ही हलके में रहेंगे। इस मसले को साबित करना चाहिए।

अब रहा सवाल फ़िज़ूल रस्मियात का। यह इस वक़्त बेकार है। अभी मर्द ही इस क़ाबिल नहीं हैं कि बावजूद जानने और समझने के उनको तर्क कर सकें तो फिर औरतों को क्या कह सकते हैं ; अलबत्ते चन्द जरूरी मसले मसायल की बातें हैं। उनको हिंदी में मुरत्तिब करके अलहदा एक 'ट्रैक्ट' की शक्ल में छाप दिया जायगा।

इस वक़्त तक मर्दों को यह कोशिश करना चाहिए कि पहिले वह [खुद] रस्मियात-बद को छोड़ने की खुद कोशिश करें और औरतों को उम्दा-उम्दा किताबें तलाश कर-कर के सुनाना चाहिए और

उनको समझाना चाहिए। कभी वक़्त आवेगा कि औरतें खुद छोड़ देंगीं और मर्दों को जो नहीं छोड़ेंगें उनको अपनी 'तिरिया-हठ' से छुड़वा देंगीं।

सवाल नंबर 19 [उन्नीस] - यह है कि क्या पारसी, यहूदी, बौद्ध, मुसलमान वग़ैरह दीग़र मजहब वालों के आप विरोधी हैं।

यह सवाल मैंने अपनी वाक़फ़ियत के इज़ाफ़े के लिए किया था, हालाँकि मुझे खुद इल्म और तजुर्बा है। जो जवाबात आये हैं, वह क़रीब-क़रीब सब मस्नूई हैं और अपने ज़मीर के ख़िलाफ़ लिखे गए हैं। ख़ैर मैंने अंदरूनी तरक़्क़ी के लिहाज़ से हर शख्स की निःस्बत ख़यालात का अंदाज़ा लगाने के लिए किया था और वह हो गया।

सवाल नंबर 20 [बीस] क्या पॉलिटिकल मामलात से आपको कुछ वास्ता है।

यह सवाल लिए किया गया है कि मेरा नुक़्तए-ख़याल ऐसे लोगों से अभी इस लिए मुत्तफ़िक़ नहीं है कि जो तरीक़े और जराय-तरक़्क़ी करने के उन्होंने सोंचे हैं, वह मेरे जाविये [कोण = angle] निग़ाह [दृष्टि कोण] से लागू और नतीज़ा-ख़ेज़ नहीं है। मैं दूसरे सिद्धांत के ज़रिये से इस मसले को हल करना बेहतर ख़्याल करता हूँ।

सवाल नम्बर 21 [इक्कीस] - ग़ैर शादी-शुदा लड़के और लड़कियों की तादाद।

जिस क़दर कि फॉर्म मिल गए हैं, उनसे मैंने वाक़फ़ियत का एक ज़रिया पैदा किया है और एक लिस्ट फ़िर्क़े-वार तैय्यार कर ली है जिससे पता चल सकता है कि किस-किस फ़िर्क़े में कितनी-कितनी तादाद लड़के और लड़कियाँ बिला शादी-शुदा मौजूद हैं। इसमें अगर और कुछ नहीं तो इस क़दर सहूलियत पैदा हो जायगी कि तलाश करने की जो बड़ी दिक़्क़त होती है, वह कुछ कम हो गयी है। लेकिन मुझको यह महसूस होता है कि अगर लड़के वाले को यह पता चल गया कि लड़की वाला सत्संगी है और वह अपने वास्ते सम्बन्ध चाहता है तो फिर हरग़िज़ शादी करने के लिए तैयार न होगा बल्कि हज़ारों बहाने करेगा, इसलिए कि उसको यह ख़ौफ़ होगा कि लड़की वाला मुझको कहीं दर्मियान में न डाल दे और फ़िर उसकी सारी तमन्नाओं का खून हो जाय। ख़ैर ऐसी फ़हरिस्त से क़ामयाबी हो या न हो, मगर फ़हरिस्त का बन जाना अच्छा ही है

और कुछ-न-कुछ काम निकलेगा ही। सब आदमी एक तरह के नहीं होते हैं। जिन साहबान ने अब तक किसी ख़ास वजह से फॉर्म को वापस नहीं किया है, वह बराय मेहरबानी और ख़यालों को छोड़ कर सिर्फ़ इसी ख़याल से फॉर्म भर कर दे दें कि उनके फॉर्म से डायरेक्टरी में नामों का इजाफ़ा हो जायगा। जिन साहबान ने ख़ौफ़ की वजह से बावजूद अपनी औलाद ग़ैर-शादीशुदा मौजूद होने के तादाद लड़के और लड़कियों की नहीं लिखी है, वह अब खाना-पूरी कर दें और इत्मिनान कर लें कि उन पर कोई ना-जायज़ दबाव नहीं डाला जायगा।

सवाल नम्बर 23 [तेईस] - क्या आप की राय में शादी-ब्याह के मुताल्लिक़ तरमीम की ज़रूरत है या नहीं ?

यह सवाल हल हो गया है और मुझ को अनुभव हो गया है कि मैं अभी इस लायक नहीं हूँ कि तर्मीम कर सकूँ। जो तर्मीम की है और जिनकी बावत आम-तौर पर मुश्किलात दरपेश हैं, वह खुद कभी-न-कभी होंगी और ज़माना खुद उनसे किसी वक़्त करा लेगा। मेरी बात को अभी कोई नहीं मानेगा, इसलिए मैं उसको ज्यों-का-त्यों छोड़ देता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना है कि मेरे और आप-सब के ऊपर अपना फज़्ल और रहम करें। सिर्फ़ इस क़दर कह देना चाहता हूँ कि शास्त्र के मुताबिक़ या 'आर्यसमाजी-तौर' पर शादी करें, लेकिन उनमें इस क़दर हिम्मत को दख़ल दें कि शास्त्र से बढ़ कर रस्म और रिवाज़ को अफ़ज़ल [सर्वश्रेष्ठ = most excelent] न बनायें। मतलब यह है कि शास्त्र की बात चाहें छूट जाय, मगर जो अपने ख़ानदान और शहर में ऐसे रिवाज़ हैं, वह ख़्वाह किसी क़दर भी ग़लत हों, कर ही लें, यह बात न करें।

सवाल नंबर 24 [चौबीस] - आपको अपने लड़के, लड़कियों की शादी-ब्याह में अपना खुद ही अख़्तियार है या वाल्दैन और रिश्तेदारों का ?

यह सवाल भी अब बिलकुल बेकार है, क्यों कि मालुम हो गया है कि बहुत कम ऐसे लोग हैं जिनके यहाँ किसी दूसरे का दख़ल नहीं है। अगर एक-आध ऐसे हैं भी तो उनके यहाँ शैतान का दख़ल है।

सवाल नंबर 25 [पच्चीस] - सत्संग में 'संतमत' के उसूलों के मवाक़िफ़ शादी करना पसंद करेंगे और उनको देख कर आप सिर्फ़ उन्हीं क़ाइदों की पाबंदी से शादी करना-कराना पसंद करेंगे या पुराने रस्म-रिवाज़ के मुताबिक़।

[क] सत्संग के उसूलों के मुताबिक़ बताये हुए क़ायदों के मुताबिक़ शादी-ब्याह।

[ख] पुराने तरीके के मुताबिक़ शादी-ब्याह।

हालाँकि अभी कोई संत-मत का असली पाबंद नज़र नहीं आया है और न अभी वक़्त आया है, इसलिए मैं बेकार सा समझता हूँ की इसमें कुछ तर्मीम की जावे। लेकिन चूँकि लोग यह सवाल कर सकते हैं कि आख़िर वह क़वायत क्या है, बिला देखे और समझे हुए कैसे फ़ैसला और इरादा किया जावे। इसलिए ज़रूरी हुआ कि मुख़्तसर तौर पर उनको लिख दूँ।

जब जिस मेंबर को तौफ़ीक़ और हिम्मत होती जाय, उतना-उतना ही काम करते जायँ। वाजे रहे कि जब तक 'संतमत' के मेंबर दोनों तरफ़ से यानि 'लड़के' व 'लड़की-वाले' न होंगें, उस वक़्त तक इन उसूलों के मुताबिक़ शादी नहीं हो सकती।

[01] यह तो लाज़िम है कि जहाँ 'लड़के' और 'लड़कियों' की तलाश हो, पहले जो फ़हरिस्त कि मुरत्तिब [तरतीब या क्रम लगाने वाला = methodologist] है, उसको देख लें और जब अपने मुताबिक पसंद के 'लड़का' और 'लड़की' न मिले तब दूसरी जगह तलाश करना शुरू करें।

[02] जिस तरह कि अब तक फ़िरक़े-वार अपने-अपने फ़िरक़े में शादी करना पसंद करते हैं, वह ऐसा ही रक्खें और जो ग़ैर-फ़िरक़े में करना चाहें, वह 'इण्टर-कास्ट-मेरिज' करें।

[03] 'विधवा-विवाह' भी हस्ब-रिवाज़ सभा-सोसाइटी के, जैसी कि उनकी क़ौम इजाज़त दे, कर लें।

[04] 'लड़के' और 'लड़की' की तलाश में जो-जो बातें अब तक देखीं जातें हैं, निगाह रक्खें।

[05] ग़रीबी और अमीरी के सवाल को जहाँ तक मुमकिन हो, हटा दें।

[06] उजलेपन - हड्डी का सवाल, 'सोशल-पोज़िशन' का लिहाज़ ज़रूर रखना चाहिए।

[07] ज़्यादा मालदार के यहाँ लड़की न दें और अपने से ज़्यादा मालदार के यहाँ लड़का न

ब्याहें।

[08] बी ए, ऍम ए के पासशुदा लड़कों को ज़रा देख-भाल लें, सिर्फ़ उनके 'पास' होने को महज़ लियाक़त ख़्याल न करें, बल्कि उनके चाल-चलन और अख़लाक़ की ज़्यादा तहक़ीक़ात करना वाजिब है।

[09] 'लड़की' और 'लड़के' की तंदरुस्ती देखना चाहिए। जहाँ तक मुमकिन हो सके, जिन लड़कों को कोई हुनर आता हो या दस्तकारी आती हो, उनको पसंद करें। उसके बाद तिजारत वाले को और सबसे आख़िर में वह जो नौकर हैं।

[10] जो रीति और रस्म व रिवाज़ हुए हैं, उनकी हक़ीक़त मालुम है और खुद सोसाइटी के मुक़र्रर किये हुए हैं। इसलिए जिस सोसाइटी में रहना है, उसी रस्म को इख़्तियार करना चाहिए।

[11] शादी पुराने शास्त्र के मुताबिक़ करें या 'आर्य-समाज' के उसूल पर, जैसा आपस में मशविरा हो जावे। दीग़र रसूम खुद तय कर लें।

[12] बेहतर यह होगा कि 'लड़का' और 'लड़की-वाला', लड़के और लड़की को साथ ला कर या जो चंद ख़ास-ख़ास रिश्तेदार आना चाहें, 'भण्डारे' के मौके पर आ जायँ और शादी जैसी कि अब-तक होती आ रही है, हो जाय। बाराती और जनाती सब 'सत्संगी' होंगे, ख़ास दावत की ज़रूरत नहीं है। एक रोज़ रह कर 'घर' को वापस चले जायँ। अगर भंडारे पर न ला सकें तो सिर्फ़ सत्संगियों को जो ख़ास-ख़ास हों, बुलावें और जो सम्बन्धी और रिश्तेदार जो इस मामले के ख़िलाफ़ हों और बिघ्न डालने-वाले हों, उनको शरीक़ न करें।

[13] चढ़ावा और ज़ेवर ठोस बनवाएं, जो काम आयें।

[14] यह ज़ेवर या तो इक्यावन रुपये का हो या एक सोउ पच्चीस रूपये के या दो सोउ इक्यावन का हो। इससे ज़्यादा रक़म का ज़ेवर न चढ़ाया जावे। बाक़िया ज़ेवर, जिस क़दर चाहें, अपने घर पर या बाद को रुनुमाई या किसी दूसरे तरीक़े पर दे देवें, इसकी मुमानियत नहीं है।

[15] बहुत ज़्यादा कीमती जोड़े वक़्त-शादी के नहीं होना चाहिए। बाद शादी जिस क़दर चाहें, कर सकते हैं।

[16] शादी के वक़्त आम-दावत की मुमानियत है। उसके बाद अगर रुपया है और क़र्ज़ नहीं लेना है, तो दावत करें। लेकिन ख़ास-ख़ास अहबाब और रिश्तेदारों को बुलना चाहिए। शोहरत और नामवरी का लिहाज़ तर्क है।

[17] बाज़ार में बरात का आराइश [सजावट = decoration] के साथ घुमाना मना है।

[18] नज़राने की रक़म सिर्फ़ 'मान्य' रिश्तेदारों के लिए वाजिब है, बाक़ी की ऐसी ज़रूरत नहीं।

[19] अङ्कमाला [आलिंगन, भेंट] निहायत फ़िज़ूल है।

लेकिन ये बातें तभी हो सकतीं हैं, जब फ़रीक़ैन [फ़रीक़= विवेकशील व्यक्ति, समूह = rational person, a group] एक-राय हों। यह सब क़ाइदे जो ऊपर लिखे गये हैं, सब के वास्ते नहीं हैं, बल्कि उनके वास्ते हैं जो अपने आप को ख़ालिस संतमत का पाबंद मानते हैं।

सवाल नंबर 26 [छब्बीस] - सवाल यह है कि आप के पास माली गुंजाइश ख़ैरात और दान करने की है तो क्या 'सत्संग' के बनाये हुए क़ायदों के मुताबिक़ तक़सीम अख्तियर करने को राज़ी हैं या अपने मनमाने पुराने ढकोसलों के साथ।

अगर उदारता की सिफ़त नहीं है तो इंसान नाक़िस है। मजहबी नुक़्ता-ए-निगाह के अलावा क़ानून मजलिसी और सोसाइटी के लिहाज़ से अपनी आमदनी का कोई कम-से-कम हिस्सा ज़रूर अलग करके रखना चाहिए। कोई मज़हब ऐसा नहीं है जिसमें ज़कात, सदका और ख़ैरात का मसला ज़रूरी नहीं समझा गया है।

अगर क़र्ज़दार न हों तो ज़रूर ख़ैरात या ज़कात निकालना वाजिब है। अब तो शायद कोई आदमी ऐसा हो कि कुछ-न-कुछ क़र्ज़दार न हो, लेकिन चूँकि अब यह बात आम हो गयी है, इसलिए अब 'क़र्ज़दारी' की शर्त लगाना 'ज़कात' और 'खैरात' के लिए मान्य नहीं है। जब सदहा और हज़ारहा काम चलाये जाते हैं तो सिर्फ़ इसी को जायज़ न रखना सरासर ज़ुल्म और ख़िलाफ़ मजहब है। अब इसकी तक़सीम कहीं-कहीं तो मुनासिब की जाती है और कहीं-कहीं बिलकुल नाक़िस तरीक़े से, मिसलन एक तरीक़ा रक़म अलाहिदा रखने का यह है कि जब चाहा बिला किसी उसूल के निकाल दिया और एक यह है कि नियम, पाबंदी और आमदनी की तादाद

की मुनासिबत से। पस् तरीक़ा अव्वल निहायत नाक़िस है और दूसरे तरीक़े में काम अर्से तक चलता रहता है।

आप से बहुत क़िस्म के चंदे सरकारी लोग और शहर वाले ले जाते हैं, इसलिए इस रक़म के खर्च हो जाने से आप के पास आपके ख्याल के मुताबिक़ रक़म तक़सीम करने को बाक़ी नहीं रह जाती या बिलकुल कम रह जाती है। पस् इस तरह मज़बूर हो जाते हैं और आपकी बचाई हुयी और ख़ैरात की हुयी रक़म ऐसे मामलात खर्च की जाती है जिससे आप को कोई दिलचस्बी नहीं या आपकी तबियत और उसूल के बिलकुल बरख़िलाफ़ है, जो मतलब यह हुआ कि आपका गला घोंट कर जबर्दस्ती यह रक़म आप से खर्च कराई जाती है। इसलिए 'अव्वल ख्येसह बादहू दरवेश' का मसला आप सीखें। पहिले अपनी सोसाइटी और हक़दारों की ज़रूरतों को पूरा कर लें, तब दूसरों की खबर लेना वाजिब है। आप का पड़ोसी भूखा है, नंगा है, आपका रिश्तेदार फ़ांकामस्ती कर रहा है, आपके हक़ीक़ी रिश्तेदार के पास इसक़दर रूपया नहीं है कि वह अपने लड़कों को तालीम करा सके, आपकी सोसाइटी में किसी की लड़की बीस-वर्ष की जवान मौजूद है और बिला रूपये के शादी नहीं होती है, बिधवाएँ नंगी-उघारी हैं, भूखों मरतीं हैं, फिर भी मांग नहीं सकतीं और आप अपना दान का रुपया हरिद्वार और ब्रह्म-भोज और अन्नकूट करके खर्च कर रहे हैं।हज़ारों मदरसे सरकार की तरफ़ से, और दीग़र मदरसे 'चंदे' से चल रहे हैं और उसी मद में आप भी अपना रूपया लगाए देते हैं। वजह क्या, महज़ नाम और शोहरत। क्या सब मालदार एक ही जानिब पिल पड़ेंगे ? यह भेंड़-चाल नहीं तो और क्या है। मैं आगे चल कर दूसरे निहायत ज़रूरी कामों की तफ्सील बतलाऊंगा, जिनकी तरफ़ आमतौर पर निगाह भी नहीं जाती है।

आपको लाज़िम है कि शादी और ब्याह के मौकों पर जो दान-देने की रस्म है, उन पर ज़रा निगाह रक्खें। कहीं आप बरेली के यतीमख़ाने और कहीं आप चित्रकूट जी के मंदिर और कहीं और किसी बड़े मंदिर में तक़सीम ख़ैरात की करते हैं। अब आयन्दा से 'सत्संग' समाज और 'साधू-सेवा-फंड' में पहले रक़म दिया करें और फिर दुसरी जगहों पर। 'मुण्डन', 'कनछेदन', 'नामकरण', 'लगुन' और तमाम दीग़र रसूमात पर जहाँ अब तक एक ख़ासी रक़म नाम और नुमायश के लिए लगते हैं, उस वक़्त इस फण्ड का भी लिहाज़ करके यह ख़ास रक़म किसी तरह निकाल कर उस में दाख़िल कर दिया करें। 'मौत' के वक़्त जो दान कि 'एकादशा', 'तेरहवीं', 'चौथापटा', 'बरसी' वग़ैरह पर दिया जाता है, अगर वह वाक़ई एक ख़ास फ़ायदे और मजहवी नुक़्तए-निग़ाह से देखा जावे तो भी यह लिहाज़ करना कि वह किस जगह और किन आदमियों के हाँथ में जाता है। यह सबको मालुम है, इसकी तफ़्सील बतलाने की ज़रूरत नहीं

है। आप-सब अगर यही ज़रूरी ख्याल करते हैं कि बिला इसके ईसाल-ए-सबाब किस तरह हाँसिल करेंगे तो थोड़ी रक़म शगुन के तौर पर उसमें ख़र्च करें और बक़िया फण्ड में दाख़िल किया करें।'तेरहंवी', 'बरसी' वग़ैरह पर जो ज़बरदस्ती गला-घोंट कर दावतें कीं जातीं हैं, यह निहायत मज़मूम [ख़राब, बुरा = bad] तरीक़ा है। इसकी वजह सिर्फ़ कहने की यह है कि अब घर शुद्ध हो गया और तमाम बिरादरी ने क़बूल कर लिया कि 'मकान' और उसके लोग शुद्ध हो गए। यह सिर्फ़ एक रस्म है। मगर जिनके पास कुछ नहीं है और बाल-बच्चे कल [अगले दिन] से ही भूंखे मरने लगेंगे, उनसे ज़बरदस्ती क़र्ज़ लिबवा कर 'तेरहवीं' और 'बरसी' पर 'निबाले-निगले' जाते हैं। पस् अगर यह बुरी रस्म बंद हो जाय तो बहुत कुछ सहूलियत हो सकती है। मैं हुक्म नहीं देता कि आप ऐसा करने लगें, अगर आप की समझ में आ जाय तो करें वर्ना नहीं।

यह ख़ैरात, दान और ज़कात वग़ैरह आप तभी निकाल सकते हैं जब आप अपनी ख्वाहिशात के घोड़े की बाग़ रोके रक्खें। अगर घोड़ा मुँहजोर और बदलगाम है तो ख़्वाहिशात के हुजूम का क्या कहना है। अपने ख़र्च और ज़रूरत से पचासों गुना ज़्यादा घर में चीज़ मौजूद हुआ करती है तो भी लोग ख़रीदते चले जाते हैं। अगर घर में दो ही तीन आदमी हैं और पाँच सौ आदमियों के वास्ते निहायत उम्दा आलीशान मकान बना हुआ मौजूद है तो भी एक धुन है कि कुछ जदीद [आधुनिक = modern] इमारतों के लिए नक़्शे बन रहे हैं और काम जारी है और ख़्वामख़्वाह हज़ारों रूपया खर्च कर रहे हैं। ख़ैर -

ज़रूरत यह है कि आमदनी के रुपयों की जायज़ तक़सीम करना सीखें और इस तरह हैवानी जज़्बात को काम में न लायें।

सवाल नंबर 27 [सत्ताईस] - इस सवाल में यह है कि रस्म-रिवाज़ की बिरादरी पर 'सत्संग' की बिरादरी को तरजीह देना है।

इसकी महज़ वजह यह है कि लोग बावजूद इसके कि वह ब्यवहार के और रसूमात के तरीकों को ख़राब जानते हैं और जानते हुए भी सिर्फ़ इस डर की वजह से कि अगर हम कोई रस्म नहीं अदा करेंगे तो बिरादरी वाले एतराज़ करेंगे और 'हुक्का-पानी' बंद हो जायगा और शादी-ब्याह दिक़्क़त के साथ होंगे।

मालूम कीजिये कि किसी मेहतर वग़ैरह के साथ खा लेने, किसी बाज़ारी औरत के साथ खुल्लम-खुल्ला ताल्लुक़ रखने या ग़ैर बिरादरी के यहाँ शादी करने से, ब्यवहार छूट जाता है, न कि किसी रस्म के न अदा करने से। मुमकिन है कि लोग ज़लील और कम-हिम्मत समझने लगें।

पर अब तो ज़माना वह नहीं रहा है। लोग नाजायज़ ताल्लुक़ रखते हैं और ज़ाहिर और खुला हुआ ताल्लुक़ रखते हैं, मगर कोई शख्स बिरादरी से ख़ारिज़ नहीं करता है। मालदार तो मूंछों पर ताव देते और गुर्राते हैं और चुनौती देते हैं कि कोई उनको छोड़ तो दे। ग़रीब आदमियों पर ज़रूर ग़ायबाना आवाज़ें कसे जाते हैं और बुज़दिलाना हमले भी किये जाते हैं, मगर आख़िर को टॉयं- टॉयं फिस्स। असल यह है कि लोग सिर्फ़ बहाना-बाज़ी करते हैं। तबीयत अंदर से खुद-ब-खुद छोड़ने को नहीं चाहती है। ख़याल तो कीजिये कि बुरे कामों को करने से तो बिरादरी एतराज़ न करे और इस्लाह और मुफ़ीद कामों के अख़्तियार करने से लोग उसको छोड़ दें। हरगिज़ ऐसा नहीं हो सकता। अगर बिल-फ़र्ज़ ऐसा होता भी है तो अक्सर देखा गया है कि बिरादरी में जिद्दम-जिद्दा का मामला चल पड़ता है। और फिर ज़िद्द की वजह से चन्द दिनों तक ऐसी कोशिश, हमले-बाज़ी और बचाव की होती रहती है और चन्द दिन बाद जब मामला पुराना हो जाता है तो खुद-ब-खुद मुक़दमा ठप्प हो जाता है।

इसलिए जहां ज़िद्द पर नौबत पहुँच जाय तो वक़्त को हटा देना अच्छा है। मुमकिन है कि अगर बिरादरी के लोग ज़िद्द छोड़ दें तो क्या आपके सत्संगी भाई आपका साथ न देंगे। अगर यह भी न दें तो आपका मामला खालिस नियत और हक़ पर है तो नतीज़ा ज़रूर आख़िर को अच्छा होगा।

प्रश्न नंबर 28 [अट्ठाईस] -

इंसान का उद्द्येश्य यह है कि आपस में एक-दूसरे की इमदाद करें और बेहतरी सोचें और करें। सबसे बड़ा दान तो यह है कि विद्या-दान दें और फिर 'ब्रह्मविद्या' का दान सब से बड़ा है, क्योंकि उससे मंज़िले-मक़सूद पर आदमी पहुंचता है।

लेकिन जिस्म और जान का साथ है, इस लिए बाज़ वक़्त इस ताल्लुक़ की वजह से एक-दूसरे की निज़ामे अमल में तसर्रुफ़ करते वक़्त मायावी और माद्दी पदार्थों की भी ज़रूरत पड़ जाती है। इस बात को आप मिसाल से समझेंगे, इसलिए मैं अब मिसाल ले कर समझाता हूँ। मैंने सारी उम्र सिर्फ़ ख़ालिस रूहानियत और उसकी ख़ालिस तालीम के ऊपर ताल्लुक़ रक्खा है, जैसा कि दूसरे सम्प्रदायों और पंथों में यह भी दस्तूर है कि सामाजिक और सोशल उमूर को भी कुछ साथ-साथ ले लेते हैं या खुद-ब-खुद उसका साथ आ जाता है, जैसाकि अब तज़ुर्बे से मुझको साबित हुआ है, लेकिन कस्दन इस मामलात को नज़रअन्दाज़ करता रहा और गुरेज़ किया। कुछ तो नौकरी की मसरूफ़ियत और दुनियावी मशाग़िल के वायस फुर्सत भी नहीं हो सकी,

इसलिए ख़ालिस अंदरूनी सत्संग होता रहा, लेकिन जब ताल्लुक़ ज़्यादा बढ़ जाते हैं तब उसके साथ ही सोशल और सामाजिक ब्यवहारों की भी ज़्यादती होती जाती है।

[01] देखिए मुख़्तलिफ़ मुक़ामात में मुख़्तलिफ़ लोग हैं। हर शख़्स अपनी-अपनी वाक़फ़ियत पैदा करने के लिहाज़ से और अपने हालात के जवाबात की ख़्वाहिश में खतो-किताबत का सिलसिला जारी रखते हैं।

[02] अगर इसी तरह यह जवाबदेही का भी सिलसिला जारी रहता है तो मुख़्तलिफ़ तौर पर ऐसी ज़रूरत महसूस होती है कि ताल्लुक़ात ज़बानी को तहरीरी कर दिया जावे ताकि वह एक सिलसिला और तरतीब में आ जावे। और जो लोग मज़बूर हैं कि 'सत्संग' में ज़्यादा वक़्त सर्फ़ नहीं कर सकते हैं और बाज़ बिलकुल नहीं आ सकते हैं। तो उनको तहरीरी हिदायत भी पहुँच जाय। बच्चों और औरतों के लिए एक ऐसा निसाब [पूँजी = capital] तालीम का मुन्तख़ब [संकलित] करके तैय्यार किया जाय और जिससे उनकी वाक़फ़ियत को मदद मिले।

वक़्तन फ़वक़्तन सिलसिले के साथ ऐसी तरकीब या पैम्फलेट जारी किये जायँ, जो छप कर हर मक़ाम पर वाक़फ़ियत में इजाफ़ा करने के लिए भेजे जा सकें। जो शायक़ीन [शौक़ रखने वाले = inclined, tending] और तालिब [तलाश करने वाला = investigator, desirous] रोज़ाना मेरे पास आते-जाते रहते हैं उनका सिलसिला मेरी फ़ुरसत ज़्यादा हो जाने की वजह से, अब ज़्यादा हो गया है।

उनके ठहरने और आसाइश [सुख-सुविधा या सहूलियत] के लिए मेरे पास काफ़ी मकान नहीं है, और अगर है तो वह इस ढंग का बनाया हुआ है, जो 'ज़नाना' [ज़नानख़ानः = जहाँ स्त्रियाँ रहतीं हों या अंतःपुर] में शामिल है। ख़ालिस अलहदा 'मर्दाना' [मर्दानखाना] नहीं है। अगर किसी तरहँ अब तक गुज़ारा भी किया गया तो मुतअब्बिद [साधना करने वाला] लोगों के लिए मुफ़ीद नहीं, क्योंकि उनको एकान्त चाहिए। 'सत्संग' के वक़्त यहाँ कभी एकान्त, जैसा चाहिए, नसीब नहीं होता। इसके लिए बिलकुल अलहिदा ही मकान होना चाहिए, चाहें वह एक 'खँडहर' ही हो। लेकिन 'चहारदीवारी' हो कुँवा हो, पाखाना हो और एक बड़ा कच्चा-पक्का छप्पर का कमरा हो। जहाँ सत्संग हो और उसके बाद लोग [बाहर के] ठहर भी जावें।

अगर यह मामला ज़्यादा वसीअ [विस्तृत = extensive] किया जावे तो जैसे कि सैकड़ों स्कूल जारी होते हुए भी हज़ारों स्कूल ज़ाहिरी तालीम के जारी किये जा रहे हैं, उसके बजाय एक इस

किस्म की भी तालीमगाह करार दी जावे कि वहाँ दो-चार ख़ास लोग जो इस इल्म में बखूबी माहिर हैं ऐसे काम के लिए तलाश कर लिए जावें, ताकि एक ख़ास नज़ाम और बंदोबस्त के साथ चाहने वालों के लिए ऐसी तालीमगाह दस्तेयाब हो सके तो मुमकिन है कि इस किस्म के ख़ास लोग मिल सकते हैं और मेरी नज़र में रह सकते हैं। लेकिन जब तक कि उनके वास्ते ऐसा फण्ड न हो जिससे कि उनकी गुज़र-औक़ात का ज़रिया हो सके, किस तरह वह यहाँ रह सकते हैं और अगर वह अपने घरों पर भी तालीम दें - जैसा कि वह अब भी जारी किये हुए हैं, मगर ख़्याल कीजिये कि जब उनको रोज़ी के कमाने से फुर्सत और मौका मिलता नहीं। ऐसे लोग किसी से कुछ नहीं कह सकते, लेकिन मुझसे तो वह अपना हाल छिपाते नहीं। मुझको ऐसे चन्द वाक़ियात मालुम हैं। आप लोगों को क्या ख़बर है। मुझको उनका हाल देख-देख कर कलेजा मुहँ को आता है।

मेरे पास भी इतना नहीं कि उनकी इम्दाद कर सकूँ, इसलिए मैंने आप साहिबान से फण्ड काइम करने की दरख़्वास्त की। अपने वास्ते नहीं बल्कि उन कामों के वास्ते जो ऊपर दिखलाये गए हैं। लेकिन ख़ाली चंदे से यह काम नहीं हो सकते हैं जब तक कि वह तद्बीरें जो मैंने बतलायीं हैं, अमल में न लाई जावें।

मुश्किल से एक सौ आदमियों ने एक रुपया माहवारी चंदा लिखा है उनमें से चन्द असहाब ऐसे भी हैं कि जिन्होंने तौअन-व-करहन [बहुत ही कठिनाई से, विवश हो कर = with difficulty] मंज़ूर किया है। बल्कि बाज़ ऐसे हैं कि जिन्होंने इस क़दर बदमज़गी दिखलाई है गोया कि इनकम टैक्स दो सौ रुपये माहवार उन पर मुक़र्रर कर दिया गया हो। यह हालत ग़रीबों ने नहीं दिखलाई है बल्कि मालदारों ने, बाज़ असहाब ने तो मुझको इस क़दर डरा दिया कि अगर ऐसा फण्ड क़ाइम करोगे तो लोगों का आना बंद हो जायगा, तो लोगों का ऐतक़ाद ख़राब हो जायगा। दो-एक साहिब ने आ कर मुझसे खुद शिकायत की कि लोग बाहर ज़िकर करते हैं कि खूब खाने-कमाने का सिलसिला जारी कर दिया और हलके-हलके एक दुकान सी क़ाइम कर दी। ख़ैर, मेरी नियत दुरुस्त है और मुझे उनका ख़ौफ़ नहीं कि ऐसी बदनामी होगी। अगर सत्संगी साहिब कोई ऐसे ज़ईफ़ुल्ऐतक़ाद हों कि एक रूपये-पैसों पर बदगुमानी पैदा कर लें तो वह 'सत्संगी' होने के लायक कब हैं। बदनामी अगर करेंगे तो इस तरह कौन सी ऐसी 'संस्था' है जो इस माली-फण्ड से ख़ाली हो सकती है।

अमेरिका वालों का 'मिशन' का काम किस ज़ोर का चल रहा है। साहिबजी महाराज आगरा और हर जगह इसका कुछ-न-कुछ दख़ल है। मगर मुझे यह यक़ीक़ है कि यह 'एक रुपया' चंदा जो लिखा गया है वसूल होना निहायत दुश्वार है और चलेगा नहीं। इसलिए जो साहिब कि खुद चाहें

इसी तरह जैसा कि जो साहिब कि चाहें मेरे पास फ़र्ज़ अपना समझ कर भेज देंगे और वह जमा कर लिया जायगा और जैसा मौका मुनासिब होगा ख़र्च किया जावेगा और हिसाब मुरत्तिब करा दिया जावेगा। अपने-अपने मुक़ाम पर खुद ही ऐसा इंतज़ाम कर लें और 'जमा-ख़र्च' रक्खें। अगर मुझको ज़रूरत होगी, मांग लिया करूँगा, लेकिन मैं खुद इस झंझट में न पड़ूँगा।

थोड़ी देर के लिए यह काम कर सकते हैं और अगर रोज़ी पूरी नहीं होती तो उनकी तबीयत घर-गृहस्थी और बच्चों की ज़रुरियात पूरी न होने की वजह से मुक़द्दर और परेशान हाल रहा करती है और जैसे सफाई के साथ तालीम होना चाहिए, नहीं हो सकती। अलावः इसके मोहल्ले और शहर के लोगों में उनका ऐतक़ाद नहीं होता और ऐतक़ाद न होने की वजह से शहर के मुक़ामी लोग उनसे फ़ायदा नहीं उठाते।

बाहर के लोग अव्वल तो अपनी मसरूफ़ियत की वजह से आ नहीं सकते और अगर कोई ख़ास बड़ी तबीयत-दार आदमी आ भी गया तो ठहर नहीं सकता। इसके अलावः जब खास एक मदरसे की निस्बत वाक़फ़ियत हो जाय कि इस किस्म की तालीम का वहाँ रोज़ इस जगह एहतमाम है तो लोग तलाश की दिक़्क़त और फ़िर इम्तिहान और इत्मिनान करने की पेचीदगियों से महफ़ूज़ रहें।

वाक़या कानपूर के मदरसे - 'इल्म-इलाही' का -

अब अगर बाहर चल-फ़िर कर शायक़ीन और तालिबीन की ज़रुरियात को पूरा करते रहें तो भी घर के मामले से उनको इत्मिनान होना चाहिए और रास्ते के इख़राजात और कियाया वग़ैरह का इंतज़ाम होना चाहिए। मांग-मांग कर यह काम करना ज़रा दिक़्क़ततलब और दुश्वार है। यह काम सन्यासियों का है। अब फिर आप एक दूसरी मुश्किल ख्याल करें कि आप को तो वाक़फ़ियत नहीं है, चाहने वालों की मौत है। हमारे यहाँ सत्संगी भाइयों में से बाज़-ख़ास मी ऐसी नौबत है कि रोटी को मोहताज़ हैं, उनके बच्चों के पास कपड़ा नहीं, तालीम के लिए फ़ीस और किताब के लिए दाम नहीं। लड़कियां जवान हो रहीं हैं। पैसा न होने की वजह से शादी नहीं हो सकी। शर्म के मारे तलब कर नहीं सकते न इज़हार इस तंगी का कर सकते हैं।

"ॐ पूर्णमदाः, पूर्ण मिदाः, पूर्णस्य, पूर्ण समोच्चते।
पूर्ण मुदायाम, पूर्णातपूर्ण, पूर्ण मेवा वशिष्यते।।"

परिशिष्ट [घ]

परमपूज्य लालाजी साहिब के पार्थिव जीवन-काल के अंतिम वर्ष 1931 AD की डायरी की तिथि-वार प्रविष्टियों का मूल-पाठ -

THE DIARY EXTRACTS OF REVERED LAALAAJI SAHIB :

Thursday the 01st. January 1931:

आज बाबू कन्हैयालाल और उमाशंकर वापस चले गए। बृजमोहन कानपुर से आये। रुपया 25/- बाबू कन्हैयालाल ने दिए।

Friday the 02nd January 1931 :

बृजमोहन, रायसाहिब के यहाँ गए। गोवर्धनदास [श्रीमती भगवती देवी, धर्मपत्नी महात्मा जगमोहन नरायन के फुफेरे भाई] मय अपनी बहिन [श्रीमती भगवती देवी, धर्मपत्नी महात्मा जगमोहन नरायन] के एटा से रात के दो बजे आये।

Saturday the 03rd January 1931 :

आज गोवर्धन दास से सख्त गुफ़्तगू की नौबत आयी।

Sunday the 04th January 1931 :

जगदम्बा प्रसाद [साक़िन - हरदोई उ0 प्र0] ने 01 जनवरी को बैअत ली।

Thursday the 08th January 1931 :

रूद्रसेन [परमपूज्य लालाजी साहिब के कोटा वाले दामाद, बाबू श्याम बिहारी लाल के सगे छोटे भाई] की हमराह [धर्मपत्नी] श्यामा और जगमोहन की दुलहिन [श्रीमती भगवती देवी] कोटा -

राजस्थान को गयीं।

Saturday the 10th January 1931 :

कृष्णचन्द्र भार्गव ने रूपया 45/- भेजे।

Monday the 12th January 1931 :

आज 09. 00 बजे सुबह की गाड़ी से एटा को रवाना हुआ।

Wednesday 14th January 1931 :

मकर संक्रान्ति थी। बाबू अवधबिहारी लाल और उनकी बीबी ने बैअत ली। बाबू राधा रमन अलीगढ ने बैअत ली।

Thursday the 15th January 1931 :

एटा से रवानग़ी और शाम को घर पहुँच गया।

Friday the 16th January 1931 :

राम प्रसाद [वैद्य बलदेव प्रसाद के सगे छोटे भाई] की लगुन दिल्ली से आयी। बृजमोहन मय अपनी दुलहन के सिकन्द्राबाद [जिला बुलन्दशहर उ0 प्र0] से वापस आये।

Monday 19th January 1931 :

चटाइयाँ शाहजहाँपुर से आईं। बालकिशन के वालिद की बरसी थी।

Tuesday the 20th January 1931 :

नन्हें [परमपुज्य लालाजी साहिब के सगे छोटे भाई, महात्मा रघुबर दयाल - कानपुर] की दुलहन मय ज्योती [महात्मा रघुबर दयाल के सबसे छोटे बेटे, महात्मा ज्योतिन्द्र मोहन लाल] के कानपुर से आये। आज से रमज़ान शुरू हुए।

Friday the 23rd January 1931 :

बृजमोहन लाल आज बुलन्दशहर को रवाना हो गए सुबह नौ बजे। बरात रात को दस बजे की गाड़ी से रवाना हुयी।

Saturday the 24th January 1931 :

सुबह 06.30 बजे फ़र्रुख़ाबाद रवाना हुआ। गाड़ी से दिल्ली की तरफ़ रवाना हुआ। किराया तीन रूपया दो आना था। शाम को 06.30 बजे दिल्ली पहुँचा। दरवाज़ा हुआ। स्वागत कराया गया।

Sunday 25th January 1931 :

आज 'दावत-भात' थी। बाबू भगवत प्रसाद के होटल में गया। वहाँ से 'श्रद्धानन्द भवन' गया। स्वामी आनन्दभिक्षु जी से मुलाक़ात हुयी। मुन्शी जीवाराम जी से मुलाक़ात हुयी और उनके समधी मुन्शी साहिब तखल्लुस ज़ौक़ से मुलाक़ात हुयी। बाबू जमुना प्रसाद के बरादरे निस्बती [साला या बीबी का भाई] बाबू भगवत स्वरुप को होटल में उपदेश दिया गया।

Monday the 26th January 1931 :

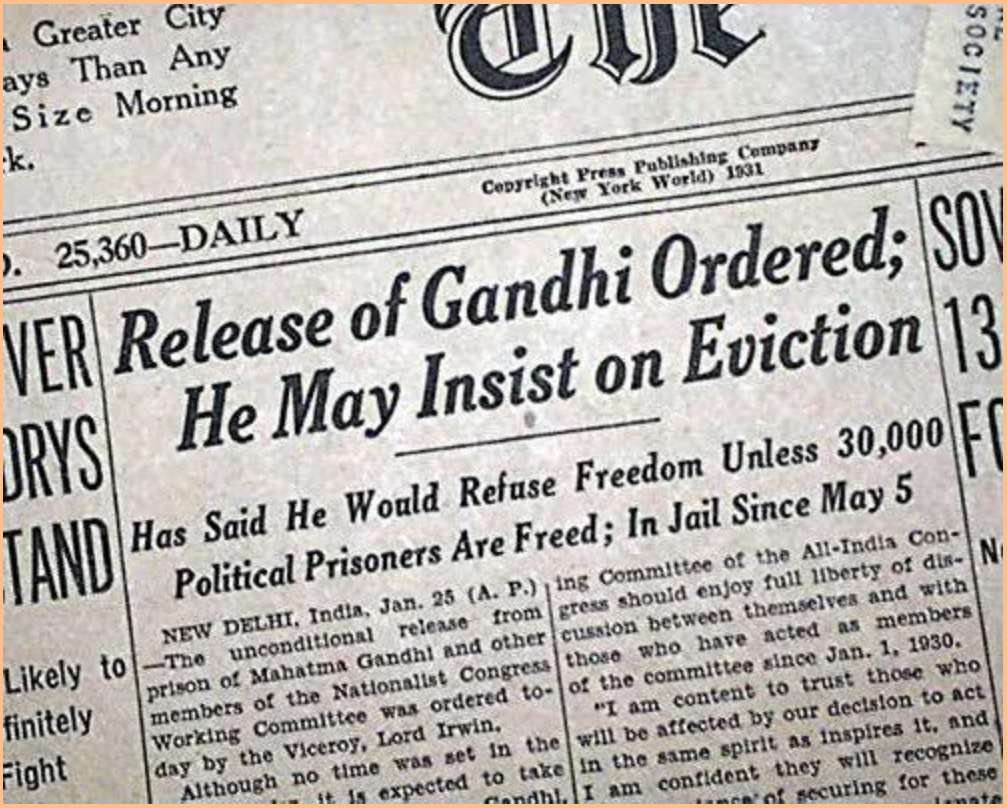

Greater City
ays Than Any
Size Morning
k.

Copyright Press Publishing Company (New York World) 1931

25,360—DAILY

Release of Gandhi Ordered; He May Insist on Eviction

Has Said He Would Refuse Freedom Unless 30,000 Political Prisoners Are Freed; In Jail Since May 5

NEW DELHI, India, Jan. 25 (A. P.) —The unconditional release from prison of Mahatma Gandhi and other members of the Nationalist Congress Working Committee was ordered today by the Viceroy, Lord Irwin.

Although no time was set in the ... it is expected to take ... Gandhi ...

ing Committee of the All-India Congress should enjoy full liberty of discussion between themselves and with those who have acted as members of the committee since Jan. 1, 1930.

"I am content to trust those who will be affected by our decision to act in the same spirit as inspires it, and I am confident they will recognize ... of securing for these ...

[*Mahatma Gandhi was freed from prison.]

आज 'दावत-बड़ाहार' थी। सायंकाल को आनन्दभिक्षु जी आये। मैं दावत में नहीं गया। आज गोया आज़ादी का बड़ा भारी जुलूस निकला*। तमाम दिल्ली में चहल-पहल और रोशनी थी। लीडर लोग रिहा किये गए थे। जगमोहन और मुन्शीजी [मुन्शी कालीसरन भोजपुर वाले] कोटा की तरफ़ रवाना हुए।

Tuesday the 27th January 1931 :

आज सुबह सात बजे 'श्रृद्धानन्द भवन' गया। स्वामी नारायण जी सरस्वती से मुलाक़ात हुयी। बहुत ख़ुल्क़ और ख़ातिर से पेश आये। फतेहगढ़ आने का वायदा किया और दो किताबें ----- उपनिषद् इनायत कीं। सुबह 09.30 बजे फतेहगढ़ की तरफ़ रवानगी हुयी।

Thursday the 29th January 1931 :
आज दो राज-मिस्त्री, दो मज़दूर अमानी [रोज़न्दारी] पर थे। दो बजे अजुध्यानाथ [जनाब लालजी साहिब की तीसरी बेटी, सुश्री श्यामादेवी के पतिदेव] कोटा से [वापस] आये।

Friday 30th January 1931 :

आज वक़्त सुबह बृजमोहन मय कुल औरतों के कानपुर की तरफ़ रवाना हो गए। मुब्लिग़ रुपया 04/- नज़राना बलदेव प्रसाद ने दिया।

Saturday the 31st January 1931 :
आज सवा छः रूपया चोरी हो गए। ईशावास्योपनिषद भवानीप्रसाद माँग कर ले गए। घी पाँच रुपये का आया।

Sunday the 01st February 1931 :

महाराज नरायन [परमपूज्य लालाजी साहिब की दूसरे नंबर की बेटी, कृष्णा कुमारी उर्फ़ 'बब्बन' के पति, अर्थात लालाजी के दामाद] 'उमरैन' को रवाना हुए। 'सिब्बा' [जनाब लालाजी साहिब के घर का पूर्णकालिक सेवक जो कि उमरैन का ही रहने वाला था] अपने घर को गया, मय 'भगोल' के। दिल्ली से डॉक्टर साहिब रुख़्सत कराने आये। एक रूपया नज़राना दिया।

Monday the 02nd February 1931 :

आज एक मज़दूर अमानी में है। मास्टर पुत्तूलाल - कमालगंज ने बैअत ली। केनोपनिषद मुंशी चिम्मनलाल के पास है।

Wednesday the 04th February 1931 :

आज मज़दूरों का हिसाब कर दिया गया। आज रात की एक बजे की गाड़ी से कानपुर और उरई की तरफ़ रवाना हुआ। स्टेशन पर बाबू गुरुप्रसाद तारबाबू से मुलाक़ात हो गयी। एक रुपया दो आना ताँगा का किराया और पाँच रुपया दस आना किराया रेल।

Thursday the 05th February 1931 :

आज आठ बजे कानपुर पहुँच गया। ओला और बर्फ़ पड़ने की वजह से निहायत सख़्त सर्दी थी।

दस कानपूर से रवाना हो कर साढ़े बारह बजे उरई पहुँचा। रात में बाबू सूरज प्रसाद के यहाँ क़याम किया। रात में नन्हें कानपुर से आये।

Friday the 06th February 1931 :

सुबह 12.30 बजे झाँसी की तरफ़ रवाना हुआ। तीन बजे पहुँचे। रात में बाबू भवानी प्रसाद के साथ एक पंडित जी नायब मुहाफ़िज़ दफ़्तर [Record Keeper] आये और शारदाप्रसाद अहलमद [Junior Court Clerk] मिलने को आये।

Saturday the 07th February 1931 :

आज बाबू नारायण प्रसाद मुंसिफ़ जरीमः से मुलाक़ात हुयी। दिन में खाना बाबू सूरजप्रसाद के भाई के यहाँ खाया। दावत भात थी। पंडित जी नायब मुहाफ़िज़दफ़्तर को उपदेश किया गया। एक नाबीना लड़का साकिन - लखनऊ ने उपदेश लेने की दरख़ास्त की।

Sunday the 08th February 1931 :

आज दिन में बाबू बालाप्रसाद क्लर्क के यहाँ दावत थी। शाम को दावत बड़हार थी। आज सत्संग 'जनवासे' [Living quarters of the bridegroom's party, at the time of a wedding] में शाम को हुआ बहुत लोग शामिल थे।

Monday the 09th February 1931 :

सुबह बाबू भवानी शंकर के यहाँ गया। बाबू शिवदयाल को समझाया गया। उन्होंने अपनी तस्फीफ़ [condition] ज़ाहिर की। बाबू शारदाप्रसाद क्लर्क-जजी को जनरल तवज्जोः दी गयी, नतीज़ा मालूम नहीं क्या हुआ। दो रुपए बाबू मेवालाल और भवानीशंकर ने दिए। एक कम्बल पण्डित नाथूराम नायबमुहाफ़िज़दफ़्तर जजी ने दिया। डाक गाड़ी से उरई वापस आया।

Tuesday the 10th February 1931 :
आज रँगीलेलाल उर्फ़ खुनखुन नबीना साकिन लखनऊ को उपदेश किया गया। शाम को आम

दावत लाला सुखवासी लाल के यहाँ थी।

Wednesday the 11th February 1931 :

सुबह छः बजे कानपुर की तरफ़ रवाना हुए। नन्हें [लालाजी के छोटे भाई] वहीं रह गए। शाम को पाँच बजे फतेहगढ़ पहुँचे। मेरठ में बाबू काशीराम के यहाँ शादी थी।

Thursday the 12th February 1931 :

आज बुद्धसेन [लाला मंगलसेन के बड़े भाई] सुबह ही आये और रोए-धोए।

Friday the 13th February 1931 :

आज फ़िर बुद्धसेन आये। उनको रु-बरु समझाया गया कि यह मर्ज़ मुश्किल से जाता है। मालुम होता है कि बुद्धसेन बहुत नाराज़ हो गए।

Saturday the 14th February 1931 :

लाला विशुनदत्त से 70 रूपये क़र्ज़ लिए गए।

Sunday the 15th February 1931 :

शिवरात्रि। आज 12 बजे फ़र्रुख़ाबाद से मैनपुरी की तरफ़ रवाना हुआ। 04 बजे पहुँचा। मन्दिर-चित्रगुप्त में ठहरा। रात में सत्संग हुआ। मस्तुरात [स्त्रियाँ] भी शरीक़ हुईं। श्रीपतिसहाय के वालिद भी आये। मुंशी चेतराम के यहाँ खाना खाया। गोपीनाथ अहलमद की निस्बत मालुम हुआ की उनकी सोहबत एक सन्यासी से रही और अब इस तरफ़ उनका ध्यान नहीं है। और न उनकी तबीयत सत्संग में लगी।

Monday the 16th February 1931 :

आज सुबह भी सत्संग हुआ। आनंदस्वरूप स्वरुप कुर्कअमीन भोगांव को उपदेश दिया गया। रात

को आशाराम पंजाबी साकिन गुजरात इलाक़ा हुशियारपुर पंजाब को उपदेश किया गया। और एक लड़का तालिबइल्म [विद्यार्थी] साकिन खेड़ा [भोगांव - ज़िला मैनपुरी] को उपदेश किया गया। दिन में मुंशी हरनारायण मुख्त्यार के यहाँ गया। वहाँ एक रुपया चाची ने दिया। रात को फ़िर मय मस्तूरात [स्त्रियों] के सत्संग हुआ।

Tuesday the 17th February 1931 :

आज भजनलाल के यहाँ दोपहर को खाना खाने गया। वहाँ भजनलाल की हमशीरा [बहिन] को उपदेश किया गया। भजनलाल की दुल्हन ने एक रुपया नज़र किया। तीन बजे रेल से भोगांव की तरफ़ रवाना हुआ। रात को मय मस्तूरात के सत्संग हुआ। आज रात को मैं पाँच मर्तवा पेशाब को गया। सेवकराम 08.00 बजे की गाड़ी से अपने रिश्तेदार के घर मैनपुरी चले गए।

Wednesday the 18th February 1931 :

आज फ़िर सत्संग हुआ। बाग़ की हालत को जा कर देखा, निहायत बदतर हालत में पाया। तमाम दरख़्त कटे हुए पाए गए और दरख्तों की शाखें कटी हुयी थीं और जानवर चर रहे थे। श्याम लाल, मगन बिहारी लाल के रिश्तेदार हैं, उन्होंने अपने मुक़दमे की बावत कहा है। खां साहिब से मुलाक़ात हुयी। आनन्द स्वरुप सत्संग में शरीक़ हुए। भावज-रामकिशनलाल ने बावत बैअत कहा लेकिन जब उनको उसकी हकीकत समझाई गयी तब चुप हो गयीं।

Thursday the 19th February 1931 :

आज नौ बजे की रेल पर भोगांव से रवाना हो कर मैनपुरी पहुँचा। हमराह श्रीपतसाहाय के एटा की तरफ़ रवाना हुआ। रस्ते में मोटर बिगड़ा। शाम को एटा पहुँचा। राय साहब मय हरस्वरूप मौजूद थे। सत्संग हुआ।

Friday the 20th February 1931 :

क़ाज़ीजी वग़ैरह और दीग़र मौलवी साहबान मिलने को आये। आज नन्हें और बाबू सुखबासीलाल कानपुर से बराह [via] शिकोहाबाद आए।

Saturday the 21st February 1931 :

आज भी क़ाज़ीजी साहिब व दीग़र मुसलमान वग़ैरह आए। सत्संग हुआ। 'फ़ातिहः' [क़ुरान की पहिली सूरत] की गयी। बाबू उल्फ़तराय साहिब की तरफ़ प्रसाद तक़सीम हुआ। मुंशी सूरज सहाय मुख्त्यार की बैअत।

Sunday the 22nd February 1931 :

सत्संग हुआ। बाबू होतीलाल के चाचा साहिब को उपदेश किया गया। एक साहिब जो चुंगी में मुलाज़िम हैं को उपदेश किया गया। एक कहाँर हमराही मुंशी हुब्बालाल पटवारी भी सत्संग में बैठे।

Monday the 23rd February 1931 :

रायसाहिब के यहाँ गए। शाम को वापस हुए। आज एक पंडितजी साहिब आचार्य स्कूल-मास्टर एटा से गुफ़्तगू हुयी। उनको समझाया गया और वोह आमादा हुए। रूपया 11/- बाबू सूरज सहाय ने और 11/- रुपया राय साहिब ने पेश किए।

Tuesday the 24th February 1931 :

आज ग्यारह बजे कासगंज की तरफ़ रवाना हुआ। मोटर रस्ते में कई जगह बिगड़ा। शाम को कासगंज पहुँचा। दौरा दर्द का सिर में और दाढ़ में हुआ। मास्टर साहिब बाबू बसंतलाल से मुलाक़ात हुयी। मुंशी छेदालाल मामू - मुंशी उमाशंकर जो पेंशन पाते हैं, मय उनके लड़कों के मुलाक़ात हुयी। एक लड़का जो बाबू फतहलाल का रिश्तेदार है और एक स्कूलमास्टर है, मुलाक़ात हुयी। सत्संग में बैठा। रात को सिरदर्द और दांत में दर्द बहुत हुआ।

Wednesday the 25th February 1931 :

आज 12.00 बजे की गाड़ी से फतेहगढ़ की तरफ़ रवाना हुआ। शाम को अस्सिस्टेंट सर्जन

मोहम्मद उमर साहिब तशरीफ़ लाये और बाबू माधव प्रसाद कम्पाउण्डर साथ में थे। उनसे मुलाक़ात हुयी और गुफ़्तगू हुयी। रात को हरारत हो आयी।

Thursday the 26th February 1931 :

आज बाबू कृष्ण नारायण सेन [जनाब लालाजी साहिब के पश्चिम दिशा में सटे हुए मकान के पड़ोसी] वक़ील सुबह को आये और गुफ़्तगू निस्बत उपदेश लेने के की। आज नक्शा मकान का मन्ज़ूर हो कर आ गया। रात को मर्दुमशुमारी [जनगणना = census] हुयी। कानपुर से राम विशन मय बच्चों के स्याही फ़रोख़्त करने के वास्ते आये।

Friday the 27th February 1931 :

सुबह को बाबू कृष्ण नारायण सेन और उनकी बीबी को तवज्जः दी गयी। कोई फ़ायदा महसूस नहीं हुआ। रात को भी कोई फ़ायदा नहीं हुआ। राम विशन कानपूर रवाना हुए।

Saturday the 28th February 1931 :

आज अलमारी-कमरा में किबाड़ लगाए गए। रात को बाबू कृष्ण नारायण सेन को तवज्जःदी गयी। कोई फ़ायदा नहीं हुआ। उनकी बीबी के तबीयत पर कुछ असर हुआ।

Sunday the 01st March 1931 :

आज वक़ील साहिब के यहाँ नहीं गया। रात को मसानः [पेशाब की थैली, मूत्राशय, मूत्रकोष] ढीला हो गया। ख़्वाब में जनाब क़िब्ला मौलाना साहिब को हालते नज़अ [मरते समय की दशा] में और निहायत ही परेशानी की हालत में देखा। कुछ वजह समझ में नहीं आयी।

Monday the 02nd March 1931 :

दो रोज़ से तमाम दिन अब्र [बदली छाई हुयी] है। बहुत बुरा मालुम होता है। किबाड़ रंगने वाला रंग चोरी करके भाग गया। ऊपर के जदीद [नए] कमरे में फ़ातिहः [प्रसाद चढ़ाया गया] की गयी।

Tuesday the 03rd March 1931 :

एटा से बाबू अवधबिहारी लाल का ख़त आया कि प्रेमबिहारी के यहाँ 28 फ़रवरी को सुबह साढ़े आठ बजे लड़का पैदा हुआ। नौ मार्च का दष्ठौन है। तलब किया [बुलाया] है। बाबू आनन्द स्वरुप कानपुर की बीबी का इंतक़ाल हो गया।

Wednesday the 04th March 1931 :

आज साढ़े सात बजे सुबह 'आखत' डाले गए। [होली] मिलने-मिलाने को लोग आये। बावजह दाँतों के दर्द की वजह से कुछ नहीं खाया गया।

Thursday the 05th March 1931 :

मुकुन्दीलाल का ख़त आया कि उनका विवाह नौ मार्च को है। 'मथन्नी' [लालाजी के चचेरे छोटे भाई - डॉ कृष्ण स्वरुप] का ख़त आया कि भगन्दर का फ़िर ऑपरेशन किया गया है और चारपाई से उठ नहीं सकते हैं। बुआ के जूतों का पार्सल आ गया। मनीआर्डर उरई से बीस रुपये का आया। मगनबिहारीलाल के यहाँ शाम का सत्संग हुआ। ख़्वाब में रातभर पाख़ाना फ़िरता रहा।

Friday the 06th March 1931 :

योगवशिष्ठ का हिस्सा अव्वल [part - first] पण्डितजी मुहाफ़िज़-दफ़्तर [जजी] ले गए। स्वामी रामतीर्थ वर्क्स का हिस्सा अव्वल [part - first] बाबू रघुबर दयाल अहलमद [कोटावार्डस] ले गए।

Tuesday the 10th March 1931 :

बाबू भगवत प्रसाद भटनागर चन्दौसी से आये। दाँत वाले को दाँत दिखलाया। बाबू कृष्ण नारायन सेन के यहाँ आज फ़िर गया। दावत पेशकार साहिब के यहाँ थी।

Wednesday the 11th March 1931 :

आज तबीयत ज़ियादह कमज़ोर रही। दाँत दिखलाने को इस ख्याल नहीं गया कि जाने कौन सा दाँत उखाड़ दें।

Thursday the 12th March 1931:

नौ रुपया बारह आना श्री कृष्ण ने और पाँच रुपये बलबीर सहाय [पूर्वोक्त श्री कृष्ण लाल के बहनोई] ने भेजे हैं। बहादुर सिंह सर्किल इन्स्पेक्टर [सवाई] जयपुर का ख़त आया है। बाबू राधारमन अलीगढ से आये। बलदेव प्रसाद के ससुर ने वक़्त दो बजे दिन इंतक़ाल किया, रात-भर पड़े रहे।

Friday the 13th March 1931 :
कोई शख़्स बिरादरी का सिवाय लालता प्रसाद के लाश उठाने को नहीं आया। पण्डित मानसिंह के लड़का पैदा हुआ।

Saturday 14th March 1931 :

भगवत प्रसाद ओवरसियर बैअत ली। राधा रमन अलीगढ को रवाना हो गए।

Tuesday the 17th March :
जगमोहन की दुल्हन के गर्भपात [miscarriage] का दर्द उठा। और पेशकार साहिब के घर में [उनकी पत्नी के] भी रात को दर्द उठा।

Wednesday the 18th March 1931 :

दस रुपये का मनीआर्डर रामसिंह मास्टर आगरा ने भेजा।

Thursday the 19th March 1931 :

दस रूपये सीताराम लखनऊ ने भेजे। बाबू भगवतप्रसाद रात को दिल्ली रवाना हो गए।

Friday the 20th March 1931 :

बाबू कन्हैयालाल का खत इलाहबाद [परिवर्तित नाम 'प्रयागराज'] से आया। पन्द्रह रुपये बाबू राजेंद्र कुमार ['प्रोफ़ेसर राजेंद्र कुमार'] ने भेजे हैं। आज वक़्त तीन बजे दिन के हरारत ज़ोर गयी। आज काम मरम्मत का बन्द रहा।

Monday the 23rd March 1931 :

ज़ोर से हरारत बुख़ार की आ गयी। सिर में दर्द ज़्यादः है। बाद को बुख़ार ज़ोर से आ गया। तीस रुपये इलाहबाद-सत्संग से आये। माताचरन आये।

Tuesday the 24th March 1931 :

आज दुल्हन [श्रीमती भगवती देवी धर्मपत्नी - महात्मा जगमोहन नरायन] की फ़िर वही हालत हो गयी। तमाम दिन और तमाम रात दर्द रहा।

Wednesday the 25th March 1931 :

दो रूपये मुन्शीसिंह ने दिए हैं। मिसिस छोटेलाल [पॉपुलर नाम - "काली मेम] को दिखाया गया।

Thursday the 26th March 1931 :

आठ बजे दिन को [दुल्हन, श्रीमती भगवती देवी धर्मपत्नी - महात्मा जगमोहन नरायन का] लड़का मिसकॅरियज [गर्भपात] हो गया। पन्द्रह रूपये डॉ श्यामलाल ने भेजे हैं। कानपुर में झगड़ा [हिंदू-मुस्लिम] शुरू हो गया है।

Saturday the 28th March 1931 :

आज रात क़रीब एक घड़े के पेशाब हुआ। राम नवमी का दिन है आज बहुत गर्म खबर कानपुर के झगड़े की है। फर्रखाबाद और फतेहगढ़ में भी झगड़े का अंदेशा सुना गया है।

Sunday the 29th March 1931 :

कोई ख़बर कानपूर से दरियाफ़्त नहीं हुयी। कोतवाली के दीवानजी से अजीब क़िस्म की गुफ़्तगू दरपेश आयी। जिसकी कोई वजह अब तक समझ में नहीं आयी। कानपुर से एक लड़का ब्राह्मण का कानपुर आया। उससे मालुम हुआ कि ज्योति बाबू [महात्मा ज्योतींद्र मोहन, छोटे बेटे श्रीमन महात्मा रघुबर दयाल जी] को उसने नवाबगंज में देखा। बाबू लक्ष्मी दयाल के यहाँ दावत थी। फर्रुखाबाद में चित्तरगुप्त के मन्दिर में जलसा था, वास्ते मकान बनवाने के।

Tuesday the 31st March 1931 :
नवाबगंज, कानपुर को 'तार' [Telegram] दिया गया है। जवाब का 'तार' नहीं आया। अहिबरन सिंह के भाई से मालुम हुआ को वो [ज्योति बाबू] नवाबगंज में हैं।

Wednesday the 01st April 1931:

कानपुर से तार [टेलीग्राम] का जवाब आ गया कि सब लोग महफूज़ हैं। लड्डू [भण्डारे में प्रसाद वितरण हेतु] बनवाये गए।

Thursday the 02nd April 1931 :

कानपुर से सब लोग आये। रामदयाल अलीगढ से मय अपनी भावज के आये। किशन स्वरुप [डॉ कृष्ण स्वरुप - लालाजी महाराज के छोटे चचेरे भाई] अजमेर से आये।

Friday the 03rd April 1931 :
[वर्ष 1931 का 'जलसा-सलाना' The Annual Congregation दिनांक 03 अप्रैल से 05 अप्रैल 1931 तक]

आमद शुरू हो गयी।

Saturday the 04th April 1931 :
बाबूराम मझोला शाहजहाँपुर, भँवर पाल ब्राह्मण आगरा, मुन्शी सिंह जिला हरदोई [ग्राम नगरिया], काशीनाथ ब्राह्मण गोरखपुर, बाबू रघुबीर प्रसाद आगरा, पण्डित रेवतीराम आगरा, बाबू फतेहलाल कासगंज, बाबू शेवती प्रसाद कासगंज ने बैअत की। मौलवी साहिब [शाह मौलाना फ़ज़ल अहमद खान साहिब रहमत0] सिरसागंज से तशरीफ़ लाये।

Sunday the 05 April 1931 :

आज तीन बजे दिन के मौलवी साहिब वापस गए।

Monday the 06th 1931 :

बृजमोहन फतेहपुर को वापस गए।

Tuesday the 07th April 1931 :

दाँत उखड़वाये गए।

Wednesday the 08th April 1931 :

नन्हे [लालजी के छोटे भाये, रघुबर दयाल] हमराह माताचरन के मैनपुरी चले गए।

Thursday the 09th April 1931 :

मुन्शी मनमोहनलाल, बाबू करुणाशंकर जिला शाहजहाँपुर, कुँवर राम सिंह सांगानेर - मनोहरपुरा जयपुर ने बैअत की।

Friday the 10th April 1931 :

कृष्ण स्वरुप भोगांव से वापस आये और फिर कानपुर चले गए। ग्वालियर को नौ रुपये का और उन्नाव तीन रुपये का मनीऑर्डर किया गया।

Saturday the 11th April 1931 :

आज तबीयत पाहिले के मुक़ाबिले अच्छी मालुम होती है। वक़ील साहिब [कुँववर कृष्ण नरायन सेन] ने आज फ़िर फ़ायदा हाँसिल करने के लिए कहा। कुँवर राम सिंह जयपुर वापस चले गए। और शाहजहाँपुर के लोग भी वापस गए।

Sunday the 12th April 1931 :

पण्डित रामेश्वर प्रसाद शाहजहाँपुर वापस चले गए।

Monday the 13th April 1931 :

जगमोहन को स्टीमबाथ दिलवाया गया। आज जगमोहन की माँ की तबीयत और दिनों के मुक़ाबिले ज़्यादः ख़राब है। डॉ मक़सूद अली साहिब को दिखलाया गया।

Tuesday the 14th April 1931 :

मुंशी मनमोहन लाल सिकन्द्राबाद को वापस गए। कृष्ण स्वरुप कानपुर से सुबह को वापस आ गए। आज डॉ मक़सूद अली साहिब से अपने पेशाब की जाँच करवाई। उन्होंने शकर का आना बतलाया।

Wednesday the 15th April 1931 :

कृष्ण स्वरुप अजमेर को और मुन्शी आत्मा राम कानपुर को वापस चले गए।

Thursday the 16th April 1931 :

आज मुशगिल [अत्तार] की दवा खाई है। चार-पाँच दस्त आये, तबीयत ज़्यादा साफ़ नहीं हुयी। तमाम घर - वाल्दा जग्गू [जगमोहन नारायन], बिट्टन, बब्बन, बीमार पड़े हैं।

Friday the 17th April 1931 :

आज से दवा डॉ सय्यद मसूद अली की इस्तेमाल की गयी। मगन बिहारी लाल के यहाँ बरसी की दावत है। माता चरन आये। बब्बन को आज बहुत ज़ोर से बुख़ार है। तमाम रात बेचैनी रही।

Saturday the 18th April 1931 :

मुझ को आज दौरा हरारत का फ़िर से हो गया। मगर हल्का। रात को बेचैनी रही और नींद नहीं आयी। राम किशन और राम गोपाल आये। राम गोपाल की बीबी चली गयीं।

Monday the 20th April 1931 :

राम किशन और राम गोपाल चले गए। कुछ खाना नहीं खाया गया। कुछ झगड़े की बातें घर के अंदर अंदाज़ से मालुम हुईं। हालाँकि मुझसे कहा नहीं गया। मगर ऐसा ख़याल हुआ।

Tuesday the 21st April 1931 :

दिल को निहायत सदमा है कि हमारे यहाँ इस क़िस्म के सवालात और बातें दरपेश हैं। जिनके हम लोग दूसरों के वास्ते मना करते हैं में अपनी कमज़ोरी है वर्ना अल्लाह पाक ने जुमला नियामतों से मालामाल कर दिया है । कमज़ोरी ज़्यादा है।

Wednesday the 22nd April 1931 :

बाबू राम चरन लाल एक्सपर्ट मुरादाबाद से अपना हाल कहा। बाबू दया शंकर वक़ील के यहाँ लड़के का मुण्डन था। आज दवा डॉक्टर साहिब की नहीं खाई। आज शाम को सात मिनट तक

'बाथ' लिया गया। बहुत फ़रहत [आनन्द] और ताक़त मालुम हुयी।

Thursday the 23rd April 1931 :

भजनी और उपदेशक लोग कमरे में आ कर ठहरे हैं।

Friday the 24th April 1931 :

आज मुंशी मनमोहन लाल साहिब और डॉ श्री कृष्ण आये। आज नगर कीर्तन था।

Saturday the 25th April 1931 :

आज सुबह पंडित रूद्र दत्त जी का व्याख्यान है। स्वामी सत्यव्रत जी से मुलाक़ात हुयी। मुंशी मनमोहन लाल शाहजहाँपुर गए। जलसा आर्यसमाज का था। जगमोहन की दुल्हन को एक दाई को दिखलाया गया। जो चुंगी की मुलाज़िम है।

Sunday the 26th April 1931 :

जलसा आर्यसमाज का था।

Monday the 27th April 1931 :

जलसा आर्यसमाज का है। श्री किशन सिकंदराबाद वापस गए। मुंशी मनमोहनलाल शाहजहाँपुर से वापस आये। जलसा ख़त्म हो गया।

Saturday the 02nd May 1931 :

आज 'गार्डलाइन' में दावत थी। मगर नहीं जा सका। सुना गया है कि नारायण स्वामी लखनऊ से आये हैं। पार्सलघर [के पास] गार्डलाइन में नारायण स्वामी का लेक्चर सुना गया।

Sunday the 03rd May 1931 :

आज शाम फतेहगढ़ में नारायण स्वामी का लेक्चर सुना गया।

Monday the 04th May 1931 :

आज सुबह 07.00 बजे बा हमराही मुन्शी मनमोहन लाल जी व सुशीला वग़ैरह के सिकन्द्राबाद [ज़िला बुलन्दशहर] की तरफ़ रवाना हुए। 11.00 बजे शिकोहाबाद पहुँचे। 01. 45 पर शिकोहाबाद से रवाना हए। 06.00 बजे शाम को शाम को पहुँचा। किसी क़िस्म की कोई तक़लीफ़ नहीं हुयी।

Tuesday the 05th May 1931 :

मुंशी मसूद आलम साहिब 'तबीब' को दिखाया गया। आज रोटी रग़बत से [दिलचस्पी ले कर] खाई गयी।

Wednesday the 06th May 1931 :

मुंशी महमूद अली 'तबीब' को दिखलाया गया। यूनानी [इलाज] भी शामिल किया गया।

Thursday the 07th May 1931 :

आज दिन में कई मर्तबा दौरा दर्द का, दाँत और सिर में हुआ। मगर हल्का। बाबू सूरज प्रसाद उरई का ख़त आया है कि अभी शादी की तारीख़ ठीक नहीं है। बलग़म और खाँसी का ज़ोर रहा।

Friday the 08th May 1931 :

आज शाम को वाल्दा-सुशीला [लालाजी की धर्मपत्नी] की दावत भजनलाल के यहाँ थी। वहाँ जा कर खाने की बेतरतीबी को देखा गया और एतराज़ किया गया। हक़ीम साहिब ने आ कर नब्ज़

देखी।

Saturday the 09th May 1931 :

आज से श्रीकृष्ण के यहाँ उठकर आ गया। और खाना खाया। इलाज 'टब' का शाम से बंद किया गया। आज भी हकीमसाहिब ने आ कर नब्ज़ देखी।

Sunday the 10th May 1931 :

आज पेट [stomach] यानि जिगर [liver] पर लेप [a medical plaster] रक्खा गया। दो-तीन दस्त पतले आये। रामायण समझाना शुरू किया गया।

Monday the 11th May 1931 :

आज सुबह आठ बजे दिल्ली को रवाना हुआ। रायसाहिब दयाशंकर के यहाँ गया। वहाँ से फ़िर तिब्बिया कॉलेज को गया। और विश्वास बाबू को दिखलाया गया। फ़िर होटल में जा कर मथुरा के ज़दीद [आधुनक] आदमियों और औरतों से मुलाक़ात हुयी। शाम को वापस आ गया। बाबू भगवत प्रसाद साथ आये।

Tuesday the 12th May 1931 :

आज जगमोहन का ख़त आया है। दिल्ली की दवा इस्तेमाल करना शुरू की। जगमोहन के ख़त जवाब दे दिया गया। बाबू श्यामलाल वापस गए।

Friday the 15th May 1931 :

आज पण्डित काशीनाथ मेरठ से और बाबू राजेंद्र कुमार आगरा से आये। आज खाना नहीं खाया गया।

Saturday the 16th May 1931 :

आज श्रीकृष्ण व महादेव स्वरुप व बाबू भजनलाल व डॉ श्यामलाल दिल्ली मोटर ख़रीद करने गए हैं। आज नहाया गया क्योंकि डॉक्टर साहिब दिल्ली इजाज़त का ख़त भेज दिया गया था।

Sunday the 17th May 1931 :

आज सुबह मोटर में मय शीला वग़ैरह के बिठला कर डॉ श्यामलाल ने शुरुवात की। और पाँच रुपया नज़राना दिया। मौलवी मुश्ताक़ अहमद हेडक्लर्क चंगी मिलने को आये। और अपनी एक किताब दे गए।

Monday the 18th May 1931 :

आज दिन भर खाना नहीं खाया गया और भूँख नहीं लगी । सुशीला को आज चौथा रोज़ बुख़ार का है कि नहीं उतरा है और गलासुए निकल आये हैं। मौलवी मुश्ताक़ अहमद मय एक हाफ़िज़ साहिब मिलने आये। कन्हैयालाल का ख़त इलाहाबाद [परिवर्तित नाम - प्रयागराज] से आया।

Tuesday the 19th May 1931 :

मुकुन्द स्वरुप के साथ दिल्ली गया। मुअज़्ज़मदार जी को दिखलाया गया। शाम को वापस आया। तेज़ हवा की वजह से बहुत तक़लीफ़ हुयी। खाना बिलकुल दो रोज़ से नहीं खाया जाता है। हेडमास्टर साहिब मेरठ वापस चले गए। बाबू श्यामसुन्दर भान्जा मुन्शी शिवशंकर लाल से मुलाक़ात हुयी।

Wednesday the 20th may 1931 :

तबीयत [state of health] निहायत [exceedingly] ख़राब [spoiled] है। डॉ शम्भू प्रसाद को दिखलाया गया। तमाम हालात उनसे दरियाफ़्त किये। दस्त साफ़ नहीं आया और न खाना खाया गया ।

Thursday the 21st May 1931 :

आज भी दस्त [motion = मल-त्याग] साफ़ नहीं आया और न खाना खाया गया। दिल्ली का इलाज तर्क [छोड़ना = बंद] कर दिया गया, और वक़्त शाम बुलन्दशहर आ गया। डॉ चुन्नीलाल को दिखलाया गया।

Friday the 22nd May 1931 :

आज इलाज डॉ चुन्नीलाल का शुरू किया गया। सिर्फ़ फ़ल और दूध बतलाया। आज तबीयत अच्छी रही।

Saturday the 23rd May 1931 :

बाबू राजेंद्र कुमार [प्रोफ़ेसर राजेंद्र कुमार] का खत आया कि आगरा आ जाओ। मगर वहाँ के डाक्टर साहिब और यहाँ के डॉक्टर की राय मुताबिक़ पडी। इसलिए जाना मुल्तवी [स्थिगित] किया गया।

Sunday the 24th May 1931 :

आज सुबह साढ़े पाँच बजे बहमराही महादेव स्वरुप कार पर रवाना हुए। अलीगढ़ में बाबू गौरीशंकर व केदारनाथ से मुलाक़ात हुयी फ़िर एटा रवाना हुआ। दस बजे एटा पहुँचा। सब से मुलाक़ात हुयी। दिन और रात में क़याम किया।

Monday the 25th May 1931 :

सुबह 05.30 बजे फ़तेहगढ़ की तरफ़ रवाना हुआ। सुबह 09.00 बजे फ़तेहगढ़ पहुँच गया। गुसाईंजी [गोस्वामी जी] व गँगाभारतीजी ठहरे हुए मिले। भोगावं में मौलवी आविद अली साहिब से और वैद्य जी से रास्ते में मुलाक़ात हुयी। दस बजे इलाहबाद [परिवर्तित नाम - प्रयागराज] से तीन औरतें और बाबू गंगासहाय याकूतगंज से आयीं। उनको उपदेश दिया गया।

Tuesday the 26th May 1931 :

आज 'गंगास्नान' [का पर्व] है। आज से 'टब-बाथ' लेना फ़िर शुरू किया गया। आज फिर वोह औरतें आईं, उनको उपदेश किया गया। बाबू रामकुमार सॉर्टर [sorter] आर ऍम एस - कासगंज, और बाबू भजनलाल मय असबाब के आये। इलाहाबाद की औरतों ने रूपया 04/- बब्बन [लालाजी की द्वितीय पुत्री - सुश्री कृष्णा कुमारी उर्फ़ बब्बन] को दिए।

Wednesday the 27th May 1931 :

कोई ताज़ा बात नहीं। रामकिशन लाल भोगावं से आये। आज कल गुसाईंजी, सुन्दरलाल, पुत्तूलाल, रामकिशन, उमाशंकर और भजनलाल मौजूद हैं।

Thursday the 28th May 1931 :

रामकिशन लाल वापस गए। मुंशी जीवा राम और रुद्रसेन जी मैनपुरी से आये। रात को थोड़ा दलिया [coarsely ground grain] खाया। महेश्वर सहाय उर्फ़ मस्सू भोगांव से आये और अपने घर का वाक़्या बयान किया। इलाज होम्योपैथिक बंद कर दिया।

Saturday the 30th May 1931 :

आज टब-बाथ गरमा [steam-tub bath] लिया गया। मुंशी जीवाराम और गुसाईंजी वापस गए। शाम को नन्हें वग़ैरह मय मस्तूरात के उरई से वापस आये। कानपुर में सोराइसिस [Psoriosis] फ़ैल गयी है इस लिए शहर में दखिल नहीं हुए।

Sunday the 31st May 1931 :

आज जगमोहन वास्ते शिरक़त शादी एटा - भोगांव हो कर गए ताकि मुंशी [लालाजी के सगे छोटे भाई महात्मा रघुबर दयाल जी साहिब के मझले बेटे - महात्मा राधा मोहन लाल] को कानपुर जाने से रोक देवें। बाबू हरप्रसाद फुलैरा [राजस्थान] से आये।

Monday the 01st June 1931 :

बाबू हरप्रसाद वापस गए। बरात एटा जगत नरायन पिसर [आत्मज] रामपूरन दास की है।

Tuesday the 02nd June 1931 :

नन्हें [महात्मा रघुबर दयाल] मय 'ज्योती' [महात्मा ज्योतिन्द्र मोहन लाल] के फतेहपुर हँसुआ [इलाहाबाद के पास] 'अनन्दे' [बाबू आनन्द बिहारी लाल] की बरात में गए। दोपहर में पेन्शन [Pension] लाया।

Thursday the 04th June 1931 :

आज स्टीम-बाथ लिया गया। जगमोहन एटा से वापस आये। ग्वालियर [संभवतः लालाजी के गुरुदेव के पुत्र के परिवार के लिए] को दस रुपये का मनीऑर्डर किया गया।

Friday the 05th June 1931 :

आज तीन मर्तबः टब-बाथ लिया गया। बारात अनन्दे की फतेहपुर से वापस आयी है। पार्सल उरई को किया गया।

Saturday the 06th June 1931 :

बीस रुपये का मनीऑर्डर उरई से आया। पिंडोल [yellow or white soil used to smear or wash the walls of the houses] का प्लास्टर पेट पर किया गया।

Sunday the 07th June 1931 :

आज भजनलाल सुबह को वापस सिकन्द्राबाद [जिला - बुलन्दशहर] गए। आज रात को मुन्शी मनमोहन लाल साहब सिकन्द्राबाद से आये। बाबू रतनलाल [श्री आनन्दबिहारी लाल उर्फ़ अनन्दे के पिता जी, जो कि महात्मा श्याम बिहारी लाल - फतेहगढ़ के सगे बहनोई भी थे] के यहाँ 'गार्डन-पार्टी' [उनका यह बाग़, मौजूदा वक़्त की छोटी-जेल चौराहा और महात्मा श्याम बिहारी लाल जी की 'समाधि' तक उस समय में स्थित था] थी।

Monday the 08th June 1931 :

मैनपुरी से नन्हें [महात्मा रघुबर दयाल जी] ने ख़रबूज़े भेजे हैं। मुन्शी सुखवासी लाल ने रूपये 10/- का मनीऑर्डर भेजा है। ख़ानबहादुर अब्दुल हमीद ख़ान साहिब तशरीफ़ लाये।

Tuesday the 09th June 1931 :

आज सुबह को कमज़ोरी ज़्यादः रही और वरम [सूजन] के स्थान पर छूने से कभी-कभी दर्द सा होता है, तबीयत गिरी-गिरी सी हुयी है । नन्हें [महत्मा रघुबर दयाल] मय बच्चों के और मुंशी आत्माराम के कानपुर तीन बजे रात को चले गए।

Wednesday the 10th June 1931 :

मुंशी मनोहन लाल सिकन्द्राबाद [जिला - बुलन्दशहर] वापस गए। अयोध्या नाथ सहाय [लालाजी के साले साहिब, जिज्जी श्रीमती बृजरानी के सगे छोटे भाई] बरेली से शिरक़त बारात बिश्वम्भर नाथ [उपनाम बिस्सू बाबू, उनके छोटे भाई के बेटे] के लिए आये। बाबू राजेंद्र कुमार [प्रोफ़ेसर साहिब] कानपुर से आये। बाबू शिवशंकर लाल की बारात बारात गए। मौलवी अब्दुलग़नी खां साहिब भोगांव [जिला - मैनपुरी] से तशरीफ़ लाये।

Friday the 12th June 1931 :

रायसाहिब इन्द्रनारयण - सकीट [लालाजी की धर्मपत्नी के सगे ममेरे भाई, जिनके घर पर रहकर वे बचपन से शादी तक पलीं-बढ़ीं थीं] रात को मिलने को आये। सुबह को शशि मुकुट नारायन पटियाली से [लालाजी के बेटे महात्मा जगमोहन नरायन की प्रथम पत्नी के पिताजी] मिलने को आये।

Saturday the 13th June 1931 :

राम गोपाल [लालाजी की पत्नी के भाई के दामाद, जो कि उनके बैअतशुदा शिष्य भी थे] छिबरामऊ से आये और वापस गए। अयोध्या नाथ सहाय वापस गए। बाबू राजेंद्र कुमार आगरा

को वापस गए। ठाकुर तेजसिंह आये।

Sunday the 14th June 1931 :

जगमोहन बारात वास्ते शामिल होने नन्हेंबाबू के लड़के की गए। महाराज नरायन [लालाजी की द्वितीय पुत्री कृष्णाकुमारी के पतिदेव] बुलन्दशहर [अपने घर] गए। दीनानाथ आये और उनके हमराह पिसर रघुनन्दन लाल सबइंस्पेक्टर साकिन मौजा भवानीप्रसाद वास्ते हुसूल [प्राप्ति] तालीम के आये । आज रात में बवासीर ज़ोर कर आयी है।

Monday the 15th June 1931 :
आज शिव वरन को तवज्जः दी गयी, असर हुआ। शाम को भी तवज्जः दी गयी, असर अच्छा हुआ।

Tuesday the 16th June 1931 :

आज फ़िर तवज्जोः दी गयी। आज रातभर निहायत दर्द रहा। तमाम रात नींद नहीं आयी और तबीयत बेचैन रही । तौला [copper or earthen vessel for measuring out liquids] में भरकर आया।

Wednesday the 17th June 131 :

जगमोहन बरात से वक़्त शाम वापस आये। आज तबीयत ठीक रही और दर्द नहीं हुआ।

Thursday the 18th June 1931 :

बाबू कन्हैया लाल [लाला जी के साढ़ू = co-brother, wife's sister's husband] मय-बच्चों के मैनपुरी से आये। बाबू शम्भूनाथ वकील की लड़की जो जमुनास्वरूप की सास है, मय बच्चों के फ़र्रुख़ाबाद से आयी। बाबू अवधबिहारी इलाहाबाद वाले अपने घर से आये। श्रीगोपाल ढर्रा से आये।

Friday the 19th June 1931 :

बाबू कन्हैयालाल वापस चले गए। श्रीगोपाल दास गए। स्टीम-बाथ लिया।

Saturday the 20th June 1931 :

पण्डित शिवनारायन उर्फ़ गाँधीजी कानपुर से आये।

Sunday the 21st June 1931 :

आज खाना बहुत कम खाया गया।

Monday the 22nd June 1931 :

पण्डित शिवनरायन मास्टर [गाँधीजी] कानपुर दस बजे सुबह वापस गए। फ़र्रुख़ाबाद की लड़की यानि जमुना स्वरूप की सास वापस चली गयी। खाना नहीं खाया गया। दिमाग़ी तक़लीफ़ ख़ानगी [निजी, घर-गृहस्थी से सम्बंधित] से हालत मेरी कमज़ोर [mental-boggling] है।

Tuesday the 23rd June 1931 :

आज बाबू राम चन्द्र शाहजहाँपुर से आये और फ़ल [fresh-fruits] लाये । आज फ़लों का इस्तेमाल ज़ियादा किया गया। दोपहर में गरम पानी और कपड़े से सेंका [fomenting] गया। एटा से एक ख़त गोवर्धनदास [लालाजी की पुत्रवधू सुश्री भगवतीदेबी के फुफेरे-भाई] का निस्बत रुख़सत [दुल्हन की विदाई से सम्बंधित] आया और जवाब फ़ौरन दिया गया।

Wednesday the 24th June 1931 :

आज सुबह को पेशाब जर्द [पीले रंग वाला] रंग का आया जिसमें सुर्ख़ी और हरारत कम थी । दोपहर को पिण्डोल की गरम-पट्टी इस्तेमाल की गयी। रात को तीन बजे पंडित रामनरायन गार्ड बुलन्दशहर से आये। पार्सल लीची [litchi] का देहरादून से आया और [एक] पार्सल फ़लों का लखनऊ से आया ।

Thursday the 25th June 1931 :

माता चरण, राम चन्द्र, राम नरायन गार्ड, श्यामा मौजूद हैं। आज फ़िर गरम पानी से सेंका गया। दस रुपये का मनीऑर्डर सीताराम लखनऊ ने ख़ैरात फण्ड का भेजा है। बाबू राम गोपाल बरेली से आये।

Sunday the 28th June 1931 :

आज से शरबत तुख़्म काशायी [a Tibbiya medicine] का इस्तेमाल किया गया। माता चरन वापस गए। एक ख़त रियासत रामपुर को वास्ते 'सवालहै उमरी' [A Persian Book] के रवाना [dispatched] किया गया।

Wednesday the 01st July 1931 :

आज बाथ [टब-बाथ] का नाग़ः [ग़ैरहाज़िरी = adjourn] किया गया। बाबू अवध बिहारी लाल इलाहबाद जाने के वास्ते अपने घर से आये।

Thursday the 02nd July 1931 :

[Went, himself to draw His last pension during life-time.]

पेंशन वसूल [collect] करने गया। आज शाम को टहलने गया। रास्ते आँधी-पानी आ गया। अब्दुल रहमान खान साहिब वक़ील के यहाँ नौ बजे रात तक बैठा रहा। बाबूराम वग़ैरह फ़र्रूख़ाबाद से आये। जगमोहन की छत [roof-top] पर [लालाजी के पुत्र जगमोहन के कमरे के सामने खुली जगह में] रात को सोया।

Friday the 03rd July 1931 :

खूब ठण्डा रहा। बावज्अ [जो अपनी वज्अ का पाबन्द हो = के कारण ीi. e. on account of] कमज़ोरी के टहलने न जा सका। ग़ालिबन [probably] पेशाब में 'रेशः' [तंतु = fiber] आ रहे हैं। इस वजह से कमज़ोरी है। बाबू उमाशंकर और बाबू बसन्त लाल कासगंज से आये हैं। कालेश्वर प्रसाद की लड़की आयी हुयी है। बारिश खूब हुयी।

Saturday the 04th July 1931 :

आज भी कमज़ोरी ज़्यादः है। पेशाब निहायत सुर्ख़ आता है। बारिश खूब हुयी। बाबू भजन लाल कानपुर से आये। कालेश्वर प्रसाद की लड़की [भगवती] को उपदेश किया गया। मगर उनको कोई असर नहीं हुआ।

Sunday the 05th July 1931 :

बावज्अ बारिश के दोनों वक्त टहलने न जा सका। लखनऊ से फ़ल रामेश्वर प्रसाद ने भेजे हैं ।

Monday the 06th July 1931 :

आज भी सुबह को बारिश हो रही है। बाहर नहीं जा सका। श्यामलाल के 03 जुलाई को लड़का पैदा हुआ। और पेशकारसहिब के लड़का पैदा हुआ। रात में मुझको बुख़ार बहुत ज़ोर से आ गया और पेट नफ्ख [फूल] हो गया कि तमाम रात किसी तरह चैन नहीं पड़ा।

Tuesday the 07th July 1931 :

आज भी बुख़ार है। सच्चिदानन्द ने 'टब-बाथ' अपने हाँथ से मुझको दिया। बीस रूपये उरई से आये। शाम को पाखाना पतला आया और साफ़ आया। रात में बुख़ार बहुत पसीना आ कर उतर गया।

Wednesday the 08th July 1931 :

आज कमज़ोरी बहुत ज़्यादः है।

Thursday the 09th July 1931 :

आज कोई ख़ास बात नहीं हुयी। पेट की हालत ऐसी रही कि जिससे साँस लेने में तक़लीफ़ रही। शाम को थोड़ा टहलने गया।

Friday the 10th July 1931 :

आज सवानिहे-उम्री [जीवनी] - हज़रत नुजद्दिद अल्फसानी रहमत0 की दो रुपये सात आने की आयी। बीस रूपये का मनीऑर्डर बाबू दिलाराम ने भेजा और दस रूपये ख़ैरात [charity] के भेजे हैं। आज पेशकार साहिब के यहाँ 'छठी' [the sixth day after the birth of a child, when ceremonial observances, including the naming of the child are performed] थी। रात को सब औरतें वहाँ गयीं थीं।

Saturday the 11th July 1931 :

आज टब-बाथ नहीं लिया गया।

Sunday the 12th July 1931 :

आज भी टब-बाथ नहीं लिया गया। बाबू उमाशंकर कासगंज और पण्डित रामेश्वर प्रसाद शाहजहाँपुर से आये। लाला गोवर्धन दास [लालाजी की पुत्रवधू - सुश्री भगवती देवी के फुफेरे भाई] एटा से वास्ते रुख़सत कराने आये। रात को [उन्होंने भी] खाना खाया। शाम को नुस्ख़ा-यूनानी इस्तेमाल किया गया।

Monday the 13th July 1931 :

सुबह को मुन्शी गोवर्धन दास और बाबू उमाशंकर वापस चले गए। रुख़सत [पुत्रवधू की विदा] नहीं हुयी। आज सुबह भी नुस्ख़ा यूनानी लिया गया। रामकिशन लाल भोगावं से आए।

Tuesday the 14th July 1931 :

पेशकार साहिब के घर में [उनकी पत्नी] ज़्यादह बीमार हैं। तमाम दिन खाना नहीं खाया गया क्योंकि यूनानी नुस्ख़े मेदा फुला दिया। रामकिशन लाल वापस चले गए। पुत्तू लाल मुदर्रिस [अध्यापक] आये।

Wednesday the 15th July 1931 :

पुत्तूलाल और अहिबरन सिंह वापस गए। आज पिंडोल की पट्टी रक्खी गयी। डॉ. चतुर्भुज सहाय व बाबू अवधबिहारी लाल एटा से आये।

Thursday the 16th July 1931 :

आज दोनों वक़्त टब-बाथ लिया गया। शाम को बाथ के बाद ताक़त आ गयी। बाबू अवधबिहारी लाल वापस चले गए।

Friday the 17th July 1931 :

आज से डॉ चतुर्भुज सहाय ने होम्योपैथिक दवा इस्तेमाल कराई। नन्हें [महात्मा रघुबर दयाल] कानपुर से, मुंशी मदनमोहन लाल तिलहर से व बाबू बिशन दयाल मुख्त्यार तिलहर से व करुणाशंकर शाहजहाँपुर से आये। कमज़ोरी कल के मुक़ाबिले आज ज़्यादः है। रात को पेट नफ्ख [फूल] हो गया।

Saturday the 18th July 1931 :
बाबू महाराज नारायण अग्रवाल कानपुर से आये। और शाम को वापस चले गए। दिल्ली से फ़ल आये। नन्हें [महात्मा रघुबर दयाल] फ़र्रुख़ाबाद चले गए।

Sunday the 19th July 1931 :

आज डॉ चतुर्भुजसहाय और जगमोहन मय अपनी दुल्हन [पत्नी] के एटा को गए। रात भर नींद नहीं आई। पेट फूल गया। आज कमज़ोरी बहुत ज़्यादः है। श्यामलाल बुलंदशहर से आये। पेशकार साहब के यहाँ दष्ठौन है। मुंशी मदनमोहन लाल और बिशुनदयाल वापस शाहजहांपुर गए।

Tuesday the 21st July 1931 :

जगमोहन मय दुल्हन व डॉ चतुर्भुजसाय की बीबी के एटा से वापस आये। रात को और दिन में कई मर्तबा पेट फूला। रात को पानी बहुत बरसा।

Wednesday the 22nd July 1931 :

रामप्रसाद दिल्ली से वापस आये और 'टब' सिकन्द्राबाद से लाये । रात को बेक़रारी [बेचैनी] बहुत रही। और मच्छरों ने बहुत काटा। तमाम दिन पानी बहुत बरसा है। मनीऑर्डर ग्वालियर उन्नाव और सिरसागंज के लिए किये गए।

Thursday the 23rd July 1931 :
आज तमाम दिन नफ्ख [पेट फूलता] रहा। रामेश्वरप्रसाद शाहजहाँपुर वापस चले गए। रात को नींद 12.00 बजे तक काम आयी। फिर नफ्ख [पेट का फूलना] काम हो गया। और सुबह तक सोता रहा।

Friday the 24th July 1931 :

The last treating Physician to Rev. Laalaaji.

आज छोटेलाल डॉक्टर की बीवी [Popularly named as 'Kaalee mem'] देखने को आईं। उन्होंने वर्म-जिगर [जिगर की सूजन] तज़बीज़ किया। तमाम रात निहायत दर्ज़ा गर्मी रही। बहुत बेचैनी रही। रात भर नहीं सोया और मच्छरों ने काटा।
Saturday the 25th July 1931 :

खाना बहुत कम खाया गया है। पेट की सूजन बहुत ज़्यादः है। रात को नींद नहीं आयी।

Sunday the 26th July 1931 :

आज मैनपुरी का एक लड़का जो बोर्डिंग [छात्रावास] में रहता है आया। सुबह को कमज़ोरी ज़्यादः है, टहलने को नहीं गया। बाबू उमाशंकर और उनके रिश्तेदार सॉर्टर [sorter in RMS] और चले गए। करुणाशंकर वापस शाहजहाँपुर गए। नन्हें [महात्मा रघुबर दयाल] रात को तीन बजे कानपुर चले गए। तमाम रात गर्मी की वजह से नींद नहीं आयी।

Monday the 27th July 1931 :

डॉक्टर साहिब बाबू पुरुषोत्तम दास [डॉ वत्सल] फतेहगढ़ व बाबू जगन्नाथ प्रसाद वकील देखने को आये। आज हवा अच्छी चलती रही। और रात में नींद भी अच्छी आयी। उन्होंने [डॉ वत्सल] 'गोमा' तज़बीज़ [diagnosed] किया है।

Tuesday the 28th July 1931 :

बाबू श्रीकृष्ण [डॉ श्रीकृष्ण लाल - सिकन्द्राबाद वाले] व श्याम लाल [डॉ श्याम लाल - ग़ज़िआबाद वाले] शाम को एटा से आये।

Wednesday the 29th July 1931 :

आज सुबह 05.00 बजे कार पर मय [together] श्रीकृष्ण व श्याम लाल के रवाना हुआ। 09.30 बजे कानपुर पहँचे। बाबू राजेंद्र कुमार [प्रोफ़ेसर साहिब] मुक़ीम [साथ में ठहरे] हुए। बाबू हरिकृष्ण प्रोफ़ेसर - फ़ारसी [Persion] से मुलाक़ात हुयी। क़याम कानपुर रहा। माताचरन व प्रसाद [राम प्रसाद] रेल से आये।

Thursday the 30th July 1931 :
आज सुबह 07.00 बजे लखनऊ को रवाना हुआ। कानपुर से ही बारिश शुरू हो गयी। और लखनऊ तक बराबर बारिश हुयी। तमाम भीग गए। राम प्रसाद और माताचरन व ज्योतिबाबू रेल आये। आज डॉ गुप्ताजी को दिखलाया गया।

Friday the 31st July 1931 :

पेशाब का इम्तहान कराया गया। डॉ प्यारे लाल जी को दिखलाया गया। धर्मशाले से उठ कर आ गए। आज रात को पेट नहीं फूला।

Saturday the 01st August :
डॉ प्यारे लाल जी सुबह को फिर देखने को आये। और दवा आज से शुरू की गयी। आज सुबह ही से पेट फूला है। 'Syphilinum' 200 एक डोज़ दी गयी। बाबू राम चन्द्र, रामेश्वर प्रसाद व बाबू श्री राम शाहजहाँपुर से आये।

Sunday the 02nd August 1931 :

Antimonium Tartaricum 200 एक डोज़। आज रात में अफ़ारा ज़्यादः रहा। और नाभि के नीचे दर्द रहा। आज सुबह से नफ्ख [पेट फूला] है और पेट बहुत फूला है। तमाम दिन और तमाम रात निहायत तक़लीफ़ रही। रयाः खारिज नहीं हुए और पेट फूल गया। रात को दो गोइयाँ जुलाब की दी गयीं। मगर कोई दस्त सुबह को नहीं आया। और पाख़ाना बिलकुल सख़्त हो गया। बाबू श्रीपत सहाय और बृजबिहारी लाल मैनपुरी से आये।

Monday the 03rd August 1931 :

आज सुबह को पाख़ाना बिलकुल खुश्क हो गया। और दस्त साफ़ नहीं आय, बावजूद जुलाब की गोलीयों के। दर्द बहुत कसरत [abundance] से हुआ। पेट फूल गया। साढ़े दस बजे दिन सवारी कार लखनऊ से कानपुर को रवाना हो गया। शाम को बक्शी जी को दिखलाया गया। आठ बजे रात को पट्टियों का लेप चढ़ाया गया। रात को आराम रहा। खाना बिलकुल नहीं दिया गया। श्याम लाल वग़ैरह मय कार के चले गए।

Tuesday the 04th August 1931 :

सुबह को कुछ खाना नहीं दिया गया। सुबह बर्फ़ और सिरके के पानी से नहलाया गया। और उसके बाद रात वाली पट्टियाँ चढ़ायीं गयीं। इसके बाद नफ्ख [पेट फूलना] हुआ और पेन्डु में दर्द बहुत शिद्दत के साथ हो गया। तमाम दिन बहुत बेचैन और बेताब रहा। जब गरम पानी से फलालेन से सेंका गया तब दर्द बंद हो गया। और रियाह भी ख़ारिज़ हो गया। पण्डित छोटे लाल वैद्य को दिखलाया गया। उन्होंने 'जलन्धर' की शुरुवात बतलाई। मगर तहक़ीक़ नहीं।